पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला
: २५ :

जैन प्रतिमाविज्ञान

लेखक
डा० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी
व्याख्याता, कला-इतिहास विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी



पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान
वाराणसी—२२१००५
१९८१

भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त

प्रकाशक एवं प्राप्ति-स्थान
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान
आई० टी० आई० रोड
वाराणसी-२२१००५

प्रकाशन-वर्ष
१९८१

मूल्य: रु० १२०/-

मुद्रक
पाठ—तारा प्रिंटिंग वर्क्स, कमच्छा, वाराणसी
चित्र—खण्डेलवाल प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी

प्रकाशकीय

जैन प्रतिमाविज्ञान पर हिन्दी भाषा में अद्यावधि दो-तीन लघुकाय कृतियां ही प्रकाशित हुई हैं। डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी की यह विशालकाय कृति न केवल गवेषणापूर्ण अध्ययन पर आधारित है, अपितु विषय को काफी गहराई से एवं व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती है। आशा है विद्वत् जगत् मे इस कृति को समुचित स्थान प्राप्त होगा।

भारतीय मूर्तिकला के क्षेत्र में जैन प्रतिमाओं का ऐतिहासिकता एवं कला-पक्ष दोनों दृष्टियो से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जैन प्रतिमाविज्ञान में जिन प्रतिमाओं के साथ-साथ यक्ष-यक्षी युगलों, विद्यादेवियों और सरस्वती आदि की प्रतिमाओं का भी विशिष्ट स्थान रहा है। डॉ० तिवारी ने इन सबको अपने ग्रन्थ मे समाहित किया है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी पार्श्वनाथ विद्याश्रम के शोध छात्र रहे हैं और उनको अपने शोध-प्रबन्ध 'उत्तर भारत में जैन प्रतिमाविज्ञान' पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा ई० सन् १९७७ में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी। प्रस्तुत कृति उनकी उक्त गवेषणा का संशोधित रूप है जिसको प्रकाशित कर पाठकों के हाथो मे प्रस्तुत करते हुए मुझे अति प्रसन्नता हो रही है।

प्रस्तुत कृति के प्रकाशन हेतु भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली एवं जीवन जगन् चैरिटेबल ट्रस्ट, फरीदाबाद ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया है; इस हेतु मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं। इस सहायता के कारण ही प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका है। मैं लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद; जैन जर्नल, कलकत्ता तथा भारत कला भवन, वाराणसी का भी आभारी हूं, जिन्होने प्रस्तुत कृति के प्रकाशन हेतु कुछ चित्रों के ब्लाक्स उपलब्ध कराकर सहयोग प्रदान किया है।

मैं संस्थान के निदेशक, डॉ० सागरमल जैन, डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी एवं डॉ० हरिहर सिंह का भी आभारी हूं जिन्होने ग्रन्थ के मुद्रण एवं प्रूफरीडिंग सम्बन्धी उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर इस प्रकाशन को सम्भव बनाया है।

अन्त में मैं संस्थान के मानद मन्त्री भाई भूपेन्द्रनाथ के प्रति आभार व्यक्त करता हूं जिनके प्रयत्नों के कारण ही संस्थान के प्रकाशन कार्यों में अपेक्षित प्रगति हो रही है।

शादीलाल जैन
अध्यक्ष
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान,
वाराणसी—२२१००५



जैन विद्या के निष्काम सेवक

एवं

पार्श्वनाथ विद्याश्रम

के

मानद मन्त्री

लाला हरजसरायजी

को

सादर समर्पित

जिन्हें यह ग्रन्थ समर्पित है—

जैनविद्या के निष्काम सेवक लाला हरजसरायजी जैन : एक परिचय

भगवान् पार्श्वनाथ की जन्म स्थली एवं विद्यानगरी काशी मे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के समीप जैन धर्म और दर्शन के उच्चतम अध्ययन केन्द्र के रूप में पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान को मूर्तरूप देने एवं विकसित करने का श्रेय यदि किसी व्यक्ति को है, तो वह लाला हरजसरायजी जैन को है जिनके अथक परिश्रम से इस संस्थान के प्रेरक पं सुखलालजी का चिर प्रतीक्षित सुन्दर स्वप्न साकार हो सका।

लाला हरजसरायजी का जन्म अमृतसर के प्रसिद्ध एवं सम्मानित लाला उत्तमचन्दजी जैन के परिवार मे हुआ, जो अपनी दानशीलता तथा मर्यादा की रक्षा के लिए प्रसिद्ध रहा है। आपका जन्म अमृतसर में आसोज शुदी ७ मंगलवार सम्वत् १९५३, तदनुसार दिनांक १३ अक्तूबर १८९६ ई० को हुआ। आपके पिता का नाम लाला जगन्नाथजी जैन था। ये अपने पिता के द्वितीय पुत्र हे। इनके अन्य भ्राता स्व० लाला रतनचन्दजी जैन तथा लाला हंसराजजी जैन थे।

सन् १९११ मे १५ वर्ष की आयु मे इनका विवाह-संस्कार श्रीमती लाभदेवी से सम्पन्न हुआ, जो स्यालकोट (अब पाकिस्तान में) के प्रसिद्ध हकीम लाला बेलीरामजी जैन की पुत्री थी। यह परिवार भी अपने मानवीय एवं उदार गुणों के लिए प्रसिद्ध रहा है। श्रीमती लाभदेवा के भाई लाला गोपालचन्द्रजी जैन विभाजन के पश्चात् भी पाकिस्तान में ही रहे तथा अपनी योग्यता के कारण पाकिस्तान सरकार से सम्मानित भी हुए।

आपने सन् १९१९ मे गवर्नमेन्ट कालेज, लाहौर से बी० ए० को शिक्षा पूर्ण की। वह युग राष्ट्रीय आन्दोलनों का युग था। गांधीजी के आह्वान पर सम्पूर्ण देश मे सामाजिक व राजनीतिक पुनर्जागरण की हवा फैल रही थी। पराधीन भारत में देशभक्ति को प्रोत्साहन देने के लिए देश मे निर्मित वस्तुओ के उपभोग पर बल दिया जा रहा था तथा विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार किया जा रहा था। इन सबका प्रभाव युवक हरजसराय पर भी पड़ा। वे उसी समय से खद्दरधारी हो गए एवं देश मे धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियों को मिटाने और राजनैतिक चैतन्यता लाने के कार्य मे जुट गये। राष्ट्रीय पद्धति पर शिक्षा देने के लिए १९२९ में अमृतसर मे श्रीराम आश्रम हाई स्कूल की स्थापना हुई। बाबू हरजसरायजी इसके प्रथम मंत्री बने। समाज के अग्रगण्य व्यक्तियों द्वारा मुक्तहस्त से दिये गये दान से यह संस्था पुष्पित तथा पल्लवित हुई। इसकी सबसे प्रमुख विशेषता सहशिक्षा थी। सामाजिक तथा धार्मिक अन्धविश्वास को जड़ से समाप्त करने का सबसे सुन्दर उपाय यही था कि नर और नारी दोनों को समान शिक्षा दी जाय। यह संस्था अब भी बहुत ही सुचारु रूप से चल रही है।

१९२९ में सम्पूर्ण आजादी का नारा देने के लिए आहूत लाहौर कांग्रेस मे आपने एक सदस्य के रूप मे सक्रिय भाग लिया। इसके अतिरिक्त आप कई प्रमुख समितियों के सदस्य रहे, जैसे सेवा समिति, अमृतसर स्काउट एसोशिएशन आदि।

१९३५ में पूज्य श्री सोहनलालजी म० मा० के देहावसान पर समाज ने उनका स्मारक बनाने के लिए २५०००) रु० एकत्र किया तथा हरजसरायजी को इसकी व्यवस्था का कार्यभार सौंपा। आपने इस कार्य को बहुत सुन्दर ढंग से पूर्ण किया। १९४१ में ये बम्बई जैन युवक कांग्रेस के प्रधान बने तथा अखिल स्थानकवासी जैन कांफ्रेन्स में खुलकर भाग लिया। समग्र क्रान्ति के प्रणेता श्री जयप्रकाश नारायण से भी आपका घनिष्ठ सम्पर्क रहा तथा कई अवसरों पर उन्हें सामाजिक कार्यों के लिए आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान के निर्माण में भी आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। १९३६ में श्री सोहन-लाल जैन धर्म प्रचारक समिति की स्थापना के उपरान्त इसके कार्यक्षेत्र को विस्तृत रूप देने के लिए आपने कुछ मित्रों की सलाह तथा शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्रजी म० सा० के आदेश से पं० सुखलालजी से बनारस में सम्पर्क स्थापित किया। पण्डितजी के निर्देशन के आधार पर समिति ने जैनविद्या के विकास एवं प्रचार-प्रसार को अपना मुख्य लक्ष्य बनाया तथा उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विद्यानगरी काशी में १९३७ में पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान की नींव डाली। समिति को प्राप्त दान के अतिरिक्त भी हरजसरायजी ने इस पुण्य कार्य में व्यक्तिगत रुप से काफी आर्थिक सहयोग प्रदान किया।

बाबू हरजसरायजी से मेरा प्रथम परिचय उन्हीं के सुयोग्य भतीजे लाला शादीलालजी के माध्यम से स्व० व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म० के सान्निध्य में दिल्ली मे हुआ था। दिनो-दिन यह सम्बन्ध प्रगाढ़ होता गया, फिर तो उनके साथ पार्श्वनाथ विद्याश्रम के कोषाध्यक्ष के रूप में वर्षों कार्य करना पड़ा। मैंने पाया कि लालाजी स्वभाव से अत्यन्त मृदु, अल्पभाषी और संकोची हैं। किन्तु कर्तव्यनिष्ठा और लगन उनमें कूट-कूट कर भरी हुई है। आपने समाज सेवा तो की, किन्तु नाम की कोई कामना नहीं रखी, सेवा का ढ़ोल कभी नही पीटा। अलिप्त और निष्काम भाव से सेवा करना ही उनके जीवन का मूल मन्त्र रहा है। सामाजिक संस्थाओं में कार्य करते हुए भी आर्थिक मामलों मे सदैव सजग और प्रामाणिक रहना उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। सस्था का एक कागज भी अपने निजी उपयोग में न आये इसके लिए न केवल स्वयं सजग रहते किन्तु परिवार के लोगों को भी सावधान रखते। लालाजी केवल विद्या-प्रेमी ही नही है, अपितु स्वयं विद्वान् भी है। यह बात सम्भवतः बहुत कम ही लोग जानते है कि शतावधानी पं० रत्नचन्द्र जो म० सा० द्वारा निर्मित अर्धमागधी कोश के अंग्रेजी अनुवाद का कार्य स्वयं लालाजी ने किया था।

यह उन्हीं के परिश्रम का मीठा फल है कि पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान जैन धर्म और जैनविद्या की निर्मल ज्योति फैला रहा है।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान परिवार लाला हरजसरायजी जैन के उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन की कामना करता है, ताकि उनकी तपस्विता एवं निष्काम सेवावृत्ति से हमलोगो को सतत् प्रेरणा मिलती रहे।

—गुलाबचंद्र जैन

आमुख

जैन धर्म पर देश-विदेश में पर्याप्त शोध कार्य हुए हैं, पर जैन प्रतिमाविज्ञान पर अभी तक समुचित विस्तार से कोई कार्य नहीं हुआ है। जैन प्रतिमाविज्ञान पर उपलब्ध सामग्री के एक क्रमबद्ध एवं सम्यक् अध्ययन के आकर्षण ने ही मुझे इस विषय पर कार्य करने के लिए प्रेरित किया।

किसी भी ऐतिहासिक अध्ययन के लिए क्षेत्र तथा काल की सीमा का निर्धारण एक अनिवार्य आवश्यकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास को क्षेत्रीय दृष्टि से ,मुख्यतः उत्तर भारत की परिधि मे रखा गया है और इसमें प्रारम्भ से लगभग बारहवीं शती ई० तक के विकास का निरूपण किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से दक्षिण भारत की भी स्थान-स्थान पर चर्चा की गई है।

जैन देवकुल यथेष्ट विस्तृत है तथा विभिन्न देवी-देवताओं के अंकन की दृष्टि से जैनकला प्रचुर मात्रा में समृद्ध भी है। अतः एक ही ग्रन्थ में जैन देवकुल के सभी देवी-देवताओं का स्वतन्त्र एवं विस्तृत प्रतिमानिरूपण अनेक कारणों से कठिन प्रतीत हुआ। तीर्थंकर (या जिन) ही जैन देवकुल के केन्द्र बिन्दु हैं और सभी दृष्टियों से उन्हीं का सर्वाधिक महत्व है, अस्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में केवल जिनों और उनसे संश्लिष्ट यक्ष और यक्षियों के ही स्वतन्त्र एवं विस्तृत प्रतिमानिरूपण किये गये हैं। जैन देवकुल के अन्य देवी-देवताओं का केवल सामान्य निरूपण किया गया है।

उपर्युक्त काल और क्षेत्र के चौखट में ग्रन्थ में आद्यन्त ऐतिहासिक के साथ-साथ तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। यह तुलनात्मक विवेचन उत्पत्ति-विकास, प्राचीन तथा अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थों एवं मूर्ति अवशेषो, श्वेतांबर तथा दिगंबर मान्यताओं आदि के अध्ययन तक विस्तृत है। श्वेतांबर और दिगंबर ग्रन्थों तथा पुरातात्विक स्थलों की सामग्रियों का अलग-अलग अध्ययन कर प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से दोनों के समान तत्वों और भिन्नताओं को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। प्रतिमानिरूपण से सम्बन्धित सभी उपलब्ध जैन ग्रन्थों का यथासंभव अध्ययन और उनकी सामग्री का समुचित उपयोग किया गया है। प्रकाशित ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ महत्त्वपूर्ण पाण्डुलिपियों का भी उपयोग किया गया है। इसी संदर्भ में कई महत्वपूर्ण श्वेताबर एवं दिगंबर पुरातात्विक स्थलों की यात्रा कर वहां की मूर्ति सम्पदा का विस्तृत अध्ययन भी प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे कुल सात अध्याय हैं। प्रथम दो अध्याय पृष्ठभूमि-सामग्री प्रस्तुत करते हैं और अगले अध्यायों में जैन देवकुल के विकास तथा प्रतिमाविज्ञान विषयक अध्ययन है। प्रथम अध्याय में विषय से सम्बन्धित विस्तृत प्रस्तावना दी गयी है, जिसमें क्षेत्र-सीमा, काल-निर्धारण, पूर्ववर्ती शोधकार्य, अध्ययन-स्रोत एवं शोध-प्रणाली आदि पर विस्तार से चर्चा है। द्वितीय अध्याय मे जैन प्रतिमाविज्ञान की राजनीतिक एव सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का ऐतिहासिक अध्ययन है। इसमें जैन धर्म एवं कला को विभिन्न युगो मे प्राप्त होनेवाले राजकीय और राजेतर लोगों के प्रोत्साहन और संरक्षण तथा धार्मिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि पर विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय मे जैन देवकुल के विकास का अध्ययन है। इसमें आवश्यकतानुसार मूर्तियो के उदाहरण भी दिये गये हैं और जैन देवकुल पर हिन्दू एवं बौद्ध देवकुलों तथा तान्त्रिक प्रभाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। एक स्थल पर सम्पूर्ण जैन देवकुल के विकास के निरूपण का सम्भवतः यह प्रथम प्रयास है।

चतुर्थ अध्याय में उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेषों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न प्रकाशित स्रोतों से प्राप्त सामग्रियों के उपयोग के साथ ही खजुराहो, देवगढ़, ग्यारसपुर, ओसिया, आबू, जालोर, कुम्भारिया, तारंगा, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा और राजपूताना संग्रहालय, अजमेर जैसे पुरातात्विक स्थलों

एवं संग्रहालयों की यात्रा कर वहां की जैन मूर्तियों का विस्तार से अध्ययन और उपयोग भी किया गया है। ग्रन्थ के लिए यह ऐतिहासिक सर्वेक्षण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। ओसिया की विद्याओं एवं जीवन्तस्वामी की मूर्तियां और जिनों के जीवनदृश्यों के अंकन, खजुराहो की विद्या (?), बाहुबली और द्वितीर्थी जिन मूर्तियां, देवगढ की २४ यक्षी, भरत, बाहुबली, द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एवं चौमुखी जिन मूर्तियां, कुम्भारिया के वितानों के जिनों के जीवनदृश्य तथा जिनों के माता-पिता एवं विद्याओं की मूर्तिया प्रस्तुत अध्ययन की कुछ उपलब्धियां है। इसी अध्ययन के क्रम मे कतिपय ऐसे जैन देवताओं का भी सम्भवतः इसी ग्रन्थ मे पहली बार विवेचन है जिनका जैन परम्परा में तो कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता परन्तु जो पुरातात्विक सामग्री के आधार पर यथेष्ट लोकप्रिय ज्ञात होते है।

पंचम अध्याय मे जिन-प्रतिमाविज्ञान का विस्तार से अध्ययन है। प्रारम्भ में जिन मूर्तियों के विकास की संक्षिप्त रूपरेखा दी गयी है और उसके बाद २४ जिनो के मूर्तिवैज्ञानिक विकास को व्यक्तिशः निरूपित किया गया है। इस अध्याय मे प्रारम्भ से सातवी शती ई० तक के उदाहरणों का अध्ययन कालक्रम मे तथा उसके बाद का क्षेत्र के सन्दर्भ मे और स्थानीय विशेषताओं को दृष्टिगत करते हुए किया गया है। यक्ष-यक्षी से सम्बन्धित षष्ठ अध्याय में भी यही पद्धति अपनायी गयी है। २४ जिनों के स्वतन्त्र मूर्तिविज्ञानपरक अध्ययन के बाद जिनो की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एवं चौमुखी मूर्तियों और चतुर्विंशति-जिन-पट्टों तथा जिन-समवसरणों का भी अलग-अलग अध्ययन किया गया है। जिनों के प्रतिमा-निरूपण मे उनके जीवनदृश्यों के मूर्त अकनो तथा द्वितीर्थी और त्रितीर्थी मूर्तियों के विस्तृत उल्लेख सम्भवतः यही पर पहली बार किये गये है।

षष्ठ अध्याय में जिनो के यक्षों एवं यक्षियों के प्रतिमाविज्ञान का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यक्षों एवं यक्षियों के उल्लेख युगलशः एवं जिनो के पारम्परिक क्रम के अनुसार है। पहले यक्ष और उसके बाद सहयोगिनी यक्षी का प्रतिमानिरूपण किया गया है। प्रारम्भ मे यक्षों एवं यक्षियों के मूर्तिवैज्ञानिक विकास को समग्र दृष्टि से आकलित किया गया है और उसके बाद उनका अलग-अलग अध्ययन प्रस्तुत है। यक्षो एवं यक्षियों के प्रतिमानिरूपण मे स्वतन्त्र मूर्तियों के साथ ही सर्वप्रथम जिन-संयुक्त मूर्तियो के भी विस्तृत अध्ययन का प्रयास किया गया है।

सप्तम अध्याय निष्कर्ष के रूप मे है जिसमें समग्र अध्ययन की प्राप्तियों को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है।

ग्रन्थ मे परिशिष्ट के रूप मे चार तालिकाएं दी गयी है, जिनमे २४ जिनो, यक्ष-यक्षियों एवं महाविद्याओं की सूचिया तथा पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या दी गयी है। अन्त मे विस्तृत सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची, चित्र-सूची, शब्दानुक्रमणिका और चित्रावली दी गई है। चित्रों के चयन में मूर्तियों के केवल प्रतिमाविज्ञानपरक विशेषताओं का ही ध्यान रखा गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन एवं प्रकाशन मे जिन कृपालु व्यक्तियों एवं संस्थाओं से सहायता मिली है, उनके प्रति यहां दो शब्द कहना अपना कर्तव्य समझता हूं।

प्रस्तुत विषय पर कार्य के आरम्भ से समापन तक सतत उत्साहवर्धन एवं विभिन्न समस्याओं के समाधान मे कृपापूर्ण सहायता और मार्गदर्शन के लिए मै अपने गुरुवर डा० लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (का० हि० वि० वि०), का आजीवन ऋणी रहूंगा।

प्रो० दलसुख मालवणिया, भूतपूर्व अध्यक्ष, एल० डी० इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डोलाजी, अहमदाबाद, डा० यू०पी० शाह, भूतपूर्व उपनिदेशक, ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, बडौदा, श्री मधुसूदन ढाकी, सहनिदेशक (शोध), अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, डा० जे० एन० तिवारी, रीडर, प्रा० भा० इ० सं० एवं पुरातत्व विभाग, का० हि० वि० वि० और डा० हरिहर सिंह, व्याख्याता, सान्ध्य महाविद्यालय, का० हि० वि० वि० के प्रति भी मैं अपने को कृतज्ञ पाता हूं, जिन्होने अनेक अवसरो पर तत्परतापूर्वक अपनी सहायता एवं परामर्शों से मुझे लाभ पहुंचाया है।

इस प्रसंग में मैं अपने मित्र श्री पिनाकपाणि प्रसाद शर्मा, आई० पी० एस०, सहायक पुलिस अधीक्षक, नान्देड (महाराष्ट्र), को विशेष रूप से धन्यवाद देना चाहता हूं, जिनसे मुझे निरंतर परामर्श, सहायता और उत्साहवर्धन मिला है। यहां मैं अनुज श्री दुर्गानन्दन तिवारी और अपने विद्यार्थी श्री चन्द्रदेव सिंह को भी समय-समय पर उनसे प्राप्त सहायता के लिए धन्यवाद देता हूं।

ग्रन्थ के प्रकाशन मे दी गयी बहुविध सहायता के लिए मै डा० (श्रीमती) कमल गिरि, प्राध्यापिका, कला-इतिहास विभाग, का० हि० वि०वि०, का भी हृदय से आभारी हूं।

ग्रन्थ के प्रकाशन के निमित्त वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए मैं भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली तथा जीवन जगन चैरिटेबल ट्रस्ट, फरीदाबाद का भी आभारी हूं। ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूं। संस्थान के अध्यक्ष डा० सागरमल जैन ने जिस तत्परता से ग्रन्थ के प्रकाशन की व्यवस्था की उसके लिए मै विशेषरूप से उनके प्रति आभार प्रकट करता हूं। तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी के व्यवस्थापक, श्री रमाशंकर पण्ड्या और खण्डेलवाल प्रेस, वाराणसी के व्यवस्थापक भी धन्यवाद के पात्र है, जिन्होंने क्रमशः पाठ और चित्रो का मुद्रण कार्य सुरुचिपूर्ण ढंग से किया है। चित्रों एवं ब्लाक्स की व्यवस्था के लिए मैं अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली तथा जैन जर्नल, कलकत्ता का विशेष रूप से आभारी हूं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी मे भारतीय प्रतिमाविज्ञान पर प्रकाशित ग्रन्थों की संख्या अत्यन्त सीमित है। जैन प्रतिमा-विज्ञान पर तो हिन्दी मे सम्भवतः कोई समुचित ग्रन्थ है ही नहीं। मातृभाषा हिन्दी में इस विषय पर ग्रन्थ लेखन की मेरा प्रबल इच्छा थी। प्रस्तुत ग्रन्थ के माध्यम से मैंने इस दिशा में एक विनम्र प्रयास किया है। इस दृष्टि से हिन्दी जगत में भी प्रस्तुत ग्रन्थ का स्वागत होगा, ऐसी आशा करता हूं।

श्रावण पूर्णिमा (रक्षाबन्धन), २०३८,
१५ अगस्त, १९८१

—मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी

विषय-सूची

संकेत-सूची

अ०ला०बु०	दि अड्यार लाइब्रेरी बुलेटिन
आ०स०इं०ऐ०रि०	आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, ऐनुअल रिपोर्ट
इण्डि०एण्टि०	इण्डियन एन्टिक्वेरी
इण्डि०क०	इण्डियन कल्चर
इं०हि०क्वा०	इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली
ईस्ट वे०	ईस्ट ऐण्ड वेस्ट
उ०हि०रि०ज०	उड़ीसा हिस्टारिकल रिसर्च जर्नल
एपि०इण्डि०	एपिग्राफिया इण्डिका
ऐंशि०इं०	ऐन्शियण्ट इण्डिया : बुलेटिन ऑव दि आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया
ओ०आर्ट०	ओरियण्टल आर्ट
का०इं०इ०	कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम
क्वा०ज०मि०सो०	क्वार्टर्ली जर्नल ऑव दि मिथिक सोसाइटी
क्वा०ज०मै०स्टे०	क्वार्टर्ली जर्नल ऑव दि मैसूर स्टेट
छवि०	छवि : गोल्डेन जुबिली वाल्यूम ऑव दि भारत कला भवन, वाराणसी (सं० आनन्द कृष्ण)
ज०आं०हि०रि०सो०	जर्नल ऑव दि आन्ध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी
ज०इं०म्यू०	जर्नल ऑव दि इण्डियन म्यूजियम्स, बंबई
ज०इं०सो०ओ०आ०	जर्नल ऑव दि इण्डियन सोसाइटी ऑव ओरियण्टल आर्ट
ज०इं०हि०	जर्नल ऑव इण्डियन हिस्ट्री
ज०एम०एस०यू०ब०	जर्नल ऑव दि एम० एस० यूनिवर्सिटी ऑव बड़ौदा
ज०ए०सो०	जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता
ज०ए०सो०बं०	जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल
ज०ओ०इं०	जर्नल ऑव दि ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट ऑव बड़ौदा
ज०गु०रि०सो०	जर्नल ऑव दि गुजरात रिसर्च सोसाइटी
ज०बां०ब्रां०रा०ए०सो०	जर्नल ऑव दि बाम्बे ब्रांच ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी
ज०बि०उ०रि०सो०	जर्नल ऑव दि बिहार, उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी
ज०बि०रि०सो०	जर्नल ऑव दि बिहार रिसर्च सोसाइटी
ज०यू०पी०हि०सो०	जर्नल ऑव दि यू०पी० हिस्टारिकल सोसाइटी
ज०यू०बां०	जर्नल ऑव दि यूनिवर्सिटी ऑव बाम्बे
ज०रा०ए०सो०	जर्नल ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन
जि०इ०दे०	दि जिन इमेजेज ऑव देवगढ़ (ले० क्लाज ब्रुन)
जै०क०स्था०	जैन कला एवं स्थापत्य (३ खण्ड, सं० अमलानंद घोष, भारतीय ज्ञानपीठ)
जैन एण्टि०	जैन एण्टिक्वेरी
जै०शि०सं०	जैन शिलालेख संग्रह (भाग १–५–क्रमशः सं० हीरालाल जैन, विजयमूर्ति, विजयमूर्ति, विद्याधर जोहरापुरकर, विद्याधर जोहरापुरकर)

जै०स०प्र०	जैन सत्यप्रकाश
जै०सि०भा०	जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा
त्रि०श०पु०च०	त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्रकृत)
पा०टि०	पाद टिप्पणी
पु०मु०	पुनर्मुद्रित
पू०नि०	पूर्वनिर्दिष्ट
प्रो०ट्रां०ओ०कां०	प्रोसिडिंग्स ऐण्ड ट्रान्जेक्शन्स ऑव दि आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फरेन्स
प्रो०रि०आ०स०इ०वे०स०	प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑव दि आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल
बु०ड०का०रि०इं०	बुलेटिन ऑव दि डॅकन कालेज रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना
बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०	बुलेटिन ऑव दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूज़ियम ऑव वेस्टर्न इण्डिया, बम्बई
बु०ब०म्यू०	बुलेटिन ऑव दि बड़ौदा म्यूज़ियम
बु०म०ग०म्यू०न्यू०सि०	बुलेटिन ऑव दि मद्रास गवर्नमेन्ट म्यूजियम, न्यू सिरीज
बु०म्यू०पि०गै०	बुलेटिन म्यूज़ियम ऐण्ड पिक्चर गैलरी, बडौदा
म०जै०वि०गो०जु०वा०	महावीर जैन विद्यालय गोल्डेन जुबिली वाल्यूम, बंबई (भाग १, सं० ए०एन०उपाध्ये आदि)
मे०आ०स०इं०	मेम्वायर्स ऑव दि आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया
वा०अहिं०	दि वायस ऑव अहिंसा
वि०इं०ज०	विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल जर्नल, होशियारपुर
सं०पु०प०	संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका, लखनऊ
स्ट०जै०आ०	स्टडीज इन जैन आर्ट (ले० यू०पी०शाह)

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

जैन कला एवं प्रतिमाविज्ञान पर पर्याप्त सामग्री सुलभ है। लेकिन अभी तक इस विषय पर अपेक्षित विस्तार से कार्य नहीं हुआ है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ मे मुख्यतः उत्तर भारत मे जैन प्रतिमाविज्ञान के विस्तृत अध्ययन का प्रयास किया गया है। यद्यपि तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से ग्रन्थ में यथासंभव दक्षिण भारत के जैन प्रतिमाविज्ञान की भी स्थान-स्थान पर चर्चा की गई है। उत्तर भारत से तात्पर्य विन्ध्यपर्वत श्रेणियो के उत्तर के भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्र से है जो पश्चिम में गुजरात एवं पूर्व मे उड़ीसा तक विस्तीर्ण है। जैन प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से उत्तर भारत का सम्पूर्ण क्षेत्र किन्ही विशेषताओं के सन्दर्भ में एक सूत्र में बंधा है, और जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास की प्रारम्भिक और परवर्ती अवस्थाओ तथा उनमे होने वाले परिवर्तनों की दृष्टि से यह क्षेत्र महत्वपूर्ण भी है। जैन धर्म की दृष्टि से भी इसका महत्व है। इसी क्षेत्र मे वर्तमान अवसर्पिणी युग के सभी चौबीस जिनों ने जन्म लिया, यही उनकी कार्य-स्थली थी, तथा यही उन्होंने निर्वाण भी प्राप्त किया। सम्भवतः इसी कारण प्रारम्भिक जैन ग्रंथों की रचना एवं कलात्मक अभिव्यक्तियों का मुख्य क्षेत्र भी उत्तर भारत ही रहा है। जैन आगमो का प्रारम्भिक संकलन एवं लेखन यही हुआ तथा प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रारम्भिक ग्रन्थ **कल्पसूत्र, पउमचरिय, अंगविज्जा, वसुदेवहिण्डी, आवश्यक निर्युक्ति** आदि भी इसी क्षेत्र में लिखे गये।

प्रतिमा लक्षणो के विकास की दृष्टि से भी उत्तर भारत का विविधतापूर्ण अग्रगामी योगदान है। इस विकास के तीन सन्दर्भ है: पारम्परिक, अपारम्परिक और अन्य धर्मों की कला परम्पराओ का प्रभाव।

जैन प्रतिमाविज्ञान के पारम्परिक विकास का हर चरण सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में परिलक्षित होता है। जैन कला का उदय भी इसी क्षेत्र मे हुआ। महावीर की जीवन्तस्वामी मूर्ति इसी क्षेत्र से मिली है, जिसके निर्माण की परम्परा साहित्यिक साक्ष्यों के अनुसार महावीर के जीवनकाल (छठी शती ई० पू०) से ही थी।[1] प्रारम्भिक जिन मूर्तियां लोहानीपुर (पटना) एवं चौसा (भोजपुर) से मिली है। मथुरा में शुंग-कुषाण युग में प्रचुर संख्या में जैन मूर्तियाँ निर्मित हुई। ऋषभ की लटकती जटा, पार्श्व के सात सर्पफण, जिनो के वक्षःस्थल मे श्रीवत्स चिह्न और शीर्ष भाग मे उष्णीष[2] एवं जिन मूर्तियों मे अष्ट-प्रातिहार्यों[3] और ध्यानमुद्रा[4] के प्रदर्शन की परम्परा मथुरा मे ही प्रारम्भ हुई।

जिन मूर्तियो में लाछनों एवं यक्ष-यक्षी युगलो का चित्रण भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र मे प्रारम्भ हुआ। जिनो के जीवनदृश्यों, विद्याओं, २४ यक्ष-यक्षियों, १४ या १६ मांगलिक स्वप्नो, भरत, बाहुबली, सरस्वती, क्षेत्रपाल, २४ जिनो के

---

१ शाह, यू० पी०, 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी', ज०ओ०इं०, खं० १, अं० १, पृ० ७२-७९

२ दक्षिण भारत की जिन मूर्तियों में उष्णीष नही प्रदर्शित है। श्रीवत्स चिह्न भी वक्षःस्थल के मध्य में न होकर सामान्यतः दाहिनी ओर उत्कीर्ण है। दक्षिण भारत की जिन मूर्तियों में श्रीवत्स चिह्न का अभाव भी दृष्टिगत होता है। **उपिथन**, एन० जी०, 'रेलिक्स ऑव जैनिजम-आलतूर', ज०इं०हि०, खं० ४४, भाग १, पृ० ५८२, जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५५६

३ सिंहासन, अशोकवृक्ष, प्रभामण्डल, छत्रत्रयी, देवदुन्दुभि, सुरपुष्प-वृष्टि, चामरधर, दिव्यध्वनि।

४ मथुरा के आयागपटों पर सर्वप्रथम ध्यानमुद्रा में आसीन जिन मूर्तियाँ उत्कीर्ण हुईं। इसके पूर्व की मूर्तियों (लोहानीपुर, चौसा) में जिन कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं।

माता पिता, अष्ट-दिक्पालों, नवग्रहों, एवं अन्य देवों के प्रतिमा-निरूपण से सम्बन्धित उल्लेख और उनकी पदार्थगत अभिव्यक्ति भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में हुई।[1]

उत्तर भारत का क्षेत्र परम्परा-विरुद्ध और परम्परा में अप्राप्य प्रकार के चित्रणों की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था।[2] देवगढ़ एवं खजुराहो की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी जिन मूर्तियां, कुछ जिन मूर्तियों में परम्परा सम्मत यक्ष-यक्षियों की अनुपस्थिति,[3] देवगढ़ एवं खजुराहो की बाहुबली मूर्तियों में जिन मूर्तियों के समान अष्ट-प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी का अंकन, देवगढ़ की त्रितीर्थी जिन मूर्तियों में जिनों के साथ बाहुबली, सरस्वती एवं भरत चक्रवर्ती का अंकन इस कोटि के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं। कुछ स्थलों (जालोर एवं कुम्भारिया) की मूर्तियों में चक्रेश्वरी एवं अम्बिका यक्षियों और सर्वानुभूति यक्ष के मस्तक पर सर्पफण प्रदर्शित है। कुम्भारिया, विमलवसही, तारंगा, लूणवसही आदि श्वेताम्बर स्थलों पर ऐसे कई देवों की मूर्तियां हैं जिनके उल्लेख किसी जैन ग्रन्थ में नहीं प्राप्त होते।

जैन शिल्प में एकरसता के परिहार के लिए, स्थापत्य के विशाल आयामों को तदनुरूप शिल्पगत वैविध्य से संयोजित करने के लिए एवं अन्य धर्मावलम्बियों को आकर्षित करने के लिए अन्य सम्प्रदायों के कुछ देवों को भी विभिन्न स्थलों पर आकलित किया गया। खजुराहो का पार्श्वनाथ जैन मन्दिर इसका एक प्रमुख उदाहरण है। मन्दिर के मण्डोवर पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम एवं बलराम आदि की स्वतन्त्र एवं शक्तियों के साथ आलिंगन मूर्तियां हैं।[4] मथुरा की एक अम्बिका मूर्ति में बलराम, कृष्ण, कुबेर एवं गणेश का, मथुरा एवं देवगढ़ की नेमि मूर्तियों में बलराम-कृष्ण का, विमलवसही की एक रोहिणी मूर्ति में शिव और गणेश का, ओसिया की देवकुलिकाओं और कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर पर गणेश का,[5] विमलवसही और लूणवसही में कृष्ण के जीवनदृश्यों का एवं विमलवसही में षोडश-भुज नरसिंह का अंकन ऐसे कुछ अन्य उदाहरण हैं।

जटामुकुट से शोभित वृषभवाहना देवी का निरूपण श्वेताम्बर स्थलों पर विशेष लोकप्रिय था। देवी की दो भुजाओं में सर्प एवं त्रिशूल हैं। देवी का लाक्षणिक स्वरूप पूर्णतः हिन्दू शिवा से प्रभावित है।[6] कुछ श्वेताम्बर स्थलों पर प्रज्ञप्ति महाविद्या की एक भुजा में कुक्कुट प्रदर्शित है, जो हिन्दू कौमारी का प्रभाव है।[7] कुछ उदाहरणों में गौरी महाविद्या का वाहन गोधा के स्थान पर वृषभ है। यह हिन्दू माहेश्वरी का प्रभाव है।[8] राज्य संग्रहालय, लखनऊ (६६.२२५, जी ३१२) की दो अम्बिका मूर्तियों में देवी के हाथों में दर्पण, त्रिशूल-घण्टा और पुस्तक प्रदर्शित हैं, जो उमा और शिवा का प्रभाव है।[9]

---

१ दक्षिण भारत के मूर्ति अवशेषों में विद्याओं, २४ यक्षियों, आयागपट, जीवन्तस्वामी महावीर, जैन युगल एवं जिनों के माता-पिता की मूर्तियां नहीं हैं।

२ उत्तर भारत में होने वाले परिवर्तनों से दक्षिण भारत के कलाकार अपरिचित थे।

३ गुजरात-राजस्थान की जिन मूर्तियों में सभी जिनों के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं जो जैन परम्परा में नेमि के यक्ष-यक्षी हैं। ऋषभ एवं पार्श्व की कुछ मूर्तियों में पारम्परिक यक्ष-यक्षी भी अंकित हैं।

४ ब्रुन, क्लाज, 'दि फिगर आव दि टू लोअर रिलीफ्स ऑन दि पार्श्वनाथ टेम्पल् एट खजुराहो', **आचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ**, बम्बई, १९५६, पृ० ७–३५

५ उल्लेखनीय है कि गणेश की लाक्षणिक विशेषताएँ सर्वप्रथम १४१२ ई० के जैन ग्रन्थ **आचारदिनकर** में ही निरूपित हुईं।

६ राव, टी० ए० गोपीनाथ, **एलिमेण्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, खण्ड १, भाग २, वाराणसी, १९७१ (पु० मु०), पृ० ३६६

७ वही, पृ० ३८७–८८

८ वही, पृ० ३६६, ३८७

९ वही, पृ० ३६०, ३६६, ३८७

इस क्षेत्र में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्परा के ग्रन्थ एवं महत्वपूर्ण कला केन्द्र है।[1] इस प्रकार इस क्षेत्र की सामग्री के अध्ययन से श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो के ही प्रतिमाविज्ञान के तुलनात्मक एवं क्रमिक विकास का निरूपण सम्भव है। इससे उनके आपसी सम्बन्धों पर भी प्रकाश पड़ सकता है। इस क्षेत्र में एक ओर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल में दिगम्बर सम्प्रदाय के कलावशेष और दूसरी ओर गुजरात एवं राजस्थान मे श्वेताम्बर कलाकेन्द्र स्वतन्त्र रूप से पल्लवित और पुष्पित हुए। गुजरात और राजस्थान म दिगम्बर सम्प्रदाय की भी कलाकृतियाँ मिली है, जो दोनों सम्प्रदायों के सहअस्तित्व की सूचक है। गुजरात और राजस्थान मे **हरिवंशपुराण**, **प्रतिष्ठासारसंग्रह**, **प्रतिष्ठासारोद्धार** आदि कई महत्वपूर्ण दिगम्बर जैन ग्रन्थों की भी रचना हुई। इस क्षेत्र मे ऐसे अनेक समृद्ध जैन कला केन्द्र भी स्थित हैं, जहाँ कई शताब्दियों की मूर्ति सम्पदा सुरक्षित है। इनमे मथुरा, चौसा, देवगढ, राजगिर, अकोटा, कुम्भारिया, तारंगा, ओसिया, विमलवसही, लूणवसही, जालोर, खजुराहो एवं उदयगिरि-खण्डगिरि उल्लेखनीय है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की समय-सीमा प्रारम्भिक काल से बारहवी शती ई० तक है।

पूर्वगामी शोधकार्य

सर्वप्रथम कनिंघम की रिपोर्ट्स मे उत्तर भारत के कई स्थलो की जैन मूर्तियों के उल्लेख मिलते है। इन रिपोर्ट्स में ग्वालियर, बूढ़ी चांदेरी, खजुराहो एवं मथुरा आदि की जैन मूर्तियों के उल्लेख है।[2] खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के वि० सं० १०११ (=९५४ ई०) और शान्तिनाथ मन्दिर की विशाल शान्ति प्रतिमा के वि० स० १०८५ (=१०२८ ई०) के लेखों का उल्लेख सर्वप्रथम कनिंघम की रिपोर्ट्स मे हुआ है। कनिंघम ने ऋषभ, शान्ति, पार्श्व एवं महावीर की कुछ मूर्तियो की पहचान भी की है।

प्रारम्भिक विद्वानो के कार्य मुख्यतः जैन प्रतिमाविज्ञान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रारम्भिक स्थल ककाली टीला (मथुरा) की शिल्प सामग्री पर है। यहाँ से ल० १५० ई० पू० से १०२३ ई० के मध्य की सामग्री मिली है। ककाली टीले की जैन मूर्तियो को प्रकाश मे लाने और राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे सुरक्षित कराने का श्रेय फ्यूरर को है। फ्यूरर ने प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ के १८८९ एवं १८९०-९१ की वार्षिक रिपोर्ट्स मे ककाली टीला की जन मूर्तियों का उल्लेख किया है।[3] फ्यूरर ने ही सर्वप्रथम मूर्ति लेखो के आधार पर मथुरा की जैन शिल्प सामग्री की समय-सीमा १५० ई० पू० से १०२३ ई० बतायी और १५० ई० पू० से भी पहले मथुरा मे एक जैन मन्दिर की विद्यमानता का उल्लेख किया।[4] ब्यूहलर ने मथुरा की कुछ विशिष्ट जैन मूर्तियों के अभिप्रायों की विद्वत्तापूर्ण विवेचना की है। इनमे आयागपटों एवं महावीर के गर्भापहरण के दृश्य से सम्बन्धित फलक प्रमुख है।[5] ब्यूहलर ने मथुरा के जैन अभिलेखों को भी प्रकाशित किया है, जिनसे मथुरा में जैन धर्म और संघ की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है और यह भी ज्ञात होता है कि किस सीमा तक शासक वर्ग, व्यापारी, विदेशी एवं सामान्य जनों का जैन धर्म एवं कला को समर्थन मिला।[6] वी० ए० स्मिथ ने मथुरा के जैन स्तूप और अन्य सामग्री पर एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने साहित्यिक साक्ष्यों को विश्वसनीय मानते हुए मथुरा के जैन स्तूप को भारत का प्राचीनतम स्थापत्यगत अवशेष माना है।[7] स्मिथ ने जैन आयागपटो, विशिष्ट फलकों एवं कुछ

१ दक्षिण भारत की जैन मूर्तिकला दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बद्ध है।

२ कनिंघम, ए०, आ०स०इं०रि०, १८६४-६५, ख० २, पृ० ३६२-६५, ४०१-०४, ४१२-१४, ४३१-३५; १८७१-७२, खं० ३, पृ० १९-२०, ४५-४६

३ स्मिथ, वी० ए०, **दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एण्टिक्विटीज ऑव मथुरा**, वाराणसी, १९६९ (पु० मु०), पृ० २-४

४ **वही**, पृ० ३

५ ब्यूहलर, जी०, 'स्पेसिमेन्स ऑव जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा', **एपि० इण्डि०**, खं० २, पृ० ३११-२३

६ ब्यूहलर, जी०, 'न्यू जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', **एपि० इण्डि०**, खं० १, पृ० ३७१, ९३; 'फर्दर जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', **एपि० इण्डि०**, खं० १, पृ० ३९३-९७; खं० २, पृ० १९५-२१२

७ स्मिथ, वी० ए०, **पू० नि०**, पृ० १२-१३

जिन मूर्तियों के उल्लेख किये है जिनमें आयागपटों के उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन्होंने कुछ जिन मूर्तियों की महावीर से गलत पहचान की है। स्मिथ ने सिंहासन के सूचक सिंहों को महावीर का सिंह लांछन मान लिया है।[१]

डी० आर० भण्डारकर पहले भारतीय विद्वान् है जिन्होंने जैन प्रतिमाविज्ञान पर कुछ कार्य किया है। ओसिया[२] के मन्दिरों पर लिखे लेख मे उस स्थल के जैन मन्दिर का भी उल्लेख है। दो अन्य लेखों में भण्डारकर ने जैन ग्रन्थों के आधार पर मुनिसुव्रत के जीवन की दो महत्वपूर्ण घटनाओं (अश्वावबोध और शकुनिका विहार) का चित्रण करनेवाले पट्ट एवं जिन-समवसरण की विस्तृत व्याख्या की है।[३] ए० के० कुमारस्वामी ने जैन कला पर एक लेख लिखा है, जिसमें जैन **कल्पसूत्र** के कुछ चित्रों के विवरण भी है।[४] यक्षों पर लिखी पुस्तक मे कुमारस्वामी ने संक्षेप मे जैन धर्म में भी यक्ष पूजा के प्रारम्भिक स्वरूप की विवेचना की है।[५] यह अध्ययन जैन धर्म में यक्ष पूजा की प्राचीनता और उसके प्रारम्भिक स्वरूप के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। एफ० कीलहार्न[६] और एन० सी० मेहता[७] ने क्रमशः नेमि और अजित की विदेशी संग्रहालयों मे सुरक्षित मूर्तियो पर लेख लिखे है।

जैन कला पर आर० पी० चन्दा के भी कुछ महत्वपूर्ण कार्य हैं। इनमें पहला राजगिर के जैन कलावशेष से सम्बन्धित है।[८] लेख में नेमि की एक लांछनयुक्त गुप्तकालीन मूर्ति का उल्लेख है। यह मूर्ति लांछनयुक्त प्राचीनतम जिन मूर्ति है। एक अन्य लेख में मोहनजोदड़ो की मुहरों और हड़प्पा की एक नग्न मूर्तिका के उत्कीर्णन में प्राप्त मुद्रा (जो कायोत्सर्ग के समान है) के आधार पर सैंधव सभ्यता में जैन धर्म की विद्यमानता की सम्भावना व्यक्त की गई है।[९] यह सम्भावना कायोत्सर्ग-मुद्रा के केवल जैन धर्म और कला में ही प्राप्त होने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। चंदा की ब्रिटिश संग्रहालय की मूर्तियों पर प्रकाशित पुस्तक में संग्रहालय की जैन मूर्तियों के भी उल्लेख है।[१०] इनमे उड़ीसा से मिली कुछ जैन मूर्तियाँ महत्वपूर्ण हैं।

एच० एम० जानसन ने एक लेख में **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** के आधार पर २४ यक्ष-यक्षियों के लाक्षणिक स्वरूपों का निरूपण किया है।[११] मुहम्मद हमीद कुरेशी ने बिहार और उड़ीसा के प्राचीन वास्तु अवशेषों पर एक पुस्तक लिखी है।[१२] इसमे उडीसा की उदयगिरि-खण्डगिरि जैन गुफाओं की सामग्री का विस्तृत विवरण है। जैन मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं की जिन एवं यक्षी मूर्तियों के विवरण विशेष महत्व के है।

---

१ **वही**, पृ० ४९, ५१-५२

२ भण्डारकर, डी० आर०, 'दि टेम्पल्स ऑव ओसिया', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९०८-०९, पृ० १००-१५

३ भण्डारकर, डी० आर०, 'जैन आइकानोग्राफी', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९०५-०६, पृ० १४१-४९; **इण्डि० एण्टि०**, ख० ४०, पृ० १२५-३०

४ कुमारस्वामी, ए० के०, 'नोट्स ऑन जैन आर्ट', **जर्नल ऑव दि इण्डियन आर्ट ऐण्ड इण्डस्ट्री**, खं० १६, अं० १२०, पृ० ८१-९७

५ कुमारस्वामी, ए० के०, **यक्षज**, दिल्ली, १९७१ (पु० मु०)

६ कीलहार्न, एफ०, 'ऑन ए जैन स्टैचू इन दि हार्निमन म्यूजियम', **ज०रा०ए०सो०**, १८९८, पृ० १०१-०२

७ मेहता, एन० सी०, 'ए मेडिवल जैन इमेज ऑव अजितनाथ–१०५३ ए० डी०', **इण्डि० एण्टि०**, खं० ५६, पृ० ७२–७४

८ चंदा, आर० पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', **आ०स०इं०ऐ०रि०**, १९२५–२६, पृ० १२१–२७

९ चंदा, आर० पी०, 'सिन्ध फाइव थाऊजण्ड इयर्स एगो', **माडर्न रिव्यू**, खं० ५२, अं० २, पृ० १५१–६०

१० चंदा, आर० पी०, **मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम**, लन्दन, १९३६

११ जानसन, एच० एम०, 'श्वेताम्बर जैन आइकानोग्राफी', **इण्डि० एण्टि०**, खं० ५६, पृ० २३–२६

१२ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, **लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा**, कलकत्ता, १९३१

टी० एन० रामचन्द्रन ने तिरुपरुत्तिकुणरम (तमिलनाडु) के मन्दिरों पर एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में उस स्थल की जैन सामग्री के विस्तृत उल्लेख है और साथ ही जैन देवकुल और प्रतिमाविज्ञान के विभिन्न पक्षों की विवेचना भी की गई है।[1] उल्लेखनीय है कि रामचन्द्रन के पूर्व के सभी कार्य किसी स्थल विशेष की जैन मूर्ति सामग्री, स्वतन्त्र जिन मूर्तियों एवं जैन प्रतिमाविज्ञान के किसी पक्ष विशेष के अध्ययन से सम्बन्धित हैं। सर्वप्रथम रामचन्द्रन ने ही समग्र दृष्टि से जैन प्रतिमाविज्ञान पर कार्य किया। इस ग्रन्थ के लेखन में मुख्यतः दक्षिण भारत के ग्रन्थों एवं मूर्ति अवशेषों से सहायता ली गई है। अतः दक्षिण भारत के जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशेष महत्व है। ग्रन्थ में जिनों एवं अन्य शलाका-पुरुषों, २४ यक्ष-यक्षियों एव अन्य देवों के लाक्षणिक स्वरूपो के उल्लेख है। लेकिन विद्याओं एवम् जीवन्तस्वामी महावीर की कोई चर्चा नही है। रामचन्द्रन की एक अन्य पुस्तक मे उत्तर और दक्षिण भारत के कुछ प्रमुख जैन स्थलों की मूर्तियों के उल्लेख है।[2] प्रारम्भ मे जैन प्रतिमाविज्ञान का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है, जिसमें जैन देवकुल पर हिन्दू देवकुल के प्रभाव की चर्चा से सम्बन्धित अंश विशेष महत्वपूर्ण है। एक लेख में रामचन्द्रन ने मोहनजोदड़ो की मुहरों एवं हड़प्पा की मूर्ति की नग्नता एवं खड़े होने की मुद्रा (कायोत्सर्ग के समान) के आधार पर सैन्धव सभ्यता में जैन धर्म एवं जिन मूर्ति की विद्यमानता की सम्भावना व्यक्त की है।[3] उन्होंने सैन्धव सभ्यता में प्रथम जिन ऋषभनाथ की विद्यमानता स्वीकार की है, जो ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव मे स्वीकार्य नही है।

डब्ल्यू० नार्मन ब्राउन ने जैन कल्पसूत्र के चित्रों पर एक पुस्तक लिखी है।[4] के० पी० जैन[5] और त्रिवेणीप्रसाद[6] ने जिन प्रतिमाविज्ञान पर संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं। इनमें जिन मूर्तियों से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण पक्षों, यथा मुद्राओं, अष्ट-प्रातिहार्यों, श्रीवत्स आदि की साहित्यिक सामग्री के आधार पर विवेचना की गई है। के० पी० जायसवाल[7] एवं ए० बनर्जी-शास्त्री[8] ने लोहानीपुर की जिन मूर्ति पर लेख लिखे है। इन लोगों ने विभिन्न प्रमाणो के आधार पर लोहानीपुर जिन मूर्ति का समय मौर्यकाल माना है। आज सभी विद्वान् इसे प्राचीनतम जिन मूर्ति मानते है। बी० भट्टाचार्य ने जैन प्रतिमाविज्ञान पर एक संक्षिप्त लेख लिखा है, जिसमे जैन देवकुल की विभिन्न देवियों की सूची विशेष महत्व की है।[9]

टी० एन० रामचन्द्रन के बाद जैन प्रतिमाविज्ञान पर दूसरा महत्वपूर्ण कार्य बी० सी० भट्टाचार्य का है, जिन्होंने जैन प्रतिमाविज्ञान पर एक पुस्तक लिखी है।[10] भट्टाचार्य ने ग्रन्थ में केवल उत्तर भारत की स्रोत सामग्री का उपयोग

१ रामचन्द्रन, टी० एन, **तिरुपरुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स**, बु०म०ग०म्यू०, न्यू०सि०, खं० १, भाग ३, मद्रास, १९३४

२ रामचन्द्रन, टी० एन०, **जैन मान्युमेण्ट्स ऐण्ड प्लेसेज ऑव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स**, कलकत्ता, १९४४

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, 'हड़प्पा ऐण्ड जैनिजम', (हिन्दी अनुवाद), **अनेकान्त**, वर्ष १४, जनवरी १९५७, पृ० १५७–६१

४ ब्राउन, डब्ल्यू० एन, **ए डेस्क्रिप्टिव ऐण्ड इलस्ट्रेटेड केटलॉग ऑव मिनियेचर पेंण्टिंग्स ऑव दि जैन कल्पसूत्र**, वाशिंगटन, १९३४

५ जैन, कामताप्रसाद, 'जैन मूर्तियाँ', **जैन एण्टि०**, खं० २, अं० १, पृ० ६–१७

६ प्रसाद, त्रिवेणी, 'जैन प्रतिमा-विधान', **जैन एण्टि०**, खं० ४, अं० १, पृ० १६–२३

७ जायसवाल, के० पी०, 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २३, भाग १, पृ० १३०-३२

८ बनर्जी-शास्त्री, ए०, 'मौर्यन स्कल्पचर्स फ्राम लोहानीपुर, पटना', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २६, भाग २, पृ० १२०–२४

९ भट्टाचार्य, बी०, 'जैन आइकानोग्राफी', **जैनाचार्य श्रीआत्मानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ**, बम्बई, १९३६, पृ० ११४–२१

१० भट्टाचार्य, बी० सी०, **दि जैन आइकानोग्राफी**, लाहौर, १९३९

किया है। लेखक ने २४ जिनों एवं यक्ष-यक्षियों के साथ ही १६ विद्याओं, सरस्वती, अष्ट-दिक्पालों, नवग्रहों एवं जैन देवकुल के अन्य देवों के प्रतिमा लक्षणों की विस्तृत चर्चा की है। सर्वप्रथम उन्होंने ही उत्तर भारत के कई महत्वपूर्ण श्वेताम्बर एवं दिगम्बर लाक्षणिक ग्रन्थों तथा मथुरा की जैन मूर्तियों का समुचित उपयोग किया है। किन्तु पुस्तक में मथुरा के अतिरिक्त अन्य स्थलों से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री का उपयोग नगण्य है, अतः इस पुरातात्विक साक्ष्य के तुलनात्मक अध्ययन का भी अभाव है। भट्टाचार्य ने जैनेतर एवं प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों का भी उपयोग नहीं किया है। पुस्तक में जैन धर्म के प्रचलित प्रतीकों, समवसरण, बाहुबली, भरत चक्रवर्ती, ब्रह्मशान्ति यक्ष, जीवन्तस्वामी महावीर एवं कुछ अन्य विषयों की चर्चा ही नहीं है। गुप्त युग में यक्ष-यक्षियों के चित्रण की नियमितता, यक्षियों के स्वरूप निर्धारण के बाद विद्याओं का स्वरूप निर्धारण, कल्पसूत्र में जिन-लांछनों का उल्लेख एवं मथुरा की गुप्तकालीन जैन मूर्तियों में जिनों के लांछनों का प्रदर्शन—ये भट्टाचार्य की कुछ ऐसी स्थापनाएँ हैं जो साहित्यिक और पुरातात्विक प्रमाणों के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हैं। जैन प्रतिमा-विज्ञान पर अब तक का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ होने के बाद भी उपर्युक्त कारणों से इसकी उपयोगिता सीमित है।

एच० डी० संकलिया ने जैन प्रतिमाविज्ञान एवं सम्बन्धित पक्षों पर कई लेख लिखे हैं। इनमें 'जैन आइकानो-ग्राफी' शीर्षक लेख विशेष महत्वपूर्ण है।[1] इसमें प्रारम्भ में जैन देवकुल के सदस्यों का प्रतिमा-निरूपण किया गया है, तदुपरान्त बम्बई के सेण्ट जेवियर संग्रहालय की जैन धातु मूर्तियों का विवरण दिया गया है। संकलिया के अन्य महत्वपूर्ण लेख जैन यक्ष यक्षियों, देवगढ़ के जैन अवशेषों एवं गुजरात-काठियावाड़ की प्रारम्भिक जैन मूर्तियों से सम्बन्धित हैं।[2] इनमें विभिन्न स्थलों की जैन मूर्ति-सामग्री का उल्लेख है। काठियावाड़ की धाक गुफा की दिगम्बर जैन मूर्तियाँ यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त प्रारम्भिक जिन मूर्तियाँ हैं।

जैन प्रतिमाविज्ञान पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य यू० पी० शाह ने किया है।[3] पिछले ३० वर्षों से अधिक समय से वे मुख्यतः जैन प्रतिमाविज्ञान पर ही कार्य कर रहे हैं। शाह ने प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों और विभिन्न पुरातात्विक स्थलों की सामग्री एवं उत्तर और दक्षिण भारत के जैन ग्रन्थों और शिल्प सामग्री का समुचित उपयोग किया है। अब तक का उनका अध्ययन उनकी दो पुस्तकों एवं ३० से अधिक लेखों में प्रकाशित है। उनकी पहली पुस्तक 'स्टडीज इन जैन आर्ट' में जैन कला में प्रचलित प्रमुख प्रतीकों, यथा अष्टमांगलिक चिह्नों, समवसरण, मांगलिक स्वप्नों, स्तूप, चैत्यवृक्ष, आयागपटों, के विकास की मीमांसा की गई है।[4] साथ ही प्रारम्भ में उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेषों का संक्षिप्त सर्वेक्षण भी प्रस्तुत किया गया है। दूसरी पुस्तक 'अकोटा ब्रोन्जेज' में उन्होंने अकोटा से प्राप्त जैन कांस्य मूर्तियों (लगभग ५वीं से ११वीं शती ई०) का विवरण दिया है।[5] अकोटा की मूर्तियाँ प्रारम्भिकतम श्वेताम्बर जैन मूर्तियाँ हैं। जीवन्तस्वामी महावीर एवं यक्ष-यक्षी से युक्त जिन मूर्ति के प्रारम्भिकतम उदाहरण भी अकोटा से ही मिले हैं। जैन प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से इन मूर्तियों का विशेष महत्व है।

---

१ संकलिया, एच० डी०, 'जैन आइकानोग्राफी', **न्यू इण्डियन एण्टिक्वेरी**, खं० २, १९३९–४०, पृ० ४९७–५२०

२ संकलिया, एच० डी०, 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', **बु०ड०का०रि०इं०**, खं० १, अं० २–४, पृ० १५७–६८, 'जैन मान्युमेण्ट्स फ्राम देवगढ़', **ज०इं०सो०ओ०आ०**, खं० ९, १९४१, पृ० ९७–१०४, 'दि, अर्लियस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड', **ज०रा०ए०सो०**, जुलाई १९३८, पृ० ४२६–३०

३ जैन प्रतिमाविज्ञान पर शाह का शोध प्रबन्ध भी है, किन्तु अप्रकाशित होने के कारण हम उससे लाभ नहीं उठा सके।

४ शाह, यू० पी०, **स्टडीज इन जैन आर्ट**, बनारस, १९५५

५ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बम्बई, १९५९

विभिन्न जैन देवों के प्रतिमा लक्षण पर लिखे शाह के कुछ प्रमुख लेख अम्बिका, सरस्वती, १६ महाविद्याओं, हरिनैगमेषिन्, ब्रह्मशान्ति, कपर्दि यक्ष, चक्रेश्वरी एवं सिद्धायिका से सम्बन्धित है।[1] इन लेखो में श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों एवं पदार्थगत अभिव्यक्ति के आधार पर देवों की प्रतिमा लाक्षणिक विशेषताएँ निरूपित हैं। शाह ने विभिन्न देवों की मूर्ति के वैज्ञानिक विकास का अध्ययन काल और क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य मे करने के स्थान पर सामान्यतः भुजाओं की संख्या के आधार पर देवों को वर्गीकृत करके किया है। ऐसे अध्ययन से वास्तविक विकास का आकलन सम्भव नही है।

शाह ने जैन प्रतिमाविज्ञान के कुछ दूसरे महत्वपूर्ण पक्षो पर भी लेख लिखे है, जिनमें जीवन्तस्वामी की मूर्ति, प्रारम्भिक जैन साहित्य में यक्ष पूजन, जैन धर्म में शासनदेवताओ के पूजन का आविर्भाव एवं जैन प्रतिमाविज्ञान का प्रारम्भ प्रमुख है।[2] जीवन्तस्वामी विषयक लेखों में जीवन्तस्वामी महावीर मूर्ति की साहित्यिक परम्परा की विस्तृत चर्चा की गई है, और अकोटा की गुप्तकालीन जीवन्तस्वामी मूर्ति के आधार पर साहित्यिक साक्ष्यों की विश्वसनीयता प्रमाणित की गई है। यक्ष पूजन और शासनदेवताओं से सम्बन्धित लेख यक्ष-यक्षी पूजन की प्राचीनता, उनके मूर्त अंकन एवं २४ यक्ष-यक्षी युगलों की धारणा एवं उनके विकास और स्वरूप निरूपण के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।

जैन प्रतिमाविज्ञान से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण पक्षों की विवेचना मे साहित्यिक साक्ष्यो के यथेष्ट उपयोग और विश्लेषण मे शाह ने नियमितता बरती है। प्रारम्भिक एवं मध्ययुगीन प्रतिमा लाक्षणिक ग्रन्थों के समुचित एवं सुव्यवस्थित उपयोग का उनका प्रयास प्रशंसनीय है। जैन प्रतिमाविज्ञान के कई विषयो पर उनकी स्थापनाएँ महत्वपूर्ण है। उन्होंने ही प्रतिपादित किया कि महाविद्याओं की कल्पना यक्ष-यक्षियो की अपेक्षा प्राचीन है और उनके मूर्तिविज्ञानपरक तत्व भी यक्ष-यक्षियो मे पूर्व ही निर्धारित हुए। यक्ष पूजा ई० पू० मे भी लोकप्रिय थी और माणिभद्र पूर्णभद्र यक्ष एवं बहुपुत्रिका यक्षी सर्वाधिक लोकप्रिय थे। इन्ही से कालान्तर मे जैन देवकुल के प्रारम्भिक यक्ष यक्षी सर्वानुभूति (कुबेर या मातंग) और अम्बिका विकसित हुए। गुप्त युग मे सर्वानुभूति यक्ष और अम्बिका यक्षी का प्रथम निरूपण एवं आठवी नवी शती ई० तक २४ यक्ष-यक्षी युगलो की कल्पना उनकी अन्य महत्वपूर्ण स्थापनाएँ है। जीवन्तस्वामी महावीर, ब्रह्मशान्ति यक्ष, कपर्दि यक्ष एवं अन्य कई महत्वपूर्ण विषयो पर सर्वप्रथम शाह ने ही कुछ लिखा है।

जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन मे शाह का निश्चित ही सर्वप्रमुख योगदान है। किन्तु विभिन्न स्थलो की पुरातात्विक सामग्री के उपयोग मे उन्होंने अपेक्षित नियमितता नही बरती है। उन्होंने सामग्री के प्राप्तिस्थल के सम्बन्ध मे विस्तृत सन्दर्भ प्रायः नही दिये है, जिससे सामग्री का पुनःपरीक्षण दुःसाध्य हो जाता है। किसी स्थल के कुछ उदाहरणों का उल्लेख करते हुए भी उसी स्थल के दूसरे उदाहरणों का वे विवेचन नही करते। इसका कारण सम्भवतः यह है कि इन स्थलो की सम्पूर्ण मूर्ति सम्पदा का उन्होंने अध्ययन नही किया है। ओसिया, कुम्भारिया, देवगढ़, खजुराहो जैसे महत्वपूर्ण स्थलो

१ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', ज०यू०बा०, खं० ९, पृ० १४७–६९; 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस सरस्वती', ज०यू०बां०, खं० १० (न्यू सिरीज), पृ० १९५–२१८; 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १५, १९४७, पृ० ११४–७७, 'हरिनैगमेषिन्', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १९, १९५२–५३, पृ० १९–४१, 'ब्रह्मशान्ति ऐण्ड कपर्दि यक्षज', ज०एम०एस०यू०ब०, खं० ७, अं० १, पृ० ५९–७२, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, खं० २०, अं० ३, पृ० २८०–३११, 'यक्षिणी ऑव दि ट्वेन्टीफोर्थ जिन महावीर', ज०ओ०इं०, खं० २२, अं० १–२, पृ० ७०–७८

२ शाह, यू० पी०, 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी', ज०ओ०इं०, खं० १, अं० १, पृ० ७२–७९; 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इं०, खं० ३, अं० १, पृ० ५४–७१, 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', प्रो०ट्रां०ओ०कां०, २० वाँ अधिवेशन, भुवनेश्वर, पृ० १४१–५२, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० १–१४

की मूर्ति सामग्री का नहीं के बराबर उपयोग किया गया है। अतः बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारियाँ उनके लेखो में समाविष्ट नहीं हो सकी हैं। उनके महाविद्या सम्बन्धित लेख में कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की १६ महाविद्याओं के सामूहिक अंकन का उल्लेख नही है, जो महाविद्याओं के सामूहिक चित्रण का प्रारम्भिकतम उदाहरण है। इसी प्रकार जीवन्तस्वामी मूर्ति विषयक लेख में ओसिया की विशिष्ट जीवन्तस्वामी मूर्तियों का भी कोई उल्लेख नही है। ओसिया की जीवन्तस्वामी मूर्तियों में अन्यत्र दुर्लभ कुछ विशेषताएँ प्रदर्शित हैं। जिन मूर्तियों के समान इन जीवन्तस्वामी मूर्तियों में अष्ट-प्रातिहार्य, यक्ष-यक्षी एवं महाविद्या निरूपित हैं। शाह के मूर्त उदाहरण मुख्यतः राजस्थान और गुजरात के मन्दिरो से ही लिये गये है। शाह ने साहित्यिक साक्ष्यो और पुरातात्विक सामग्री के तुलनात्मक अध्ययन में स्थान एवं काल की दृष्टि से क्रम, संगति एवं सामञ्जस्य पर भी सतर्क दृष्टि नही रखी है।

के० डी० वाजपेयी ने मथुरा की जैन मूर्तियों पर कुछ लेख लिखे है, जिनमे कुषाणकालीन सरस्वती मूर्ति से सम्बन्धित लेख विशेष महत्वपूर्ण है,[1] क्योंकि जैन शिल्प मे सरस्वती की यह प्राचीनतम मूर्ति है। एक अन्य लेख मे वाजपेयी ने मध्यप्रदेश के जैन मूर्ति अवशेषो का संक्षेप मे सर्वेक्षण किया है।[2] वी० एस० अग्रवाल ने भी जैन कला पर पर्याप्त कार्य किया है, जो मुख्यतः मथुरा के जैन शिल्प से सम्बन्धित है। उन्होने मथुरा संग्रहालय की जैन मूर्तियों की सूची प्रकाशित की है[3], जो प्रारम्भिक जैन मूर्तिविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व की है। इसके अतिरिक्त आयागपटों एवं नैगमेषी पर भी उनके महत्वपूर्ण लेख हैं।[4] एक अन्य लेख मे उन्होंने लखनऊ संग्रहालय के एक पट्ट की दृश्यावली की पहचान महावीर के जन्म से की है।[5] अधिकांश विद्वान् दृश्यावली को ऋषभ के जीवन से सम्बन्धित करते हैं। जे० ई० वान ल्यूजे-डे-ल्यू की 'सीथियन पिरियड' पुस्तक मे कुषाणकालीन जिन एवं बुद्ध मूर्तियों के समान मूर्तिवैज्ञानिक तत्वो की व्याख्या, उनके मूल स्रोत एवं इस दृष्टि से एक के दूसरे पर प्रभाव की विवेचना की गयी है।[6] इस अध्ययनमें यह स्थापित किया गया है कि प्रारम्भिक स्थिति मे कोई भी कला साम्प्रदायिक नही होती, विषय वस्तु अवश्य ही विभिन्न सम्प्रदायों से अलग-अलग प्राप्त किये जाते है, किन्तु उनके मूर्त अकन मे प्रयुक्त विभिन्न तत्वों का मूल स्रोत वस्तुतः एक होता है। देबला मित्रा ने दो महत्वपूर्ण लेख लिखे है। एक लेख मे बांकुड़ा (बंगाल) से मिली प्राचीन जैन मूर्तियों का उल्लेख है।[7] दूसरा लेख खण्डगिरि (उड़ीसा) की बारभुजी और नवमुनि गुफाओं की यक्षी मूर्तियो से सम्बन्धित है।[8] लेखिका ने बारभुजी गुफा की २४ एव नवमुनि गुफा की ७ यक्षी मूर्तियों का विस्तृत विवरण देते हुए दिगम्बर ग्रन्थों के आधार पर यक्षियों की पहचान तथा सम्भावित हिन्दू प्रभाव के आकलन का प्रयास किया है।

---

१ वाजपेयी, के० डी०, 'जैन इमेज आव सरस्वती इन दि लखनऊ म्यूजियम', जैन एण्टि०, ख० ११, अं० २, पृ० १-४

२ वाजपेयी, के० डी०, 'मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला', अनेकान्त, वर्ष १७, अं० ३, पृ० ९८-९९, वर्ष २८, १९७५, पृ० ११५-१६, १२०

३ अग्रवाल, वी० एस०, केटलाग ऑव दि मथुरा म्यूजियम, भाग ३, ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २३, पृ० ३५-१४७

४ अग्रवाल, वी० एस०, 'मथुरा आयागपटज', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० १६, भाग १, पृ० ५८-६१; 'ए नोट आन दि गाड नैगमेष', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २०, भाग १-२, १९४७, पृ० ६८-७३

५ अग्रवाल, वी० एस०, 'दि नेटिविटी सीन ऑन ए जैन रिलीफ फ्राम मथुरा', जैन एण्टि०, ख० १०, पृ० १-४

६ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे० ई० वान, दि सीथियन पिरियड, लिडेन, १९४९, पृ० १४५-२२२

७ मित्रा, देबला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बांकुडा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०, खं० २४, अं० २, पृ० १३१-३४

८ मित्रा, देबला, 'शासन देवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, पृ० १२७-३३

आर० सी० अग्रवाल ने जैन प्रतिमाविज्ञान के विभिन्न पक्षों पर कई लेख लिखे हैं। इनमें जैन देवी सच्चिका के प्रतिमा लक्षण से सम्बन्धित लेख महत्वपूर्ण है।[1] लेख मे सच्चिका देवी पर हिन्दू महिषमर्दिनी का प्रभाव आकलित किया गया है। एक अन्य महत्वपूर्ण लेख मे अग्रवाल ने विदिशा की तीन गुप्तकालीन जिन मूर्तियों का उल्लेख किया है।[2] दो मूर्तियों के लेखों में क्रमशः पुष्पदन्त एवं चन्द्रप्रभ के नाम हैं। ये मूर्तियां गुप्तकाल में कुषाणकाल की मूर्ति लेखों में जिनो के नामोल्लेख की परम्परा की अनवरतता की साक्षी है। कुछ अन्य लेखो मे अग्रवाल ने राजस्थान के विभिन्न स्थलो की कुबेर, अम्बिका एवं जीवन्तस्वामी महावीर मूर्तियों के उल्लेख किये हे।[3]

क्लाज ब्रुन ने जैन शिल्प पर चार लेख एवं एक पुस्तक लिखी है। एक लेख खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर की बाह्य भित्ति की मूर्तियों से सम्बन्धित है।[4] लेख में भित्ति की मूर्तियों पर हिन्दू प्रभाव की सीमा निर्धारित करने का सराहनीय प्रयास किया गया है। पर किन्हीं मूर्तियो के पहचान मे लेखक ने कुछ भूलें की है, जैसे उत्तर भित्ति की राम-सीता मूर्ति को कुमार की मूर्ति से पहचाना गया है। एक लेख महावीर के प्रतिमानिरूपण से सम्बन्धित है।[5] दो अन्य लेखो मे ब्रुन ने दुदही एवं चाँदपुर की जैन मूर्तियो का उल्लेख किया है।[6] ब्रुन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य देवगढ़ की जिन मूर्तियों पर उनकी पुस्तक है।[7] ब्रुन ने देवगढ़ की जिन मूर्तियों को कई वर्गों मे विभाजित किया है, पर यह विभाजन प्रतिमा लाक्षणिक आधार पर नहीं किया गया है, जिसकी वजह से देवगढ़ की जिन मूर्तियों के प्रतिमा लाक्षणिक अध्ययन की दृष्टि से यह पुस्तक बहुत उपयोगी नहीं है। जिन मूर्तियों मे लांछनो, अष्ट-प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी युगलो के महत्व को नही आकलित किया गया है। जिन मूर्तियो के कुछ विशिष्ट प्रकारो (द्वितीर्थी, त्रितीर्थी, चौमुख) एव बाहुबली, भरत चक्रवर्ती, क्षेत्रपाल, कुबेर, सरस्वती आदि की मूर्तिया के भी उल्लेख नही है। पुस्तक मे मन्दिर १२ की भित्ति की २४ यक्षी मूर्तियों के विस्तृत उल्लेख है, जो जैन मूर्तिविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से पुस्तक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामग्री है। ब्रुन ने इन यक्षियो में से कुछ पर श्वेताम्बर महाविद्याओं के प्रभाव को भी स्पष्ट किया है।

उपर्युक्त महत्वपूर्ण कार्यों के अतिरिक्त १९४५ से १९७९ के मध्य अन्य कई विद्वानों ने भी जैन प्रतिमाविज्ञान या सम्बन्धित पक्षों पर विभिन्न लेख लिखे है। इनमे विभिन्न पुरातात्विक स्थलों एवं संग्रहालयों से सम्बन्धित लेख भी है।

---

१ अग्रवाल, आर०सी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस सच्चिका', **जैन एण्टि०**, खं०२१, अं० १, पृ० १३-२०

२ अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', **ज०ओ०इं०**, खं० १८, अं० ३, पृ० २५२-५३

३ अग्रवाल, आर० सी०, 'सम इण्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका फ्राम मारवाड', **इं०हि०क्वा०**, खं०३२, अं०४, पृ० ४३४-३८; 'सम इन्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव यक्षज ऐण्ड कुबेर फ्राम राजस्थान', **इं०हि०क्वा०**, खं० ३३, अं० ३, पृ० २००-०७, 'एन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी फ्राम राजस्थान', **अ०ला०बु०**, खं० २२, भाग १-२, पृ० ३२-३४, 'गाडेस अम्बिका इन दि स्कल्पचर्स ऑव राजस्थान', **क्वा०ज०मि०सो०**, ख०४९, अं०२, पृ० ८७-९१

४ ब्रुन, क्लाज, 'दि फिगर ऑव दि टू लोअर रिलीफ्स ऑन दि पार्श्वनाथ टेम्पल ऐट खजुराहो', **आचार्य श्रीविजय-वल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ**, बम्बई, १९५६, पृ० ७-३५

५ ब्रुन, क्लाज, 'आइकानोग्राफी ऑव दि लास्ट तीर्थंकर महावीर', **जैनयुग**, वर्ष १, अप्रैल १९५८, पृ० ३६-३७

६ ब्रुन, क्लाज, 'जैन तीर्थज इन मध्यदेश : दुदही', **जैनयुग**, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९-३३, 'जैन तीर्थज इन मध्यदेश : चाँदपुर', **जैनयुग**, वर्ष २, अप्रैल १९५९, पृ० ६७-७०

७ ब्रुन, क्लाज, **दि जिन इमेजेज ऑव देवगढ़**, लिडेन, १९६९

इनमे ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा[१], मधुसूदन ढाकी[२], कृष्णदेव[३] एवं बालचन्द्र जैन[४] आदि मुख्य है। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 'जैन कला एवं स्थापत्य' शीर्षक से तीन खण्डों में प्रकाशित ग्रन्थ (१९७५) जैन कला, स्थापत्य एवं प्रतिमाविज्ञान पर अब तक का सबसे विस्तृत और महत्वपूर्ण कार्य है।[५]

अध्ययन-स्रोत

प्रस्तुत अध्ययन मे तीन प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है—अनुगामी, साहित्यिक और पुरातात्विक।

अनुगामी स्रोत के रूप मे आधुनिक विद्वानों द्वारा जैन प्रतिमाविज्ञान पर १९७९ तक किये गये शोध कार्यों का, जिनकी ऊपर विवेचना की गयी है, समुचित उपयोग किया गया है। आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया की ऐनुअल रिपोर्ट्स, वेस्टर्न सर्किल की प्रोग्रेस रिपोर्ट्स एवं अन्य उपलब्ध प्रकाशनो का भी यथासम्भव उपयोग किया गया है। विभिन्न संग्रहालयों की जैन सामग्री पर प्रकाशित पुस्तकों एवं लेखो से भी पूरा लाभ उठाया गया है। उत्तर भारत के जैन प्रतिमाविज्ञान से सीधे सम्बन्धित सामग्री के अतिरिक्त अनुगामी स्रोत के रूप मे अन्य कई प्रकार की सामग्री का भी उपयोग किया गया है जो आधुनिक ग्रन्थ एवं लेख सूची मे उल्लिखित हैं। जैन धर्म, साहित्य और देवकुल के अध्ययन की दृष्टि से जैन धर्म की महत्वपूर्ण पुस्तको एवं लेखो से लाभ उठाया गया है। तिथि एवं कुछ अन्य विवरणो की दृष्टि से स्थापत्य से सम्बन्धित; जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास में राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि के अध्ययन की दृष्टि से भारतीय इतिहास से सम्बन्धित; एवं दक्षिण भारत के जैन प्रतिमाविज्ञान से तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से दक्षिण भारत के जैन मूर्तिविज्ञान से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ग्रन्थों एवं लेखो से भी आवश्यकतानुसार सहायता ली गयी है। इसी प्रकार हिन्दू एवं बौद्ध प्रतिमाविज्ञान से तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से हिन्दू एवं बौद्ध मूर्तिविज्ञान पर लिखी पुस्तकों का भी समुचित उपयोग किया गया है।

मूल स्रोत के रूप मे यथासम्भव सभी उपलब्ध साहित्यिक ग्रन्थो के समुचित उपयोग का प्रयास किया गया है। सम्पूर्ण साहित्यिक ग्रन्थों को सुविधानुसार हम चार वर्गों मे विभाजित कर सकते है।

पहले वर्ग मे ऐसे प्रारम्भिक जैन ग्रन्थ है, जिनमें प्रसंगवश प्रतिमाविज्ञान से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होती है। जिनो, विद्याओ, यक्ष-यक्षियो एवं कुछ अन्य देवो के प्रारम्भिक स्वरूप के अध्ययन की दृष्टि से ये ग्रन्थ अतीव महत्व के है। प्रारम्भिक जैन कला मे अभिव्यक्ति की सामग्री इन्ही ग्रन्थो से प्राप्त की गई। इस वर्ग मे महावीर के समय से सातवीं शती ई० तक के ग्रन्थ है। इनमे आगम ग्रन्थ, **कल्पसूत्र**, **अंगविज्जा**, **पउमचरियम**, **वसुदेवहिण्डी**, **आवश्यक चूर्णि**, **आवश्यक निर्युक्ति** आदि प्रमुख है।

दूसरे वर्ग मे ल० आठवीं से सोलहवीं शती ई० के मध्य के श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन ग्रन्थ है। इनमें मूर्तिविज्ञान से सम्बन्धित विस्तृत सामग्री है। इन ग्रन्थो मे २४ जिनो एवं अन्य शलाका-पुरुषों, २४ यक्ष-यक्षी युगलों, १६ महाविद्याओं, सरस्वती, अष्ट-दिक्पालों, नवग्रहों, गणेश, क्षेत्रपाल, शांतिदेवी, ब्रह्मशान्ति यक्ष आदि के लाक्षणिक स्वरूप निरूपित है। इन व्यवस्थापक ग्रन्थों के आधार पर ही शिल्प मे जैन देवो को अभिव्यक्ति मिली। श्वेताम्बर परम्परा के

१ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, 'अनपब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि नेशनल म्यूजियम', **ज०ओ०इं०**, खं० १९, अं० ३, पृ० २७५-७८; **जैन प्रतिमाएं**, दिल्ली, १९७९

२ ढाकी, मधुसूदन, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बम्बई, १९६८, पृ० २९०-३४७

३ कृष्ण देव, 'दि टेम्पल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया', **एंशि०इं०**, अं० १५, १९५९, पृ० ४३-६५; 'माला देवी टेम्पल् ऐट ग्यारसपुर', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बम्बई, १९६८, पृ० २६०-६९

४ जैन, बालचन्द्र, **जैन प्रतिमाविज्ञान**, जबलपुर, १९७४

५ घोष, अमलानन्द (संपादक), **जैन कला एवं स्थापत्य** (३ खण्ड), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, १९७५

मुख्य ग्रन्थ **चतुर्विंशतिका** (बप्पभट्टिसूरिकृत), **चतुर्विंशति स्तोत्र** (शोभनमुनिकृत), **निर्वाणकलिका**, **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**, **मंत्राधिराजकल्प**, **चतुर्विंशतिजिन-चरित्र** (या **पद्मानन्द महाकाव्य**), **प्रवचनसारोद्धार**, **आचारदिनकर** एवं **विविधतीर्थकल्प** है। दिगम्बर परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ **हरिवंशपुराण**, **आदिपुराण**, **उत्तरपुराण**, **प्रतिष्ठासारसंग्रह**, **प्रतिष्ठासारोद्धार** और **प्रतिष्ठातिलकम्** हैं।

तीसरे वर्ग मे जैनेतर प्रतिमा लाक्षणिक ग्रन्थ है। ऐसे ग्रन्थो मे हिन्दू देवकुल के सदस्यों के साथ ही जैन देवकुल के सदस्यों की भी लाक्षणिक विशेषताएँ विवेचित हैं। इनमे **अपराजितपृच्छा देवतामूर्तिप्रकरण** और **रूपमण्डन** मुख्य है।

चौथे वर्ग मे दक्षिण भारत के जैन ग्रन्थ है, जिनका उपयोग तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से किया गया है। इनमे **मानसार** और टी० एन० रामचन्द्रन की पुस्तक 'तिरुप्परुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स' प्रमुख है।

ग्रन्थ की तीसरी महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री पुरातात्विक स्थलो की जैन मूर्तियाँ है। पुरातात्विक सामग्री के संकलन हेतु कुछ मुख्य जैन स्थलों की यात्रा एवं वहाँ की मूर्ति सम्पदा का एकैकशः विशद अध्ययन भी किया गया है। ग्रन्थो मे निरूपित विवरणों के वस्तुगत परीक्षण की दृष्टि से पुरातात्विक स्थलो की सामग्री का विशेष महत्व है, क्योंकि मूर्त धरोहर कलात्मक एवं मूर्तिवैज्ञानिक वृत्तियो के स्पष्ट साक्षी होते है। अध्ययन की दृष्टि से सामान्यतः ऐसे स्थलो को चुना गया है जहाँ कई शताब्दी की प्रभूत मूर्ति सम्पदा सुरक्षित है। इस चयन मे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोना ही सम्प्रदायों के स्थल सम्मिलित है। जिन स्थलों की यात्रा की गई है उनमे अधिकाश ऐसे है जिनकी मूर्ति सम्पदा का या तो अध्ययन नही किया गया है, या फिर कुछ विशेष दृष्टि से किये गये अध्ययन की उपयोगिता प्रस्तुत ग्रन्थ की दृष्टि से सीमित है। इनमे राजस्थान मे ओसिया, घाणेराव, सादरी, नाडोल, नाडलाई, जालोर, चन्द्रावती, विमलवसही, लूणवसही और गुजरात मे कुंभारिया एव तारगा के श्वेताम्बर स्थल, तथा उत्तरप्रदेश मे देवगढ़ एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ और पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (जहाँ मथुरा के कंकाली टीले की जैन मूर्तियाँ सुरक्षित है) एव मध्यप्रदेश म ग्यारसपुर और खजुराहो के दिगम्बर स्थल मुख्य है।

उत्तर भारत के कुछ प्रमुख पुरातात्विक संग्रहालयो की जैन मूर्तियो का भी विस्तृत अध्ययन किया गया है। उल्लेखनीय है कि जहाँ किसी पुरातात्विक स्थल की सामग्री काल एव क्षेत्र की दृष्टि से सीमाबद्ध होती है, वहीं संग्रहालय की सामग्री इस प्रकार की सीमा से सर्वथा मुक्त होती है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ एवं पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा के अतिरिक्त राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, राजपूताना संग्रहालय, अजमेर, भारत कला भवन, वाराणसी एव पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो के जैन संग्रहो का भी अध्ययन किया गया है। **कल्पसूत्र** के चित्रो पर प्रकाशित कुछ सामग्री का भी उपयोग हुआ है। विभिन्न पुरातात्विक स्थलों एव संग्रहालयो की जैन मूर्तियो के प्रकाशित चित्रो को भी दृष्टिगत किया गया है। साथ ही आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली एवं अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी के चित्र संग्रहो से भी आवश्यकतानुसार लाभ उठाया गया है।

कार्य-प्रणाली

ग्रंथ के लेखन मे दो दृष्टियो से कार्य किया गया है। प्रथम, सभी प्रकार के साक्ष्यों के समन्वय एव तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास है। यह दृष्टि न केवल साहित्यिक और पुरातात्विक साक्ष्यो के मध्य, वरन् दो साहित्यिक या कला परम्पराओ के मध्य भी अपनायी गयी है। द्वितीय, ग्रन्थो एवं पुरातात्विक स्थलो की सामग्री के स्वतन्त्र अध्ययन मे उनका एकशः, विशद और समग्र अध्ययन किया गया है। समूचा अध्ययन क्षेत्र एवं काल के चौखट मे प्रतिपादित है।

आरम्भिक स्थिति मे मूर्त अभिव्यक्ति के विषयवस्तु के प्रतिपादन की दृष्टि से ग्रन्थो का महत्व सीमित था। ग्रन्थो से केवल विषयवस्तु या देवो की धारणा ग्रहण की जाती थी। इस अवस्था मे विभिन्न सम्प्रदायो की कला के मध्य क्षेत्र एवं काल के सन्दर्भ में परस्पर आदान-प्रदान हुआ।[1] प्रारम्भिक जैन कला के अध्ययन मे विषयवस्तु की पहचान हेतु

१ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे०ई०वान, पू०नि०, पृ०१५१–५२

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों से सहायता ली गई है और साथ ही मूर्त अंकन में समकालीन एवं पूर्ववर्ती साहित्यिक एवं कला परम्पराओं के प्रभाव निर्धारण का भी यत्न किया गया है।

कुषाण शिल्प में ऋषभ एवं पार्श्व की मूर्तियों के लक्षणों और ऋषभ एवं महावीर के जीवनदृश्यों की विषय सामग्री ग्रन्थों में प्राप्त की गई। जिन मूर्ति के निर्माण की प्राचीन परम्परा (ल०तीसरी शती ई०पू०) होने के बाद भी मथुरा में शुंग-कुषाण युग में बौद्ध कला के समान ही जैन कला भी सर्वप्रथम प्रतीक रूप में अभिव्यक्त हुई। जैन आयागपटों के स्तूप, स्वस्तिक, धर्मचक्र, त्रिरत्न, पद्म, श्रीवत्स आदि चिह्न प्रतीक पूजन की लोकप्रियता के साक्षी हैं। मथुरा की प्राचीनतम जिन मूर्ति भी आयागपट (ल०पहली शती ई०पू०)[1] पर ही उत्कीर्ण है। इन आयागपटों के अष्टमांगलिक चिह्न पूर्ववर्ती साहित्यिक और कला परम्पराओं से प्रभावित है, क्योंकि जैन ग्रन्थों में गुप्तकाल से पहले अष्टमांगलिक चिह्नों की सूची नहीं मिलती।[2] साथ ही जैन सूची के अष्टमांगलिक चिह्नों[3] में धर्मचक्र, पद्म, त्रिरत्न (या तिलकरत्न), वैजयंती (या इन्द्रयष्टि) जैसे प्रतीक सम्मिलित नहीं है, जबकि आयागपटों पर इनका बहुलता से अंकन हुआ है।

ल० आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य जैन देवकुल में हुए विकास के कारण जैन देवकुल के सदस्यों के स्वतन्त्र लाक्षणिक स्वरूप निर्धारित हुए जिसकी वजह से साहित्य पर कला की निर्भरता विभिन्न देवताओं के पहचान और उनके मूर्त चित्रणों की दृष्टि से बढ़ गई। तुलनात्मक अध्ययन में इस बात के निर्धारण का भी यत्न किया गया है कि विभिन्न क्षेत्रों और कालों में कलाकार किस सीमा तक ग्रन्थों के निर्देशों का निर्वाह कर रहा था। इस दृष्टि के कारण यह निश्चित किया जा सका है कि जहाँ ग्रन्थों में २४ जिनों के यक्ष-यक्षी युगलों का निरूपण आवश्यक विषयवस्तु था, वहीं शिल्प में सभी यक्ष-यक्षी युगलों को स्वतन्त्र अभिव्यक्ति नहीं मिली। विभिन्न स्थलों पर किस सीमा तक जैन परम्परा में अवर्णित देवों को अभिव्यक्ति प्रदान की गई, इसके निर्धारण का भी प्रयास किया गया है।

दो या कई पुरातात्विक स्थलों के मूर्ति-अवशेषों की क्षेत्रीय वृत्तियों और समान तत्वों की दृष्टि से तुलनात्मक परीक्षा की गई है। ऐसे अध्ययन के कारण ही यह निश्चित किया जा सका है कि देवगढ के मन्दिर १२ की २४ यक्षी मूर्तियों में से कुछ पर ओसिया के महावीर मन्दिर की महाविद्या मूर्तियों का प्रभाव है। यह प्रभाव श्वेताम्बर स्थल (ओसिया) के दिगम्बर स्थल (देवगढ) पर प्रभाव की दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है। प्रतिहार शासकों के समय के दो कला केन्द्रों पर विषयवस्तु एवं प्रतिमा लाक्षणिक वृत्तियों की दृष्टि से क्षेत्रीय सन्दर्भ में प्राप्त भिन्नताओं का निर्धारण भी तुलनात्मक अध्ययन से ही हो सका है। ओसिया (राजस्थान) में जहाँ महाविद्याओं एवं जीवन्तस्वामी को प्राथमिकता दी गई, वहीं देवगढ़ (उत्तर प्रदेश) में २४ यक्षियों, भरत, बाहुबली एवं क्षेत्रपाल आदि को चित्रित किया गया। यह तुलनात्मक अध्ययन हिन्दू एवं बौद्ध सम्प्रदायों और साथ ही दक्षिण भारत के मूर्तिवैज्ञानिक तत्वों तक विस्तृत है।

जैन देवकुल के २४ जिनों एवं यक्ष-यक्षी युगलों के स्वतन्त्र मूर्तिविज्ञान के अध्ययन में साहित्यिक साक्ष्यों एवं पदार्थगत अभिव्यक्तियों के आधार पर, कालक्रम के अनुसार उनके स्वरूप में हुए क्रमिक विकास का अध्ययन किया गया है। प्रतिमा लाक्षणिक विवेचन में, पहले संक्षेप में जिनों एवं यक्ष-यक्षियों की समूहगत सामान्य विशेषताओं का ऐतिहासिक सर्वेक्षण है। तदुपरान्त समूह के प्रत्येक देवी-देवता के प्रतिमा लक्षण की स्वतन्त्र विवेचना की गई है।

सारांशतः, कार्य प्रणाली के लिए काल, क्षेत्र, साहित्य एवं पुरातत्व के बीच सामंजस्य, विभिन्न धर्मों की समकालीन परम्पराओं का परस्पर प्रभाव, विकास के क्रम में होनेवाले पारंपरिक और अपारम्परिक परिवर्तन आदि तथ्यों, वृत्तियों एवं आयामों को आधार के रूप में अपनाया गया है।



१ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे२५३; स्ट०जै०आ०, पृ० ७७–७८

२ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, स्ट०जै०आ०, पृ० १०९–१२

३ जैन सूची के अष्टमांगलिक चिह्न स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, दर्पण और मत्स्य (या मत्स्ययुग्म) हैं; औपपातिक सूत्र ३१; त्रि०श०पु०च०, खं० १, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज ५१, बड़ौदा, १९३१, पृ० ११२, १९०

द्वितीय अध्याय

राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति किसी भी देश की कला एवं स्थापत्य की नियामक होती है। कलात्मक अभिव्यक्ति अपनी विषय-वस्तु एवं निर्माण-विधा में समाज की धारणाओं एवं तकनीकों का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है। ये धारणाएं एवं तकनीकें संस्कृति का अंग होती हैं। भारतीय कला, स्थापत्य एवं प्रतिमाविज्ञान के प्रेरक एवं पोषक तत्वों के रूप में भी इन पक्षों का महत्वपूर्ण स्थान है। समर्थ प्रतिभाशाली शासकों के काल में कला एवं स्थापत्य की नई शैलियाँ अस्तित्व में आती हैं, पुरानी नवीन रूप ग्रहण करती हैं तथा उनका दूसरे क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ता है। राजा की धार्मिक आस्था अथवा अभिरुचि ने भी धर्म प्रधान भारतीय कला के इतिहास को प्रभावित किया है।

भारतीय कला लोगों की धार्मिक मान्यताओं का ही मूर्त रूप रही है। समाज और आर्थिक स्थिति ने भी विभिन्न सन्दर्भों एवं रूपों में भारतीय कला एवं स्थापत्य की धारा को प्रभावित किया है। एक निश्चित अर्थ एवं उद्देश्य से युक्त समस्त भारतीय कला पूर्व परम्पराओं के निश्चित निर्वाह के साथ ही साथ धर्म एवं सामाजिक धारणाओं में हुए परिवर्तनों से भी सदैव प्रभावित होती रही है।[1] भारतीय कला धार्मिक एवं सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति रही है। अनुकूल आर्थिक परिस्थितियों में ही कला की अबाध अभिव्यक्ति और फलतः उसका सम्यक् विकास सम्भव होता है। यजमान एवं कलाकार के अहं एवं कल्पना की साकारता कलाकार की क्षमता से पूर्व यजमान के आर्थिक सामर्थ्य पर निर्भर करती है, यजमान चाहे राजा हो या साधारण जन। भारतीय कला को राजा से अधिक सामान्य लोगों से प्रश्रय मिला है। यह तथ्य जैन कला, स्थापत्य एवं प्रतिमाविज्ञान के विकास के सन्दर्भ में विशेष महत्वपूर्ण है।

उपर्युक्त सन्दर्भ में इस अध्याय में जैन मूर्ति निर्माण एवं प्रतिमाविज्ञान की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का ऐतिहासिक विवेचन किया गया है। इसमें विभिन्न समयों में जैन धर्म एवं कला को प्राप्त होनेवाले राजकीय एवं राजेतर लोगों के संरक्षण, प्रश्रय अथवा प्रोत्साहन का इतिहास विवेचित है। काल और क्षेत्र के सन्दर्भ में धार्मिक एवं आर्थिक स्थितियों में होने वाले विकास या परिवर्तनों को समझने का भी प्रयास किया गया है, जिससे समय-समय पर उभरी उन नवीन सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का संकेत मिलता है, जिन्होंने समकालीन जैन कला और प्रतिमाविज्ञान के विकास को प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त जैन धर्म में मूर्ति निर्माण की प्राचीनता, इसकी आवश्यकता तथा इन सन्दर्भों में कलात्मक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की विवेचना भी की गई है।

उपरिनिर्दिष्ट अध्ययन प्रारम्भ से सातवीं शती ई० के अन्त तक कालक्रम से तथा आठवीं से बारहवीं शती ई० तक क्षेत्र के सन्दर्भ में किया गया है। गुप्त युग के अन्त (ल० ५५० ई०) तक जैन कलाकेन्द्रों की संख्या तथा उनसे प्राप्त सामग्री (मथुरा के अतिरिक्त) स्वल्प है। राजनीतिक दृष्टि से मौर्यकाल से गुप्तकाल तक उत्तर भारत एक सूत्र में बँधा था। अतः अन्य धर्मों एवं उनसे सम्बद्ध कलाओं के समान ही जैन धर्म तथा कला का विकास इस क्षेत्र में समरूप रहा। गुप्त युग के बाद से सातवीं शती ई० के अन्त तक के संक्रमण काल में भी संस्कृति एवं विभिन्न धर्मों से सम्बद्ध कला के विकास में मूल धारा का ही परवर्ती अविभक्त प्रवाह दृष्टिगत होता है, जिसके कारण पूर्व परम्पराओं की सामर्थ्य तथा उत्तर भारत के एक बड़े भाग पर हर्षवर्धन के राज्य की स्थापना है। किन्तु आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य उत्तर भारत के राजनीतिक मंच पर विभिन्न राजवंशों का उदय हुआ, जिनके सीमित राज्यों में विभिन्न आर्थिक एवं धार्मिक सन्दर्भों में जैन धर्म, कला, स्थापत्य एवं प्रतिमाविज्ञान के विकास की स्वतन्त्र जनपदीय या क्षेत्रीय धाराएं उद्भूत एवं विकसित हुईं, जिनसे जैन

१ कुमारस्वामी, ए० के०, **इण्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट**, दिल्ली, १९६९, प्रस्तावना

कलाकेन्द्रों का मानचित्र पर्याप्त परिवर्तित हुआ। इन्ही सन्दर्भों मे राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अध्ययन में उपर्युक्त दो दृष्टियों का प्रयोग अपेक्षित प्रतीत हुआ।

आरम्भिक काल (प्रारम्भ से ७वी शती ई० तक)

प्रारम्भ मे सातवी शती ई० तक के इस अध्ययन में पार्श्वनाथ एवं महावीर जिनो और मौर्य, कुषाण, गुप्त और अन्य शासको के काल मे जैन धर्म एवं कला की स्थिति और उसे प्राप्त होनेवाले राजकीय एवं सामान्य समर्थन का उल्लेख है। जैन धर्म मे मूर्ति पूजन की प्राचीनता की दृष्टि से जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा एवं अन्य प्रारम्भिक जैन मूर्तियो का भी संक्षेप मे उल्लेख किया गया है।

पार्श्वनाथ एवं महावीर का युग

जैनो ने सम्पूर्ण कालचक्र को उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इन दो युगो मे विभाजित किया है, और प्रत्येक युग मे २४ तीर्थंकरो (या जिनो) की कल्पना की है। वर्तमान अवसर्पिणी युग के २४ तीर्थंकरो मे से केवल अन्तिम दो तीर्थंकरो, पार्श्वनाथ एवं महावीर, की ही ऐतिहासिकता सर्वमान्य है। साहित्यिक परम्परा के अनुसार पार्श्वनाथ के समय (ल० ८वी शती ई० पू०) मे भी जैन धर्म विभिन्न राज्यो एव शासको द्वारा समर्थित था। पार्श्वनाथ वाराणसी के शासक अश्वसेन के पुत्र थे। उनका वैवाहिक सम्बन्ध प्रसेनजित के राजपरिवार मे हुआ था। जैन ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि महावीर के समय मे भी मगध के आसपास पार्श्वनाथ के अनुयायी विद्यमान थे।[1] किन्तु यह उल्लेखनीय है कि पार्श्वनाथ एवं महावीर के बीच के २५० वर्षो के अन्तराल मे जैन धर्म से सम्बद्ध किसी प्रकार का प्रामाणिक ऐतिहासिक सूचना नही प्राप्त होती है।

अन्तिम तीर्थंकर महावीर भी राजपरिवार से सम्बद्ध थे। पटना के समीप स्थित कुण्डग्राम के ज्ञातृवंशीय शासक सिद्धार्थ उनके पिता और वैशाली के शासक चेटक की बहन त्रिशला उनकी माता थी। उनका जन्म पार्श्वनाथ के २५० वर्ष पश्चात्[2] ल० ५९९ ई० पू० मे हुआ था और निर्वाण ५२७ ई० पू० मे।[3] वैशाली के शासक लिच्छवियो के कारण ही महावीर को सर्वत्र एक निश्चित समर्थन मिला। महावीर ने मगध, अंग, राजगृह, वैशाली, विदेह, काशी, कोशल, वंग, अवन्ति आदि स्थलो पर विहार कर अपने उपदेशो से जैन धर्म का प्रसार किया।

साहित्यिक परम्परा के अनुसार महावीर ने अपने समकालीन मगध के शासकों, बिम्बिसार एवं अजातशत्रु, को अपना अनुयायी बनाया था। बिम्बिसार का महावीर के चामरधर के रूप मे उल्लेख किया गया है। अजातशत्रु के उत्तराधिकारी उदय या उदायिन को भी जैन धर्म का अनुयायी बताया गया है जिसकी आज्ञा से पाटलिपुत्र मे एक जैन मन्दिर का निर्माण हुआ था।[4] किन्तु इन शासकों द्वारा जैन एवं बौद्ध धर्मों को समान रूप से दिये गये संरक्षण से स्पष्ट है कि राजनीतिक दृष्टि से विभिन्न धर्मो के प्रति उनका समभाव था।

महावीर से पूर्व तीर्थंकर मूर्तियो के अस्तित्व का कोई भी साहित्यिक या पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध नही है। जैन ग्रन्थों में महावीर की यात्रा के सन्दर्भ मे उनके किसी जैन मन्दिर जाने या जिन मूर्ति के पूजन का अनुल्लेख है। इसके विपरीत यक्ष-आयतनों एवं यक्ष-चैत्यो (पूर्णभद्र और माणिभद्र) मे उनके विश्राम करने के उल्लेख प्राप्त होते है।[5]

---

१ शाह, सी० जे०, **जैनिजम इन नार्थ इण्डिया**, लन्दन, १९३२, पृ० ८३

२ **आवश्यक निर्युक्ति**, गाथा १७, पृ० २४१; **आवश्यक चूर्णि**, गाथा १७, पृ० २१७

३ महावीर की तिथि निर्धारण का प्रश्न अभी पूर्णतः स्थिर नही हो सका है। विस्तार के लिए द्रष्टव्य, जैन, के० सी०, **लार्ड महावीर ऐण्ड हिज टाइम्स**, दिल्ली, १९७४, पृ० ७२-८८

४ शाह, सी० जे०, **पू०नि०**, पृ० १२७

५ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स आव जैन आइकानोग्राफी,' **सं०पु०प०**, अं० ९, पृ० २

जैन धर्म में मूर्ति पूजन की प्राचीनता से सम्बद्ध सबसे महत्त्वपूर्ण वह उल्लेख है जिसमें महावीर के जीवनकाल में ही उनकी मूर्ति के निर्माण का उल्लेख है। साहित्यिक परम्परा से ज्ञात होता है कि महावीर के जीवनकाल में ही उनकी चन्दन की एक प्रतिमा का निर्माण किया गया था। इस मूर्ति में महावीर को दीक्षा लेने के लगभग एक वर्ष पूर्व राजकुमार के रूप में अपने महल में ही तपस्या करते हुए अंकित किया गया है। चूँकि यह प्रतिमा महावीर के जीवनकाल में ही निर्मित हुई, अतः उसे जीवन्तस्वामी या जीवितस्वामी संज्ञा दो गई। साहित्य और शिल्प दोनों ही में जीवन्तस्वामी को मुकुट, मेखला आदि अलंकरणों से युक्त एक राजकुमार के रूप में निरूपित किया गया है। महावीर के समय के बाद की भी ऐसी मूर्तियों के लिए जीवन्तस्वामी शब्द का ही प्रयोग होता रहा।

जीवन्तस्वामी मूर्तियों को सर्वप्रथम प्रकाश मे लाने का श्रेय यू० पी० शाह को है।[1] साहित्यिक परम्परा को विश्वसनीय मानते हुए शाह ने महावीर के जीवनकाल से ही जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा को स्वीकार किया है।[2] उन्होंने साहित्यिक परम्परा की पुष्टि मे अकोटा (गुजरात) से प्राप्त जीवन्तस्वामी की दो गुप्तयुगीन कांस्य प्रतिमाओं का भी उल्लेख किया है।[3] इन प्रतिमाओं में जीवन्तस्वामी को कायोत्सर्ग-मुद्रा म खड़ा और वस्त्राभूषणों से सज्जित दरशाया गया है। पहली मूर्ति ल० पाँचवीं शती ई० की है और दूसरी लेखयुक्त मूर्ति ल० छठी शती ई० की है। दूसरी मूर्ति के लेख मे 'जिवंतसामी' खुदा है।[4]

जैन धर्म मे मूर्ति-निर्माण एवं पूजन की प्राचीनता के निर्धारण के लिए जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा की प्राचीनता का निर्धारण अपेक्षित है। आगम साहित्य एवं **कल्पसूत्र** जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थों मे जीवन्तस्वामी मूर्ति का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। जीवन्तस्वामी मूर्ति के प्राचीनतम उल्लेख आगम ग्रन्थों से सम्बन्धित छठी शती ई० के बाद की उत्तर-कालीन रचनाओं, यथा—निर्युक्तियां, टीकाओं, भाष्यों, चूर्णियों आदि में ही प्राप्त होते है।[5] इन ग्रन्थों से कोशल, उज्जैन, दशपुर (मदसोर), विदिशा, पुरी, एवं वीतभयपट्टन मे जीवन्तस्वामी मूर्तियों की विद्यमानता की सूचना प्राप्त होती है।[6]

जीवन्तस्वामी मूर्ति का उल्लेख सर्वप्रथम वाचक संघदासगणि कृत **वसुदेवहिन्डी** (६१० ई० या ल० एक या दो शताब्दी पूर्व की कृति)[7] मे प्राप्त होता है। ग्रन्थ मे आर्या सुव्रता नाम की एक गणिनी के जीवन्तस्वामी मूर्ति के पूजनार्थ उज्जैन जाने का उल्लेख है।[8] जिनदासकृत **आवश्यक चूर्णि** (६७६ ई०) मे जीवन्तस्वामी की प्रथम मूर्ति की कथा प्राप्त होती है। इसमें अच्युत इन्द्र द्वारा पूर्वजन्म के मित्र विद्युन्माली को महावीर की मूर्ति के पूजन की सलाह देने, विद्युन्माली के गोशीर्ष चन्दन की मूर्ति बनाने एवं प्रतिष्ठा करने, विद्युन्माली के पास से मूर्ति के एक वणिक के हाथ लगने, कालान्तर मे महावीर के समकालीन सिन्धु सौवीर मे वीतभयपत्तन के शासक उदायन एवं उसकी रानी प्रभावती द्वारा उसी मूर्ति के

---

१ शाह, यू० पी०, 'ए यूनीक जैन इमेज आव जीवन्तस्वामी,' **ज०ओ०इं०**, खं० १, अं० १, पृ० ७२–७९, शाह, 'साइड लाइट्स ऑन दि लाइफ-टाइम सैण्डलवुड इमेज ऑव महावीर', **ज०ओ०इं०**, खं० १, अं० ४, पृ० ३५८–६८; शाह, 'श्रीजीवन्तस्वामी' (गुजराती), **जै०स०प्र०**, वर्ष १७, अं०५–६, पृ०९८–१०९; शाह, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बंबई, १९५९, पृ० २६–२८

२ शाह, 'श्रीजीवन्तस्वामी,' **जै०स०प्र०**, वर्ष १७, अं० ५–६, पृ० १०४

३ शाह, 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी,' **ज०ओ०इं०**, खं० १, अं० १, पृ० ७९

४ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० २६–२८, फलक ९ ए, बी, १२ ए

५ जैन, हीरालाल, **भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान**, भोपाल, १९६२, पृ० ७२

६ जैन, जे० सी०, **लाईफ इन ऐन्शण्ट इण्डिया : ऐज डेपिक्टेड इन दि जैन केनन्स्**, बंबई, १९४७, पृ० २५२, ३००, ३२५

७ शाह, यू० पी०, **'श्रीजीवन्तस्वामी,' जै०स०प्र०, वर्ष** १७, अं० ५–६, पृ० ९८

८ **वसुदेवहिण्डी**, खं० १, भाग १, पृ० ६१

वणिक से प्राप्त करने एवं रानी प्रभावती द्वारा मूर्ति की भक्तिभाव से पूजा करने का उल्लेख है। यही कथा हरिभद्रसूरि की **आवश्यक वृत्ति** में भी वर्णित है।

इसी कथा का उल्लेख हेमचन्द्र (११६९–७२ ई०) ने **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** (पर्व १०, सर्ग ११) में कुछ नवीन तथ्यों के साथ किया है। हेमचन्द्र ने स्वयं महावीर के मुख से जीवंतस्वामी मूर्ति के निर्माण का उल्लेख कराते हुए लिखा है कि क्षत्रियकुण्ड ग्राम में दीक्षा लेने के पूर्व छद्मस्थ काल में महावीर का दर्शन विद्युन्माली ने किया था। उस समय उनके आभूषणों से सुसज्जित होने के कारण ही विद्युन्माली ने महावीर की अलंकरण युक्त प्रतिमा का निर्माण किया।[1] अन्य स्रोतों से भी ज्ञात होता है कि दीक्षा लेने का विचार होते हुए भी अपने ज्येष्ठ भ्राता के आग्रह के कारण महावीर को कुछ समय तक महल में ही धर्म-ध्यान में समय व्यतीत करना पड़ा था। हेमचन्द्र के अनुसार विद्युन्माली द्वारा निर्मित मूल प्रतिमा विदिशा में थी। हेमचन्द्र ने यह भी उल्लेख किया है कि चौलुक्य शासक कुमारपाल ने वीतभयपट्टन में उत्खनन करवाकर जीवंतस्वामी की प्रतिमा प्राप्त की थी। जीवंतस्वामी मूर्ति के लक्षणों का उल्लेख हेमचन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी जैन आचार्य ने नहीं किया है। क्षमाश्रमण संघदास रचित **बृहत्कल्पभाष्य** के भाष्य गाथा २७५३ पर टीका करते हुए क्षेमकीर्ति (१२७५ ई०) ने लिखा है कि मौर्य शासक सम्प्रति को जैन धर्म में दीक्षित करनेवाले आर्य सुहस्ति जीवंतस्वामी मूर्ति के पूजनार्थ उज्जैन गये थे। उल्लेखनीय है कि किसी दिगम्बर ग्रन्थ में जीवंतस्वामी मूर्ति की परम्परा का उल्लेख नहीं प्राप्त होता।[2] इसका एक सम्भावित कारण प्रतिमा का वस्त्राभूषणों से युक्त होना ही सकता है।

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि पाँचवीं-छठीं शती ई० के पूर्व जीवंतस्वामी के सम्बन्ध में हमें किसी प्रकार की ऐतिहासिक सूचना नहीं प्राप्त होती है। इस सन्दर्भ में महावीर के गणधरों द्वारा रचित आगम साहित्य में जीवंतस्वामी मूर्ति के उल्लेख का पूर्ण अभाव जीवंतस्वामी मूर्ति की धारणा की परवर्ती ग्रन्थों द्वारा प्रतिपादित महावीर की समकालिकता पर एक स्वाभाविक सन्देह उत्पन्न करता है। **कल्पसूत्र** एवं ई० पू० के अन्य ग्रन्थों में भी जीवंतस्वामी मूर्ति का अनुल्लेख इसी सन्देह की पुष्टि करता है। वर्तमान स्थिति में जीवंतस्वामी मूर्ति की धारणा को महावीर के समय तक ले जाने का हमारे पास कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

मौर्य-युग

बिहार जैन धर्म की जन्मस्थली होने के साथ-साथ भद्रबाहु, स्थूलभद्र, यशोभद्र, सुधर्मन, गौतमगणधर एवं उमास्वाति जैसे जैन आचार्यों की मुख्य कार्यस्थली भी रही है। जैन परम्परा के अनुसार जैन धर्म को लगभग सभी समर्थ मौर्य शासकों का समर्थन प्राप्त था। चन्द्रगुप्त मौर्य का जैन धर्मानुयायी होना तथा जीवन के अन्तिम वर्षों में भद्रबाहु के साथ दक्षिण भारत जाना सुविदित है।[3] **अर्थशास्त्र** में जयन्त, वैजयन्त, अपराजित एवं अन्य जैन देवों की मूर्तियों का उल्लेख है।[4] अशोक बौद्ध धर्मानुयायी होते हुए भी जैन धर्म के प्रति उदार था। उसने निर्ग्रन्थों एवं आजीविकों को दान दिए थे।[5] सम्प्रति को भी जैन धर्म का अनुयायी कहा गया है।[6] किन्तु मौर्य शासकों से सम्बद्ध इन परम्पराओं के विपरीत पुरातात्विक साक्ष्य के रूप में लोहानीपुर से प्राप्त केवल एक जिन मूर्ति ही है, जिसे मौर्य युग का माना जा सकता है।

---

१ **त्रि०श०पु०च०** १०. ११. ३७९–८०

२ शाह, यू०पी०, **पू०नि०**, पृ० १०९ : जैन ग्रन्थों के आधार पर किया गया यू० पी० शाह का निष्कर्ष दिगम्बर कलाकेन्द्रों में जीवंतस्वामी के मूर्त चित्रणाभाव से भी समर्थित होता है।

३ मुखर्जी, आर० के०, **चन्द्रगुप्त मौर्य ऐण्ड हिज टाइम्स**, दिल्ली, १९६६ (पु०मु०), पृ० ३९–४१

४ भट्टाचार्य, बी० सी०, **दि जैन आइकानोग्राफी**, लाहौर, १९३९, पृ० ३३

५ थापर, रोमिला, **अशोक ऐण्ड दि डिक्लाइन आव दि मौर्यज**, आक्सफोर्ड, १९६३ (पु०मु०), पृ० १३७–८१; मुखर्जी, आर० के०, **अशोक**, दिल्ली, १९७४, पृ० ५४–५५

६ **परिशिष्टपर्वन** ९.५४ : थापर, रोमिला, **पू०नि०**, पृ० १८७

पटना के समीपस्थ लोहानीपुर से मौर्ययुगीन चमकदार आलेप से युक्त ल० तीसरी शती ई० पू० का एक नग्न कबन्ध प्राप्त हुआ है, जो सम्प्रति पटना संग्रहालय मे है। कबन्ध की दिगम्बरता एवं कायोत्सर्ग-मुद्रा इसके तीर्थंकर मूर्ति होने के प्रमाण है। चमकदार आलेप के अतिरिक्त उसी स्थल से उत्खनन मे प्राप्त होनेवाली मौर्ययुगीन ईंटें एवं एक रजत आहतमुद्रा भी मूर्ति के मौर्यकालीन होने के समर्थक साक्ष्य है।[1] इस मूर्ति के निरूपण मे यक्ष मूर्तियो का प्रभाव दृष्टिगत होता है। यक्ष मूर्तियों की तुलना मे मूर्ति की शरीर रचना में भारीपन के स्थान पर सन्तुलन है, जिसे जैन धर्म मे योग के विशेष महत्व का परिणाम स्वीकार किया जा सकता है। शरीर रचना मे प्राप्त संतुलन, मूर्ति के मौर्य युग के उपरान्त निर्मित होने का[2] नही वरन् उसके तीर्थंकर मूर्ति होने का सूचक है। मौर्य शासको द्वारा जैन धर्म को समर्थन प्रदान करना और अर्थशास्त्र एवं कलिंग शासक खारवेल के लेख के उल्लेख लोहानीपुर मूर्ति के मौर्ययुगीन मानने के अनुमोदक तथ्य है।

शुग-कुषाण युग

उदयगिरि-खण्डगिरि की पहाड़ियों (पुरी, उड़ीसा) पर दूसरी-पहली शती ई० पू० की जैन गुफाएँ प्राप्त होती हैं। उदयगिरि की हाथीगुम्फा मे खारवेल का ल० पहली शती ई० पू० का लेख उत्कीर्ण है।[3] यह लेख अरहंतो एव सिद्धो को नमस्कार से प्रारम्भ होता है और अरहंतो के स्मारिका अवशेषो का उल्लेख करता है। लेख में इस बात का भी उल्लेख है कि खारवेल ने अपनी रानी के साथ कुमारी (उदयगिरि) स्थित अर्हतो के स्मारक अवशेषो पर जैन साधुओं को निवास की सुविधा प्रदान की थी।[4] लेख मे उल्लेख है कि कलिंग की जिस जिन प्रतिमा को नन्दराज 'तिवसमत' वर्ष पूर्व कलिंग से मगध ले गया था, उसे खारवेल पुन: वापस ले आया। 'तिवसमत' शब्द का अर्थ अधिकांश विद्वान् ३०० वर्ष मानते है।[5] इस प्रकार लेख के आधार पर जिन मूर्ति की प्राचीनता ल० चौथी शती ई० पू० तक जाती है।

ल० दूसरी-पहली शती ई० पू० मे जैन धर्म गुजरात मे भी प्रवेश कर चुका था। इसकी पुष्टि कालकाचार्य कथा से होती है। कथा मे उल्लेख है कि कालक ने भड़ौच जाकर लोगों को जैन धर्म की शिक्षा दी। साहित्यिक स्रोतो में ऋषभनाथ और नेमिनाथ के क्रमश: शत्रुंजय एवं गिरनार पहाड़ियों पर तपस्या करने तथा नेमिनाथ के गिरनार पर ही कैवल्य प्राप्त करने का उल्लेख प्राप्त होता है। गुजरात मे ये दोनो ही पहाड़ियां सर्वाधिक धार्मिक महत्व की स्थलियां रही है।[6]

लोहानीपुर जिन मूर्ति के बाद की पार्श्वनाथ की दूसरी जिन मूर्ति प्रिंस आव वेल्स संग्रहालय, बम्बई मे संगृहीत है, जो ल० प्रथम शती ई० पू० की कृति है। लगभग सी समय की पार्श्वनाथ की दूसरी जिन मूर्ति बक्सर जिले के चौसा ग्राम से प्राप्त हुई है। बक्सर की गंगा के तट पर स्थिति के कारण उसका व्यापारिक महत्व था।[7]

ल० दूसरी शती ई० पू० के मध्य मे जैन कला को प्रथम पूर्ण अभिव्यक्ति मथुरा मे मिली। यहां शुंग युग से मध्ययुग (१०२३ ई०) तक की जैन मूर्ति सम्पदा का वैविध्यपूर्ण भण्डार प्राप्त होता है, जिसमे जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास की प्रारम्भिक अवस्थाएं प्राप्त होती है। जैन परम्परा मे मथुरा की प्राचीनता सुपार्श्वनाथ के समय तक प्रतिपादित की गई है जहां कुबेरा देवी ने सुपार्श्व की स्मृति मे एक स्तूप बनवाया था। विविधतीर्थकल्प (१४ वी शती ई०) मे उल्लेख है कि पार्श्वनाथ के समय में सुपार्श्व के स्तूप का विस्तार और पुनरुद्धार हुआ था, तथा बप्पभट्टिसूरि ने वि० सं० ८२६

१ जायसवाल के० पी०, 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २३, भाग १, पृ० १३०–३२

२ रे, निहाररंजन, मौर्य ऐण्ड शुंग आर्ट, कलकत्ता, १९६५, पृ० ११५

३ सरकार, डी० सी०, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, खं० १, कलकत्ता, १९६५, पृ० २१३

४ वही, पृ० २१३–२१

५ वही, पृ० २१५, पा० टि० ७

६ विविधतीर्थकल्प, पृ० १-१०

७ मोती चन्द्र, सार्थवाह, पटना, १९५३, पृ० १५

(=७६९ ई०) में पुनः उसका जीर्णोद्धार करवाया।[1] इस परवर्ती साहित्यिक परम्परा की एक कुषाणकालीन तीर्थंकर मूर्ति से पुष्टि होती है, जिसकी पीठिका पर यह लेख (१६७ ई०) है कि यह मूर्ति देवनिर्मित स्तूप में स्थापित की गयी।[2]

मथुरा मे तीनों प्रमुख धर्मों (ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन) मे आराध्य देवो के मूर्त अंकनो के मूल में भक्ति आन्दोलन ही था। जिन मूर्ति का निर्माण मौर्य युग में ही प्रारम्भ हो चुका था पर उनके निर्माण की क्रमबद्ध परम्परा मथुरा मे शुंग-कुषाण युग से प्रारम्भ हुई। तात्पर्य यह कि जैन धर्म मे मूर्ति पूजा का प्रारम्भ जैन धर्म की जन्मस्थली बिहार मे न होकर भक्ति की जन्मस्थली मथुरा में हुआ। ईसा के कई शताब्दी पूर्व ही मथुरा वासुदेव-कृष्ण पूजन से सम्बद्ध भक्ति सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र बन चुका था।[3] जैन धर्म में मूर्ति निर्माण पर भागवत सम्प्रदाय के प्रभाव की पुष्टि कुछ कुषाणकालीन जिन मूर्तियो मे कृष्ण-वासुदेव एवं बलराम के उत्कीर्णन से भी होती है।

शुंग शासको द्वारा जैन धर्म एवं कला को समर्थन के प्रमाण नही प्राप्त होते। कुषाण युग मे भी जैन धर्म को राजकीय समर्थन के प्रमाण नही प्राप्त होते। पर शासकों की धर्म सहिष्णु नीति मथुरा मे जैन धर्म एवं कला के विकास में सहायक रही है। कुषाण युग मे मथुरा मे प्रचुर संख्या में जैन मूर्तियों का निर्माण हुआ और जैन प्रतिमाविज्ञान की कई विशेषताओ का सर्वप्रथम निरूपण एवं निर्धारण हुआ।[4] जैन कला के विकास की इस पृष्ठभूमि मे मथुरा के शासक वर्ग, व्यापारियों एवं सामान्य जनो का समर्थन रहा है। एक लेख में ग्रामिक जयनाग की पत्नी सिंहदत्ता (दत्ता) के एक आयागपट दान करने का उल्लेख है।[5] एक अन्य लेख मे गोतिपुत्र की पत्नी शिवमित्रा द्वारा जैन मूर्ति निर्माण का उल्लेख है।[6] कुछ जैन मूर्ति लेखों मे ब्राह्मणों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। मथुरा के लेखों से जैन मूर्ति निर्माण में स्त्रियों के योगदान का भी ज्ञान होता है। जैन लेखों मे अकका, ओघा, ओखरिका और उझटिका जैसे स्त्री नाम विदेशी मूल के प्रतीत होते है।[7]

कुषाण शासन मे आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था के कारण व्यापार को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। देश मे और विशेषतः विदेशों मे होने वाले व्यापार से व्यापारियों एवं व्यवसायियों ने प्रभूत धन अर्जित किया, जिसे उन्होंने धार्मिक स्मारकों एवं मूर्तियों के निर्माण में भी लगाया। मथुरा प्रमुख व्यापारिक केन्द्र के साथ कुषाण शासकों की दूसरी राजधानी और कनिष्क के समय कला का सबसे बड़ा केन्द्र भी था। मथुरा से प्राप्त तीनों सम्प्रदायों की मूर्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राजकीय संरक्षण के अभाव में भी जैन मूर्तियो की संख्या बौद्ध एवं हिन्दू मूर्तियों की तुलना में कम नहीं है। ल्यूडर द्वारा प्रकाशित मथुरा के कुल १३२ लेखों में से ८४ जैन और केवल ३३ बौद्ध मूर्तियो से सम्बद्ध है। शेष लेखों का इस प्रकार का निर्धारण सम्भव नहीं है।

मथुरा अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण देश के लगभग सभी व्यापारिक महत्व के स्थलों, राजगृह, तक्षशिला, उज्जैन, भरुकच्छ, शूर्पारक, से जुड़ा था जो आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण था।[8] जैन ग्रन्थो मे मथुरा का प्रसिद्ध

१ विविधतीर्थकल्प, पृ० १८–१९

२ राज्य संग्रहालय, लखनऊ : जे२०। लेखक को देवनिर्मित शब्द का सन्दर्भ कई मध्ययुगीन मूर्ति-अभिलेखो में भी देखने को मिला है।

३ अग्रवाल, वी० एस०, इण्डियन आर्ट, भाग १, वाराणसी, १९६५, पृ० २३०

४ इनमें जिनो की बहुसंख्यक मूर्तियां, ऋषभ एवं महावीर के जीवनदृश्य, चौमुख, नैगमेषी, सरस्वती आदि प्रमुख है।

५ विजयमूर्ति (सं०), जै०शि०सं०, भाग २, बम्बई, १९५२, पृ० ३३–३४, लेख सं० ४२

६ एपि०इण्डि०, खं० १, लेख सं० ३३

७ एपि०इण्डि०, खं० १, पृ० ३७१–९७, खं० २, पृ० १९५-२१२; खं० १९, पृ० ६७

८ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे०ई०वान, दि सीथियन पिरियड, लिडेन, १९४९, पृ० १४९, पा० टि० १६

९ मोती चंद्र, पू०नि०, पृ० १५–१६, २४

व्यापारिक केन्द्र के रूप में उल्लेख किया गया है, जो वस्त्र निर्माण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण था।[1] कुषाण काल में मथुरा के जैन समाज में व्यापारियों एवं शिल्पकर्मियों की प्रमुखता की पुष्टि जैन मूर्तियों पर उत्कीर्ण अनेक लेखों से होती है, जिनसे जैन धर्म एवं कला में उनका योगदान स्पष्ट है। ब्यूहलर के अध्ययन के अनुसार मथुरा के जैन अधिक संख्या में, सम्भवतः सर्वाधिक संख्या में, व्यापारी एवं व्यवसायी वर्ग के थे।[2] जैन मूर्तियों के पीठिका-लेखों में प्राप्त दानकर्ताओं की विशिष्ट उपाधियां उनके व्यवसाय की सूचक हैं। लेखों में श्रेष्ठिन्, सार्थवाह, गन्धिक आदि के अतिरिक्त सुवर्णकार, वर्धकिन (बढ़ई), लौहकर्मक शब्दों के भी उल्लेख हैं। साथ ही नाविक (प्रातारिक), वेश्याओं, नर्तकों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।[3]

पहली-दूसरी शती ई० के सोनभण्डार गुफा (राजगिर) के एक लेख में मुनि वैरदेव (श्वेताम्बर आचार्य वज्र : ५७ ई०) द्वारा जैन मुनियों के निवास के लिए गुफाओं के निर्माण का उल्लेख है जिसमें तीर्थंकर मूर्तियां भी स्थापित की गईं।[4]

दूसरी शती ई० के अन्त (ल० १७६ ई०) में कुषाणों के पतन के उपरान्त मथुरा के राजनीतिक मंच पर नागवंश का उदय हुआ। दूसरी क्षेत्रीय शक्तियों का भी उदय हुआ। भिन्न राजनीतिक मानचित्र एवं परिस्थिति में व्यापार शिथिल पड़ गया। पूर्व की तुलना में इस युग के कलावशेषों में तीर्थंकर या अन्य जैन मूर्तियों की संख्या बहुत कम है तथा तीर्थंकरों के जीवनदृश्यों, नैगमेषी एवं सरस्वती के अंकनों का पूर्ण अभाव है, जो जैन मूर्ति निर्माण की क्षीणता का द्योतक है। तथापि पारम्परिक एवं व्यापारिक पृष्ठभूमि के कारण जैन समुदाय अब भी सुसंगठित और धार्मिक क्षेत्र में क्रियाशील था, जिसकी पुष्टि चौथी शती ई० के प्रारम्भ या कुछ पूर्व आर्य स्कन्दिल के नेतृत्व में मथुरा में आगम साहित्य के संकलन हेतु हुए द्वितीय वाचन से होती है।[5]

गुप्त-युग

चौथी शती ई० के प्रारम्भ से छठी शती ई० के मध्य तक गुप्तों के शासन काल में संस्कृति एवं कला का सर्व-पक्षीय विकास हुआ। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं स्कन्दगुप्त जैसे पराक्रमी शासकों ने उत्तर भारत को एकसूत्र में बांधे रखा। शांतिपूर्ण वातावरण में व्यवसायों एवं देशव्यापी व्यापार का पुनरुत्थान हुआ और आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई। गुप्त युग में भड़ौच, उज्जैनी, विदिशा, वाराणसी, पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, मथुरा आदि व्यापारिक महत्व के प्रमुख नगर स्थल मार्ग से एक दूसरे से सम्बद्ध थे। ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) बंगाल का प्रमुख बंदरगाह था, जहां से विदेशों से व्यापार होता था।[6] इस युग में मिस्र, ग्रीस, रोम, पर्सिया, सीरिया, सीलोन, कम्बोडिया, स्याम, चीन, सुमात्रा आदि अनेक देशों से भारत का व्यापार हो रहा था।[7]

गुप्त शासक मुख्यतः ब्राह्मण धर्मावलंबी होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति उदार थे। तथापि अभिलेखिक एवं साहित्यिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस युग में जैन धर्म की बहुत उन्नति नहीं हुई। फाह्यान के यात्रा विवरण में भी जैन धर्म का अनुल्लेख है। रामगुप्त (?) के अतिरिक्त अन्य किसी भी गुप्त शासक द्वारा जैन मूर्ति निर्माण का उल्लेख नहीं मिलता है। विदिशा से प्राप्त ल० चौथी शती ई० की तीन जिन मूर्तियों में से दो के पीठिका-लेखों में महाराजाधिराज

१ जैन, जे० सी०, **पू०नि०**, पृ० ११४–१५
२ सिंह, जे० पी०, **आस्पेक्ट्स ऑव अर्ली जैनिजम**, वाराणसी, १९७२, पृ० ९०, पा०टि० ३
३ **एपि०इण्डि०**, खं० १, लेख सं० १, २, ७, २१, २९, खं० २, लेख सं० ५, १६, १८, ३९
४ **आ०स०इं०ऐ०रि०**, १९०५–०६, पृ० ९८, १६६
५ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', **सं०पु०प०**, अं० ९, पृ० २
६ अल्तेकर, ए० एस०, 'ईकनामिक कण्डीशन', **दि वाकाटक गुप्त एज**, दिल्ली, १९६७, पृ० ३५७–५८
७ मैती, एस० के०, **ईकनामिक लाईफ ऑव नार्दर्न इण्डिया इन दि गुप्त पिरियड**, कलकत्ता, १९५७, पृ० १२०

श्रीरामगुप्त द्वारा उन मूर्तियों के निर्माण कराने का उल्लेख है ।[1] गुप्त संवत् तिथियों वाली कुछ मूर्तियां चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम एवं स्कन्दगुप्त के समय की है । मथुरा से प्राप्त एक मूर्ति लेख (गुप्त सं० ११३ = ४३२ ई०) में श्यामाढ्या नामक स्त्री द्वारा मूर्ति समर्पण अंकित है ।[2] उदयगिरि गुफा लेख गुप्त सं० १०६ = ४२५ ई०) के अनुसार पार्श्वनाथ की मूर्ति शंकर नाम के व्यक्ति द्वारा स्थापित की गयी थी ।[3] कहौम (गोरखपुर, उ० प्र०) लेख (गुप्त सं० १४१ = ४६० ई०) के अनुसार मूर्ति के दानकर्ता मद्र के हृदय मे ब्राह्मणों एवं धर्माचार्यों के प्रति विशेष सम्मान था ।[4] पहाडपुर (राजशाही, बांगला देश) से प्राप्त लेख (गुप्त सं० १५९ = ४७८ ई०) मे एक ब्राह्मण युगल द्वारा अर्हत् के पूजन एवं वट गोहालि के विहार में विहारगृह बनाने के लिए भूमिदान का उल्लेख है ।[5]

मथुरा के अतिरिक्त अन्य कई स्थलों मे भी गुप्तकालीन जैन मूर्तियों के अवशेष प्राप्त होते है । अपने बन्दरगाहों के कारण गुजरात व्यापारियों का प्रमुख कार्य क्षेत्र हो गया था । गुप्त युग में ही ल० पाँचवी शती ई० के मध्य या छठी शती ई० के प्रारम्भ मे वलभी मे तीसरा और अन्तिम वाचन सम्पन्न हुआ जिसमे सभी उपलब्ध जैन ग्रन्थो को लिपिबद्ध किया गया ।[6] अकोटा से रोमन कास्य पात्र प्राप्त होते है, जो उस स्थल के व्यापारिक महत्व का संकेत देते है । गुजरात के अकोटा एवं वलभी नामक स्थलो से गुप्तयुगीन जैन मूर्तियां प्राप्त हुई है । बिहार में राजगिर का विभिन्न स्थलो से सम्बद्ध होने के कारण विशेष व्यापारिक महत्व था । गुप्त युग मे निरन्तर बारहवीं शती ई० तक राजगिर (वैभार पहाड़ी और सोनभण्डार-गुफा) मे जैन मूर्तियो का निर्माण होता रहा । मध्यप्रदेश मे विदिशा प्राचीन काल से ही व्यापारिक महत्व की नगरी थी ।[7] व्यापार की दृष्टि से वाराणसी का भी महत्व था जहां से छठी-सातवी शती ई० की कुछ जैन मूर्तियां प्राप्त होती हैं ।

सातवी शती ई० के दो गुर्जर शासको—जयभट्ट प्रथम एवं दद्द द्वितीय ने तीर्थंकरों से सम्बद्ध वीतराग एवं प्रशान्तराग उपाधियां धारण की थी । ह्वेनसाग के विवरण से ज्ञात होता है कि सातवी शती ई० मे श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदाय के साधु पश्चिम में तक्षशिला एवं पूर्व में विपुल तक और दिगम्बर निर्ग्रन्थ बंगाल मे समतट एवं पुण्ड्रवर्धन तक फैले थे ।[8]

मध्य-युग (ल० ८वीं शती ई० से १२वीं शती ई० तक)

हर्ष के बाद (ल० ६४६ ई०) का युग किन्हीं अर्थों में ह्रास का युग है । किसी केन्द्रीय शक्ति के अभाव मे उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्वतन्त्र शक्तियां उठ खडी हुई । कन्नोज पर अधिकार करने के लिए इनमें से प्रमुख, पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट राजवंशो के मध्य होने वाला त्रिकोणात्मक संघर्ष इस काल की महत्वपूर्ण घटना है । ग्यारहवी शती ई० का इतिहास अनेक स्वतन्त्र राजवंशों से सम्बद्ध है, जिनमें से अधिकांश ने अपना राजनीतिक जीवन प्रतिहारो के अधीन प्रारम्भ किया था । इनमें राजस्थान में चाहमान, गुजरात मे चौलुक्य (सोलंकी) और मालवा में परमार प्रमुख है । साथ ही गहड़वाल, चन्देल और कलचुरि एवं पूर्व में पाल भी महत्वपूर्ण है, जिन्होंने नवी से बारहवी शती ई० के मध्य शासन किया । इन राजवंशों के शासको मे सत्ता एवं राज्यविस्तार के लिए आपस मे निरन्तर संघर्ष होता रहा । अन्त में ११९३ ई० में

---

१ गाई, जी० एस०, 'श्री इन्स्क्रिप्शन्स ऑव रामगुप्त', ज०ओ०इं०, खं० १८, अं ३, पृ० २४७–५१; अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', ज०ओ०इं०, खं० १८, अ० ३, पृ० २५२–५३

२ एपि०इण्डि०, खं० २, पृ० २१०-११, लेख सं० ३९

३ का०इं०इं०, खं० ३, पृ० २५८-६०, लेख सं० ६१

४ वही, पृ० ६५–६८, लेख सं० १५

५ एपि०इण्डि०, खं० २०, पृ० ६१

६ विण्टरनित्ज, एम०, ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर, ख० २, कलकत्ता, १९३३, पृ० ४३२

७ मैती, एस० के०, पू०नि०, पृ० १२३; जैन, जे० सी०, पू०नि०, पृ० ११५

८ मोती चन्द्र, पू०नि०, पृ० १७

९ घटगे, ए० एम०, 'जैनिज्म', दि क्लासिकल एज, बंबई, १९५४, पृ० ४०५–०६

मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज तृतीय एवं जयचन्द को पराजित किया, जिसके साथ ही भारत में हिन्दू शासन समाप्त हो गया। सन् १२०६ ई० में मुसलमानों ने मामलुक वंश की स्थापना की।

विभिन्न क्षेत्रों के शासकों के मध्य निरन्तर चलनेवाले संघर्ष के परिणामस्वरूप गुप्तयुग की शान्ति एवं व्यवस्था विलुप्त हो गयी। तथापि भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों का विकास अबाध गति से चलता रहा, यद्यपि उस विकास का स्वरूप एवं उसकी गति विभिन्न राजवंशों के अन्तर्गत भिन्न रही। मौर्य, कुषाण एवं गुप्त युगों की तुलना में इस युग में विभिन्न राजवंशों के अन्तर्गत हुए साहित्य और कला के विकास का महत्व किसी भी प्रकार कम नही है। सीमित क्षेत्र में समर्थ शासक का संरक्षण किसी भी धर्म और कला की उन्नति एवं विकास में अधिक सहायक होता है। इसका प्रमाण प्रतिहार, चंदेल और चौलुक्य शासकों के काल में निर्मित जैन मन्दिरों की संख्या एवं प्रतिमाविज्ञान की प्रभूत सामग्री में निहित है। इस युग मे ही गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ और समस्त उत्तर भारत में अनेक जैन कलाकेन्द्र स्थापित हुए जहाँ प्रभूत संख्या मे जैन मूर्तियां निर्मित हुईं। फलतः इस काल में प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से विषय की सर्वाधिक विविधता एवं विकास भी दृष्टिगत होता है। उदयगिरि-खंडगिरि (नवमुनि एवं बारभुजी गुफाएं), देवगढ़, मथुरा, ग्वालियर, खजुराहो, ओसिया, दिलवाडा (विमलवसही एवं लूणवसही), कुंभारिया, तारंगा, राजगिर आदि जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से अतीव महत्व के स्थल है।

प्रतिहार शासक नागभट द्वितीय[1] और चौलुक्य शासक कुमारपाल के अतिरिक्त अन्य किसी भी शासक के जैन धर्म स्वीकार करने का उल्लेख नही प्राप्त होता। पर बौद्ध धर्मावलम्बी पालवंश के अतिरिक्त अन्य सभी राजवंशो का जैन धर्म एवं कला को किसी न किसी रूप मे समर्थन प्राप्त था। जैन देवकुल मे राम, कृष्ण, बलराम, गणेश, सरस्वती, चक्रेश्वरी, अष्ट-दिक्पाल एवं नवग्रहो जैसे हिन्दू देवों को विशेष महत्व दिया गया था।[2] जैन धर्म के इस उदार स्वरूप ने निश्चितरूपेण हिन्दू शासकों को जैन धर्म के समर्थन के लिए आकृष्ट किया होगा। जयसिंह सूरि (१४ वी शती ई०) कृत **कुमारपालचरित** मे उल्लेख है कि जैन आचार्य हेमचन्द्र की सलाह पर ही कुमारपाल ने हेमचन्द्र के साथ सोमनाथ जाकर शिव का पूजन किया था। वही शिव ने प्रकट होकर जैन धर्म की प्रशंसा की थी।[3] हेमचन्द्र ने शिव महादेव की प्रशंसा मे काव्य रचना भी की थी। **गणधरसार्द्धशतकबृहद्वृत्ति** के अनुसार एक अच्छे जैन विद्वान् के लिए ब्राह्मण और जैन दोनों ही दर्शनों का पूरा ज्ञान आवश्यक है।[4] अहिंसा पर बल देने के साथ ही जैन धर्म युद्ध विरोधी नही था। तभी कुमारपाल, सिद्धराज एवं विमल जैसे शासक उसकी परिधि मे आ सके।

जैन धर्म व्यापारियो एवं व्यवसायियो के मध्य विशेष लोकप्रिय था। सम्भवतः इसके हिन्दू शासकों द्वारा समर्थित होने का यह भी एक कारण था। जैन धर्म में जाति व्यवस्था को धर्म की दृष्टि से महत्व नही दिया गया था, और सम्भवतः इसी कारण वैश्यो ने काफी संख्या मे जैन धर्म स्वीकार किया था, जिनका मुख्य कार्य व्यापार या व्यवसाय था। इन वैश्यों को जैन समाज मे पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त थी। दण्डनायक विमल, वास्तुपाल, तेजपाल, पाहिल्ल एवं जगदु को शासन में

१ अय्यंगर, कृष्णस्वामी, 'दि बप्पभट्टि-चरित ऐण्ड दि अर्ली हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर एम्पायर,' **ज०बां०ब्रां०रा०ए०सो०**, खं० ३, अं० १-२, पृ० ११३; पुरी, बी० एन०, **दि हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर-प्रतिहारज**, बम्बई, १९५७, पृ०४७–४८

२ जैन स्थिति के ठीक विपरीत स्थिति बौद्धों की थी, जिन्होंने प्रमुख हिन्दू देवताओं को अपने देवकुल में निम्न स्थान दिया : द्रष्टव्य, बनर्जी, जे० एन०, **दि डिवलप्मेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, कलकत्ता, १९५६, पृ० ५४० और आगे; भट्टाचार्य, बेनायतोश, **दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी**, कलकत्ता, १९६८, पृ० १३६, १७३–७४, १८५–८८, २४९–५०

३ **कुमारपालचरित** ५.५, पृ० २४ और आगे, ७.५, पृ० ५७७ और आगे

४ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, **सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया**, दिल्ली, १९७२, पृ० ४६; **जै०क०स्था०**, खं० २, पृ० २५४, पा० टि० २

महत्वपूर्ण पद या शासकों का सम्मान प्राप्त था। व्यापारियों के जैन धर्म एवं कला को संरक्षण प्रदान करने की पुष्टि खजुराहो, जालोर और ओसिया जैसे स्थलों से प्राप्त लेखों से भी होती है। गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं मध्यप्रदेश में होनेवाले जैन कला के प्रभूत विकास के मूल मे उन क्षेत्रो की व्यापारिक पृष्ठभूमि ही थी। गुजरात के भडौच, कँबे और सोमनाथ जैसे व्यापारिक महत्व के बन्दरगाहों; राजस्थान मे पोरवाड, श्रीमाल, ओसवाल, मोढेरक जैसी व्यापारिक जैन जातियों; एवं मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश मे विदिशा, उज्जैन, मथुरा, कौशाम्बी जैसे महत्वपूर्ण व्यापारिक स्थलों ने इन क्षेत्रों में जैन मन्दिरो एवं प्रचुर संख्या मे मूर्तियो के निर्माण का आधार प्रस्तुत किया।

छठी शती ई० से दसवी शती ई० के मध्य का संक्रमण काल अन्य धर्मों एवं कलाओ के साथ ही जैन धर्म एवं कला में भी नवीन प्रवृत्तियो के उदय का युग था। सातवी शती ई० के बाद कला मे क्षेत्रीय वृत्तियां उभरने लगीं, और तीनों प्रमुख धर्मों को तान्त्रिक प्रवृत्तियों ने किसी न किसी रूप मे प्रभावित किया। अन्य धर्मों के समान जैन धर्म में भी देवकुल की वृद्धि हुई। बौद्ध और हिन्दू धर्मों की तुलना में जैन धर्म में तान्त्रिक प्रभाव कम और मुख्यतः मन्त्रवाद के रूप में था। जैन धर्म तान्त्रिक पूजाविधि, मांस, शराब और स्त्रियो से मुक्त रहा। यही कारण है कि जैन धर्म मे देवताओं को शक्ति के साथ आलिंगन मुद्रा मे नही व्यक्त किया गया। जैन आचार्यों ने तान्त्रिक विद्या के घिनौने आचरणो को पूर्णतः अस्वीकार करके तन्त्र मे प्राप्त केवल योग एवं साधना के महत्व को स्वीकार किया।

आगम ग्रन्थों में भूतो, डाकिनियों एवं पिशाचों के उल्लेख है। समराइच्चकहा, तिलकमञ्जरी एवं बृहत्कथाकोश मे मन्त्रवाद, विद्याधरो, विद्याओ एव कापालिको के वेताल साधनो की चर्चा है जिनकी उपासना से साधको को दिव्य शक्तियो या मनोवांछित फलो की प्राप्ति होती थी।[1] तान्त्रिक प्रभाव मे कई एक जैन ग्रन्थों की रचनाएँ हुई, जिनमे कुछ प्रमुख ग्रन्थों के नाम इस प्रकार है—ज्वालिनीमाता, निर्वाणकलिका, प्रतिष्ठासारोद्धार, आचारदिनकर, भैरवपद्मावतीकल्प, अद्भुत पद्मावती आदि। परम्परागत जैन साहित्य और शिल्प मे १६ महाविद्याएं तान्त्रिक देवियां मानी गई है।[2]

उत्तर भारत मे गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, बंगाल से ही जैन कला के अवशेष प्राप्त हुए है।[3] इन राज्यो से प्राप्त जैन मूर्तियो के सम्यक् अध्ययन की दृष्टि से पृष्ठभूमि के रूप मे इन राज्यों के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का अलग-अलग अध्ययन अपेक्षित है।

गुजरात

आठवी शती ई० के अन्त तक गुजरात में जैन धर्म का प्रभाव तेजी से बढ़ने लगा।[4] प्रतिहार शासक नागभट द्वितीय (आमराय) ने जीवन के अन्तिम वर्षों में जैन धर्म स्वीकार किया था तथा मोढेरा एव अणहिलपाटक मे जैन मन्दिरो और शत्रुंजय एवं गिरनार पर तीर्थस्थलियो का निर्माण कराया था। वनराज चापोत्कट ने ७४६ ई० मे अणहिलपाटक मे पंचासर चैत्य का निर्माण कराकर उसमे पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवायी और जैन आचार्य शीलगुणसूरि का सम्मान किया।[5]

गुजरात मे जैन धर्म एवं कला के विकास में चौलुक्य (या सोलंकी) राजवंश (९६१–१३०४ ई०) का सर्वाधिक योगदान रहा। इस राजवंश के शासकों के संरक्षण मे कुंभारिया, तारंगा एवं जालोर में कई जैन मन्दिरों का निर्माण

१ शर्मा, बृजनारायण, सोशल लाईफ इन नार्दर्न इण्डिया, दिल्ली, १९६६, पृ० २१२–१३

२ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १५, पृ० ११४

३ शेष उत्तर भारत मे जम्मू-कश्मीर, पंजाब और असम से जैन मूर्तियो की प्राप्तियां सन्देहास्पद प्रकार की है। ८वी शती ई० की कुछ दिगम्बर तीर्थंकर मूर्तियां असम के ग्वालपाड़ा जिले के सूर्य पहाड़ी की गुफाओं से मिली है, नार्दर्न इण्डिया पत्रिका, अक्तूबर २९, १९७५, पृ० ८; जै०क०स्था०, खं० १, पृ० १७४

४ बिरजी, के० के० जे०, ऐन्शण्ट हिस्ट्री ऑव सौराष्ट्र, बंबई, १९५२, पृ०१८३

५ चौधरी, गुलाबचन्द्र, पालिटिकल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज, अमृतसर, १९६३, पृ० २००

हुआ। जैन धर्म को अजयपाल (११७३–७६ ई०) के अतिरिक्त सभी शासकों का समर्थन मिला। मूलराज प्रथम (९४२–९५ ई०) ने अण्हिलपाटक में दिगम्बर सम्प्रदाय के लिए मूलवसतिका प्रासाद और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के लिए मूलनाथ जिनदेव मन्दिर का निर्माण कराया। **प्रभावकचरित** के अनुसार चामुण्डराज जैन आचार्य वीराचार्य से प्रभावित था और युवराज के रूप में ही ९७६ ई० में उसने वरुणशर्मक (मेहसाणा) के जैन मन्दिर को दान दिया था। भीमदेव प्रथम (१०२२–६४ ई०) ने सुराचार्य, शान्तिसूरि, बुद्धिसागर तथा जिनेश्वर जैसे जैन विद्वानों को अपने दरबार में प्रश्रय दिया। कर्ण (१०६४–९४ ई०) ने टाकववी या टाकोवी (तकोडि) के सुमतिनाथ जिन मन्दिर को भूमिदान दिया। जयसिंह सिद्धराज (१०९४–११४४ ई०) के काल में श्वेताम्बर धर्म गुजरात में भलीभांति स्थापित हो चुका था। जयसिंह के ही नाम पर जैन आचार्य हेमचन्द्र ने **सिद्ध-हेम-व्याकरण** की रचना की थी। जयसिंह की ही उपस्थिति में श्वेताम्बरों एवं दिगम्बरों ने शास्त्रार्थ किया, जिसमें दिगम्बरों ने पराजय स्वीकार की। **द्वयाश्रयकाव्य** (हेमचन्द्रकृत) में जयसिंह के सिद्धपुर में महावीर मन्दिर के निर्माण कराने और अर्हत् संघ को स्थापित करने का उल्लेख है। ग्रन्थ में पुत्र प्राप्ति हेतु जयसिंह के रैवतक (गिरनार) और शत्रुंजय पहाड़ियों पर जाने और नेमिनाथ एवं ऋषभदेव के पूजन करने का भी उल्लेख है।[1]

कुमारपाल (११४४–७४ ई०) जैन धर्म एवं कला का महान् समर्थक था। प्रबन्धों में उसके जैन धर्म स्वीकार करने का उल्लेख है। मेरुतुंगकृत **प्रबन्धचिन्तामणि** (१३०६ ई०) के अनुसार इसने 'परमार्हत्' उपाधि धारण की।[2] अशोक के समान कुमारपाल ने विभिन्न स्थानों पर कुमार विहारों का निर्माण करवाया तथा इनके माध्यम से जैन धर्म का प्रचार और प्रसार किया। कुमारपाल को १४४० जैन मन्दिरों का निर्माणकर्ता कहा गया है। यह सख्या अतिशयोक्तिपूर्ण है, फिर भी इससे कुमारपाल द्वारा निर्मित जैन मन्दिरों की पर्याप्त संख्या का आभास मिलता है, जिसका पुरातात्विक प्रमाण भी समर्थन करते है।[3] कुमारपाल ने तारगा (मेहसाणा) में अजितनाथ और जालोर के कांचनगिरि (सुवर्णगिरि) पर पार्श्वनाथ मन्दिरों का निर्माण कराया।[4] कुमारपाल द्वारा निर्मित जैन मन्दिर (कुमार विहार) जालोर से प्रभास तक के पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र के सभी महत्वपूर्ण जैन केन्द्रों में निर्मित हुए।[5] कुमारपाल के उपरान्त गुजरात में जैन धर्म को राजकीय समर्थन नहीं मिला।

चौलुक्य शासकों के मन्त्रियों, सेनापतियों एवं अन्य विशिष्ट जनों और व्यापारियों ने भी जैन धर्म और कला को समर्थन प्रदान किया। भीमदेव के दण्डनायक विमल ने शत्रुंजय और आरासण (कुंभारिया) में दो मंदिरों का निर्माण कराया। कर्णदेव के प्रधान मन्त्री सान्तू ने अण्हिलपाटक एवं कर्णावती में सान्तू वसतिका का निर्माण करवाया, कर्णदेव के ही मन्त्री मुंजला (जो बाद में जयसिंह सिद्धराज के भी मन्त्री रहे) के १०९३ ई० के पूर्व अण्हिलपाटक में मुन्जलवसती, मन्त्री उदयन के कर्णावती में उदयन विहार (१०९३ ई०), स्तंभ तीर्थ में उदयनवसती और धवलकक्क (धोल्क) में सीमन्धर जिन मन्दिर (१११९ ई०), सोलाक मन्त्री के अण्हिलपाटक में सोलाकवसती, दण्डनायक कपर्दी के अण्हिलपाटक में ही जिन मन्दिर (१११९ ई०), जयसिंह के दण्डनायक सज्जन के गिरनार पर्वत पर नेमिनाथ मन्दिर (११२९ ई०), कुमारपाल के मन्त्री पृथ्वीपाल के सायणवाड़पुर में शान्तिनाथ मन्दिर एवं आबू के विमलवसही में रंगमण्डप एवं देवकुलिकाएं संयुक्त कराने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। उदयन के पुत्र एवं मन्त्री वाग्भट्ट ने शत्रुंजय पर्वत पर प्राचीन मन्दिर के स्थान पर नवीन आदिनाथ मन्दिर (११५५–५७ ई०) का निर्माण कराया।[6] कुमारपाल के दण्डनायक के पुत्र अभयद को जैन धर्म के प्रति आस्थावान बताया गया है। गम्भूय के समृद्ध व्यापारी निन्नय ने अण्हिलपाटक में ऋषभदेव का एक मन्दिर बनवाया।[7]

---

१ **वही**, पृ० २४०, २५५, २५७, ढाकी, एम० ए०, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, पृ० २९४
२ **प्रबन्धचिन्तामणि**, पृ० ८६
३ मजूमदार, ए० के०, **चौलुक्याज आँव गुजरात**, बंबई, १९५६, पृ० ३१७–१९
४ नाहर, पी० सी०, **जैन इन्स्क्रिप्शन्स**, भाग १, कलकत्ता, १९१८, पृ० २३९, लेख सं० ८९९
५ ढाकी, एम० ए०, **पू०नि०**, पृ० २९४
६ **वही**, पृ० २९६–९७
७ चौधरी, गुलाबचन्द्र, **पू०नि०**, पृ० २०१, २९५

मुसलमान यात्रियों, भौगोलिकों (मार्कोपोलो) के वृत्तान्तो एवं गुजरात के प्रबन्ध काव्यों मे उल्लेख है कि मध्य-युग में गुजरात में कृषि, व्यवसाय, व्यापार एवं वाणिज्य पूर्णतः विकसित था। पूर्वी एवं पश्चिमी देशों के साथ गुजरात का व्यापार था। भड़ौंच, कैंबे और सोमनाथ गुजरात के तीन महत्वपूर्ण बंदरगाह थे जिनके कारण इस क्षेत्र का विदेशों से होने वाले व्यापार पर प्रभाव था।[1]

राजस्थान

जैन धर्म एवं कला की दृष्टि से दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र राजस्थान था, जहां जैन धर्म को अधिकांश राजवंशों का समर्थन मिला। आठवी से बारहवी शती ई० तक राजस्थान और गुजरात राजनीतिक दृष्टि से पर्याप्त सीमा तक एक दूसरे से सम्बद्ध थे। गुर्जर-प्रतिहार एवं चौलुक्य शासकों की राजनीतिक गतिविधियां दोनो ही राज्यो से सम्बद्ध थी। इसी कारण दोनों राज्यो का जैन धर्म एवं कला को योगदान तथा दोनों क्षेत्रो में होने वाला इनका विकास लगभग समान रहा।

गुर्जर-प्रतिहार शासकों का जैन धर्म को समर्थन प्राप्त था। जैन परम्परा मे सत्यपुर (संचोर) एवं कोरणट (कोर्त) के महावीर मन्दिरो के निर्माण का श्रेय नागभट प्रथम को दिया गया है।[2] ओसिया के जैन मन्दिर के ९५६ ई० के लेख में वत्सराज (७७०–८०० ई०) का उल्लेख है, जिसके शासनकाल मे यह मन्दिर विद्यमान था।[3] मिहिरभोज ने जैन आचार्यों, नन्नसूरि एवं गोविन्दसूरि, के प्रभाव में जैन धर्म को सरक्षण प्रदान किया। मण्डोर के प्रतिहार शासक कक्कुक (८६१ ई०) ने रोहिम्सकूप मे एक जिन मन्दिर का निर्माण करवाया।[4]

प्रारम्भिक चाहमान शासको का जैन धर्म से सम्बन्ध स्पष्ट नही है, किन्तु परवर्ती चाहमान शासक निश्चित ही जैन धर्म के प्रति उदार थे। पृथ्वीराज प्रथम ने रणथम्भोर के जैन मन्दिर पर तथा अजयराज ने अजमेर के पार्श्वनाथ मन्दिर पर कलश स्थापित कराया। अजयराज धर्मघोषसूरि (श्वेताम्बर) एवं गुणचन्द्र (दिगम्बर) के मध्य हुए शास्त्रार्थ मे निर्णायक भी था। अर्णोराज ने पार्श्वनाथ के एक विशाल मन्दिर के लिए भूमि दी और जिनदत्तसूरि को सम्मानित किया।[5] बिजोलिया के लेख (११६९ ई०) मे पृथ्वीराज द्वितीय एव सोमेश्वर द्वारा पार्श्वनाथ मन्दिर के लिए दो ग्रामो के दान देने का उल्लेख है।[6]

नाडोल के चाहमान शासको के समय मे नाडोल में नेमिनाथ, शान्तिनाथ एवं पद्मप्रभ मन्दिरो का निर्माण हुआ। सेवाड़ी (जोधपुर) के महावीर मन्दिर के लेख (१११५ ई०) मे कटुकराज के शान्तिनाथ के पूजन हेतु वार्षिक अनुदान देने का उल्लेख है।[7] कीर्तिपाल ने नड्डुलडागिका (नाडुलई) के महावीर मन्दिर को ११६० ई० मे दान दिया।[8] कीर्तिपाल के पुत्रों, लखनपाल एवं अभयपाल, ने रानी महीबलादेवी के साथ शान्तिनाथ का महोत्सव मनाने के लिए दान दिया था।[9] नाडुलाई के आदिनाथ मन्दिर के एक लेख (११३२ ई०) मे रायपाल के दो पुत्रों, रुद्रपाल और अमृतपाल के अपनी माता

---

१ मजूमदार, ए० के०, **पू०नि०**, पृ० २६५; गोपाल, एल०, दि **ईकनामिक लाईफ ऑव नार्दर्न इण्डिया**, वाराणसी, १९६५, पृ० १४२, १४८; जैन, जे० सी०, **पू०नि०**, पृ० ३३९

२ ढाकी, एम० ए०, **पू०नि०**, पृ० २९४–९५

३ नाहर, पी० सी०, **पू०नि०**, पृ० १९२–९४, लेख स० ७८८; भण्डारकर, डी० आर०, 'दि टेम्पल्स ऑव ओसिया', **आ०स०इं०ऐ०रि०**, १९०८–०९, पृ० १०८

४ शर्मा, दशरथ, **राजस्थान थ्रू दि एजेज**, खं० १, बीकानेर, १९६६, पृ० ४२०

५ जैन, के० सी०, **जैनिजम इन राजस्थान**, शोलापुर, १९६३, पृ० १९

६ **एपि०इण्डि०**, खं० २६, पृ० १०२, जोहरापुरकर, विद्याधर (सं०), **जै०शि०सं०**, भाग ४, वाराणसी, महावीर निर्वाण सं० २४९१, पृ० १९६

७ चौधरी, गुलाबचन्द्र, **पू०नि०**, पृ० १५१

८ ढाकी, एम० ए०, **पू०नि०**, पृ० २९५–९६

९ **एपि०इण्डि०**, खं० ९, पृ० ४९–५१

मानलदेवी के साथ मन्दिर को दान देने का उल्लेख है।[1] केल्हण (११६१–९२ ई०) के शासनकाल के ६ जैन अभिलेखों में भी विभिन्न जैन मन्दिरों को दिए गए दानों का उल्लेख है। केल्हण की माता ने भी महावीर मन्दिर के लिए भूमिदान किया था।[2]

परमार शासकों ने भी जैन धर्म एवं कला को संरक्षण दिया। कृष्णराज के शासनकाल में एक गोष्ठी द्वारा वर्धमान की मूर्ति स्थापित की गई।[3] धारावर्ष की रानी शृंगार देवी ने झालोडी के महावीर मन्दिर को भूमिदान दिया। कुंकण (सम्भवतः आबू के परमार शासक अरण्यराज का मन्त्री) ने चन्द्रावती में किसी जिन मन्दिर का निर्माण करवाया। गुहिल शासक अल्लट के एक मन्त्री ने आघाट (अहार) में पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण करवाया।[4]

जैन धर्म को हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट शासकों का भी समर्थन प्राप्त था। हरिवर्मन के पुत्र विदग्धराज ने हस्तिकुण्डी में ऋषभदेव का मन्दिर बनवाया और उसे भूमिदान किया। उसके पुत्र एवं पौत्र मम्मट तथा धवल ने भी इस मन्दिर को दान दिया।[5] बयाना के शूरसेन शासक कुमारपाल ने शान्तिनाथ मन्दिर (११५४ई०) के शिखर पर स्वर्णकलश स्थापित किया था।[6] शूरसेन शासकों ने प्रद्युम्नसूरि, धनेश्वरसूरि एवं दुर्गदेव जैसे जैन आचार्यों का सम्मान भी किया था। जैसलमेर राज्य की राजधानी लोद्रवा के शासक सागर के समय में जिनेश्वरसूरि वहाँ (९९४ ई०) पधारे थे और सागर के दो पुत्रों, श्रीधर एवं राजधर ने वहाँ एक पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण भी करवाया था।[7]

शासकों के अतिरिक्त उद्योतनसूरि, बप्पभट्टिसूरि, हरिभद्रसूरि, सिद्धर्षिसूरि, जिनेश्वरसूरि, धनेश्वरसूरि, अभयदेव, आशाधर, जिनदत्तसूरि, जिनपाल और सुमतिगणि जैसे जैन आचार्यों ने भी जैन धर्म के प्रचार और प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

राजस्थान में व्यापार काफी समुन्नत स्थिति में था। राजस्थान से सम्बन्धित सभी प्रमुख वणिक वंशों ने जिनका मुख्य व्यवसाय व्यापार था, जैन धर्म स्वीकार किया था। जैन धर्म स्वीकार करनेवाले वणिक वंशों में आबू के पूर्वी क्षेत्र के प्राग्वाट् (पोरवाड़), उकेश (ओसिया) के उकेशवाल (ओसवाल), भिन्नमाल (श्रीमाल) के श्रीमाली, पल्लिका (पाली) के पल्लिवाल, मोढेरक (मोढेरा) के मोढ एवं गुर्जर मुख्य हैं।[8]

अभिलेखिक साक्ष्यों से व्यापारियों एवं उनकी गोष्ठियों के भी जैन धर्म एवं कला को संरक्षण प्रदान करने की पुष्टि होती है। ओसिया के महावीर मन्दिर के लेख में मन्दिर की गोष्ठी का उल्लेख है। लेख में जिनदक नाम के व्यापारी द्वारा ९५६ ई० में बलानक के पुनरुद्धार कराने की भी चर्चा है।[9] बीजापुर लेख (१०वीं शती ई०) से हस्तिकुण्डी की गोष्ठी द्वारा स्थानीय ऋषभदेव मन्दिर के पुनरुद्धार करवाने का ज्ञान होता है।[10] दियाणा के शान्तिनाथ मन्दिर के लेख (९६७ई०) में एक

---

१ एपि०इण्डि०, खं० ११, पृ० ३४; जै०शि०सं०, भाग ४, पृ० १५९
२ एपि०इण्डि०, खं० ९, पृ० ४६–४९
३ जयन्तविजय (सं०), अर्बुद प्राचीन जैन लेख सन्दोह, भाग ५, भावनगर, वि०स०२००५, पृ०१६८, लेख सं०४८६
४ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९८ ५ नाहर, पी० सी०, पू०नि०, लेख सं० ८९८
६ जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० २८
७ नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग ३, १९२९, पृ० १६०, लेख सं० २५४३
८ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९८
९ भण्डारकर, डी० आर०, आ०स०इं०ऐ०रि०, १९०८–०९, पृ०१०८, नाहर, पी० सी०,जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, पृ० १९२–९४
१० एपि०इण्डि०, खं० १०, पृ० १७ और आगे, लेख स० ५; नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, पृ० २३३, लेख सं० ८९८

गोष्ठी द्वारा वर्धमान की प्रतिमा के प्रतिष्ठित किये जाने का उल्लेख है।[१] अर्थूणा के एक लेख (११०९ ई०) में उल्लेख है कि वहां नगर महाजन भूषण ने ऋषभनाथ के मन्दिर का निर्माण करवाया। जालोर के एक लेख (११८२ ई०) में अपने भाई एवं गोष्ठी के सदस्यों के साथ श्रीमालवंश के सेठ यशोवीर द्वारा एक मण्डप के निर्माण का उल्लेख है। जालोर के एक अन्य लेख (११८५ ई०) से ज्ञात होता है कि भण्डारि यशोवीर ने कुमारपाल निर्मित पार्श्वनाथ मन्दिर का पुनर्निर्माण करवाया।[२]

राजस्थान उत्तर भारत के विभिन्न भागों से स्थल मार्ग से सम्बद्ध था, जो व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण था।[३] राजस्थान के व्यापारी देश के विभिन्न भागो के अतिरिक्त विदेशो के साथ भी व्यापार करते थे। राजस्थान के साहित्य में दो बन्दरगाहों, शूर्पारक (आधुनिक सोपारा) और ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) का अनेकशः उल्लेख प्राप्त होता है, जहां से राजस्थान के व्यापारी स्वर्णद्वीप, चीन, जावा जैसे देशो में व्यापार के लिए जाते थे।[४]

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश मे जैन धर्म को राजकीय समर्थन के कुछ प्रमाण केवल देवगढ़ से ही प्राप्त होते हैं। देवगढ़ के मन्दिर १२ (शान्तिनाथ मन्दिर) के अर्धमण्डप के एक स्तम्भ लेख (८६२ ई०) मे प्रतिहार शासक भोजदेव के शासन काल और लुअच्छगिरि (देवगढ) के शासक महासामन्त विष्णुराम का उल्लेख है।[५] लेख मे 'गोष्ठिक-वजुआगगाक' का भी नाम है, जो मन्दिर की व्यवस्थापक समिति का सदस्य था। ९९४ ई० एवं ११५३ ई० के देवगढ के दो अन्य लेखो में क्रमशः 'श्रीउजरवट-राज्ये' एवं 'महासामन्त श्रीउदयपालदेव' के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनके विषय मे कुछ भी जानकारी नही है। देवगढ़ के विभिन्न लेखो से स्पष्ट है कि वहा के अधिकतर मन्दिर एव मूर्तिया मध्यमवर्ग के लोगों के दान एवं सहयोग के प्रतिफल है। व्यापार की दृष्टि से भी देवगढ का महत्व स्पष्ट नही है। किन्तु ८०० वर्षों तक लगातार प्रभूत संख्या मे निर्मित होने वाली जैन मूर्तियां क्षेत्र की अच्छी आर्थिक स्थिति और देवगढ के धार्मिक महत्व की सूचक है। यहा के लेखो मे दिगम्बर सम्प्रदाय के कुछ महत्वपूर्ण आचार्यों (वसन्तकीर्ति, विशालकीर्ति, शुभकीर्ति) तथा कुछ ऐसे आचार्यो के नाम जो जैन परम्परा मे अज्ञात है, प्राप्त होते है।[६]

कुछ प्रमुख जैन स्थलों की व्यापारिक पृष्ठभूमि का ज्ञान भी अपेक्षित है। प्रमुख नगर होने के अतिरिक्त कोशाम्बी, श्रावस्ती, मथुरा एव वाराणसी की स्थिति व्यापारिक मार्ग पर थी। भड़ौच से आनेवाले मार्ग के कारण कोशाम्बी का विशेष व्यापारिक महत्व था।[७] कोशाम्बी से कोशल और मगध तथा माहिष्मती के माध्यम से दक्षिणापथ एवं विदिशा का मार्ग जाते थे। जैन परम्परा के अनुसार पार्श्वनाथ, महावीर, आर्य सुहस्ति तथा महागिरि ने कोशाम्बी (वत्स) की यात्रा की थी।[८] श्रावस्ती भी व्यापारिक महत्व की नगरी थी।[९]

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश मे व्यापारिक समृद्धि के अनुकूल वातावरण के साथ ही विभिन्न राजवंशो के धर्म सहिष्णु शासको द्वारा दिया गया समर्थन भी जैन धर्म को प्राप्त था। प्रतिहार शासकों के काल में ही दसवीं शती ई० के प्रारम्भ में ग्यारसपुर मे मालादेवी जैन मन्दिर निर्मित हुआ। परमार शासको के जैन धर्म के प्रश्रयदाता होने की पुष्टि धनपाल, धनेश्वर सूरि, अमितगति, प्रभाचन्द्र, शान्तिषेण, राजवल्लभ, शुभशील, महेन्द्रसूरि जैसे जैन आचार्यों के उनके दरबार में होने से होती है।

---

१ जयन्तविजय (सं०), **अर्बुद प्राचीन जैन लेख सन्दोह**, भाग ५, पृ० १६८, लेख स० ४८६
२ **एपि०इण्डि०**, ख० ११ पृ० ५२–५४
३ मोती चन्द्र, **पू०नि०**, पृ० २३
४ शर्मा, दशरथ, **पू०नि०**, पृ० ४९२; गोपाल, एल०, **पू०नि०**, पृ० ९१, शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, **पू०नि०**, पृ० १४९
५ **एपि०इण्डि०**, खं० ४, पृ० ३०९–१०
६ **जि०इ०दे०**, पृ० ६१
७ मोतीचन्द्र, **पू०नि०**, पृ० १५–१७, २४
८ जैन, जे० सी०, **पू०नि०**, पृ० २५४
९ मोतीचन्द्र, **पू०नि०**, पृ० १७–१८

शैव धर्मावलम्बी होने के बाद भी भोज (१०१०–१०६२ ई०) ने जैन धर्म एवं साहित्य को संरक्षण दिया था। भोज ने जैन आचार्य प्रभाचन्द्र के चरणों की वन्दना की थी।[1] खजुराहो के जैन मन्दिरों (पार्श्वनाथ, घण्टई, आदिनाथ) के अतिरिक्त चन्देल राज्य में सर्वत्र प्राप्त होने वाली जैन मूर्तियां एवं मन्दिर भी उनके जैन धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं। धंग के महाराजगुरु वासवचन्द्र जैन थे।[2]

जैन धर्म को ग्वालियर एवं दुबकुण्ड के कच्छपघाट शासकों का भी समर्थन प्राप्त था। वज्रदामन ने ९७७ ई० में ग्वालियर में एक जैन मूर्ति प्रतिष्ठित कराई। दुबकुण्ड के एक जैन लेख (१०८८ ई०) में विक्रमसिंह द्वारा वहां के एक जैन मन्दिर को दिए गए दान का उल्लेख है।[3] कल्चुरी शासकों के जैन धर्म के समर्थन से सम्बन्धित केवल एक लेख बहुरिबन्ध से प्राप्त होता है, जिसमें गयाकर्ण के राज्य में सर्वधर के पुत्र महाभोज (?) द्वारा शान्तिनाथ के मन्दिर के निर्माण का उल्लेख है।[4]

देश के मध्य में इस क्षेत्र की स्थिति व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी। लगभग सभी क्षेत्रों के व्यापारी इस क्षेत्र से होकर दूसरे प्रदेशों को जाते थे। व्यापारियों ने जैन मूर्तियों के निर्माण में पूरा योगदान दिया था। खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर को पांच वाटिकाओं का दान देने वाला व्यापारी पाहिल्ल श्रेष्ठी देदू का पुत्र था।[5] दुबकुण्ड जैन लेख (१०८८ ई०) में दो जैन व्यापारियों, ऋषि एवं दाहद की वंशावली दी है, जिन्हें विक्रमसिंह ने श्रेष्ठी की उपाधि दी थी।[6] दाहद ने विशाल जैन मन्दिर का निर्माण भी करवाया था। खजुराहो के एक मूर्ति लेख (१०७५ ई०) में श्रेष्ठी बीवनशाह की भार्या पद्मावती द्वारा आदिनाथ की मूर्ति स्थापित कराने का उल्लेख है।[7] खजुराहो के ११४८ ई० के एक अन्य मूर्ति लेख में श्रेष्ठी पाणिधर के पुत्रों, त्रिविक्रम, आल्हण तथा लक्ष्मीधर के नामों का[8], तथा ११५८ ई० के एक तीसरे लेख में पाहिल्ल के वंशज एवं ग्रहपति कुल के साधु साल्हे द्वारा सम्भवनाथ की मूर्ति की स्थापना का उल्लेख है।[9] परमर्दि के शासनकाल के अहाड़ लेख (११८० ई०) में ग्रहपति वंश के जैन व्यापारी जाहद की वंशावली दी है। जाहद ने मदनेशसागरपुर के मन्दिर में विशाल शांतिनाथ प्रतिमा प्रतिष्ठित करायी थी।[10] धुबेला संग्रहालय की एक नेमिनाथ मूर्ति (क्रमांक : ७) के लेख (११४२ ई०) से ज्ञात होता है कि मूर्ति की स्थापना श्रेष्ठी कुल के मल्हण द्वारा हुई थी।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल

मध्ययुग में जैनधर्म को बिहार में किसी भी प्रकार का शासकीय समर्थन नहीं मिला, जिसका प्रमुख कारण पालों का प्रबल बौद्ध धर्मावलम्बी होना था। इसी कारण इस क्षेत्र में राजगिर के अतिरिक्त कोई दूसरा विशिष्ट एवं लम्बे इतिहास वाला कला केन्द्र स्थापित नहीं हुआ। जिनों की जन्मस्थली और भ्रमणस्थली होने के कारण राजगिर पवित्र माना गया।[11] पाटलिपुत्र (पटना) के समीप राजगिर की स्थिति भी व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी।[12] राजगिर व्यापारिक मार्गों से वाराणसी, मथुरा, उज्जैन, चेदि, श्रावस्ती और गुजरात से सम्बद्ध था।

---

१ भाटिया, प्रतिपाल, **दि परमारज**, दिल्ली, १९७०, पृ० २६७–७२; चौधरी, गुलाबचन्द्र, **पू०नि०**, पृ० ९४, ९७, १०७

२ जेनास, ई० तथा आबोयर, जे०, **खजुराहो**, हेग, १९६०, पृ० ६१

३ **एपि०इण्डि०**, खं० २, पृ० २३२–४०

४ मिराशी, वी०वी०, **का०इं०इं०**, खं० ४, भाग १, पृ० १६१

५ विजयमूर्ति (सं०), **जै०शि०सं०**, भाग ३, बंबई, १९५७, पृ० १०८

६ **एपि०इण्डि०**, खं० २, पृ० २३७–४०

७ शास्त्री, परमानन्द जैन, 'मध्य भारत का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० १–२, पृ० ५७

८ विजयमूर्ति (सं०), **जै०शि०सं०**, भाग ३, पृ० ७९

९ **वही**, पृ० १०८

१० चौधरी, गुलाबचन्द्र, **पू०नि०**, पृ० ७०

११ जैन, जे०सी०, **पू०नि०**, पृ० ३२६-२७

१२ गोपाल, एल०, **पू०नि०**, पृ० ९१

ह्वेनसांग ने कलिंग में जैन धर्म की विद्यमानता का उल्लेख किया है, किन्तु खारवेल के पश्चात् केशरी वंश के उद्योतकेशरी (१०वीं–११वीं शती ई०) के अतिरिक्त किसी अन्य शासक ने जैन धर्म को स्पष्ट संरक्षण या समर्थन नहीं दिया। पर प्राचीन परम्परा एवं व्यापारिक पृष्ठभूमि के कारण ल० आठवीं–नवीं शती ई० से बारहवीं शती ई० तक जैन धर्म उड़ीसा में (विशेषकर उदयगिरि-खण्डगिरि गुफाओं में) जीवित रहा जिसकी साक्षी विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त होनेवाली जैन मूर्तियां हैं। उद्योत केशरी के ललितेन्दु केशरी गुफा (या सिंहराजा गुफा) लेख से ज्ञात होता है कि उसने कुमार पर्वत (खण्डगिरि का पुराना नाम) पर खण्डित तालाबों एवं मन्दिरों का पुनर्निर्माण करवा कर २४ जिनों की मूर्तियां स्थापित करवाईं।[१] लेख में यह भी ज्ञात होता है कि उस क्षेत्र में धार्मिक नियमों का कठोरता से पालन करने वाले अनेक जैन साधु रहते थे। कटक जिले में जाजपुर स्थित अखंडलेश्वर मन्दिर एवं मैत्रक मन्दिर समूह में सुरक्षित जैन मूर्तियां प्रमाणित करती हैं कि इस शाक्त क्षेत्र में भी जैन धर्म लोकप्रिय था। पुरी जिले में स्थित उदयगिरि-खण्डगिरि की जैन गुफाओं के निर्माण की व्यापारिक पृष्ठभूमि भी थी। जैन ग्रंथों में पुरिमा या पुरिया (पुरी) का व्यापार के केन्द्र के रूप में उल्लेख है।[२]

प्रस्तुत अध्ययन में बंगाल, विभाजन के पूर्व के बंगाल का सूचक है। सातवीं शती ई० के बाद बंगाल में जैन धर्म की स्थिति की सूचना देने वाले साहित्यिक एवं अभिलेखिक साक्ष्य नहीं प्राप्त होते। फिर भी विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त होने वाली मूर्तियां जैन धर्म की विद्यमानता प्रमाणित करती हैं। बौद्ध धर्मावलंबी पाल शासकों के कारण बंगाल में जैन धर्म का पराभव हुआ। पर जैन ग्रंथ **बप्पभट्टिचरित** में एक स्थल पर उल्लेख है कि विद्या के महान प्रेमी धर्मपाल ने बौद्ध विद्वानों एवं आचार्यों के अतिरिक्त हिन्दू एवं जैन विद्वानों का भी सम्मान किया था। जैन आचार्य बप्पभट्टि का उसके दरबार में सम्मान था।[३] बंगाल का पर्याप्त व्यापारिक महत्व भी था। व्यापार के अनुकूल वातावरण के कारण ही राजकीय संरक्षण के अभाव में भी जैन धर्म बंगाल में किसी न किसी रूप में बारहवीं शती ई० तक विद्यमान रहा। ताम्रलिप्ति प्रमुख सामुद्रिक बन्दरगाहों में से था।[४]



१ **एपि०इण्डि०**, ख० १३, पृ० १६५–६६, लेख स० १६, **जै०शि०सं०**, भाग ४, पृ० ९३
२ जैन, जे०सी०, **पू०नि०**, पृ० ३२५
३ **प्रभावक चरित**, पृ० ९४-९७, चौधरी, गुलाबचन्द्र, **पू०नि०**, पृ० ५६
४ जैन, जे०सी०, **पू०नि०**, पृ० ३४२, गोपाल, एल०, **पू०नि०**, पृ० १२६

तृतीय अध्याय

जैन देवकुल का विकास

भारतीय कला तत्वतः धार्मिक है । अतः सम्बन्धित धर्म या सम्प्रदाय में होने वाले परिवर्तनों अथवा विकास से शिल्प की विषयवस्तु में भी परिवर्तन हुए हैं । प्रतिमाविज्ञान धर्म से सम्बद्ध मानवेतर विशिष्ट व्यक्तियों--देवी-देवताओं, शलाका-पुरुषों (मिथकों में वर्णित जनों)--के स्वरूप एवं स्वरूपगत विकास का ऐतिहासिक अध्ययन है । इस अध्ययन के दो पक्ष हैं--शास्त्र-पक्ष एवं कला-पक्ष । शास्त्र-पक्ष धार्मिक एवं अन्य साहित्य में वर्णित स्वरूपों की विवेचना से, तथा कला-पक्ष कलावशेषों से प्राप्त मूर्त्त स्वरूपों के अध्ययन से सम्बद्ध है । इसी दृष्टि से प्रतिमाविज्ञान 'धार्मिक कला के व्याख्या पक्ष' से सम्बन्धित है ।[1]

जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से जैन साहित्य में प्राप्त जैन देवकुल के क्रमिक विकास का ज्ञान नितान्त आवश्यक है । प्रस्तुत अध्ययन में जैन साहित्य का अवगाहन कर जैन देवकुल के क्रमिक विकास का निरूपण एवं जैन देवकुल में समय-समय पर हुए परिवर्तनों और नवीन देवों के आगमन के कारणों के उद्घाटन का प्रयास किया गया है । इसके अतिरिक्त साहित्य में प्राप्त जैन देवकुल का विकास कला में किस प्रकार और कहां तक समाहित किया गया, इस पर भी संक्षेप में दृष्टिपात किया गया है । कालक्रम की दृष्टि से यह अध्ययन दो भागों में विभक्त है । प्रथम भाग की स्रोतसामग्री पांचवीं शती ई० तक का प्रारम्भिक जैन साहित्य है और दूसरे भाग का आधार १२ वीं शती ई० तक का परवर्ती जैन साहित्य है ।

(क) प्रारम्भिक काल (प्रारम्भ से पांचवीं शती ई० तक)

प्रारम्भिक जैन साहित्य में महावीर के समय (ल० छठी शती ई०पू०) से पांचवीं शती ई० के अन्त तक के ग्रंथ सम्मिलित हैं । प्रारम्भिक जैन ग्रंथों की सीमा पांचवीं शती ई० तक दो दृष्टियों से रखी गयी है । प्रथमतः, जैन धर्म के सभी ग्रन्थ ल० पांचवीं शती ई० के मध्य या छठी शती ई० के प्रारम्भ में[2] देवर्द्धिगणि-क्षमाश्रमण के नेतृत्व में वलभी (गुजरात) वाचन में लिपिबद्ध किये गये । दूसरे, इन ग्रन्थों में जैन देवकुल की केवल सामान्य धारणा ही प्रतिपादित है ।

आगम ग्रन्थ[3] जैनों के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं । उपलब्ध आगम ग्रन्थों के प्राचीनतम अंश ल० चौथी शती ई० पू० के अन्त और तीसरी शती ई० पू० के प्रारम्भ के हैं ।[4] काफी समय तक श्रुत परम्परा में सुरक्षित रहने के कारण कालक्रम के साथ इन प्रारम्भिक आगम ग्रन्थों में प्रक्षेपों के रूप में नवीन सामग्री जुड़ती गई । इसकी पुष्टि **भगवतीसूत्र** (पांचवां अंग) में पांचवीं शती ई०[5], **रायपसेणिय** (राजप्रश्नीय-दूसरा उपांग) में कुषाण कालीन[6] और **अंगविज्जा** में कुषाण-गुप्त सन्धि-

---

१ बनर्जी, जे० एन०, **दि डीवेलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, कलकत्ता, १९५६, पृ० २

२ महावीर निर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष बाद (४५४ या ५१४ ई०) : द्रष्टव्य, जैकोबी, एच०, **जैन सूत्रज**, भाग १, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, खं० २२, दिल्ली, १९७३ (पु०मु०), प्रस्तावना, पृ० ३७, विण्टरनित्ज, एम०, **ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर**, खं० २, कलकत्ता, १९३३, पृ० ४३२

३ इसमें द्वादश अंगों के अतिरिक्त १२ उपांग, ६ छेद, ४ मूल और १ आवश्यक ग्रन्थ सम्मिलित थे । महावीर के मूल उपदेशों का संकलन द्वादश अंगों में था (**समवायांगसूत्र** १ और १३६) ।

४ जैकोबी, एच०, **पू०नि०**, पृ० ३७-४४, विण्टरनित्ज, एम०, **पू०नि०**, पृ० ४३४

५ सिकदर, जे० सी०, **स्टडीज इन दि भगवती सूत्र**, मुजफ्फरपुर, १९६४, पृ० ३२-३८

६ शर्मा, आर० सी०, 'आर्ट डेटा इन रायपसेणिय', **सं०पु०प०**, अं० ९, पृ० ३८

कालीन[१] सामग्रियों की प्राप्ति से होती है। जहां श्वेताम्बरों ने आगमों को संकलित कर यथाशक्ति सुरक्षित रखने का यत्न किया वहीं दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर निर्वाण के ६८३ वर्ष बाद (१५६ ई०) आगमों का मौलिक स्वरूप विलुप्त हो गया।[२]

आगम साहित्य के अतिरिक्त **कल्पसूत्र** और **पउमचरिय** भी प्रारम्भिक ग्रन्थ हैं। जैन परम्परा में **कल्पसूत्र** के कर्ता भद्रबाहु की मृत्यु का समय महावीर निर्वाण के १७० वर्ष बाद (ई० पू० ३५७) है।[३] पर ग्रन्थ की सामग्री के आधार पर यू० पी० शाह इसे तीसरी शती ई० के कुछ पहले की रचना मानते है।[४] **पउमचरिय** के कर्ता विमलसूरि के अनुसार **पउमचरिय** की तिथि ४ ई० (महावीर निर्वाण के ५३० वर्ष बाद) है। ग्रन्थ की सामग्री के आधार पर जैकोबी इसे तीसरी शती ई० की रचना मानते है।[५]

चौबीस जिनों की धारणा

चौबीस जिनों की धारणा जैन धर्म की धुरी है। जैन देवकुल के अन्य देवों की कल्पना सामान्यतः इन्हीं जिनों से सम्बद्ध एवं उनके सहायक रूप में हुई है। जिनों को देवाधिदेव[६] और इन्द्र आदि देवों के मध्य वन्दनीय होने के कारण श्रेष्ठ कहा गया है। जिनों को ईश्वर का अवतार या अंश नहीं माना गया है। इनका जीव भी अतीत में सामान्य व्यक्ति की तरह ही वासना और कर्म बन्धन में लिप्त था, पर आत्म मनन, साधना एवं तपश्चर्या के परिणामस्वरूप उसने कर्मबन्धन से मुक्त होकर केवल-ज्ञान की प्राप्ति की।[७] कर्म एवं वासना पर विजय प्राप्ति के कारण इन्हें 'जिन' कहा गया, जिसका शाब्दिक अर्थ विजेता है। कैवल्य प्राप्ति के पश्चात साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं के सम्मिलित तीर्थ की स्थापना करने के कारण इन्हें 'तीर्थंकर' भी कहा गया। जिनों एवं अन्य मुक्त आत्माओं में आन्तरिक दृष्टि से कोई भेद नहीं है। सामान्य मुक्त आत्माएं केवल स्वयं को ही मुक्त करती है, वे जिनों के समान धर्म प्रचारक नहीं होती।

विद्वान् २४ जिनों में केवल अन्तिम दो जिनों, पार्श्वनाथ एवं महावीर (या वर्धमान) को ही ऐतिहासिक मानते है। **उत्तराध्ययनसूत्र** (अध्याय २३) में पार्श्वनाथ और महावीर के दो शिष्यों, केसी और गोतम, के मध्य जैन संघ के सम्बन्ध में हुए वार्तालाप का उल्लेख[८] तथा महावीर की यह उक्ति कि 'जो कुछ पूर्व तीर्थंकर पार्श्व ने कहा है मैं वही कह रहा हूं[९]', पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता सिद्ध करते है।

२४ जिनों की प्राचीनतम सूची सम्प्रति **समवायांगसूत्र** (चौथा अंग) में प्राप्त होती है। इस सूची में ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयांश, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शान्ति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व एवं वर्धमान के नाम हैं।[१०] इस सूची को ही कालान्तर में

१ **अंगविज्जा,** सं० मुनिपुण्यविजय, बनारस, १९५७, पृ० ५७ २ विण्टरनित्ज, एम०, **पू०नि०**, पृ० ४३३

३ वर्तमान **कल्पसूत्र** में तीन अलग-अलग ग्रन्थों को एक साथ संकलित किया गया है, जिन सबका कर्ता भद्रबाहु को नहीं स्वीकार किया जा सकता—विण्टरनित्ज, एम०, **पू०नि०**, पृ० ४६२

४ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', **सं०पु०प०**, अं० ९, पृ० ३

५ **पउमचरिय,** भाग १, सं० एच० जैकोबी, वाराणसी, १९६२, पृ० ८

६ **समवायांग सूत्र** १८, **पउमचरिय** १.१–२, ३८–४२

७ हस्तीमल, **जैन धर्म का मौलिक इतिहास,** खं० १, जयपुर, १९७१, पृ० ४६–४७

८ जैकोबी, एच०, **जैन सूत्रज**, भाग २, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, खं० ४५, दिल्ली, १९७३ (पु०मु०), पृ० ११९–२९

९ **व्याख्या प्रज्ञप्ति** ५.९.२२७

१० जम्बुद्दीवे ण दीवे भारहे वासे इमीसे ण ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगरा होत्था, तं जहा—उसभ, अजिय, सम्भव, अभिनन्दण, सुमह, पउमप्पह, सुपास, चन्दप्पह, सुविहिपुप्फदंत, सायल, सिज्जंस, वासुपुज्ज, विमल, अनन्त, धम्म, सन्ति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्वय, णमि, णेमि, पास, वद्धमाणोय। **समवायांगसूत्र** १५७

इसी रूप में स्वीकार कर लिया गया। **भगवतीसूत्र** (५वां अंग),[1] **कल्पसूत्र**,[2] **चतुर्विंशतिस्तव** (या **लोगस्ससुत्त-भद्रबाहुकृत**)[3] एवं **पउमचरिय** में[4] भी २४ जिनों की सूची प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त **भगवतीसूत्र** में मुनिसुव्रत, **नायाधम्मकहाओ** में नारी तीर्थंकर मल्लिनाथ[5] एवं **कल्पसूत्र** में ऋषभ, नेमि (अरिष्टनेमि), पार्श्व एवं महावीर[6] के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के विस्तृत उल्लेख है। **स्थानांगसूत्र** (तीसरा अंग) में जिनों के वर्णों के सन्दर्भ में पद्मप्रभ, वासुपूज्य, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमि एवं पार्श्व के उल्लेख है।[7] **समवायांग, भगवती** एवं **कल्प सूत्रों** और **चतुर्विंशतिस्तव** जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थों में प्राप्त २४ जिनों की सूची के आधार पर यह कहा जा सकता है कि २४ जिनों की सूची ईसवी सन् के प्रारम्भ के पूर्व ही निर्धारित हो चुकी थी।

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में जहां २४ जिनों की सूची एवं उनसे सम्बन्धित कुछ अन्य उल्लेख अनेकशः प्राप्त होते है, वहीं जिन मूर्तियों से सम्बन्धित उल्लेख केवल **राजप्रश्नीय**[8] एवं **पउमचरिय**[9] में है। मथुरा में कुषाण काल में जिन मूर्तियों का निर्माण हुआ। यहां से ऋषभ,[10] सम्भव,[11] मुनिसुव्रत,[12] नेमि[13], पार्श्व[14] एवं महावीर[15] जिनों की कुषाण-कालीन मूर्तियां प्राप्त होती है (चित्र १६, ३०, ३८)।[16]

शलाका-पुरुष

प्रारम्भिक ग्रंथों में २४ जिनों के अतिरिक्त अन्य शलाका[17] (या उत्तम) पुरुषों का भी उल्लेख है। **जिनों सहित** इनकी कुल संख्या तिरसठ है। **स्थानांगसूत्र** में उल्लेख है कि जम्बूद्वीप में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी **युग में अर्हन्त**

---

१ **भगवतीसूत्र** २०.८.५८-५९, १६, ५ — २ **कल्पसूत्र** २, १८४-२०३

३ शाह, यू० पी०, **पू०नि०**, पृ० ३

४ **पउमचरिय** १.१-७, ५.१४५-४८. चन्द्रप्रभ एवं सुविधिनाथ की वंदना क्रमशः शशिप्रभ एवं कुमुमदंत नामों से है।

५ ग्रन्थ में १९वें जिन मल्लिनाथ को नारी रूप में निरूपित किया गया है। यह परम्परा केवल श्वेताम्बरों में ही मान्य है, क्योंकि दिगम्बर परम्परा में नारी को कैवल्य प्राप्ति की अधिकारिणी नहीं माना गया है—**विण्टर-**नित्ज, एम०, **पू०नि०**, पृ० ४४७-४८

६ **कल्पसूत्र** १-१८३, २०४-२७। ज्ञातव्य है कि मथुरा के कुषाण शिल्प में **कल्पसूत्र** में विस्तार से वर्णित **ऋषभ**, नेमि, पार्श्व एवं महावीर जिनों की ही सर्वाधिक मूर्तियां निर्मित हुई।

७ **स्थानांगसूत्र** ५१ — ८ शर्मा, आर० सी०, **पू०नि०**, पृ० ४१

९ **पउमचरिय** ११.२-३, २८.३८-३९, ३३.८९

१० ऋषभ सदैव लटकती केशावलि से शोभित है (**कल्पसूत्र** १९५)। तीन उदाहरणों से मूर्ति लेखों में **'ऋषभ'** नाम भी उत्कीर्ण है।

११ राज्य संग्रहालय, लखनऊ—जे १९; एक मूर्ति का उल्लेख यू० पी० शाह ने भी किया है, **सं०पु०प०**, अं०९, **पृ०**६

१२ राज्य संग्रहालय, लखनऊ—जे २०

१३ चार उदाहरणों में नेमि के साथ बलराम एवं कृष्ण आमूर्तित है और एक में (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ८) 'अरिष्टनेमि' उत्कीर्ण है।

१४ पार्श्व सप्त सर्पफणों के छत्र से युक्त है (**पउमचरिय** १.६)।

१५ पीठिका लेखों में 'वर्धमान' नाम से युक्त ६ महावीर मूर्तियां राज्य संग्रहालय, लखनऊ में संकलित है।

१६ ज्योतिप्रसाद जैन ने मथुरा से प्राप्त एवं कुषाण संवत् के छठें वर्ष (= ८४ ई०) में तिथ्यंकित एक सुमतिनाथ (५वें जिन) मूर्ति का भी उल्लेख किया है—जैन, ज्योतिप्रसाद, **दि जैन सोर्सेज ऑव दी हिस्ट्री ऑव ऐन्शण्ट इण्डिया**, दिल्ली, १९६४, पृ० २६८

१७ वे महान् आत्माएं जिनका मोक्ष प्राप्त करना निश्चित है।

(जिन), चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए।[1] **समवायांगसूत्र** में २४ जिनों के साथ १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव के उल्लेख हैं, पर उत्तम पुरुषों की संख्या ६३ के स्थान पर ५४ ही कही गई। ९ प्रतिवासुदेवों को उत्तम पुरुषों में नहीं सम्मिलित किया गया है।[2] **कल्पसूत्र** में भी तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव एवं वासुदेव का उल्लेख है,[3] किन्तु यहां इनकी संख्या नहीं दी गई है।

६३-शलाका-पुरुषों की पूरी सूची सर्वप्रथम **पउमचरिय** में प्राप्त होती है।[4] इसमें २४ जिनों के अतिरिक्त १२ चक्रवर्ती[5] (भरत, सागर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुंथु, अर, सुभूम, पद्म, हरिषेण, जयसेन, ब्रह्मदत्त), ९ बलदेव (अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दन, पद्म या राम, बलराम), ९ वासुदेव (त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुष पुण्डरीक, दत्त, नारायण या लक्ष्मण, कृष्ण), और ९ प्रतिवासुदेव (अश्वग्रीव, तारक, मेरक, निशुम्भ, मधुकैटभ, बलि, प्रह्लाद, रावण, जरासन्ध) सम्मिलित हैं। इस सूची को ही कालान्तर में बिना किसी परिवर्तन के स्वीकार किया गया। जैन शिल्प में सभी ६३-शलाका-पुरुषों का निरूपण कभी भी लोकप्रिय नहीं रहा। कुषाणकालीन जैन शिल्प में केवल कृष्ण और बलराम निरूपित हुए। इन्हें नेमिनाथ के पार्श्वों में आमूर्तित किया गया। मध्ययुग में कृष्ण एवं बलराम के अतिरिक्त राम और भरत चक्रवर्ती (चित्र ७१) के भी मूर्त चित्रणों के कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं। **पउमचरिय** में राम-रावण और भरत चक्रवर्ती की कथा का विस्तृत वर्णन है।

कृष्ण-बलराम

कृष्ण-बलराम २२ वें जिन नेमिनाथ के चचेरे भाई हैं। यहां हिन्दू धर्म से भिन्न कृष्ण-बलराम को **सर्वशक्तिमान** देवता के रूप में न मानकर बल, ज्ञान एवं वृद्धि में नेमिनाथ से हीन बताया गया है।[6] **उत्तराध्ययनसूत्र** (ल० चौथी-तीसरी शती ई० पू०)[7] के रथनेमि शीर्षक २२ वें अध्याय में कृष्ण से सम्बन्धित कुछ उल्लेख हैं।[8] सोरीपुर नगर में वसुदेव और **समुद्रविजय** दो शक्तिशाली राजकुमार थे। वसुदेव की रोहिणी और देवकी नाम की दो पत्नियां थीं, जिनसे क्रमशः राम (बलराम) और केशव (कृष्ण) उत्पन्न हुए। समुद्रविजय की पत्नी शिवा से अरिष्टनेमि (नेमिनाथ या रथनेमि) उत्पन्न हुए। **केशव** ने एक शक्तिशाली शासक की पुत्री राजीमती के साथ अरिष्टनेमि का विवाह निश्चित किया। पर विवाह के पूर्व ही रथनेमि ने रैवतक (गिरनार) पर्वत पर दीक्षा ग्रहण की, जहां राम और केशव ने अरिष्टनेमि के प्रति श्रद्धा व्यक्त की। **उत्तराध्ययनसूत्र** के विवरण को ही कालान्तर में सातवीं शती ई० के बाद के जैन ग्रन्थों (**हरिवंशपुराण, महापुराण**--पुष्पदंतकृत, **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**) में विस्तार से प्रस्तुत किया गया। नायाधम्मकहाओ में भी कृष्ण से सम्बन्धित उल्लेख है, जो मुख्यतः पाण्डवों की कथा से सम्बन्धित है।[9] **अन्तगडदसाओ** (८वां अंग) में कृष्ण से सम्बन्धित उल्लेख द्वारवती

---

१ **स्थानांगसूत्र** २२

२ ग्रन्थ में केवल २४ जिनों एवं १२ चक्रवर्तियों की ही सूची है। बाकी के लिए मात्र इतना उल्लेख है कि त्रिपृष्ठ से कृष्ण तक ९ वासुदेव और अचल से राम तक ९ बलदेव होंगे। **समवायांगसूत्र** १३२, १५४, २०७

३ **कल्पसूत्र** १७ : ''''अरहन्ता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा''''''''''''।

४ **पउमचरिय** ५. १४५–५७

५ १२ चक्रवर्तियों की सूची में तीन (शान्ति, कुंथु, अर) जिन भी सम्मिलित हैं। ये जिन एक ही भव में जिन और चक्रवर्ती दोनों हुए।

६ वैशाखीय, महेन्द्रकुमार, 'कृष्ण इन दि जैन केनन,' **भारतीय विद्या**, खं० ८, अं० ९–१०, पृ० १२३

७ दोशी, बेचरदास, **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास**, भाग १, वाराणसी, १९६६, पृ० ५५

८ जैकोबी, एच०, **जैन सूत्रज**, भा० २, पृ० ११२–१९; विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ४५९

९ **नायाधम्मकहाओ** १८

(द्वारका) नगर के विवरण के सन्दर्भ में प्राप्त होता है, जहां के शासक कृष्ण-वासुदेव थे।[1] ग्रन्थ में कृष्ण द्वारा अरिष्टनेमि के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने और अरिष्टनेमि की उपस्थिति में ही दीक्षा लेने के उल्लेख है।

इन प्रारम्भिक उल्लेखो से स्पष्ट है कि ईसवी सन् के पूर्व ही कृष्ण-बलराम को जैन धर्म मे सम्मिलित कर लिया गया था।[2] जैसा पूर्व में उल्लेख है मथुरा की कुछ कुषाणकालीन नेमिनाथ मूर्तियों मे भी कृष्ण-बलराम आमूर्तित है।[3]

लक्ष्मी

जिनों की माताओ द्वारा देखे शुभ स्वप्नो के उल्लेख के सन्दर्भ मे **कल्पसूत्र में** श्री लक्ष्मी का उल्लेख है। शीर्ष भाग मे दो गजो से अभिषिक्त श्री लक्ष्मी को पद्मासीन और दोनों करों में पद्म धारण किये निरूपित किया गया है।[4] **भगवतीसूत्र** मे एक स्थल पर लक्ष्मी की मूर्ति का उल्लेख है।[5] जैन शिल्प मे लक्ष्मी का मूर्त चित्रण ल० नवी शती ई० के बाद ही लोकप्रिय हुआ जिसके उदाहरण खजुराहो, देवगढ, ओसिया, कुम्भारिया, दिलवाड़ा आदि स्थलो से प्राप्त होते है।

सरस्वती

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे सरस्वती का उल्लेख मेधा एवं बुद्धि के देवता या श्रुत देवता के रूप मे प्राप्त होता है। **भगवतीसूत्र**[6] एवं **पउमचरिय**[7] मे बुद्धि देवी का उल्लेख श्री, ह्री, धृति, कीर्ति और लक्ष्मी के साथ किया गया है। **अंगविज्जा** मे मेधा एव बुद्धि के देवता के रूप मे सरस्वती का उल्लेख है।[8] जिनो की शिक्षाएं जिनवाणी आगम या श्रुत के रूप मे जानी जाती थी, और सम्भवतः इसी कारण जैन आगमिक ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की भुजा मे पुस्तक के प्रदर्शन की परम्परा प्रारम्भ हुई।[9] जैन शिल्प मे सरस्वती की प्राचीनतम ज्ञात मूर्ति कुषाण काल (१३२ ई०) की है,[10] जिसमे देवी की एक भुजा मे पुस्तक प्रदर्शित है। सरस्वती का लाक्षणिक स्वरूप आठवीं शती ई० के बाद के जैन ग्रन्थो मे विवेचित है। जैन शिल्प मे यक्षी अम्बिका एवं चक्रेश्वरी के बाद सरस्वती ही सर्वाधिक लोकप्रिय रही।

इन्द्र

जैन परम्परा मे इन्द्र[11] को जिनों का प्रधान सेवक स्वीकार किया गया है। **स्थानांगसूत्र** मे नामेन्द्र, स्थापनेन्द्र, द्रव्येन्द्र, ज्ञानेन्द्र, दर्शनेन्द्र, चारित्रेन्द्र, देवेन्द्र, असुरेन्द्र और मनुष्येन्द्र आदि कई इन्द्रो के उल्लेख है।[12] ग्रन्थ मे यह भी उल्लेख है कि जिनो के जन्म, दीक्षा और कैवल्य प्राप्ति के अवसरों पर देवेन्द्र का शीघ्रता से पृथ्वी पर आगमन होता है।[13] **कल्पसूत्र** मे वज्र धारण करनेवाले और ऐरावत गज पर आरूढ़ शक्र का देवताओ के राजा के रूप में उल्लेख है।[14] **पउमचरिय** मे

१ विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ४५०–५१, **अन्तगडदसाओ**, सं० एल० डी० बर्नेट, वाराणसी, १९७३ (पु० मु०), पृ० १२ और आगे

२ जैकोबी, एच, **जैन सूत्रज**, भाग १, प्रस्तावना, पृ० ३१, पा० टि० २

३ श्रीवास्तव, वी० एन०, 'सम इन्टरेस्टिंग जैन स्कल्पचर्स इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ,' **सं०पु०प०**, अं० ९, पृ० ४५–५२

४ **कल्पसूत्र** ३७

५ **भगवतीसूत्र** ११.११.४३०

६ **वही**, ११.११.४३०

७ **पउमचरिय** ३.५९

८ **अंगविज्जा**—एकाणसा सिरी बुद्धी मेधा कित्ती सरस्सती एवमादीयाओ उवलद्धव्वाओ भवन्ति . अध्याय ५८, पृ० २२३ और ८२

९ जैन, ज्योतिप्रसाद, 'जेनिसिस ऑव जैन लिट्रेचर एण्ड दि सरस्वती मूवमेण्ट', **सं०पु०प०**, अं० ९, पृ० ३०–३३

१० राज्य संग्रहालय, लखनऊ—जे२४

११ जैन ग्रन्थो में इन्द्र का देवेन्द्र और शक्र नामो से भी उल्लेख है।

१२ **स्थानांगसूत्र** .१

१३ **वही**, सू० १३

१४ **कल्पसूत्र** १८

इन्द्र द्वारा जिनों के जन्म अभिषेक और समवसरण के निर्माण के उल्लेख है।[१] जिनो के जीवनवृत्तों[२] के अंकन में ग्यारहवीं-बारहवी शती ई० में इन्द्र को आमूर्तित किया गया। इसके उदाहरण ओसिया, कुंभारिया और दिलवाड़ा के जैन मन्दिरों मे प्राप्त होते है।

नैगमेषी

जैन देवकुल मे अजमुख नैगमेषी (या हरिनैगमेषी या हरिणैगमेषी) इन्द्र के पदाति सेना के सेनापति है।[३] **अन्तगड्दसाओ** एवं **कल्पसूत्र** मे नैगमेषी को बालकों के जन्म से भी सम्बन्धित बताया गया है। **कल्पसूत्र** मे उल्लेख है कि शक्रेन्द्र ने महावीर के भ्रूण को ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ से क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ मे स्थापित करने का कार्य अपनी पदाति सेना के अधिपति हरिणैगमेषी देव को दिया।[४] **अन्तगड्दसाओ** मे पुत्र प्राप्ति के लिए हरिणैगमेषी के पूजन और प्रसन्न होकर देवता द्वारा गले का हार देने के उल्लेख है।[५] उपर्युक्त परम्परा के कारण ही जैन शिल्प मे नैगमेषी के साथ लम्बा हार एवं बालक प्रदर्शित हुए। मथुरा से नैगमेषी की कई कुषाण कालीन स्वतन्त्र मूर्तिया मिली है। मथुरा से प्राप्त महावीर के गर्भापहरण के दृश्य का चित्रण करने वाले एक कुषाण कालीन फलक[६] पर भी अजमुख नैगमेषी निरूपित है (चित्र ३९)। लेख मे 'भगवा नेमेसो' उत्कीर्ण है। कुषाण युग के बाद नैगमेषी की स्वतन्त्र मूर्तिया नही प्राप्त होती। पर जिनो के जन्म से सम्बन्धित दृश्यो मे नैगमेषी का अकन श्वेताम्बर स्थलो पर आगे भी लोकप्रिय रहा।

यक्ष

प्राचीन भारतीय साहित्य में यक्षों के अनेक उल्लेख है। ये उपकार और अपकार के कर्ता माने गये है। कुमारस्वामी के अनुसार यक्षों और देवों के बीच कोई विशेष भेद नहीं था और यक्ष शब्द देव का समानार्थी था।[७] पवाया की माणिभद्र यक्ष मूर्ति (पहली शती ई० पू०) भगवान् के रूप में पूजित थी। जैन ग्रन्थों मे भी यक्षों का अधिकांशतः देव के रूप मे उल्लेख है।[८] **उत्तराध्ययनसूत्र** मे उल्लेख है कि संचित सत्कर्मों के प्रभाव को भोगने के बाद यक्ष पुनः मनुष्य रूप मे जन्म लेते है।[९]

जैन साहित्य मे भी यक्षों के प्रचुर उल्लेख है।[१०] **भगवतीसूत्र** मे वैश्रमण के प्रति पुत्र के समान आज्ञाकारी १३ यक्षों की सूची दी है।[११] ये पुन्नभद्द, माणिभद्द, शालिभद्द, सुमणभद्द, चक्क, रक्ख, पुण्णरक्ख, सव्वन (सर्वण्ह ?), सव्वजस, समिध्ध, अमोह, असग और सव्वकाम है। **तत्त्वार्थसूत्र**[१२] (उमास्वातिकृत) मे भी एक स्थल पर १३ यक्षों की सूची है।[१३] इसमें पूर्णभद्र, माणिभद्र, सुमनोभद्र, श्वेतभद्र, हरिभद्र, व्यतिपातिकभद्र, सुभद्र, सर्वतोभद्र, मनुष्ययक्ष, वनाधिपति, वनाहार, रूपयक्ष और यक्षोत्तम के नाम है।[१४]

१ **पउमचरिय** ३.७६–८८ २ जन्म, दीक्षा एवं कैवल्य प्राप्ति से सम्बन्धित दृश्यांकन।

३ हिन्दू देवकुल मे स्कन्द देवताओं के सेनापति है—विस्तार के लिए द्रष्टव्य, अग्रवाल, वी० एस०, 'ए नोट आन दि गाड नैगमेष', **ज०यू०पी०हि०सो०**, ख० २०, भाग १–२, पृ० ६८–७३, शाह, यू० पी०, 'हरिनैगमेषिन्', **ज०इं०सो०ओ०आ०**, ख० १९, पृ० १९–४१

४ **कल्पसूत्र** २०–२८ ५ **अन्तगड्दसाओ**, पृ०६६–६७

६ राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ६२६ ७ कुमारस्वामी, **यक्षज्**, भाग १, दिल्ली, १९७१ (पु० मु०), पृ०३६-३७

८ **वही**, पृ० ११, २८ ९ **उत्तराध्ययनसूत्र** ३.१४–१८

१० शाह, यू० पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', **ज०ओ०इं०**, ख० ३, अं० १, पृ० ५४-७१

११ **भगवतीसूत्र** ३.७.१६८, कुमारस्वामी, **पू०नि०**, पृ० १०-११

१२ **तत्त्वार्थसूत्र**, सं० सुखलाल संघवी, बनारस, १९५२, पृ० ११९ १३ **वही**, पृ० १४६

१४ **तत्त्वार्थसूत्र** की सूची के प्रथम तीन यक्षों के नाम **भगवतीसूत्र** मे भी है।

जैन आगमों में विभिन्न स्थलों के चैत्यों के उल्लेख है जहां अपने भ्रमण के दौरान महावीर विश्राम करते थे।[१] इनमें द्रुतिपलाश, कोष्ठक, चन्द्रावतरन, पूर्णभद्र, जम्बूक, बहुपुत्रिका, गुणशिल, बहुशालक, कुण्डियायन, नन्दन, पुष्पवती, अंगमन्दिर, प्राप्तकाल, शंखवन, छत्रपलाश आदि प्रमुख है।[२] इस सूची में आये पूर्णभद्र, बहुपुत्रिका एवं गुणशिल जैसे चैत्य निश्चित ही यक्ष चैत्य थे क्योंकि आगम ग्रन्थों में ही अन्यत्र इनका यक्षों के रूप मे उल्लेख है। जैन ग्रन्थों मे यक्ष जिनों के चामरधर सेवकों के रूप मे भी निरूपित हैं।[३]

जैन ग्रन्थों में माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षो एवं बहुपुत्रिका यक्षी को विशेष महत्व दिया गया। माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षों को व्यंतर देवो के यक्ष वर्ग का इन्द्र बताया गया है। इन यक्षों ने चम्पा में महावीर के प्रति श्रद्धा व्यक्त की थी।[४] **अंतगड्दसाओ** और **औपपातिकसूत्र** में चम्पानगर के पुण्णभद्द (पूर्णभद्र) चैत्य का उल्लेख है।[५] **पिण्डनिर्युक्ति** मे सामिल्लनगर के बाहर स्थित माणिभद्र यक्ष के आयतन का उल्लेख है।[६] **पउमचरिय** मे पूर्णभद्र और माणिभद्र यक्षो का शान्तिनाथ के सेवक रूप मे उल्लेख है।[७] **भगवतीसूत्र** मे विशला (उज्जैन या वैशाली)[८] के समीप स्थित बहुपुत्रिका के मन्दिर का उल्लेख है। ग्रन्थ मे बहुपुत्रिका को माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षेन्द्रों की चार प्रमुख रानियों मे एक बताया गया है।[९] यू० पी० शाह की धारणा है कि जैन देवकुल के प्राचीनतम यक्ष-यक्षी, सर्वानुभूति (या मातग या गोमेध)[१०] और अम्बिका की कल्पना निश्चित रूप मे माणिभद्र-पूर्णभद्र यक्ष और बहुपुत्रिका यक्षी के पूजन की प्राचीन परम्परा पर आधारित है।[११] जहां बौद्ध धर्म मे जंभल (कुबेर) और हारिती की मूर्तियां कुषाण काल मे निर्मित हुई, वहीं जैन धर्म मे सर्वानुभूति और अम्बिका का चित्रण गुप्त युग के बाद ही लोकप्रिय हुआ। शिल्प मे सर्वानुभूति यक्ष का तुन्दीलापन प्रारम्भिक यक्ष मूर्तियों की तुन्दीली आकृतियों से सम्बन्धित रहा है।[१२] जैन यक्षी अम्बिका के साथ दो पुत्रों का प्रदर्शन बहुपुत्रिका यक्षी के नाम से प्रभावित रहा हो सकता है।[१३]

विद्यादेवियां

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में विद्याओं से सम्बन्धित अनेक उल्लेख है।[१४] पर जैन शिल्प मे ल० आठवीं-नवीं शती ई० से ही इनका चित्रण प्राप्त होता है। पूर्ण विकसित विद्याओं के नामों एवं लाक्षणिक स्वरूपों की धारणा प्रारम्भिक ग्रन्थों में ही प्राप्त होती है। आगम ग्रन्थों मे विद्याओं का आचरण जैन आचार्यों के लिए वर्जित था। पर कालान्तर मे विद्यादेवियां ग्रन्थ एवं शिल्प की सर्वाधिक लोकप्रिय विषयवस्तु बन गई। जैन परम्परा मे इन विद्याओं की संख्या ४८ हजार तक बतायी गयी है।[१५]

बौद्ध एवं जैन साहित्य बुद्ध एवं महावीर के समय मे जादू, चमत्कार, मन्त्रों एवं विद्याओं का उल्लेख करते है।[१६] **औपपातिकसूत्र** के अनुसार महावीर के अनुयायी थेरो (स्थविरो) को विज्जा (विद्या) और मंत (मन्त्र) का ज्ञान

१ आगम ग्रन्थों मे कहीं भी महावीर द्वारा जिन मूर्ति के पूजन या जिन मन्दिर मे विश्राम का उल्लेख नहीं है—शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', **सं०पु०प०**, अं० ९, पृ० २

२ शाह, यू० पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', **ज०ओ०इं०**, खं० ३, अं० १, पृ० ६२-६३

३ **वही**, पृ० ६०-६४

४ **वही**, पृ० ६०-६१

५ **अंतगड्दसाओ**, पृ० १, पा० टि० २; **औपपातिकसूत्र** २

६ **पिण्डनिर्युक्ति** ५.२४५

७ **पउमचरिय** ६७.२८-४९

८ शाह, यू० पी०, **पू०नि०**, पृ० ६१, पा० टि० ४३

९ **भगवतीसूत्र** १८.२, १०.५

१० प्रारम्भ में यक्ष का कोई एक नाम पूर्णतः स्थिर नहीं हो सका था।

११ शाह, यू० पी०, **पू०नि०**, पृ० ६१-६२

१२ सर्वानुभूति यक्ष की भुजा में धन के थैले का प्रदर्शन सम्भवतः प्रारम्भिक यक्षों के व्यापारियों के मध्य लोकप्रियता (पवाया मूर्ति) से सम्बन्धित हो सकता है—कुमारस्वामी, ए० के०, **पू०नि०**, पृ० २८

१३ शाह, यू० पी०, **पू०नि०**, पृ० ६५-६६

१४ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', **ज०इं०सो०ओ०आ०**, खं० १५, पृ० ११४-७७

१५ **वही**, पृ० ११४-११७

१६ **वही**, पृ० ११४

था।[1] **नायाधम्मकहाओ** मे उत्पतनी (उप्पयनी) एवं चोरों की सहायक विद्याओं का उल्लेख है। ग्रन्थ में महावीर के प्रमुख शिष्य सुधर्मा को मंत्र एवं विद्या का ज्ञाता बताया गया है।[2] **स्थानांगसूत्र** मे जांगोलि एवं मातंग विद्याओं के उल्लेख हैं।[3] **सूत्रकृतांगसूत्र** के पापश्रुतों मे वैताली, अर्धवैताली, अवस्वपनी, तालुग्घादणी, श्वापाकी, सोवारी, कलिंगी, गौरी, गान्धारी, अवेदनी, उत्पतनी एवं स्तम्भनी आदि विद्याओं के उल्लेख है।[4] **सूत्रकृतांग** के गौरी और गान्धारी विद्याओं को कालान्तर मे १६ महाविद्याओं की सूची मे सम्मिलित किया गया।

पउमचरिय मे ऋषभदेव के पौत्र नमि और विनमि को धरणेन्द्र द्वारा बल एवं समृद्धि की अनेक विद्याएं प्रदान किये जाने का उल्लेख है।[5] ग्रन्थ मे विभिन्न स्थलो पर प्रज्ञप्ति, कौमारी, लघिमा, वज्रोदरी, वरुणी, विजया, जया, वाराही, कौबेरी, योगेश्वरी, चण्डाली, शकरी, बहुरूपा, सर्वकामा आदि विद्याओं के नामोल्लेख है।[6] एक स्थल पर महालोचन देव द्वारा पद्म (राम) को सिंहवाहिनी विद्या और लक्ष्मण को गरुडा विद्या दिये जाने का उल्लेख है।[7] कालान्तर मे उपर्युक्त विद्याओं मे गरुडवाहिनी अप्रतिचक्रा और सिंहवाहिनी महामानसी महाविद्याओं की धारणा विकसित हुई।

लोकपाल

पउमचरिय मे लोकपालो से घिरे इन्द्र के ऐरावत गज पर आरूढ़ होने का उल्लेख है।[8] इन्द्र ने ही शशि (सोम) की पूर्व, वरुण की पश्चिम, कुबेर की उत्तर और यम की दक्षिण दिशा मे स्थापना की।[9]

अन्य देवता

आगम ग्रन्थों मे देवताओं को भवनवासी (एक स्थल पर निवास करनेवाले), व्यन्तर या वाणमन्तर (भ्रमणशील), ज्योतिष्क (आकाशीय, नक्षत्र मे सम्बन्धित) एवं वैमानिक या विमानवासी (स्वर्ग के देव), इन चार वर्गों मे विभाजित किया गया है।[10] पहले वर्ग मे १०, दूसरे में ८, तीसरे मे ५ और चौथे मे ३० देवता है। देवताओं का यह विभाजन निरन्तर मान्य रहा। पर शिल्प मे इन्द्र, यक्ष, अग्नि, नवग्रह एवं कुछ अन्य का ही चित्रण प्राप्त होता है।

जैन ग्रन्थों मे ऐसे देवों के भी उल्लेख है जिनकी पूजा लोक परम्परा मे प्रचलित थी, और जो हिन्दू एवं बौद्ध धर्मों मे भी लोकप्रिय थे।[11] इनमे रुद्र, शिव, स्कन्द, मुकुन्द, वासुदेव, वैश्रमण (या कुबेर), गन्धर्व, पितर, नाग, भूत, पिशाच, लोकपाल (सोम, यम, वरुण, कुबेर), वैश्वानर (अग्निदेव) आदि देव, और श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, अज्जा (पार्वती या आर्या या चण्डिका), कोट्टकिरिया (महिषासुरवधिका) आदि देवियां प्रमुख है।[12]

प्रारम्भिक ग्रन्थो के अध्ययन मे स्पष्ट है कि पांचवी शती ई० के अन्त तक जैन देवकुल के मूल स्वरूप का निर्धारण कार्य कुछ पूरा हो चुका था। इन ग्रन्थो मे जिनो, शलाका-पुरुषों, यक्षो, विद्याओ, सरस्वती, लक्ष्मी, कृष्ण-बलराम, नैगमेषी एवं लोक धर्म मे प्रचलित देवों की स्पष्ट धारणा प्राप्त होती है।

१ **औपपातिकसूत्र** १६

२ **नायाधम्मकहाओ**, सं० पी० एल० वैद्य, १·८, पृ० १, १·८·१ ६, पृ० ४५३, १६·१२९, पृ० १८९, १८·१६२, पृ० २०९

३ **स्थानांगसूत्र** ८·३·६११ ९·३·६७८, **पउमचरिय** ७·१४२

४ **सूत्रकृतांगसूत्र** २·२·१५

५ **पउमचरिय** ३·१४४–४९

६ शाह, यू० पी०, **पूoनि०**, पृ० ११७

७ **पउमचरिय** ५९·८३–८४

८ **पउमचरिय** ७·२२

९ **पउमचरिय** ७·४७

१० **समवायांगसूत्र** १५०, **तत्त्वार्थसूत्र**, पृ० १३७–३८, **आचारांगसूत्र** २·१५·१८

११ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', **सं०पु०प०**, अं० ९, पृ० १०

१२ **भगवतीसूत्र** ३·१·१३४, **अंगविज्जा**, अध्याय ५१ (भूमिका–वी० एस० अग्रवाल, पृ० ७८)

(ख) परवर्ती काल (छठीं से १२ वीं शती ई० तक)

परवर्ती काल में विवरणों एवं लाक्षणिक विशेषताओं की दृष्टि से जैन देवकुल का विकास हुआ। इस काल में जैन देवकुल के विकास के अध्ययन के लिए छठी से बारहवी शती ई० या आवश्यकतानुसार उसके बाद[1] की सामग्री का उपयोग किया गया है। आगम ग्रन्थों में प्रतिपादित विषयों को संक्षेप या विस्तार से समझाने के लिए छठी-सातवी शती ई० मे निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका ग्रन्थों की रचना की गई जिन्हे आगम का अग माना गया।[2]

आठवी से बारहवी शती ई० के मध्य ६३-शलाका-पुरुषों के जीवन से सम्बन्धित कई श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों की रचना की गई। **कहावली** (भद्रेश्वरकृत-श्वेताम्बर) और **तिलोयपण्णत्ति** (यतिवृषभकृत-दिगम्बर) ६३ शलाका-पुरुषों के जीवन से सम्बन्धित ल० आठवी शती० ई० के दो प्रारम्भिक ग्रन्थ है। ६३-शलाका-पुरुषों मे सम्बन्धित अन्य प्रमुख ग्रन्थ **महापुराण** (जिनसेन एवं गुणभद्र कृत–९ वी शती ई०), **तिसट्ठि-महापुरिसगुणलंकारु** (पुष्पदन्तकृत–९६५ ई०) एवं **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**[3] (हेमचन्द्रकृत–१२ वी शती ई० का उत्तरार्ध) है।[4]

ल० छठी शती ई० मे चरित एवं पुराण ग्रन्थों की रचना भी प्रारम्भ हुई। श्वेताम्बर रचनाओं को 'चरित' और दिगम्बर रचनाओं को 'पुराण' एवं 'चरित' दोनो की संज्ञा दी गई। इनमे किसी जिन या शलाका-पुरुष का जीवन चरित विस्तार से वर्णित है। मुख्यतः ऋषभ, सुमति, सुपार्श्व, विमल, धर्म, वासुपूज्य, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर जिनो के चरित ग्रन्थ प्राप्त होते है।[5] इनके अतिरिक्त **चतुर्विंशतिका** (बप्पभट्टिसूरिकृत–७४३–८३८ ई०), **निर्वाणकलिका** (ल० ११ वी-१२वी शती ई०), **प्रतिष्ठासारसंग्रह** (१२वी शती ई०), **मन्त्राधिराजकल्प** (ल० १२ वी शती ई०), **त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र**, **चतुर्विंशति-जिन-चरित्र** (अमरचन्दसूरि–१२४१ ई०), **प्रतिष्ठासारोद्धार** (१३ वी शती ई० का पूर्वार्ध), **प्रतिष्ठा-तिलकम्** (१५४३ ई०) एवं **आचारदिनकर** (१४१२ ई०) जैसे प्रतिमा-लाक्षणिक ग्रन्थों की भी रचना हुई, जिनमे प्रतिमा निरूपण से सम्बन्धित विस्तृत उल्लेख है। सभी उपलब्ध जैन लाक्षणिक ग्रन्थों की रचना गुजरात और राजस्थान में हुई।

देवकुल मे वृद्धि और उसका स्वरूप

ल० छठी से दसवी शती ई० के मध्य का संक्रमण काल अन्य धर्मो एवं सम्बधित कलाओं के समान जैन धर्म एवं कला मे भी नवीन प्रवृत्तियों एवं तान्त्रिक प्रभाव का युग रहा है। तान्त्रिक प्रभाव के परिणामस्वरूप जैन धर्म मे देवकुल के देवो की संख्या और उनके धार्मिक कृत्यों मे तीव्रगति से वृद्धि और परिवर्तन हुआ। विभिन्न लाक्षणिक ग्रन्थों की रचना के कारण कला मे परम्परा के निश्चित निर्वाह की बाध्यता से एक यांत्रिकता सी आ गई।[6] श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो सम्प्रदायों मे जैन देवकुल का विकास मूलतः समरूप रहा।[7] परवर्ती युग मे जैन देवकुल मे २४ जिन एव उनके यक्ष-यक्षी युगल, ६३-शलाका-पुरुष, १६ महाविद्या, अष्ट-दिक्पाल, नवग्रह, क्षेत्रपाल, गणेश, ब्रह्मशान्ति एवं कपर्दि यक्ष, ६४-योगिनी, शान्तिदेवी, जिनो के माता-पिता एव बाहुबली आदि सम्मिलित थे। इसी समय इन देवों की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं भी निर्धारित हुई।

जैन धर्म प्रारम्भ से ही व्यापारियों एवं व्यवसायियों मे विशेष लोकप्रिय था। जिनो के पूजन मे भौतिक या सांसारिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति सम्भव न थी, जब कि व्यापारियों एवं सामान्य जनों में इसकी आकांक्षा बढ़ती जा रही

---

१ इनमें **आचारदिनकर** (१४१२ ई०), **रूपमण्डन** और **देवतामूर्तिप्रकरण** (१५ वी शती ई०), तथा **प्रतिष्ठातिलकम्** (१५४३ ई०) प्रमुख है।

२ जैन, हीरालाल, **भारतीय संस्कृति मे जैन धर्म का योगदान**, भोपाल, १९६२, पृ० ७२–७३

३ ग्रन्थ की रचना ११६० से ११७२ ई० के मध्य हुई–विण्टरनित्ज, एम०, **पू०नि०**, पृ० ५०५

४ ८६८ ई० के **चउपन्नमहापुरिसचरिय** (शीलांकाचार्यकृत) मे ५४ महापुरुषों का ही चरित्र वर्णित है।

५ विण्टरनित्ज, एम०, **पू०नि०**, पृ० ५१०–१७

६ **स्ट०जै०आ०**, पृ० १६

७ केवल देवों के प्रतिमा लाक्षणिक स्वरूपों के सन्दर्भ में भिन्नता प्राप्त होती है।

थी। उपर्युक्त स्थिति में व्यापारियों एवं सामान्यजनों में जैन धर्म की लोकप्रियता बनाये रखने के लिए ही सम्भवतः जैन देवकुल में यक्ष-यक्षी युगलों एवं महाविद्याओं को महत्ता प्राप्त हुई जिनकी आराधना से भौतिक सुख की प्राप्ति सम्भव थी।

जिन या तीर्थंकर

धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर उपास्य देवों में सर्वोच्च हैं। हेमचन्द्र ने **अभिधानचिन्तामणि** में उन्हें देवाधिदेव कहा है।[1] विभिन्न पुराणों एवं चरित ग्रन्थों में जिनों के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का विस्तार से उल्लेख है।[2] गुजरात और राजस्थान[3] के ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० के मन्दिरों के वितानों, वेदिकाबन्धों एवं स्वतन्त्र पट्टों पर ऋषभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर जिनों के जीवन की घटनाओं, मुख्यतः पंचकल्याणकों[4] को विस्तार से उत्कीर्ण किया गया (चित्र १२–१४, २२, २९, ३९–४१)।

ल० आठवीं-नवीं शती ई० तक जिनों के लाछनों का निर्धारण पूर्ण हो गया। **तिलोयपण्णत्ति**[5] एवं **प्रवचनसारोद्धार**[6] में जिन लांछनों की प्राचीनतम सूची प्राप्त होती है।[7] लांछन-युक्त प्राचीनतम जिन मूर्तियां गुप्तकाल की हैं। ये मूर्तियां राजगिर (नेमिनाथ)[8] और भारत कला भवन, वाराणसी (क्र० १६१-महावीर)[9] की हैं (चित्र ३५)। आठवीं शती ई० के बाद की जिन मूर्तियों में लांछनों का नियमित अंकन प्राप्त होता है।

यक्ष-यक्षी

ल० छठी शती ई० में जिनों के साथ यक्ष-यक्षी युगलों (शासनदेवताओं) को सम्बद्ध करने की धारणा विकसित हुई।[10] ये यक्ष-यक्षी जिनों के सेवक देव के रूप में संघ की रक्षा करते हैं।[11] यक्ष-यक्षी युगल से युक्त प्राचीनतम जिन मूर्ति छठी शती ई० की है।[12] अकोटा (गुजरात) से प्राप्त इस ऋषभ मूर्ति में यक्ष सर्वानुभूति (या कुबेर) और यक्षी अम्बिका हैं। ल० आठवीं-नवीं शती ई० तक २४ जिनों के स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी युगलों की सूची निर्धारित हो गयी।[13] यक्ष-यक्षी युगलों की प्रारम्भिक सूची **तिलोयपण्णत्ति**[14] (दिगम्बर), **कहावली**[15] (श्वेताम्बर) एवं **प्रवचनसारोद्धार** (**पवयणसारुद्धार**–श्वेताम्बर)[16] में प्राप्त होती है। **तिलोयपण्णत्ति** की २४-यक्ष-यक्षियों की सूची इस प्रकार है :

---

१ **अभिधानचिन्तामणि** देवाधिदेवकाण्ड २४–२५ २ विण्टरनित्ज, एम०, **पू०नि०**, पृ० ५१०–१७

३ ये चित्रण ओसिया की देवकुलिकाओं, जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर, विमलवसही, लूणवसही और कुंभारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों पर हैं।

४ च्यवन (जन्म के पूर्व), जन्म, दीक्षा, कैवल्य और निर्वाण।

५ **तिलोयपण्णत्ति** ४.६०४–६०५ ६ **प्रवचनसारोद्धार** ३८१–८२

७ इसके पूर्व केवल **आवश्यक निर्युक्ति** में ही ऋषभ के शरीर पर वृषभ चिह्न का उल्लेख है–शाह, यू०पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', **सं०पु०प०**, अं ९, पृ० ६

८ चन्दा, आर० पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', **आ०स०इ०ऐ०रि०**, १९२५–२६, पृ० १२५–२६

९ शाह, यू० पी०, 'ए फ्यू जैन इमेजेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', **छवि**, १९७१, वाराणसी, पृ० २३४

१० शाह, यू० पी०, 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वर्शिप', **प्रो०ट्रां०ओ०कां०**, २०वां अधिवेशन, १९५९, पृ० १४१–४३ ११ **हरिवंशपुराण** ६५.४३–४५, **तिलोयपण्णत्ति** ४.९३६

१२ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बम्बई, १९५९, पृ० २८–२९, फलक १०–११

१३ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', **ज०ओ०इं०**, ख० २०, अं० ३, पृ० ३०६

१४ **वही**, पृ० ३०४, जैन, ज्योतिप्रसाद, **पू०नि०**, पृ० १३८

१५ शाह, यू० पी०, 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', पृ० १४७–४८

१६ मेहता, मोहनलाल तथा कापड़िया, हीरालाल, **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास**, भाग ४, वाराणसी, १९६८, पृ० १७४–७९

यक्ष—गोवदन, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर, तुम्बुरव, मातंग, विजय, अजित, ब्रह्म, ब्रह्मेश्वर, कुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गन्धर्व, कुबेर, वरुण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व, मातंग और गुह्यक ।[1]

यक्षियां—चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुशा, अप्रतिचक्रेश्वरी, पुरुषदत्ता, मनोवेगा, काली, ज्वालामालिनी, महाकाली, गौरी, गांधारी, वैरोटी, सोलसा, अनन्तमती, मानसी, महामानसी, जया, विजया, अपराजिता, बहुरूपिणी, कुष्माण्डी, पद्मा और सिद्धायिनी ।[2]

प्रवचनसारोद्धार में प्राप्त २४ यक्ष-यक्षियों की सूची निम्नलिखित है :

यक्ष—गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, ईश्वर, तुंबरु, कुसुम, मातंग, विजय, अजित, ब्रह्मा, मनुज (ईश्वर), सुरकुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, गरुड, गन्धर्व, यक्षेन्द्र, कूबर, वरुण, भृकुटि, गोमेध, वामन (पार्श्व) और मातंग ।[3]

यक्षियां—चक्रेश्वरी, अजिता, दुरितारि, काली, महाकाली, अच्युता, शान्ता, ज्वाला, सुतारा, अशोका, श्रीवत्सा (मानवी), प्रवरा (चंडा), विजया (विदिता), अंकुशा, पन्नगा (कन्दर्पा), निर्वाणी, अच्युता (बला), धारणी, वैरोट्या, अच्छुप्ता (नरदत्ता), गाधारी, अम्बा, पद्मावती और सिद्धायिका ।[4]

२४—यक्ष-यक्षी युगलों के लाक्षणिक स्वरूपों का विस्तृत निरूपण सर्वप्रथम ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० के ग्रन्थों, **निर्वाणकलिका**, **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** एवं **प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे प्राप्त होता है ।[5] जैन शिल्प में केवल यक्षियों के ही सामूहिक उत्कीर्णन के प्रयास किये गये जिसका प्रथम उदाहरण देवगढ़ (ललितपुर, उ० प्र०) के शान्तिनाथ मन्दिर

---

१ गोवदणमहाजक्खा तिमुहो जक्खेसरो य तुंबुरओ ।
मादंगविजयअजिओ बम्हो बम्हेसरो य कोमारो ॥
छम्मुहओ पादालो किण्णरकिंपुरुसगरुडगंधव्वा ।
तह य कुबेरो वरुणो भिउडीगोमेधपासमातंगा ॥
गुज्झकओ इदि एदे जक्खा चउवीस उसहपहुदीणं ।
तित्थयराणं पासे चेंट्ठंते भत्तिसंजुत्ता ॥ **तिलोयपण्णत्ति** ४.९३४–३६

२ जक्खीओ चक्केसरिरोहिणीपण्णत्तिवज्जसिंखलया ।
वज्जंकुसा य अप्पदिचक्केसरिपुरिसदत्ता य ॥
मणवेगाकालीओ तह जालामालिणी महाकाली ।
गउरीगंधारीओ वेरोटी सोलसा अणंतमदी ॥
माणसिमहमाणसिया जया य विजयापराजिदाओ य ।
बहुरूपिणि कुम्भंडी पउमासिद्धायिणीओ त्ति ॥ **तिलोयपण्णत्ति** ४.९३७–३९

३ जक्खो गोमुह महजक्ख तिमुह ईसरतुंबरु कुसुमो ।
मायंगो विजया जिय बंभो मणुओ य सुर कुमारो ॥
छमुह पायाल किन्नर गरुडो गंधव्व तह य जक्खिंदो ।
कूबर वरुणो भिउडी गोमेहो वामण मायंगो ॥ **प्रवचनसारोद्धार** ३७५–७६

४ देवी च चक्केसरी । अजिया दुरियारि कालि महाकाली ।
अच्चुय संता जाला । सुतारयाऽसोय सिरिवच्छा ॥
पवर विजयां कुसा । पणत्ति निव्वाणी अच्चुया धरणी ।
वइरोट्ट छुत्त गंधारि । अंब पउमावई सिद्धा ॥ **प्रवचनसारोद्धार** ३७७–७८

५ श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों में इन यक्ष-यक्षियों के नामों एवं लाक्षणिक विशेषताओं के सन्दर्भ मे पर्याप्त अन्तर है ।

(मन्दिर १२, ८६२ ई०) में प्राप्त होता है। दूसरा उदाहरण (११ वीं–१२ वीं शती ई०) खण्डगिरि (पुरी, उड़ीसा) की बारभुजी गुफा में है। दोनों उदाहरण दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं।

विद्यादेवियां

विद्यादेवियों से सम्बन्धित उल्लेख **वसुदेवहिण्डी** (ल० छठी शती ई०), **आवश्यकचूर्णि** (ल० ६७७ ई०), **आवश्यक निर्युक्ति** (८ वीं शती ई०), **हरिवंशपुराण** (७८३ ई०), **चउपन्नमहापुरुषचरियम्** (८६८ ई०) एवं **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** में है। इनमें **पउमचरिय** की कथा का ही विस्तार है।[1] **हरिवंशपुराण**[2] एवं **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**[3] में उल्लेख है कि धरण ने नमि और विनमि को विद्याधरों पर स्वामित्व और ४८ हजार विद्याओं का वरदान दिया।

वसुदेवहिण्डी (संघदासकृत) में विद्याओं को गन्धर्व एवं पन्नगों से सम्बद्ध कहा गया है और महारोहिणी, प्रज्ञप्ति, गौरी, महाज्वाला, बहुरूपा, विद्युन्मुखी एवं वेताल आदि विद्याओं का उल्लेख किया गया है। **आवश्यकचूर्णि** (जिनदासकृत) एवं **आवश्यक निर्युक्ति** (हरिभद्रसूरिकृत) में गौरी, गान्धारी, रोहिणी और प्रज्ञप्ति का प्रमुख विद्याओं के रूप में उल्लेख है।[4] नवीं शती ई० के अन्त में निश्चित १६ महाविद्याओं की सूची में[5] उपर्युक्त चार विद्याएं भी सम्मिलित हैं। **पद्मचरित** (रविषेणकृत—६७६ ई०) में नमि-विनमि की कथा और प्रज्ञप्ति विद्या का उल्लेख है। **हरिवंशपुराण** में प्रज्ञप्ति, रोहिणी, अंगारिणी, महागौरी, गौरी, सर्वविद्याप्रकर्षिणी, महाश्वेता, मायूरी, हारी, निर्वज्ञशाड्वला, तिरस्कारिणी, छायासंक्रामिणी, कूष्माण्ड गणमाता, सर्वविद्याविराजिता, आर्यकूष्माण्ड देवी, अच्युता, आर्यवती, गान्धारी, निर्वृति, दण्डाध्यक्षगण, दण्डभूतसहस्रक, भद्रकाली, महाकाली, काली और कालमुखी आदि विद्याओं का उल्लेख है।[6]

चतुर्विंशतिका (बप्पभट्टिसूरिकृत—७४३-८३८ ई०) में २४ जिनों के साथ २४ यक्षियों के स्थान पर महाविद्याओं[7], वाग्देवी सरस्वती एवं कुछ यक्षियों और अन्य देवों के उल्लेख हैं।[8] ग्रन्थ में १६ के स्थान पर केवल १५ महाविद्याओं का ही स्वरूप विवेचित है।[9] १६ महाविद्याओं की सूची ल० नवीं शती ई० के अन्त तक निश्चित हुई। १६ महाविद्याओं की सूची में अधिकांशतः पूर्ववर्ती ग्रन्थों में उल्लिखित विद्याएं ही सम्मिलित हैं। **तिजयपहुत्त** (मानदेवसूरिकृत—९वीं शती ई०), **संहितासार** (इन्द्रनन्दिकृत—९३९ ई०) एवं **स्तुति चतुर्विंशतिका** (या **शोभन स्तुति**—शोभनमुनिकृत—

१ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १५, पृ० ११५

२ **हरिवंशपुराण** २२.५८-६३

३ **त्रि०श०पु०च०** १.३.१२४-२२६—ग्रन्थ में गौरी, प्रज्ञप्ति, मनुस, गान्धारी, मानवी, कौशिकी, भूमितुण्ड, मूलवीर्य, शंकुका, पाण्डुकी, काली, श्वपाकी, मातंगी, पार्वती, वंशालया, पांशुमूल एवं वृक्षमूल विद्याओं के उल्लेख हैं।

४ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ११५-१७

५ जैन ग्रन्थों में अनेक विद्यादेवियों के उल्लेख हैं। ल० नवीं शती ई० में १६ विद्यादेवियों की सूची तैयार हुई। विभिन्न लाक्षणिक ग्रन्थों में इन्हीं १६ विद्यादेवियों का निरूपण हुआ एवं पुरातात्विक स्थलों पर भी इन्हीं को मूर्त अभिव्यक्ति मिली। जैन विद्यादेवियों के समूह में इनकी लोकप्रियता के कारण इन्हें महाविद्या कहा गया।

६ **हरिवंशपुराण** २२.६१-६६

७ जिनों की प्रशंसा में लिखे स्तोत्रों में यक्ष-यक्षी युगलों के स्थान पर महाविद्याओं का निरूपण इस सम्भावना की ओर संकेत देता है कि १६ महाविद्याओं की सूची २४-यक्ष-यक्षियों की अपेक्षा कुछ प्राचीन थी। दिगम्बर परम्परा की २४ यक्षियों में से अधिकांश के नाम भी महाविद्याओं से ग्रहण किये गये।

८ नेमि और पार्श्व दोनों ही के साथ यक्षी के रूप में अम्बिका निरूपित है। अजित के साथ सर्पफणों से युक्त यक्षी, और ऋषभ, मल्लि एवं मुनिसुव्रत के साथ वाग्देवी सरस्वती निरूपित हैं।

९ सर्वास्त्र महाज्वाला का अनुल्लेख है। मानसी के नाम से वर्णित देवी में महाज्वाला एवं मानसी दोनों की विशेषताएं संयुक्त हैं।

ल० ९७३ ई०) में १६ महाविद्याओं की प्रारम्भिक सूची प्राप्त होती है[1] जिसे बाद मे उसी रूप में स्वीकार कर लिया गया । १६ महाविद्याओं की अन्तिम सूची में निम्नलिखित नाम है :

रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रश्रृंखला, वज्राकुशा, चक्रेश्वरी या अप्रतिचक्रा (जाम्बुनदा-दिगम्बर), नरदत्ता या पुरुषदत्ता, **काली या कालिका, महाकाली, गौरी, गान्धारी, सर्वास्त्र-महाज्वाला या ज्वाला** (ज्वालामालिनी-दिगम्बर), **मानवी, वैरोट्या** (वैरोटी-दिगम्बर), **अच्छुप्ता** (अच्युता-दिगम्बर), **मानसी एवं महामानसी** ।

महाविद्याओं के लाक्षणिक स्वरूपों का निरूपण सर्वप्रथम बप्पभट्टि की **चतुर्विंशतिका** एवं शोभनमुनि की **स्तुति चतुर्विंशतिका** में किया गया है । जैन शिल्प मे महाविद्याओं के स्वतन्त्र उत्कीर्णन का प्राचीनतम उदाहरण ओसिया (जोधपुर, राजस्थान) के महावीर मन्दिर (ल०८ वी-९ वीशती ई०) से प्राप्त होता है । नवीं शती ई० के बाद गुजरात एवं राजस्थान के श्वेताम्बर जैन मन्दिरो पर महाविद्याओं का नियमित चित्रण प्राप्त होता है । गुजरात एवं राजस्थान के बाहर महाविद्याओ का निरूपण लोकप्रिय नही था ।[2] १६ महाविद्याओं के सामूहिक चित्रण के उदाहरण कुम्भारिया (बनासकाठा, गुजरात) के शान्तिनाथ मन्दिर (११वी शतीई०), विमलवसही (दो समूह : रंगमण्डप एवं देवकुलिका ४१,१२वी शती ई०) एवं लूणवसही (रंगमण्डप, १२३० ई०) से प्राप्त होते है (चित्र ७८) ।[3]

राम और कृष्ण

राम और कृष्ण-बलराम को जैन ग्रन्थकारो ने विशेष महत्व दिया । इसी कारण इनके जीवन की घटनाओ का विस्तार मे उल्लेख करने वाले स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की गई । **वसुदेवहिण्डी, पद्मपुराण, कहावली, उत्तरपुराण** (गुणभद्रकृत-९ वी शती ई०), **महापुराण** (पुष्पदन्तकृत-९६५ ई०), **पउमचरिउ** (स्वयम्भूदेवकृत-९७७ ई०) और **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** आदि ग्रन्थों मे रामकथा, और **हरिवंशपुराण** (जिनसेनकृत), **हरिवंशपुराण** (धवलकृत-११ वी-१२ वी शती ई०) एवं **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** आदि में कृष्ण-बलराम मे सम्बन्धित विस्तृत उल्लेख है । जैन शिल्प में राम का चित्रण केवल खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर पर प्राप्त होता है ।[4] कृष्ण-बलराम का निरूपण देवगढ़ (मन्दिर २) एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ (क्र० ६६.५३) की नेमिनाथ मूर्तियों मे प्राप्त होता है (चित्र २७,२८) । विमलवसही, लूणवसही और कुंभारिया के महावीर मन्दिर के वितानो पर भी नेमिनाथ के जीवनदृश्यो में और स्वतन्त्र रूप में कृष्ण-बलराम के चित्रण है (चित्र २२,२९) ।[5]

भरत और बाहुबली

जैन ग्रन्थों मे ऋषभनाथ के दो पुत्रो, भरत और बाहुबली के युद्ध के विस्तृत उल्लेख है ।[6] युद्ध मे विजय के पश्चात् बाहुबली ने संसार त्याग कर कठोर तपस्या की और भरत ने चक्रवर्ती के रूप मे शासन किया । जीवन के अन्तिम वर्षों मे भरत ने भी दीक्षा ग्रहण की ।[7] दोनो ने कैवल्य प्राप्त किया । जैन शिल्प मे भरत-बाहुबली के युद्ध का चित्रण

१ शाह, यू० पी०, **पू०नि०**, पृ० ११९-२०

२ गुजरात और राजस्थान के बाहर १६ महाविद्याओ के सामूहिक शिल्पाकन का एकमात्र सम्भावित उदाहरण खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर (११ वी शती ई०) के मण्डोवर पर है ।

३ तिवारी, एम० एन० पी०, 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज ऐज डेपिक्टेड इन दि शांतिनाथ टेम्पल, कुंभारिया', **संबोधि**, खं० २, अं० ३, पृ० १५-२२

४ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट आन ऐन इमेज ऑव राम ऐण्ड सीता आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल, खजुराहो', **जैन जर्नल**, खं० ८, अ० १, पृ० ३०-३२

५ तिवारी, एम० एन० पी०, 'जैन साहित्य और शिल्प मे कृष्ण', **जै०सि०भा०**, भाग २६, अं० २, पृ० ५-११; तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अन्पब्लिश्ड इमेज ऑव नेमिनाथ फ्राम देवगढ़', **जैन जर्नल**, खं०८, अं०२, पृ०८४-८५

६ **पउमचरिय** ४.५४-५५; **हरिवंशपुराण** ११.९८-१०२; **आदिपुराण** ३६.१०६-८५; **त्रि०श०पु०च०** ५.७४०-९८

७ **हरिवंशपुराण** १३.१-६

विमलवसही एवं कुंभारिया के शान्तिनाथ मन्दिर में है (चित्र १४)। भरत की स्वतन्त्र मूर्तियां केवल देवगढ़ (१० वीं-१२ वीं शती ई०)[1] में और बाहुबली की स्वतन्त्र मूर्तियां (९ वीं–१२ वीं शती ई०) जूनागढ संग्रहालय, देवगढ़ (मन्दिर २, ११ एवं साहू जैन संग्रहालय, देवगढ़), खजुराहो (पार्श्वनाथ मन्दिर), बिल्हरी (म०प्र०) एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ (क्र० ९४०) में है (चित्र ७०, ७१–७५)।[2] देवगढ में बाहुबली को विशेष प्रतिष्ठा प्रदान की गई। इसी कारण एक त्रितीर्थी मूर्ति में बाहुबली दो जिनों (मन्दिर २, चित्र ७५) एवं एक अन्य में यक्ष-यक्षी युगल (मन्दिर ११) के साथ निरूपित हैं।

जिनों के माता-पिता

जिनों के माता-पिता की गणना महान् आत्माओं में की गई है।[3] समवायांगसूत्र में वर्णित माता-पिता की सूची ही कालान्तर में स्वीकृत हुई।[4] ग्रन्थों में जिनों की माताओं की उपासना से सम्बन्धित उल्लेख पिताओं की तुलना में अधिक हैं। जैन शिल्प एवं चित्रों में भी जिनों की माताओं के चित्रण की परम्परा ही विशेष लोकप्रिय थी, जिसका प्राचीनतम उदाहरण ओसिया (१०१८ ई०) से प्राप्त होता है। अन्य उदाहरण पाटण, आबू, गिरनार, कुंभारिया (महावीर मन्दिर) एवं देवगढ़ से प्राप्त होते हैं। इनमें प्रत्येक स्त्री आकृति की गोद में एक बालक अवस्थित है। २४ जिनों के माता-पिता के सामूहिक चित्रण के प्रारम्भिक उदाहरण (११वीं शती ई०) कुंभारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों के वितानों पर उत्कीर्ण हैं। इनमें आकृतियों के नीचे उनके नाम भी उल्लिखित हैं।

पंच परमेष्ठि

जैन देवकुल के पंचपरमेष्ठियों में अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु सम्मिलित थे।[5] पंचपरमेष्ठियों में से प्रथम दो मुक्त आत्माएं हैं, जिनमें अर्हत् शरीर युक्त और सिद्ध निराकार हैं। तार्थों की स्थापना कर कुछ अर्हत् तीर्थंकर कहलाते हैं। पंचपरमेष्ठियों के पूजन की परम्परा काफी प्राचीन है। परवर्ती युग में सिद्धचक्र या नवदेवता के रूप में इनके पूजन की धारणा विकसित हुई।[6] पंचपरमेष्ठियों में आचार्य, उपाध्याय एवं साधु की मूर्तियां (१०वीं-१२वीं शती ई०) विमलवसही, लूणवसही, कुंभारिया, ओसिया (देवकुलिका), देवगढ, खजुराहो एवं ग्वालियर से प्राप्त होती हैं।

दिक्पाल

दिशाओं के स्वामी दिक्पालों या लोकपालों का पूजन वास्तुदेवताओं के रूप में भी लोकप्रिय था।[7] ल० आठवीं-नवीं शती ई० में जैन देवकुल में दिक्पालों की धारणा विकसित हुई। दिक्पालों के प्रतिमानिरूपण से सम्बन्धित प्रारंभिक उल्लेख निर्वाणकलिका एवं प्रतिष्ठासारसंग्रह में हैं। पर जैन मन्दिरों पर इनका उत्कीर्णन ल० नवीं शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया जिसका एक उदाहरण ओसिया के महावीर मन्दिर पर है। जैन शिल्प में अष्ट-दिक्पालों का उत्कीर्णन ही लोकप्रिय

१ मन्दिर २ एवं मन्दिर १२ की चहारदीवारी

२ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज फ्राम नार्थ इण्डिया', ईस्ट वे०, खं०२३, अं०३-४, पृ० ३४७-५३

३ शाह, यू० पी०, 'पेरेण्ट्स आंव दि तीर्थंकरज', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ५, १९५५-५७, पृ० २४-३२

४ समवायांगसूत्र १५७

५ पंचपरमेष्ठि जैन देवकुल के पांच सर्वोच्च देव हैं। इन्हें जिनों के समान महत्व प्राप्त था—शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० ८-९

६ ल० नवीं शती ई० में पंचपरमेष्ठिन् की सूची में चार पूजित पदों के रूप में श्वेताम्बर सम्प्रदाय में ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप को, एवं दिगंबर सम्प्रदाय में चैत्य (जिन प्रतिमा), चैत्यालय (जिन मन्दिर), धर्मचक्र और श्रुत (जिनों की शिक्षा) को सम्मिलित किया गया।

७ भट्टाचार्य, बी० सी०, जैन आइकानोग्राफी, लाहौर, १९३९, पृ० १४८

था[1] पर जैन ग्रन्थो में दस दिक्पालो के उल्लेख मिलते है। ये दस दिक्पाल इन्द्र (पूर्व), अग्नि (दक्षिण-पूर्व), यम (दक्षिण), निर्ऋति (दक्षिण-पश्चिम), वरुण (पश्चिम), वायु पश्चिम-उत्तर), कुबेर (उत्तर), ईशान् (उत्तर-पूर्व), ब्रह्मा (आकाश) एवं नागदेव (या धरणेन्द्र-पाताल) है। जैन दिक्पालों की लाक्षणिक विशेषताएं काफी कुछ हिन्दू दिक्पालों से प्रभावित हैं।

नवग्रह

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों की सूर्य, चन्द्र, ग्रह आदि ज्योतिष्क देवो की धारणा ही पूर्वमध्य युग मे नवग्रहो के रूप में विकसित हुई। दसवी शती ई० के बाद के लगभग सभी प्रतिमा लाक्षणिक ग्रन्थो में नवग्रहों (सूर्य, चन्द्र, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि राहु, केतु) के लाक्षणिक स्वरूपो का निरूपण किया गया। पर जैन शिल्प मे दसवी शती ई०[2] मे ही नव-ग्रहों का चित्रण प्रारम्भ हुआ जो दिगम्बर स्थलो पर अधिक लोकप्रिय था (चित्र ५७)।[3] जिन मूर्तियो की पीठिका या परिकर मे भी नवग्रहो का उत्कीर्णन लोकप्रिय था।

क्षेत्रपाल

ल० ग्यारहवी शती ई० मे क्षेत्रपाल का जैन देवकुल में सम्मिलित किया गया।[4] क्षेत्रपाल की लाक्षणिक विशेषताए जैन दिक्पाल निर्ऋति एव हिन्दू देव भैरव से प्रभावित है। क्षेत्रपाल की मूर्तियां (११वी-१२वी शती ई०) केवल खजुराहो एव देवगढ जैसे दिगम्बर स्थलो मे ही मिली है।

६४-योगिनिया

मध्य-युग मे हिन्दू देवकुल के समान ही जैन देवकुल मे भी ६४-योगिनियो की कल्पना की गयी। ये योगिनियां क्षेत्रपाल की सहायक बतायी गई है। जैन देवकुल के योगिनियो की दो सूचियां बी० सी० भट्टाचार्य ने दी है।[5] इन सूचियों के कुछ नाम जहा हिन्दू योगिनियो से मेल खाते है, वही कुछ अन्य केवल जैन धर्म में ही प्राप्त होते हैं। जैन शिल्प मे इन्हे कभी लोकप्रियता नही प्राप्त हुई।

शान्तिदेवी

जैन धर्म एवं सघ की उन्नतिकारिणी शान्तिदेवी की धारणा दसवी-ग्यारहवी शती ई० में विकसित हुई। देवी के प्रतिमा-निरूपण से सम्बन्धित प्रारम्भिक उल्लेख **स्तुति चतुर्विंशतिका**[6] (शोभनमुनिकृत) एवं **निर्वाणकलिका**[7] मे है। जैन शिल्प मे शान्तिदेवी श्वेताम्बर स्थलो पर ही लोकप्रिय थी।[8] गुजरात एवं राजस्थान के श्वेताम्बर स्थलो पर स्वतन्त्र मूर्तियो मे और जिन मूर्तियो के सिहासन के मध्य[9] मे शान्तिदेवी आमूर्तित है। देवी की दो भुजाओ मे या तो पद्म है, या फिर एक मे पद्म और दूसरी मे पुस्तक है।

---

१ शिल्प में नवें-दसवें दिक्पालो, ब्रह्मा एवं धरणेन्द्र के उत्कीर्णन का एकमात्र ज्ञात उदाहरण घाणेराव (१० वीं शती ई०) के महावीर मन्दिर पर है।

२ खजुराहो के पार्श्वनाथ, देवगढ़ के शान्तिनाथ एवं घाणेराव के महावीर मन्दिरों के प्रवेश-द्वारों पर नवग्रह निरूपित है।

३ नवग्रहों के चित्रण का एकमात्र श्वेताम्बर उदाहरण घाणेराव के महावीर मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर है।

४ **निर्वाणकलिका** २१.२, **आचारदिनकर**–भाग २, क्षेत्रपाल, पृ० १८०

५ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १८३-८४

६ **स्तुति चतुर्विंशतिका** १२.४, पृ० १३७ ७ **निर्वाणकलिका** २१, पृ० ३७

८ खजुराहो की भी कुछ जिन मूर्तियों में सिंहासन के मध्य में शान्तिदेवी निरूपित है।

९ **वास्तुविद्या** (११वीं-१२वी शती ई०) में सिंहासन के मध्य मे वरदमुद्रा एवं पद्म धारण करनेवाली आदिशक्ति की द्विभुज आकृति के उत्कीर्णन का विधान है (२२.१०)।

गणेश

हिन्दू देवकुल के लोकप्रिय देवता गणेश या गणपति को ल० ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में जैन देवकुल में सम्मिलित किया गया।[1] यद्यपि **अभिधान-चिन्तामणि** (१२वीं शती ई०) में गणेश का उल्लेख है[2] पर उनकी लाक्षणिक विशेषताएं सर्वप्रथम **आचारदिनकर** में विवेचित हैं।[3] जैन ग्रन्थों में निरूपण के पूर्व ही ग्यारहवीं शती ई० में ओसिया की जैन देव-कुलिकाओं के प्रवेश-द्वारों एवं भित्तियों पर गणेश का मूर्त अंकन देखा जा सकता है। यह तथ्य एवं जैन गणेश की लाक्षणिक विशेषताएं[4] स्पष्टतः हिन्दू गणेश के प्रभाव का संकेत देती हैं। पुरातात्विक संग्रहालय, मथुरा की ल० दसवीं शती ई० की एक अम्बिका मूर्ति (क्र० ०० डी ७) में गणेश की मूर्ति भी अंकित है। बारहवीं शती ई० की कुछ स्वतन्त्र मूर्तियां कुंभारिया (नेमिनाथ मन्दिर) एवं नाडलाई से प्राप्त होती हैं (चित्र ७७)। गणेश की लोकप्रियता श्वेताम्बरों तक सीमित थी।

ब्रह्मशान्ति यक्ष

स्तुति चतुर्विंशतिका (शोभनसूरिकृत)[5] एवं **निर्वाणकलिका**[6] में ही सर्वप्रथम ब्रह्मशान्ति यक्ष की लाक्षणिक विशेषताएं वर्णित हैं। **विविधतीर्थकल्प** (जिनप्रभसूरिकृत) के सत्यपुर तीर्थकल्प में ब्रह्मशान्ति यक्ष के पूर्व जन्म की कथा दी है।[7] दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ब्रह्मशान्ति यक्ष की मूर्तियां घाणेराव के महावीर, कुंभारिया के शान्तिनाथ, महावीर एवं पार्श्वनाथ मन्दिरों और विमलवसही से प्राप्त होती हैं। ब्रह्मशान्ति यक्ष केवल श्वेताम्बरों के मध्य ही लोकप्रिय थे। जटा-मुकुट, छत्र, अक्षमाला, कमण्डलु और कभी-कभी हंसवाहन का प्रदर्शन ब्रह्मशान्ति पर हिन्दू ब्रह्मा का प्रभाव दर्शाता है।

कपर्दी यक्ष

स्तुति चतुर्विंशतिका में कपर्दी यक्ष का यक्षराज के रूप में उल्लेख है।[8] **विविधतीर्थकल्प** एवं **शत्रुंजय-माहात्म्य** (धनेश्वरसूरिकृत—ल० ११०० ई०) में कपर्दी यक्ष से सम्बन्धित विस्तृत उल्लेख है।[9] शत्रुंजय पहाड़ी एवं विमलवसही से कपर्दी यक्ष के मूर्त चित्रण प्राप्त होते हैं। कपर्दी यक्ष की लोकप्रियता श्वेताम्बरों तक सीमित थी। यू० पी० शाह ने कपर्दी यक्ष को शिव से प्रभावित माना है।[10]

• ● •

१ तिवारी, एम० एन० पी०, 'सम अन्पब्लिश्ड जैन स्कल्पचर्स ऑव गणेश फ्राम वेस्टर्न इण्डिया', **जैन जर्नल**, खं०९, अं० ३, पृ० ९०-९२
२ **अभिधानचिन्तामणि** २.१२१
३ **आचारदिनकर**, भाग २, गणपतिप्रतिष्ठा १-२, पृ० २१०
४ हिन्दू गणेश के समान ही जैन गणेश भी गजमुख एवं लम्बोदर और मूषक पर आरूढ़ हैं। उनके करों में स्वदंत, परशु, मोदकपात्र, पद्म, अंकुश, एवं अभय-या-वरद-मुद्रा प्रदर्शित हैं।
५ **स्तुति चतुर्विंशतिका** १६.४, पृ० १७९
६ **निर्वाणकलिका** २१, पृ० ३८
७ **विविधतीर्थकल्प**, पृ० २८-३०
८ **स्तुति चतुर्विंशतिका** १९.४, पृ० २१५
९ शाह, यू० पी०, 'ब्रह्मशान्ति ऐण्ड कपर्दी यक्षज', **ज०एम०एस०यू०ब०**, खं० ७, अं० १, पृ० ६५-६८
१० **वही**, पृ० ६८

चतुर्थ अध्याय

उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेषों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

इस अध्याय में उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेषों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण किया गया है। इसमे विषय एवं लक्षणो के विकास के अध्ययन की दृष्टि से क्षेत्र तथा काल दोनों की पृष्ठभूमि का ध्यान रखते हुए सभी उपलब्ध स्रोतो का उपयोग किया गया है। कई स्थलो एवं संग्रहालयों की अप्रकाशित सामग्री का निजी अध्ययन भी इसमें समाविष्ट है। इस प्रकार यहां देश और काल के प्रभावों का विश्लेषण करते हुए उत्तर भारतीय जैन मूर्ति अवशेषो का एक यथासम्भव पूर्ण एवं तुलनात्मक अध्ययन कर जैन प्रतिमा-निरूपण का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। द्वितीय अध्याय के समान ही यह अध्याय भी दो भागों मे विभक्त है। प्रथम भाग मे प्रारम्भ से सातवी शती ई० तक और द्वितीय में आठवी से बारहवी शती ई० तक के जैन मूर्ति अवशेषो का सर्वेक्षण है। दूसरे भाग मे स्थलगत वैशिष्ट्य एव मौलिक लाक्षणिक वृत्तियों पर अधिक बल दिया गया है।

(१)

आरम्भिक काल (प्रारम्भ से ७ वीं शती ई० तक)

मोहनजोदडो से प्राप्त ५ मुहरों पर कायोत्सर्ग-मुद्रा के समान ही दोनों हाथ नीचे लटका कर सीधी खड़ी पुरुष आकृतियां[1] और हड़प्पा से प्राप्त एक पुरुष आकृति[2] (चित्र १) सिन्धु सभ्यता के ऐसे अवशेष है जो अपनी नग्नता और मुद्रा (कायोत्सर्ग के समान) के सन्दर्भ में परवर्ती जिन मूर्तियों का स्मरण दिलाते है।[3] किन्तु सिन्धु लिपि के अन्तिम रूप से पढ़े जाने तक सम्भवतः इस सम्बन्ध मे कुछ भी निश्चय से नही कहा जा सकता है।

मौर्य-शुंग काल

प्राचीनतम जिन मूर्ति मौर्यकाल की है जो पटना के समीप लोहानीपुर से मिली है और सम्प्रति पटना संग्रहालय में सुरक्षित है (चित्र २)।[4] नग्नता और कायोत्सर्ग-मुद्रा[5] इसके जिन मूर्ति होने की सूचना देते है। मूर्ति के सिर, भुजा और जानु के नीचे का भाग खण्डित है। मूर्ति पर मौर्ययुगीन चमकदार आलेप है। लोहानीपुर से शुंग काल या कुछ बाद की एक अन्य जिन मूर्ति भी मिली है जिसमे नीचे लटकती दोनो भुजाएं सुरक्षित है।[6]

१ मार्शल, जान, **मोहनजोदड़ो ऐण्ड दि इण्डस सिविलिजेशन**, खं० १, लंदन, १९३१, फलक १२, चित्र १३, १४, १८, १९, २२

२ **वही**, पृ० ४५, फलक १०

३ चंदा, आर० पी०, 'सिन्ध फाइव थाऊजण्ड इयर्स एगो', **माडर्न रिव्यू**, खं० ५२, अंक २, पृ० १५१–६०; रामचन्द्रन, टी० एन०, 'हरप्पा ऐण्ड जैनिजम' (हिन्दी अनु०), **अनेकान्त**, वर्ष १४, जनवरी १९५७, पृ० १५७-६१; **स्ट०जै०आ०**, पृ० ३–४

४ जायसवाल, के० पी०, 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', **ज०बि०उ०रि०सो०**, खं० २३, भाग १, पृ० १३०–३२; बनर्जी-शास्त्री, ए०, 'मौर्यन स्कल्पचर्स फ्राम लोहानीपुर, पटना', **ज०बि०उ०रि०सो०**, ख० २६, भाग २, पृ० १२०–२४

५ कायोत्सर्ग-मुद्रा में जिन समभंग में सीधे खडे होते हैं और उनकी दोनों भुजाएं लंबवत घुटनो तक प्रसारित होती हैं। यह मुद्रा केवल जिनो के मूर्त अंकन में ही प्रयुक्त हुई है।

६ जायसवाल, के० पी०, **पू०नि०**, पृ० १३१

उड़ीसा की उदयगिरि-खण्डगिरि पहाड़ियों की रानी गुंफा, गणेश गुंफा, हाथी गुंफा एवं अनन्त गुंफा में ई० पू० की दूसरी-पहली शती के जैन कलावशेष हैं।[1] इन गुफाओं में वर्धमानक, स्वस्तिक एवं त्रिरत्न जैसे जैन प्रतीक चित्रित हैं। रानी एवं गणेश गुफाओं में अंकित दृश्यों की पहचान सामान्यतः पार्श्व के जीवन-दृश्यों से की गई है।[2] वी० एस० अग्रवाल इसे वासवदत्ता और शकुन्तला की कथा का चित्रण मानते हैं।[3]

ल० दूसरी-पहली शती ई० पू० की पार्श्वनाथ की एक कांस्य मूर्ति प्रिंस ऑव वेल्स संग्रहालय, बम्बई में सुरक्षित है[4] जिसमें मस्तक पर पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्व निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं।[5] ल० पहली शती ई०पू० की एक पार्श्वनाथ मूर्ति बक्सर (भोजपुर, बिहार) के चौसा ग्राम से भी मिली है, जो पटना संग्रहालय (६५३१) में संगृहीत है।[6] मूर्ति में पार्श्व सात सर्पफणों के छत्र से शोभित और उपर्युक्त मूर्ति के समान ही निर्वस्त्र एवं कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं। इन प्रारम्भिक मूर्तियों में वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न नहीं उत्कीर्ण है।[7] जिन मूर्तियों के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न का उत्कीर्णन ल० पहली शती ई०पू० में मथुरा में ही प्रारम्भ हुआ। लगभग इसी समय मथुरा में जिनों के निरूपण में ध्यानमुद्रा भी प्रदर्शित हुई।

चौसा से शुंगकालीन धर्मचक्र एवं कल्पवृक्ष के चित्रण भी मिले हैं, जो पटना संग्रहालय (६५४०, ६५५०) में सुरक्षित हैं।[8] यू० पी० शाह इन अवशेषों को कुषाणकालीन मानते हैं।[9] इन प्रतीकों से मथुरा के समान ही चौसा में भी शुंग-कुषाणकाल में प्रतीक पूजन की लोकप्रियता सिद्ध होती है।

कुषाण काल

चौसा—चौसा से नौ कुषाणकालीन जिन मूर्तियां मिली हैं, जो पटना संग्रहालय में हैं। इनमें से ६ उदाहरणों में जिनों की पहचान सम्भव नहीं है। दो उदाहरणों में लटकती जटा (६५३८, ६५३९) एवं एक में सात सर्पफणों के छत्र (६५३३) के आधार पर जिनों की पहचान क्रमशः ऋषभ और पार्श्व से की गई है।[10] सभी जिन मूर्तियां निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं।

मथुरा—साहित्यिक और आभिलेखिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि मथुरा का कंकाली टीला एक प्राचीन जैन स्तूप था।[11] कंकाली टीले से एक विशाल जैन स्तूप के अवशेष और विपुल शिल्प सामग्री मिली है।[12] यह शिल्प सामग्री

---

१ कुरैशी, मुहम्मद हमीद, **लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा** कलकत्ता, १९३१, पृ० २४७ २ **स्ट०जै०आ०**, पृ० ७-८

३ अग्रवाल, वी० एस०, 'वासवदत्ता ऐण्ड शकुन्तला सीन्स इन दि रानीगुफा केव इन उडीसा', **ज०इं०सो०ओ०आ०**, खं० १४, १९४६, पृ० १०२-१०९ ४ **स्ट०जै०आ०**, पृ० ८-९

५ शाह, यू० पी०, 'एन अर्ली ब्रोन्ज इमेज ऑव पार्श्वनाथ इन दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम, बंबई', **बु०प्रि०वे०-म्यू०वे०इं०**, अं० ३, १९५२-५३, पृ० ६३-६५

६ प्रसाद, एच० के०, 'जैन ब्रोन्जेज इन दि पटना म्यूजियम', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बंबई, १९६८, पृ० २७५-८०; शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बंबई, १९५९, फलक १ बी

७ वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न का उत्कीर्णन जिन मूर्तियों की अभिन्न विशेषता है।

८ प्रसाद, एच० के०, **पू०नि०**, पृ० २८० . चौसा से कुषाण एवं गुप्तकाल की मूर्तियां भी मिली हैं।

९ शाह, यू० पी०, **पू०नि०**, फलक ३ १० प्रसाद, एच० के०, **पू०नि०**, पृ० २८०-८२

११ **विविधतीर्थकल्प**, पृ० १७; स्मिथ, वी० ए०, **दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एन्टिक्विटीज ऑव मथुरा**, वाराणसी, १९६९, पृ० १२-१३

१२ कनिंघम, ए०, **आ०स०इं०रि०**, १८७१-७२, ख० ३, वाराणसी, १९६६ (पु०मु०), पृ० ४५-४६

ल० १५० ई० पू० से १०२३ ई० के मध्य की है।[1] इस प्रकार मथुरा की जैन मूर्तियां आरम्भ से मध्ययुग तक के प्रतिमाविज्ञान की विकास शृङ्खला उपस्थित करती है। मथुरा की शिल्प सामग्री मे आयागपट (चित्र ३), जिन मूर्तिया, सर्वतोभद्रिका प्रतिमा (चित्र ६६), जिनो के जीवन से सम्बन्धित दृश्य (चित्र १२, ३९) एवं कुछ अन्य मूर्तियां प्रमुख है।[2]

आयागपट—आयागपट मथुरा की प्राचीनतम जैन शिल्प सामग्री है। इनका निर्माण शुंग-कुषाण युग मे प्रारम्भ हुआ। मथुरा के अतिरिक्त और कहीं से आयागपटों के उदाहरण नही मिले है। मथुरा में भी कुषाण युग के बाद इनका निर्माण बन्द हो गया। आयागपट वर्गाकार प्रस्तर पट्ट है जिन्हें लेखों मे आयागपट या पूजाशिलापट कहा गया है। आयागपट जिनो (अर्हतों) के पूजन के लिए स्थापित किये गये थे।[3] एक आयागपट के महावीर के पूजन के लिए स्थापित किये जाने का उल्लेख है।[4] आयागपट उस संक्रमण काल की शिल्प सामग्री है जब उपास्य देवों का पूजन प्रतीक और मानवरूप में साथ-साथ हो रहा था।[5] आयागपटों पर जैन प्रतीक या प्रतीकों के साथ जिन मूर्ति भी उत्कीर्ण है। आयागपटो की जिन मूर्तियां श्रीवत्स से युक्त और ध्यानमुद्रा मे निरूपित है। एक उदाहरण (राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे २५३) मे मध्य में सप्त सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्वनाथ है।

मथुरा से कम से कम १० आयागपट मिले है (चित्र ३)।[6] इनमे अमोहिनि (राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे १) एवं स्तूप (राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे २५५) का चित्रण करने वाले पट प्राचीनतम है।[7] दो आयागपटो पर स्तूप[8] एव अन्य पर पद्म, धर्मचक्र, स्वस्तिक, श्रीवत्स, त्रिरत्न, मत्स्ययुगल, वैजयन्ती, मंगलकलश, भद्रासन, रत्नपात्र, देवगृह जैसे मांगलिक चिह्न उत्कीर्ण है।

अमोहिनि द्वारा स्थापित आर्यवती पट[9] पर आर्यवती देवी (?) निरूपित है। लेख मे 'नमो अर्हतो वर्धमानस' उत्कीर्ण है। छत्र से शोभित आर्यवती देवी की वाम भुजा कटि पर है और दक्षिण अभयमुद्रा मे है। यू०पी० शाह ने लेख मे आये वर्धमान नाम के आधार पर आकृति की पहचान वर्धमान की माता से की है।[10] आर्यवती की पहचान **कल्पसूत्र** की आर्य यक्षिणी[11] और **भगवतीसूत्र** की अज्जा या आर्या देवी[12] से भी की जा सकती है। **हरिवंशपुराण** मे महाविद्याओं की सूची मे भी आर्यवती का नामोल्लेख है।[13] ल्यूजे-डे-ल्यू ने आर्यवती शब्द को आयागपट का समानार्थी माना है।[14]

जिन मूर्तियां—मथुरा की कुषाण कला में जिनों को चार प्रकार से अभिव्यक्ति मिली है। ये अंकन आयागपटो पर ध्यान-मुद्रा मे, जिन चौमुखी (सर्वतोभद्रिका) मूर्तियों मे कायोत्सर्ग-मुद्रा मे[15], स्वतन्त्र मूर्तियों के रूप मे, और जीवन-दृश्यों

१ **स्ट०जै०आ०**, पृ० ९

२ मथुरा की जैन मूर्तियो का अधिकांश भाग राज्य संग्रहालय, लखनऊ एवं पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा में सुरक्षित है।

३ **एपि०इण्डि०**, खं० २, पृ० ३१४

४ स्मिथ, वी० ए०, **पू०नि०**, पृ० १५, फलक ८

५ शर्मा, आर०सी०, 'प्रि-कनिष्क बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी एट मथुरा', **आर्किअलाजिकल कांग्रेस ऐण्ड सेमिनार पेपर्स**, नागपुर, १९७२, पृ० १९३–९४

६ मथुरा से प्राप्त तीन आयागपट क्रमश: पटना संग्रहालय, राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली एवं बुडापेस्ट (हंगरी) संग्रहालय मे सुरक्षित है। अन्य आयागपट पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे है।

७ स्मिथ, वी०ए०, **पू०नि०**, पृ० १९, २१

८ पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा-क्यू २; राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २५५

९ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे०ई० वान, **दि सीथियन पिरियड**, लिडेन, १९४९, पृ० १४७; स्मिथ, वी०ए०, **पू०नि०**, पृ० २१, फलक १४, **एपि०इण्डि०**, खं० २, पृ० १९९, लेख सं० २

१० **स्ट०जै०आ०**, पृ० ७९

११ **कल्पसूत्र** १६६

१२ **भगवतीसूत्र** ३.१.१३४

१३ **हरिवंशपुराण** २२.६१–६६

१४ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे०ई०वान, **पू०नि०**, पृ० १४७

१५ जिन चौमुखी के १० से अधिक उदाहरण राज्य संग्रहालय, लखनऊ और पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा में हैं।

के अंकन के रूप में है। आयागपटों की जिन मूर्तियों का उल्लेख आयागपटों के अध्ययन मे किया जा चुका है। अब शेष तीन प्रकार के जिन अंकनों का उल्लेख किया जायगा।

प्रतिमा-सर्वतोभद्रिका या जिन चौमुखी—मथुरा मे जिन चौमुखी मूर्तियों का उत्कीर्णन पहली-दूसरी शती ई० मे विशेष लोकप्रिय था (चित्र ६६)। लेखा में ऐसी मूर्तियों को 'प्रतिमा सर्वतोभद्रिका',[1] 'सर्वतोभद्र प्रतिमा',[2] 'शवदोभद्रिक'[3] एवं 'चतुर्बिम्ब'[4] कहा गया है। प्रतिमा–सर्वतोभद्रिका या सर्वतोभद्र-प्रतिमा ऐसी मूर्ति है जो सभी ओर से शुभ या मंगलकारी है।[5] इन मूर्तियों मे चारों दिशाओं मे कायोत्सर्ग-मुद्रा मे चार जिन आकृतियां उत्कीर्ण रहती हैं। इन चार में से केवल दो ही जिनों की पहचान सम्भव है। ये जिन लटकती केशावलियों एवं सप्त सर्पफणों के छत्र से युक्त ऋषभ और पार्श्व हैं। गुप्त युग मे जिन चौमुखी की लोकप्रियता कम हो गई थी।

स्वतन्त्र जिन मूर्तियां—मथुरा की कुषाणकालीन जिन मूर्तियां संवत् ५ से सं० ९५ (८३–१७३ ई०) के मध्य की हैं (चित्र १६, ३०, ३४)। श्रीवत्स से युक्त जिन या तो कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं या ध्यानमुद्रा में आसीन हैं।[6] इनके साथ अष्ट-प्रातिहार्यों में से केवल ६ प्रातिहार्य–सिंहासन[7], भामण्डल[8], चैत्य वृक्ष, चामरधर सेवक, उड्डीयमान मालाधर एवं छत्र उत्कीर्ण हैं। इनमें भी सिंहासन, भामण्डल एवं चैत्यवृक्ष का ही चित्रण नियमित है। सभी आठ प्रातिहार्य गुप्त युग के अन्त मे निरूपित हुए।[9]

ध्यानमुद्रा में आसीन मूर्तियों में पार्श्ववर्ती चामरधर सेवक सामान्यतः नहीं उत्कीर्ण हैं। कुछ उदाहरणों मे चामरधरों के स्थान पर दानकर्ताओं (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ८, १९) या जैन साधुओं की आकृतियां बनी हैं। जिनों के केश गुच्छकों के रूप मे हैं या पीछे की ओर संवारे हैं, या फिर मुण्डित हैं। सिंहासन के मध्य मे हाथ जोड़े या पुष्प लिए हुए साधु-साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओं एवं बालकों की आकृतियों से वेष्टित धर्मचक्र उत्कीर्ण है। जिनों की हथेलियों, तलुओं एवं उंगलियों पर त्रिरत्न, धर्मचक्र, स्वस्तिक और श्रीवत्स जैसे मंगल चिह्न बने हैं। सभी जिन मूर्तियां निर्वस्त्र हैं।[10]

इन मूर्तियों मे लटकती जटाओं और सप्त सर्पफणों के छत्र के आधार पर क्रमशः ऋषभ[11] और पार्श्व की पहचान सम्भव है (चित्र ३०)। मथुरा मे इन्ही दो जिनों की सर्वाधिक कुषाणकालीन मूर्तियां मिली हैं। बलराम-कृष्ण की पार्श्ववर्ती आकृतियों के आधार पर कुछ मूर्तियों (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ४७, ६०, ११७) की पहचान नेमि से की गई है।[12]

---

१ **एपि०इण्डि०**, खं० १, पृ० ३८२, लेख सं० २; खं० २, पृ० २०२, लेख सं० १६

२ **वही**, खं० २, पृ० २०२, लेख सं० १३

३ **वही**, खं० २, पृ० २०९–१०, लेख सं० ३७

४ **वही**, खं० २, पृ० २११, लेख सं० ४१

५ **वही**, खं० २, पृ० २०२–०३, २१०; भट्टाचार्य, बी०सी०, **दि जैन आइकानोग्राफी**, लाहौर, १९३९, पृ० ४८; अग्रवाल, वी०एस०, **मथुरा म्यूजियम केटलाग**, भाग ३, वाराणसी १९६३, पृ० २७

६ ध्यानमुद्रा मे आसीन जिन मूर्तियां तुलनात्मक दृष्टि से अधिक हैं।

७ कुछ कायोत्सर्ग मूर्तियों (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २, ८) मे सिंहासन नहीं उत्कीर्ण है।

८ भामण्डल हस्तिनख (या अर्धचन्द्रावलि) एवं पूर्ण विकसित पद्म के अलंकरण से युक्त है।

९ शाह, यू०पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', **सं०पु०प०**, अं० ९, पृ० ६

१० महावीर के गर्भापहरण का अंकन जिसका उल्लेख केवल श्वेताम्बर परम्परा में ही हुआ है (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ६२६), एवं कुछ नग्न साधु आकृतियों (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे १७५) की भुजा मे वस्त्र का प्रदर्शन मथुरा की कुषाणकला मे श्वेताम्बरों और दिगम्बरों के सहअस्तित्व के सूचक हैं।

११ लटकती जटा से युक्त दो मूर्तियों (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २६, ६९) मे ऋषभ का नाम भी उत्कीर्ण है।

१२ श्रीवास्तव, वी० एन०, **पू०नि०**, पृ० ४९–५२

एक मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ८) में 'अरिष्टनेमि' का नाम भी उत्कीर्ण है। संभव,[1] मुनिसुव्रत[2] एवं महावीर[3] की पहचान पीठिका लेखों में उत्कीर्ण नामों से हुई है (चित्र ३४)। इस प्रकार मथुरा की कुषाण कला में ऋषभ, संभव, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियां निर्मित हुईं।

जिनों के जीवनदृश्य—कुषाण काल में जिनों के जीवनदृश्य भी उत्कीर्ण हुए। राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित एक पट्ट (जे ६२६) पर महावीर के गर्भापहरण का दृश्य है (चित्र ३९)।[4] राज्य संग्रहालय, लखनऊ के एक अन्य पट्ट (जे ३५४) पर इन्द्र सभा की नर्तकी नीलांजना ऋषभ के समक्ष नृत्य कर रही है (चित्र १२)। ज्ञातव्य है कि नीलांजना के नृत्य के कारण ही ऋषभ को वैराग्य उत्पन्न हुआ था।[5] राज्य संग्रहालय, लखनऊ के एक और पट्ट (बी २०७) पर स्तूप और जिन मूर्ति के पूजन का दृश्य उत्कीर्ण है।[6]

सरस्वती एवं नैगमेषी मूर्तियां—सरस्वती की प्राचीनतम मूर्ति (१३२ ई०) जैन परम्परा की है और मथुरा (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २४) से मिली है।[7] द्विभुज देवी की वाम भुजा में पुस्तक है और अभयमुद्रा प्रदर्शित करती दक्षिण भुजा में अक्षमाला है।[8] अजमुख नैगमेषी एवं उसकी शक्ति की ६ से अधिक मूर्तियां मिली हैं। लम्बे हार से सज्जित देवता की गोद में या कन्धों पर बालक प्रदर्शित हैं। एक पट्ट (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ६२३) पर सम्भवतः कृष्ण वासुदेव के जीवन का कोई दृश्य उत्कीर्ण है।[9] पट्ट पर ऊपर की ओर एक स्तूप और चार ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इनमें एक जिन मूर्ति पार्श्वनाथ की है। नीचे, दाहिनी भुजा से अभयमुद्रा व्यक्त करती एक स्त्री आकृति खड़ी है जिसे लेख में 'अनघश्रेष्ठी विद्या' कहा गया है। बायीं ओर की साधु आकृति को लेख में 'कण्ह श्रमण' कहा गया है जिसके समीप नमस्कार मुद्रा में सात सर्पफणों के छत्र से युक्त एक पुरुष आकृति चित्रित है। **अंतगडदसाओ** में कृष्ण का 'कण्ह वासुदेव' के नाम से उल्लेख है। साथ ही यह भी उल्लेख है कि कण्ह वासुदेव ने दीक्षा ली थी।[10] पट्ट की कण्ह श्रमण की आकृति दीक्षा ग्रहण करने के बाद कृष्ण का अंकन है। समीप की सात सर्पफणों के छत्र वाली आकृति बलराम की हो सकती है।

गुजरात की जूनागढ़ गुफा (ल० दूसरी शती ई०) में मंगलकलश, श्रीवत्स, स्वस्तिक, भद्रासन, मत्स्ययुगल आदि मांगलिक चिह्न उत्कीर्ण हैं।[11]

गुप्तकाल

गुप्तकाल में जैन मूर्तियों की प्राप्ति का क्षेत्र कुछ विस्तृत हो गया। कुषाणकालीन कलावशेष जहां केवल मथुरा एवं चौसा में ही मिले हैं, वहां गुप्तकाल की जैन मूर्तियां मथुरा एवं चौसा के अतिरिक्त राजगिर, विदिशा, उदयगिरि, अकोटा, कहौम और वाराणसी से भी मिली हैं। कुषाणकाल की तुलना में मथुरा में गुप्तकाल में कम जैन मूर्तियां उत्कीर्ण

१ १२६ ई० की एक मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे १९) में संभवनाथ का नाम उत्कीर्ण है।

२ १५७ ई० की एक मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २०) 'अर्हत नन्द्यावर्त' को समर्पित है। के० डी० वाजपेयी ने इसकी पहचान मुनिसुव्रत से की है। पयूरर ने नन्द्यावर्त को प्रतीक का सूचक मानकर जिन की पहचान अरनाथ से की है—शाह, यू० पी०, **पू०नि०**, पृ० ७; स्मिथ, वी० ए०, **पू०नि०**, पृ० १२–१३

३ छः उदाहरणों में 'वर्धमान' का नाम उत्कीर्ण है। एक उदाहरण (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २) में 'महावीर' का नाम भी उत्कीर्ण है।

४ ब्यूह्लर, जी०, 'स्पेसिमेन्स ऑव जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा', **एपि०इण्डि०**, खं० २, पृ० ३१४–१८

५ **पउमचरिय** ३.१२२–२६ ६ श्रीवास्तव, वी० एन०, **पू०नि०**, पृ० ४८–४९

७ वाजपेयी, के० डी०, 'जैन इमेज ऑव सरस्वती इन दि लखनऊ म्यूजियम', **जैन एण्टि०**, खं० ११, अं० २, पृ० १-४

८ अक्षमाला के केवल आठ ही मनके सम्प्रति अवशिष्ट हैं।

९ स्मिथ, वी० ए०, **पू०नि०**, पृ० २४, फलक १७, **चित्र २**

१० **अंतगडदसाओ** (अनु० एल० डी० बर्नेट), पृ० ६१ और आगे **११ स्ट०जै०आ०**, पृ० १३

हुई । इनमें कुषाणकालीन विषय वैविध्य का भी अभाव है । गुप्तकाल में मथुरा में केवल जिनों की स्वतन्त्र एवं कुछ जिन चौमुखी मूर्तियां ही निर्मित हुईं । जिनों के साथ लांछनों[1] एवं यक्ष-यक्षी युगलों[2] के निरूपण की परम्परा भी गुप्तयुग में ही प्रारम्भ हुई ।

मथुरा

मथुरा में गुप्तकाल में पार्श्व की अपेक्षा ऋषभ की अधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं । ऋषभ एवं पार्श्व की पहचान पहले ही की तरह लटकती जटाओं एवं सात सर्पफणों के छत्र के आधार पर की गई है । ऋषभ की जटाएं पहले से अधिक लम्बी हो गईं (चित्र ४)। एक खण्डित मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ८९) में दाहिनी ओर की वनमाला, तथा सर्पफणों एवं हल से युक्त बलराम की मूर्ति के आधार पर जिन की पहचान नेमि से की गई है । एक दूसरी नेमि मूर्ति में भी (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे १२१) बलराम एवं कृष्ण आमूर्तित हैं (चित्र २५) ।[3] इस प्रकार गुप्तकाल में मथुरा में केवल ऋषभ, नेमि और पार्श्व की ही मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं । पीठिका लेखों में जिनों के नामोल्लेख की कुषाणकालीन परम्परा गुप्तकाल में समाप्त हो गई । जिन मूर्तियां निर्वस्त्र हैं । जिनों की ध्यानस्थ मूर्तियां तुलनात्मक दृष्टि से संख्या में अधिक हैं । गुप्तकाल में पार्श्ववर्ती चामरधर सेवकों एवं उड्डीयमान मालाधरों के चित्रण में नियमितता आ गई । अष्ट-प्रातिहार्यों में त्रिछत्र[4] एवं दिव्यध्वनि के अतिरिक्त अन्य का नियमित चित्रण होने लगा । प्रभामण्डल के अलंकरण पर विशेष ध्यान दिया गया ।[5] पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (बी ६८) में एक जिन चौमुखी भी सुरक्षित है । गुप्तकालीन जिन चौमुखों का यह अकेला उदाहरण है । कुषाणकालीन चौमुखी मूर्ति के समान ही यहां भी केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है ।

राजगिर

राजगिर (बिहार) से ल० चौथी शती ई० की चार जिन मूर्तियां मिली हैं । एक मूर्ति की पीठिका पर गुप्त लिपि में लिखे एक लेख में चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का नाम है ।[6] ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर विराजमान जिन की पीठिका के मध्य में चक्रपुरुष और उसके दोनों ओर शंख उत्कीर्ण है । शंख नेमि का लांछन है । अतः मूर्ति नेमि की है । जिन लांछन का प्रदर्शन करने वाली यह प्राचीनतम ज्ञात मूर्ति है । शंख लांछन के समीप ही ध्यानस्थ जिनों की दो लघु मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं ।[7] राजगिर की तीन अन्य मूर्तियों में जिन कायोत्सर्ग में निर्वस्त्र खड़े हैं ।[8]

विदिशा

विदिशा (म० प्र०) से तीन गुप्तकालीन जिन मूर्तियां मिली हैं, जो सम्प्रति विदिशा संग्रहालय में हैं ।[9] इन मूर्तियों के पीठिका-लेखों में महाराजाधिराज रामगुप्त का उल्लेख है जो सम्भवतः गुप्त शासक था । मूर्तियों की निर्माण शैली, लेख की लिपि एवम् 'महाराजाधिराज' उपाधि के साथ रामगुप्त का नामोल्लेख मूर्तियों के चौथी शती ई० में निर्मित होने के समर्थक प्रमाण हैं । ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर आसीन जिन आकृतियां पार्श्ववर्ती चामरधरों से वेष्टित हैं । दो मूर्तियों के पीठिका-लेखों में उनके नाम (पुष्पदन्त एवं चन्द्रप्रभ) उत्कीर्ण हैं । इन मूर्ति लेखों से स्पष्ट है कि पीठिका लेखों

---

१ राजगिर की नेमिनाथ एवं भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) की महावीर मूर्तियां

२ अकोटा की ऋषभनाथ मूर्ति ३ श्रीवास्तव, वी० एन०, **पू०नि०**, पृ० ८९-९२

४ केवल राजगिर की एक जिन मूर्ति में त्रिछत्र उत्कीर्ण है—**स्ट०जै०आ०**, चित्र ३२

५ इनमें हस्तिनख की पंक्ति, विकसित पद्म, पुष्पलता, पद्मकलिकाएं, मनके एवं रज्जु आदि अभिप्राय प्रदर्शित है ।

६ चन्दा, आर० पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', **आ०स०इं०ऐ०रि०**, १९२५-२६, पृ० १२५-२६, फलक ५६, चित्र ६

७ सिंहासन छोरों या धर्मचक्र के दोनों ओर दो ध्यानस्थ जिनों के चित्रण गुप्तकालीन मूर्तियों में लोकप्रिय थे ।

८ चन्दा, आर० पी०, **पू०नि०**, पृ० १२६; **स्ट०जै०आ०**, पृ० १४

९ अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', **ज०ओ०इं०**, खं १८, अं० ३, पृ० २५२-५३

में जिनो के नामोल्लेख की कुषाणकालीन परम्परा गुप्त युग में मथुरा में तो नही, पर विदिशा मे अवश्य लोकप्रिय थी। मध्य प्रदेश के सिरा पहाड़ी (पन्ना जिला)[1] एवं बेसनगर (ग्वालियर)[2] से भी कुछ गुप्तकालीन जिन मूर्तिया मिली है।

कहौम

कहौम (देवरिया, उ० प्र०) के ४६१ ई० के एक स्तम्भ लेख मे पांच जिन मूर्तियों के स्थापित किये जाने का उल्लेख है।[3] स्तम्भ की पांच कायोत्सर्ग एवं दिगम्बर जिन मूर्तियां की पहचान ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर से की गई है।[4] सीतापुर (उ० प्र०) से भी एक जिन मूर्ति मिली है।[5]

वाराणसी

वाराणसी मे मिली ल० छठीं शती ई० की एक ध्यानस्थ महावीर मूर्ति भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) मे संगृहीत है (चित्र ३५)।[6] राजगिर की नेमि मूर्ति के समान ही इसमे भी धर्मचक्र के दोनो ओर महावीर के सिंह लाछन उत्कीर्ण है। वाराणसी से मिली और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (४९.-१९९) मे सुरक्षित ल० छठी-सातवीं शती ई० की एक अजितनाथ की मूर्ति मे भी पीठिका पर गज लाछन की दो आकृतियां उत्कीर्ण है।[7]

अकोटा

अकोटा (बडौदा, गुजरात) से चार गुप्तकालीन कांस्य मूर्तियां मिली है।[8] पांचवीं-छठीं शती ई० की इन श्वेतांबर मूर्तियो मे दो ऋषभ की और दो जीवन्तस्वामी महावीर की हैं (चित्र ५, ३६)। सभी में मूलनायक कायोत्सर्ग में खड़े है। एक ऋषभ मूर्ति मे धर्मचक्र के दोनों ओर दो मृग और पीठिका छोरो पर यक्ष-यक्षी निरूपित है।[9] यक्ष-यक्षी के निरूपण का यह प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है। द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है।[10] खेड्ब्रह्मा एवं वलभी से भी छठी शती ई० की कुछ जैन मूर्तिया मिली है।[11]

चौसा

चौसा मे ६ गुप्तकालीन जिन मूर्तिया मिली हैं, जो सम्प्रति पटना संग्रहालय मे है।[12] दो उदाहरणों मे (पटना संग्रहालय ६५५३, ६५५४) लटकती केश वल्लरियों से युक्त जिन ऋषभ है। दो अन्य जिनों (पटना संग्रहालय ६५५१,

१ वाजपेयी, के० डी०, 'मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला', **अनेकान्त**, वर्ष १७, अं० ३, पृ० ११५-१६

२ **स्ट०जै०आ०**, पृ० १४

३ **का०इं०इं०**, खं० ३, पृ० ६५-६८

४ शाह, सी० जे०, **जैनिजम इन नार्थ इण्डिया**, लन्दन, १९३२, पृ० २०९

५ निगम, एम० एल०, 'ग्लिम्प्सेस ऑव जैनिजम थ्रू आर्किअलाजी इन उत्तर प्रदेश', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बंबई, १९६८, पृ० २१८

६ शाह, यू० पी०, 'ए फ्यू जैन इमेजेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', **छवि**, पृ० २३४, तिवारी, एम० एन० पी०, 'ऐन अन्पब्लिश्ड जिन इमेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', **वि०इं०ज०**, खं० १३, अं० १-२, पृ० ३७३-७५

७ शर्मा, आर० सी०, 'जैन स्कल्पचर्स ऑव दि गुप्त एज इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बम्बई, १९६८, पृ० १५५

८ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बम्बई, १९५९, पृ० २६-२९-अकोटा की जैन मूर्तिया श्वेताम्बर परम्परा की प्राचीनतम जैन मूर्तियां है।

९ **वही**, पृ० २८-२९, फलक १० ए, बी०, ११

१० देवताओं के आयुधो की गणना यहां एवं अन्यत्र निचली दाहिनी भुजा से प्रारम्भ कर घड़ी की सुई की गति के अनुसार की गई है।

११ **स्ट०जै०आ०**, पृ० १६-१७

१२ प्रसाद, एच० के०, **पू०नि०**, पृ० २८२-८३

६५५२) की पहचान एच० के० प्रसाद ने भामण्डल के ऊपर अंकित अर्धचन्द्र के आधार पर चन्द्रप्रभ से की है[१] जो दो कारणों से ठीक नहीं प्रतीत होती। प्रथम, शीर्षभाग मे जिन-लांछन के अंकन की परम्परा अन्यत्र कही नही प्राप्त होती। दूसरे, जिनों के साथ लटकती जटाएं प्रदर्शित है जो उनके ऋषभ होने की सूचक है।

गुप्तोत्तर काल

राजघाट (वाराणसी) से ल० सातवी शती ई० की एक ध्यानस्थ जिन मूर्ति मिली है, जो भारत कला भवन, वाराणसी (२१२) मे सगृहीत है (चित्र २६)।[२] मूर्ति के सिंहासन के नीचे एक वृक्ष (कल्पवृक्ष) उत्कीर्ण है जिसके दोनो ओर द्विभुज यक्ष-यक्षी की मूर्तिया है। वाम भुजा में बालक से युक्त यक्षी अम्बिका है।[३] यक्षी अम्बिका की उपस्थिति के आधार पर जिन की सम्भावित पहचान नेमि से की जा सकती है। देवगढ के मन्दिर २० के समीप से ल० सातवी शती ई० की एक जिन मूर्ति मिली है।[४] राजस्थान के सिरोही जिले के वसंतगढ, नंदिय मन्दिर (महावीर मन्दिर) एवं भटेवा (पार्श्व मूर्ति) से भी सातवी शती ई० की जैन मूर्तिया मिली है। रोहतक (दिल्ली के समीप) से मिली पार्श्व की श्वेताम्बर मूर्ति भी ल० सातवी शती ई० की है।[५]

(२)

मध्य-युग (ल० ८वीं शती ई० से १२वीं शती ई० तक)

द्वितीय अध्याय के समान प्रस्तुत अध्याय में भी जैन मूर्ति अवशेषो का अध्ययन आधुनिक राज्यो के अनुसार किया गया है।

गुजरात

गुजरात के सभी क्षेत्रों से जैन स्थापत्य एवं मूर्तिविज्ञान के अवशेष प्राप्त होते है। कुम्भारिया एव तारगा के जैन मन्दिरों की शिल्प सामग्री प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व की है। गुजरात की जैन शिल्प सामग्री श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। दिगम्बर मूर्तिया केवल धाक से ही मिली है। गुजरात की जैन मूर्तियों में जिन मूर्तियों की सख्या सबसे अधिक है। ऋषभ एव पार्श्व की मूर्तिया सर्वाधिक है। मन्दिरों मे २४ देवकुलिकाओं को संयुक्त करने की परम्परा थी जो निश्चित ही २४ जिनों की अवधारणा से प्रभावित थी। जिनों के जीवनदृश्यों एव समवसरणों का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। जिनों के बाद लोकप्रियता के क्रम से महाविद्याओं का दूसरा स्थान है। यक्ष-यक्षी युगलो मे सर्वानुभूति एव अम्बिका सर्वाधिक लोकप्रिय थे। अधिकांश जिनों के साथ यही यक्ष-यक्षी युगल निरूपित है। गोमुख-चक्रेश्वरी एव धरणेन्द्र-पद्मावती यक्ष-यक्षी युगलों की भी कुछ मूर्तिया मिली है। सरस्वती, शान्तिदेवी, ब्रह्मशान्ति यक्ष, गणेश (चित्र ७७) अष्ट-दिक्पाल, क्षेत्रपाल एवं २४ जिनो के माता पिता की भी मूर्तिया प्राप्त हुई है।

धांक (सौराष्ट्र) की जैन गुफाओं मे ल० आठवीं शती ई० की ऋषभ, शान्ति, पार्श्व एवं महावीर जिनो की दिगम्बर मूर्तियां उत्कीर्ण है।[६] पार्श्व के साथ यक्ष-यक्षी कुबेर एवं अम्बिका है।[७] अकोटा की जैन कांस्य मूर्तियो (ल० छठी

१ वही, पृ० २८३

२ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ए तीर्थंकर इमेज ऐट भारत कला भवन, वाराणसी', जैन जर्नल, खं० ६, अं० १, पृ० ४१-४३

३ अम्बिका की भुजा मे आम्रलुम्बि नहीं प्रदर्शित है। ज्ञातव्य है कि अम्बिका की भुजा में आम्रलुम्बि ८ वी-९ वी शती ई० की कुछ अन्य मूर्तियो मे भी नहीं प्रदर्शित है।

४ जि०इ०दे०, पृ० ५२

५ स्ट०जै०आ०, पृ० १६-१७, ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९३

६ संकलिया, एच०डी०,'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़',ज०रा०ए०सो०,जुलाई १९३८, पृ० ४२६-३०

७ स्ट०जै०आ०, पृ० १७

मे ११ वी शती ई०) में ऋषभ एवं पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां है। अकोटा से अम्बिका, सर्वानुभूति, सरस्वती एवं अच्छुप्ता विद्या की भी मूर्तिया मिली है।[1] थान (सौराष्ट्र) में दसवी-ग्यारहवी शती ई० के दो जैन मन्दिर एवं जिन और अम्बिका की मूर्तियां हैं। घोघा (भावनगर) से ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की कई जैन मूर्तियां मिली है।[2] अहमदाबाद से भी कुछ जैन मूर्तियां मिली है जिनमें थराद (थारापद्र) की १०५३ ई० की अजित मूर्ति मुख्य हे।[3] वडनगर और सेजकपुर मे दसवी-ग्यारहवी शती ई० के जैन मन्दिर है। कुंभारिया एवं तारंगा मे ग्यारहवी से तेरहवी शती ई० के जैन मन्दिर है, जिनकी शिल्प सामग्री का यहां कुछ विस्तार से उल्लेख किया जायगा। गिरनार एव शत्रुंजय पहाडियों पर कुमारपाल के काल के नेमिनाथ एवं आदिनाथ मन्दिर है। भद्रेश्वर (कच्छ) मे जगदू शाह के काल का बारहवी शती ई० का एक जैन मन्दिर है।

कुंभारिया

कुंभारिया गुजरात के बनासकांठा जिले मे स्थित है। यहां चौलुक्य शासकों के काल के ५ श्वेताम्बर जैन मंदिर है। ये मन्दिर (११ वी–१३ वीं शती ई०) सम्भव, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर को समर्पित है।[4] यहा महाविद्याओ, सरस्वती, महालक्ष्मी एवं शान्तिदेवी का चित्रण सर्वाधिक लोकप्रिय था। महाविद्याओं मे रोहिणी, अप्रतिचक्रा, अच्छुप्ता एवं वैरोट्या सर्वाधिक, और मानवी, गान्धारी, काली, सर्वास्त्रमहाज्वाला एवं मानसी अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय थी। सर्वानुभूति-अम्बिका सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी युगल था। गोमुख-चक्रेश्वरी एवं धरणेन्द्र-पद्मावती की भी कुछ मूर्तिया है। इनके अतिरिक्त ब्रह्मशान्ति यक्ष, गणेश, जिनो के जीवनदृश्य और २४ जिनों के माता-पिता भी निरूपित हुए।[5] प्रत्येक मन्दिर की शिल्प सामग्री सक्षेप में इस प्रकार है :

शान्तिनाथ मन्दिर—देवकुलिका ५ की जिन मूर्ति के वि० सं० ११४० (=१०८३ ई०) के लेख से शांतिनाथ मन्दिर कुंभारिया का सबसे प्राचीन मन्दिर सिद्ध होता है। पर इस मन्दिर की चार जिन मूर्तियों के वि० सं० ११३३ के लेख के आधार पर इसे १०७७ ई० मे निर्मित माना गया है।[6] १६ देवकुलिकाओं और ८ रथिकाओं सहित मन्दिर चतुर्विंशति जिनालय हे। अधिकाश देवकुलिकाओं की जिन मूर्तियों मे मूलनायक की मूर्ति खण्डित है। जिन मूर्तियों मे परिकर की आकृतियो एवं यक्ष-यक्षी के चित्रण मे विविधता का अभाव और एकरसता दृष्टिगत होती है।

मूलनायक के पार्श्वों मे चामरधर सेवक या कायोत्सर्ग मे दो जिन आमूर्तित है। पार्श्ववर्ती जिन आकृतिया या तो लांछन रहित है, या फिर पांच और सात सर्पफणो के छत्र से युक्त सुपार्श्व और पार्श्व की है। परिकर में भी कुछ लघु जिन आकृतिया उत्कीर्ण है। पार्श्ववर्ती आकृतियां के ऊपर वेणु और वीणा वादन करती दो आकृतिया है। मूलनायक के शीर्ष भाग में त्रिछत्र, कलश और नमस्कार-मुद्रा में एक मानव आकृति है। मानव आकृति के दोनों ओर वाद्य-वादन करती (मुख्यत: दुन्दुभि) और गोमुख आकृतिया निरूपित है। परिकर में दो गज भी उत्कीर्ण है जिनके शुण्ड में कभी-कभी अभिषेक हेतु कलश प्रदर्शित है। सिंहासन के मध्य मे चतुर्भुज शान्तिदेवी निरूपित है[7] जिसके दोनों ओर दो गज और सिंहासन की सूचक दो सिंह आकृतिया उत्कीर्ण है।[8] शान्तिदेवी की आकृति के नीचे दो मृगों से वेष्टित धर्मचक्र उत्कीर्ण है।[9]

---

१ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० ३०-३१, ३३-३४, ३६-३७, ४३, ४६, ४८, ४९, ५२

२ **इण्डियन आर्किअलाजी–ए रिव्यू**, १९६१-६२, पृ० ९७

३ मेहता, एन० सी०, 'ए मेडिवल जैन इमेज आॅव अजितनाथ–१०५३ ए० डी०', **इण्डि०एन्टि०**, खं०५६, पृ०७२-७४

४ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ए ब्रीफ सर्वे आॅव दि आइकानोग्राफिक डेटा एट कुंभारिया, नार्थ गुजरात', **संबोधि**, खं २, अं० १, पृ० ७–१४

५ जिनों के जीवनदृश्यों एवं माता-पिता के सामूहिक अकन के प्राचीनतम उदाहरण कुंभारिया मन्दिर मे है।

६ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, **दि स्ट्रक्चरल टेम्पल्स आॅव गुजरात**, अहमदाबाद, १९६८, पृ० १२९

७ शान्तिदेवी वरदमुद्रा, पद्म, पद्म (या पुस्तक) और फल (या कमण्डलु) से युक्त है।

८ खजुराहो की दो जिन मूर्तियों (मन्दिर १ और २) में भी सिंहासन के मध्य मे शान्तिदेवी निरूपित है।

९ सिंहासन पर दो गजो, मृगो एवं शान्तिदेवी, तथा परिकर में वाद्य-वादन करती और गोमुख आकृतियों के चित्रण गुजरात-राजस्थान की श्वेताम्बर जिन मूर्तियों में ही प्राप्त होते हैं।

मूर्तियों में सामान्यतः जिनों के लांछन नहीं प्रदर्शित है। केवल लटकती जटाओं एवं पांच और सात सर्पफणों के छत्रों के आधार पर क्रमशः ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व की पहचान सम्भव है। लांछनो के चित्रण के स्थान पर पीठिका लेखो में जिनों के नामोल्लेख की परम्परा लोकप्रिय थी।[१] सिंहासन छोरों पर अधिकांशतः यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका आमूर्तित है। कुछ उदाहरणों में ऋषभ एवं पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी भी निरूपित है। गुजरात-राजस्थान के अन्य क्षेत्रों की श्वेताम्बर जिन मूर्तियों में भी यही सामान्य विशेषताएं प्रदर्शित है। मन्दिर की भ्रमिका के वितानो पर जिनों के जीवनदृश्यों, मुख्यतः पंचकल्याणकों के विशद चित्रण है। इनमें ऋषभ, अर (?)[२], शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के जीवनदृश्य हैं (चित्र १४, २९, ४१)। दक्षिण-पूर्वी कोने की देवकुलिका में १२०९ ई० का एक जिन समवसरण है। पश्चिमी भ्रमिका के वितान पर २४ जिनों के माता-पिता भी आमूर्तित है। आकृतियों के नीचे उनके नाम खुदे है। माता की गोद में एक बालक (जिन) आकृति बैठी है। कुंभारिया के महावीर मन्दिर के वितान पर भी जिनो के माता-पिता चित्रित है।

मन्दिर के विभिन्न भागों पर रोहिणी, वज्रांकुशा, वज्रशृंखला, अप्रतिचक्रा, पुरुषदत्ता, वैरोट्या, अच्छुप्ता, मानसी और महामानसी महाविद्याओं की अनेक मूर्तियां है। महाविद्या मानवी की एक भी मूर्ति नहीं है। पूर्वी भ्रमिका के वितान पर १६ महाविद्याओं का सामूहिक चित्रण है (चित्र ७८)। १६ महाविद्याओं के सामूहिक चित्रण का यह प्राचीनतम, और गुजरात के सन्दर्भ में एकमात्र उदाहरण है।[३] ललितमुद्रा में आसीन इन महाविद्याओं के साथ वाहन नहीं प्रदर्शित है। उनके निरूपण में पारम्परिक क्रम का भी निर्वाह नहीं किया गया है। मानसी एवं महामानसी के अतिरिक्त महाविद्या समूह की अन्य सभी आकृतियों की पहचान सम्भव है।

महाविद्याओं के अतिरिक्त सरस्वती[४] एवं शान्तिदेवी[५] की भी कई मूर्तियां है। पश्चिमी शिखर के समीप द्विभुज अम्बिका की एक मूर्ति है। त्रिकमण्डप के वितान पर ब्रह्मशान्ति यक्ष, क्षेत्रपाल और अग्नि निरूपित है। त्रिकमण्डप के सोपान की दीवार पर भी ब्रह्मशान्ति यक्ष की एक मूर्ति है।[६] मन्दिर में ऐसी भी दो देवियां है जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। एक देवी की भुजाओं में अंकुश एवं पाश है और वाहन गज या सिंह है। देवी सर्वानुभूति यक्ष की मूर्तिवैज्ञानिक विशेषताओं से प्रभावित प्रतीत होती है। दूसरी देवी की भुजाओं में त्रिशूल एवं सर्प है और वाहन वृषभ है।[७] देवी हिन्दू शिवा के लाक्षणिक स्वरूप से प्रभावित है। ये देवियां न केवल कुंभारिया वरन् गुजरात-राजस्थान के अन्य श्वेताम्बर स्थलों पर भी लोकप्रिय थी।

महावीर मंदिर—१०६२ई० का महावीर मन्दिर भी चतुर्विंशति जिनालय है।[८] देवकुलिकाओं की जिन मूर्तियां १०८३ ई० से ११२९ ई० के मध्य की हैं। देवकुलिका ७ और १५ की पांच और सात सर्पफणों के छत्रों से युक्त सुपार्श्व

१ पीठिका लेखो के आधार पर शान्ति (देवकुलिका १) और पद्मप्रभ (देवकुलिका ७) की पहचान सम्भव है।

२ अर के जीवनदृश्य की सम्भावित पहचान केवल लेख के 'सुदर्शन' एवं 'देवी' नामों के आधार पर की जा सकती है जिनका जैन परम्परा में अर के पिता और माता के रूप में उल्लेख है।

३ तिवारी, एम०एन०पी०, 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज् रेप्रिजेन्टेड इन दि सीलिंग ऑव दि शान्तिनाथ टेम्पल्, कुंभारिया', **संबोधि**, ख० २, अं० ३, पृ० १५–२२

४ पद्म, पुस्तक, वीणा एवं स्रुक में से कोई दो सामग्री ऊपरी भुजाओं में, और अभय-(या वरद-) मुद्रा एवं कमण्डलु निचली भुजाओं में है।

५ शान्तिदेवी की ऊपरी दो भुजाओं में पद्म है।

६ ब्रह्मशान्ति यक्ष के करों में वरदाक्ष, छत्र, पुस्तक एवं कमण्डलु प्रदर्शित है।

७ त्रिशूल, सर्प एवं वृषभ वाहन से युक्त देवी की एक मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के मूलप्रासाद की भित्ति पर भी है।

८ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, पू०नि०, पृ० १२७

एवं पार्श्व की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। पश्चिमी भ्रमिका के वितानों पर ऋषभ, शांति, नेमि, पार्श्व और महावीर के जीवनदृश्य उत्कीर्ण है (चित्र १३, २२, ४०)। एक वितान पर २४ जिनों के माता-पिता की मूर्तियां अंकित है। मन्दिर के पश्चिमी और उत्तरी प्रवेश-द्वारों के समीप २४ जिनों की माताओं का चित्रण करने वाले दो पट्ट भी सुरक्षित हैं। प्रत्येक स्त्री आकृति की दाहिनी भुजा मे फल और बायीं मे बालक स्थित है। १२८१ई० के एक पट्ट पर मुनिसुव्रत के जीवन की शकुनिका विहार की कथा उत्कीर्ण है।[1] शान्तिनाथ मन्दिर के समान ही यहां भी महाविद्याओं, शान्तिदेवी, सरस्वती, अम्बिका, सर्वानुभूति एवं ब्रह्मशान्ति की अनेक मूर्तियां है (चित्र ८९)। यहां मानवी महाविद्या की भी मूर्तियां मिली हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण बारहवीं शती ई० मे हुआ।[2] देवकुलिकाओं मे ११७९ ई० से १२०२ई० के मध्य की २४ जिन मूर्तियां सुरक्षित हैं। गूढमण्डप की दो पार्श्व मूर्तियों मे यक्ष और यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है, पर यहा उनके सिरों पर सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित है। गूढमण्डप ही में अजित और शान्ति (१११९–२० ई०) की भी दो मूर्तिया है (चित्र २०)। महाविद्याओं में ज्वालापात्र से युक्त ज्वालामालिनी विशेष लोकप्रिय थी। मानवी, गान्धारी[3] एवं मानसी[4] की केवल एक-एक मूर्ति है। सरस्वती, अम्बिका एवं शान्तिदेवी की भी कई मूर्तियां है। मन्दिर मे चार ऐसी भी चतुर्भुज देवियां है जिनकी पहचान सम्भव नहीं है।[5] देवकुलिका ५ की ऐसी एक मयूरवाहना देवी की भुजाओं मे वरदमुद्रा, त्रिशूल, स्रुक एवं फल है। दूसरी वृषभवाहना देवी के करों मे वरदमुद्रा, पाश, ध्वज एवं फल है। तीसरी देवी की ऊपरी भुजाओं मे त्रिशूल, एवं चौथी देवी की ऊपरी भुजाओं में शूल एवं अंकुश प्रदर्शित है।

नेमिनाथ मन्दिर—नेमिनाथ मन्दिर भी बारहवीं शती ई० में बना। यह भी चतुर्विंशति जिनालय है।[6] यह कुम्भारिया का विशालतम जैन मन्दिर है। गूढमण्डप के एक पट्ट (१२५३ ई०) पर १७२ जिनों की मूर्तिया उत्कीर्ण है। गूढमण्डप मे पांच और सात सर्पफणों के छत्रों वाली सुपार्श्व (स्वस्तिक लाछन सहित) एवं पार्श्व (११५७ ई०) की दो मूर्तियां है। दोनों उदाहरणों मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। जटाओं से शोभित गूढमण्डप की दो ऋषभ मूर्तियों (१२५७ ई०) मे यक्षी चक्रेश्वरी है पर यक्ष सर्वानुभूति ही है। त्रिकमण्डप की रथिका मे १२६५ ई० का एक नन्दीश्वर पट्ट है।

मन्दिर की भीति पर महाविद्याओं, यक्षियों, चतुर्भुज दिक्पालों एवं गणेश की आकृतियां उत्कीर्ण है। महाविद्याओं में केवल रोहिणी, प्रज्ञप्ति, गांधारी, मानसी एवं महामानसी की मूर्तिया नहीं उत्कीर्ण है। ऊपरी भुजाओं मे त्रिशूल या पाश धारण करने वाली मन्दिर की कुछ देवियों की पहचान सम्भव नहीं है। कुछ मूर्तियों मे देवी की दो भुजाओं मे धन का थैला प्रदर्शित है। देवी का स्वरूप सर्वानुभूति यक्ष से प्रभावित प्रतीत होता है। अधिष्ठान पर चतुर्भुज गणेश की भी एक मूर्ति है। कुंभारिया मे गणेश की मूर्ति का यह अकेला उदाहरण है (चित्र ७७)। मूषकारूढ़ गणेश के करों मे स्वदंत, परशु, सनालपद्म और मोदकपात्र है। मुखमण्डप की पूर्वी भित्ति पर चतुर्भुज महालक्ष्मी की ध्यानमुद्रा मे आसीन मूर्ति है। मूर्तिलेख मे देवी को 'महालक्ष्मी' कहा गया है। देवकुलिकाओं की पश्चिमी भित्ति पर मयूरवाहना सरस्वती[7] और पद्मावती यक्षी (२)[8] निरूपित है (चित्र ५६, ७६)।

---

१ दो पूर्ववर्ती उदाहरण जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर और लूणवसही मे है।

२ मन्दिर का प्राचीनतम लेख ११०४ ई० का है।

३ देवकुलिका १८—मुसल और वज्र से युक्त।

४ देवकुलिका ५—हंसवाहना एवं वज्र और पाश से युक्त।

५ इन चतुर्भुज मूर्तियों मे देवियों की निचली भुजाओं में अभय-(या वरद-) मुद्रा और फल (या कलश) प्रदर्शित है।

६ मन्दिर का प्राचीनतम लेख वि०सं० ११९१ (=११३४ ई०) का है—सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, **पू०नि०**, पृ० १५८

७ सरस्वती के साथ मयूर वाहन का उल्लेख केवल दिगम्बर परम्परा मे है।

८ कोष्ठ की संख्या यहां और अन्यत्र मूर्ति-संख्या की सूचक है।

सम्भवनाथ मन्दिर—सम्भवनाथ मन्दिर का निर्माण तेरहवीं शती ई० में हुआ ।[1] मन्दिर की भित्ति पर महाविद्याओं, सरस्वती एवं शान्तिदेवी की मूर्तियां है ।[2] महाविद्याओ में केवल रोहिणी, चक्रेश्वरी(२), वज्रांकुशा(३), महाकाली एवं सर्वास्त्रमहाज्वाला (मेषवाहना) ही आमूर्तित है । जंघा और अधिष्ठान की दो देवियो की पहचान सम्भव नहीं है । एक की ऊपरी भुजाओं मे गदा और वज्र, तथा दूसरी की भुजाओं में धन का थैला और अंकुश प्रदर्शित है ।

तारंगा

अजितनाथ मन्दिर—मेहसाणा जिले की तारंगा पहाड़ी पर चौलुक्य शासक कुमारपाल (११४३–७२ ई०) के शासनकाल मे निर्मित अजितनाथ का विशाल श्वेताम्बर जैन मन्दिर है (चित्र ७९) ।[3] गर्भगृह एवं गूढमण्डप मे तेरहवीं-चौदहवीं शती ई० की जिन मूर्तियां है । मन्दिर की मूर्तियां चार से दस भुजाओं वाली है । मन्दिर मे महाविद्याओ की सर्वाधिक मूर्तियां है । महाविद्याओं के साथ वाहनों का नियमित प्रदर्शन नहीं हुआ है । महाविद्याओं के निरूपण मे सामान्यतः **निर्वाणकलिका** एवं **आचारदिनकर** के निर्देशों का पालन किया गया है । मन्दिर की महाविद्या मूर्तियों की संख्या के आधार पर उनकी लोकप्रियता का क्रम इस प्रकार है—अप्रतिचक्रा (१७), रोहिणी (८), वज्रशृंखला (८), महाकाली (६), वज्रांकुशा (४), प्रज्ञप्ति(३), गौरी(३), नरदत्ता(३), महामानसी (३), काली (२), वैरोट्या (२) एवं सर्वास्त्रमहाज्वाला (१) । अन्यत्र विशेष लोकप्रिय गान्धारी, मानवी, अच्छुप्ता एवं मानसी की एक भी मूर्ति नहीं उत्कीर्ण है । सरस्वती (१४) और शान्तिदेवी (२१) की भी मूर्तियां है ।

अन्य श्वेताम्बर स्थलों के समान यहां भी यक्षी चक्रेश्वरी और महाविद्या अप्रतिचक्रा के मध्य स्वरूपगत भेद कर पाना कठिन है ।[4] अम्बिका यक्षी की केवल दो मूर्तियां है । सिंहवाहना अम्बिका के करों मे वरदमुद्रा, आम्रलुम्बि, पाश एवं बालक है । मन्दिर मे गोमुख (१) एवं सर्वानुभूति (३) यक्षों और क्षेत्रपाल (१) की भी मूर्तियां है । श्मश्रु युक्त क्षेत्रपाल की दो भुजाओं मे गदा और सर्प है । भित्ति पर अष्ट-दिक्पाल मूर्तियों के तीन समूह उत्कीर्ण है । मन्दिर पर ऐसे कई देवों की भी मूर्तियां है जिनकी पहचान सम्भव नहीं है । ऐसी एक महिषारूढ देवता(?) की मूर्ति में अवशिष्ट भुजाओं मे वरदमुद्रा, पाश और फल है । देवियों मे दो ऊपरी भुजाओं में त्रिशूल एवं सर्प,या अंकुश एवं पाश धारण करने वाली देवियां विशेष लोकप्रिय थी । इनकी निचली भुजाओं मे वरदमुद्रा एवं फल (या कलश) है । स्मरणीय है कि ये देवियां गुजरात एवं राजस्थान के अन्य मन्दिरों मे भी लोकप्रिय थी । एक कुक्कुटवाहना देवी (दक्षिणी भित्ति) की अवशिष्ट भुजाओं मे वरदमुद्रा, पद्म एवं दण्ड है । सिंहवाहना एक देवी (पश्चिमी जंघा) की भुजाओं मे वरदमुद्रा, परशु, पाश और फल है । एक मयूरवाहना देवी (उत्तरी भित्ति) की सुरक्षित भुजा मे त्रिशूल-घण्ट है । वृषभवाहना एक देवी (पश्चिमी भित्ति) की अवशिष्ट भुजाओं में वज्र और जलपात्र है । उत्तरी भित्ति की एक हंसवाहना (?) देवी के हाथों मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म, सर्प, त्रिशूल और कमण्डलु है । मन्दिर के अधिष्ठान पर भी ऐसी तीन देवियां उत्कीर्ण है जिनकी पहचान सम्भव नहीं है । पहली देवी (उत्तरी) की भुजाओं मे वरदमुद्रा, अंकुश, सनालपद्म, कमण्डलु, दूसरी देवी (दक्षिण) की भुजाओं मे वरदमुद्रा, पाश, वज्र एवं फल, और तीसरी देवी (उत्तरी) की भुजाओं मे वरदमुद्रा, परशु, घण्ट एवं फल है ।

राजस्थान

ल० आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों मे विपुल संख्या में जैन मन्दिरों एवं

---

१ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, पू०नि०, पृ० १५८

२ तिवारी, एम०एन०पी०, 'कुम्भारिया के सम्भवनाथ मन्दिर की जैन देवियां', **अनेकान्त**,वर्ष २५,अं०३, पृ० १०१-०३

३ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, 'दि आर्किटेक्चरल ट्रीटमेन्ट ऑव दि अजितनाथ टेम्पल् ऐट तारंगा', **विद्या**, खं० १४, अं० २, पृ० ५०–५७

४ गरुडवाहना देवी के करों में वरद-(या अभय-)मुद्रा, शंख, चक्र एवं गदा प्रदर्शित है ।

मूर्तियों का निर्माण हुआ ।[1] राजस्थान में भी महाविद्याओं का चित्रण ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। महाविद्याओं की प्राचीनतम मूर्तियां इसी क्षेत्र में उत्कीर्ण हुई ।[2] इस क्षेत्र के भी सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी युगल सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही थे। जिनों के जीवनदृश्यों, सर्वानुभूति एवं ब्रह्मशान्ति यक्षों, चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, सिद्धायिका यक्षियों और सरस्वती, शान्तिदेवी, जीवन्तस्वामी महावीर, गणेश एवं कृष्ण की भी इस क्षेत्र में प्रचुर संख्या में मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। जिनों के लांछनों के चित्रण के स्थान पर पीठिका लेखों में जिनों के नामोल्लेख की परम्परा ही लोकप्रिय थी। केवल ऋषभ एवं पार्श्व के साथ क्रमशः जटाओं एवं सर्पफणों का प्रदर्शन हुआ है। राजस्थान में इन्हीं दो जिनों की सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। इस क्षेत्र में श्वेताम्बर स्थलों का प्राधान्य है। केवल भरतपुर, कोटा, बांसवाड़ा, अलवर एवं बिजौलिया आदि स्थलों से दिगम्बर मूर्तियां मिली है।

ओसिया

महावीर मन्दिर—ओसिया (जोधपुर) का महावीर मन्दिर (श्वेतांबर) राजस्थान का प्राचीनतम सुरक्षित जैन मन्दिर है।[3] महावीर मन्दिर के समक्ष एक तोरण और बलानक (या नालमण्डप) है। बलानक के पूर्वी भाग में एक देवकुलिका संयुक्त है। महावीर मन्दिर के पूर्व और पश्चिम में चार अन्य देवकुलिकाएं भी है। बलानक में ९५६ ई० (वि०सं०१०१३) का एक लेख है।[4] लेख, स्थापत्य एवं शिल्प के आधार पर विद्वानों ने महावीर मन्दिर को आठवीं[5] और नवीं[6] शती ई० का निर्माण माना है। ९५६ ई० के कुछ बाद ही बलानक से जुड़ी पूर्वी देवकुलिका (१० वीं शती ई०) निर्मित हुई। महावीर मन्दिर के समीप की पूर्वी और पश्चिमी देवकुलिकाएं एवं तोरण (१०१८ ई०) ग्यारहवीं शती ई० में बने।[7] जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से महावीर मन्दिर की महाविद्या मूर्तियां विशेष महत्व की हैं। ये महाविद्या की आरम्भिक मूर्तियां है। महाविद्याओं के अतिरिक्त सर्वानुभूति एवं पार्श्व यक्षों, और अम्बिका एवं पद्मावती यक्षियों की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। साथ ही द्विभुज अष्ट-दिक्पालों, सरस्वती, महालक्ष्मी और जैन युगलों की भी मूर्तियां मिली है। महावीर मन्दिर के समान ही देवकुलिकाओं पर भी महाविद्याओं, सर्वानुभूति यक्ष, अम्बिका यक्षी, गणेश और जीवन्तस्वामी महावीर की मूर्तियां है।

महावीर मन्दिर की द्विभुज एवं चतुर्भुज महाविद्याएं वाहनों से युक्त है। यहां प्रज्ञप्ति, नरदत्ता, गांधारी, महाज्वाला, मानवी एवं मानसी महाविद्याओं के अतिरिक्त अन्य सभी महाविद्याओं की मूर्तियां उत्कीर्ण है। महाविद्याओं के निरूपण में सामान्यतः बप्पभट्टि की **चतुर्विंशतिका** के निर्देशों का पालन किया गया है।[8] मन्दिर में महालक्ष्मी (१), पद्मावती (१),

१ जैन, के० सी०, **जैनिज़म इन राजस्थान**, शोलापुर, १९६३, पृ० १११ : हमने अपने अध्ययन में लूणवसही (१२३०ई०) की शिल्प सामग्री का भी उल्लेख किया है क्योंकि विषयवस्तु एवम् लाक्षणिक विशेषताओं की दृष्टि से लूणवसही की सामग्री पूर्ववर्ती विमलवसही (१०३१ ई०) की अनुगामिनी है।

२ ये मूर्तियां ओसिया के महावीर मन्दिर पर है।

३ ढाकी, एम० ए०, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बंबई, १९६८, पृ० ३१२

४ नाहर, पी० सी०, **जैन इन्स्क्रिप्शन्स**, भाग १, कलकत्ता, १९१८, पृ० १९२-९४, लेख सं० ७८८

५ भण्डारकर, डी० आर०, 'दि टेम्पल्स ऑव ओसिया', **आ०स०इं०ऐ०रि०**, १९०८-०९, पृ० १०८, **प्रो०रि०आ०स०इं०,वे०स०**, १९०७, पृ० ३६-३७; ब्राउन, पर्सी, **इण्डियन आर्किटेक्चर**, बम्बई, १९७१ (पु० मु०), पृ०१३५, कृष्ण देव, **टेम्पल्स ऑव नार्थ इण्डिया**, दिल्ली, १९६९, पृ० ३१; ढाकी, एम० ए०, **पू०नि०**, पृ० ३२४-२५

६ त्रिपाठी, एल० के०, **एवोल्यूशन ऑव टेम्पल् आर्किटेक्चर इन नार्दर्न इण्डिया**, पीएच० डी० की अप्रकाशित थीसिस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६८, पृ० १५४, १९९-२०३

७ भण्डारकर, डी० आर०, **पू०नि०**, पृ० १०८; ढाकी, एम० ए०, **पू०नि०**, पृ० ३२५-२६

८ पर गौरी गोधा के स्थान पर वृषभवाहना है। गजारूढ़ वज्रांकुशी की भुजाओं में ग्रन्थ के निर्देशों के विरुद्ध जलपात्र एवं मुद्रा प्रदर्शित हैं। ग्रन्थ में वज्र एवं अंकुश के प्रदर्शन का निर्देश है।

सरस्वती (४), सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्व यक्ष, तथा अर्द्धमण्डप के पूर्वी छज्जे पर मुनिसुव्रत के वरुण यक्ष की भी मूर्तियां दृष्टिगत होती हैं।[1] मन्दिर पर तीन ऐसी भी मूर्तियां हैं जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। अर्द्धमण्डप के उत्तरी छज्जे पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका से युक्त ऋषभ की एक मूर्ति है।[2] गूढ़मण्डप के प्रवेश-द्वार के दहलीज पर भी सर्वानुभूति और अम्बिका निरूपित हैं। सर्वानुभूति की दो अन्य मूर्तियां गूढ़मण्डप की पश्चिमी भित्ति पर हैं। मन्दिर की भित्ति पर त्रिभंग में खड़ी द्विभुज अष्ट-दिक्पालों की सवाहन मूर्तियां भी हैं।[3] गूढ़मण्डप में सुपार्श्व एवं पार्श्व की दो मूर्तियां हैं।

देवकुलिकाओं[4] की सवाहन महाविद्या मूर्तियां द्विभुज, चतुर्भुज एवं षड्भुज[5] हैं। इनमें मानवी और महाज्वाला महाविद्याओं की एक भी मूर्ति नहीं है। हंसवाहना मानसी की केवल एक ही मूर्ति (देवकुलिका ४) है। देवकुलिकाओं की महाविद्या मूर्तियों के निरूपण में महावीर मन्दिर की पूर्ववर्ती मूर्तियों एवं चतुर्विंशतिका के प्रभाव स्पष्ट हैं। देवकुलिकाओं पर सरस्वती (६), अम्बिका यक्षी (२),[6] सर्वानुभूति यक्ष, अष्ट-दिक्पालों, गणेश (३) एवं जीवन्तस्वामी महावीर की मूर्तियां हैं। सरस्वती की भुजाओं में पद्म और पुस्तक प्रदर्शित हैं। एक मूर्ति (देवकुलिका १) में सरस्वती के दोनों हाथों में वीणा है। देवकुलिकाओं की गणेश मूर्तियां जैन शिल्प में गणेश की प्राचीनतम ज्ञात मूर्तियां हैं। इनमें चतुर्भुज एवं गजमुख गणेश परशु (या शूल), स्वदंत (या अंकुश), पद्म एवं मोदकपात्र से युक्त हैं।[7] पाश और शंख से युक्त एक द्विभुज देवी की पहचान सम्भव नहीं है। देवकुलिका १ के दक्षिणी अधिष्ठान पर श्मश्रु एवं जटामुकुट से शोभित और ललितमुद्रा में आसीन ब्रह्मशान्ति यक्ष की एक चतुर्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है। ब्रह्मशान्ति की भुजाओं में वरदमुद्रा, स्रुक, पुस्तक एवं जलपात्र हैं। वलानक में १०१९ ई० की एक विशाल पार्श्वनाथ मूर्ति रखी है।

देवकुलिकाओं और तोरणद्वार पर जीवन्तस्वामी महावीर की कुल आठ मूर्तियां हैं (चित्र ३७)। इनमें मुकुट एवं हार आदि आभूषणों से सज्जित जीवन्तस्वामी महावीर कायोत्सर्ग में खड़े हैं। जीवन्तस्वामी की तीन स्वतन्त्र मूर्तियां (११वीं शती ई०) वलानक में भी सुरक्षित हैं।[8] इन मूर्तियों में जीवन्तस्वामी के साथ अष्ट-प्रातिहार्य,[9] यक्ष-यक्षी युगल, महाविद्याएं एवं लघु जिन आकृतियां भी निरूपित हैं। देवकुलिका १ और ३ के वेदिकाबन्धों पर जिनों के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। ये जीवनदृश्य सम्भवतः ऋषभ और पार्श्व से सम्बन्धित हैं। देवकुलिका २ के वेदिकाबन्ध पर किसी जिन के जन्म अभिषेक का दृश्य है। वलानक के एक पट्ट (१२०२ ई०) पर २२ जिनों की माताओं की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं जिनकी गोद में एक-एक बालक बैठा है। ओसिया के हिन्दू मन्दिरों पर भी दो जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं जो उस स्थल पर हिन्दुओं एवं जैनों के मध्य की सामनस्यता की साक्षी है। एक मूर्ति (पार्श्वनाथ) सूर्य मन्दिर की पूर्वी भित्ति पर है और दूसरी पूर्वी समूह के पंचरथ मन्दिर पर है।

---

१ ढाकी, एम० ए०, पूर्वनि०, पृ० ३१३

२ सर्वानुभूति धन के थैले और अम्बिका आम्रलुम्बि एवं बालक से युक्त हैं।

३ दो भुजाओं में शूल एवं सर्प से युक्त ईशान् चतुर्भुज है, और कुबेर एवं यम की दो-दो मूर्तियां हैं।

४ पूर्वी और पश्चिमी समूहों की उत्तरी (प्रथम) देवकुलिकाओं को क्रमशः १ और २ एवं उसी क्रम में दूसरी देवकुलिकाओं को ३ और ४ की संख्याएं देकर अभिव्यक्त किया गया है। वलानक की पूर्वी देवकुलिका की संख्या ५ है।

५ केवल महामानसी ही षड्भुज है।

६ देवकुलिकाओं (१ और २) पर अम्बिका की लाक्षणिक विशेषताओं से प्रभावित ५ द्विभुज स्त्री मूर्तियां हैं जो सम्भवतः मातृदेवियों की मूर्तियां हैं। इन आकृतियों की एक भुजा में बालक और दूसरी में फल या जलपात्र है। देवकुलिका १ की दक्षिण जंघा की एक मूर्ति में बालक के स्थान पर आम्रलुम्बि भी प्रदर्शित है।

७ एक उदाहरण में वाहन गज है।

८ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ओसिया से प्राप्त जीवन्तस्वामी की अप्रकाशित मूर्तियां', **विश्वभारती**, खं० १४, अं० ३, पृ० २१५-१८

९ यहां अष्ट-प्रातिहार्यों में सिंहासन नहीं उत्कीर्ण है।

मण्डोर में नाहड़राओ गुफा के समीप दसवीं शती ई० का एक जैन मन्दिर है।[1] नदसर (सुग्गुर) में भी प्राचीन जैन मन्दिर है।[2] नाणा (बाली) में ९६० ई० का एक महावीर मन्दिर है।[3] आहाड (उदयपुर) में ल० दसवीं शती ई० का आदिनाथ मन्दिर है। मन्दिर की भित्तियों पर भरत, सरस्वती, चक्रेश्वरी एवं अन्य जैन देवियों की मूर्तियां है। भद्रेसर एवं उथमण में ग्यारहवीं शती ई० के जैन मन्दिर है।[4] बीकानेर, तारानगर (९५२ ई०), रणी, नोहर एवं पालू में दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के कई जैन मन्दिर है।[5] पल्लू मे कई चतुर्भुज सरस्वती मूर्तियां मिली है जो कलात्मक अभिव्यक्ति एवं मूर्तिवैज्ञानिक दृष्टि से मध्यकाल की सर्वोत्कृष्ट सरस्वती मूर्तियां है। इनमें हंसवाहना सरस्वती सामान्यतः वरदाक्ष, पद्म, पुस्तक एवं कमण्डलु से युक्त है।[6]

नागदा (मेवाड़) में ९४६ ई० का एक पद्मावती मन्दिर (दिगंबर) है।[7] प्रतापगढ़ के समीप वीरपुर से नवीं-दसवीं शती ई० के जैन मन्दिरों के अवशेष मिले है। रामगढ (कोटा) के समीप आठवीं-नवीं शती ई० की जैन गुफाएं है। कृष्णविलास या विलास (कोटा) में आठवीं से दसवीं शती ई० के मध्य के जैन मन्दिरों (दिगंबर) के अवशेष है। जयपुर (चाट्सु) एवं अलवर के आसपास के क्षेत्रों में दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के कुछ जैन मन्दिर है।[8] जगत (उदयपुर) मे भी दसवीं शती ई० का एक अम्बिका मन्दिर है।[9] पाली में ग्यारहवीं शती ई० का नवलखा पार्श्वनाथ मन्दिर है।[10]

घाणेराव

महावीर मन्दिर—घाणेराव (पाली) का महावीर मन्दिर दसवीं शती ई० का श्वेताम्बर जैन मन्दिर है।[11] ११५६ ई० मे मन्दिर मे २४ देवकुलिकाओं का निर्माण किया गया। मन्दिर मे १४ महाविद्याओं, दिक्पालों, गोमुख (१), सर्वानुभूति (५), ब्रह्मशान्ति (१), चक्रेश्वरी (२), अम्बिका (२), गणेश और नवग्रहों की मूर्तियां है। मन्दिर की जंघा पर द्विभुज दिक्पालों की मूर्तियां उत्कीर्ण है। दिक्पालों के अतिरिक्त मन्दिर की अन्य सभी मूर्तियां चतुर्भुज है। जैन परम्परा के अनुरूप यहां दस दिक्पालों की मूर्तियां है। नवें और दसवें दिक्पाल क्रमशः ब्रह्मा एवं अनन्त है। त्रिमुख ब्रह्मा जटामुकुट एवं श्मश्रु, और अनन्त पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त है। जटामुकुट से युक्त चतुर्भुज ब्रह्मशान्ति (अधिष्ठान) की भुजाओं मे वरदाक्ष, पद्म, छत्र एवं जलपात्र है। अधिष्ठान पर महालक्ष्मी और वैरोट्या की भी मूर्तियां है।

अर्धमण्डप की सीढ़ियों के समीप ऐसी दो देवियां उत्कीर्ण है जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। एक देवी की भुजाओं मे पद्म, अंकुश, पाश एवं फल है।[12] दूसरी देवी के पार्श्व मे एक घट (वाहन) और भुजाओं में फल, पद्म, दण्ड (?) एवं जलपात्र है। गूढ़मण्डप की द्वारशाखा की कूर्मवाहना देवी की पहचान भी सम्भव नहीं है। देवी के करों मे अभयमुद्रा, पाश, दण्ड (?) एवं कमल है। गूढ़मण्डप एवं गर्भगृह के प्रवेश-द्वारों पर द्विभुज एवं चतुर्भुज महाविद्याओं की सवाहन मूर्तियां उत्कीर्ण है। इनमें मानवी एवं सर्वास्त्रमहाज्वाला के अतिरिक्त अन्य सभी महाविद्याओं की मूर्तियां है। इनके

१ प्रो०रि०आ०स०इं०, वे०स०, १९०६-०७, पृ० ३१
२ वही, १९११-१२, पृ० ५३   ३ वही, १९०७-०८, पृ० ४८-४९
४ जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० ११३
५ वही, पृ० ११३-१४; गोयत्ज, एच०, **दि आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑव बीकानेर स्टेट**, आक्सफोर्ड, १९५०, पृ० ५८
६ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, **जैन प्रतिमाएं**, दिल्ली, १९७९, पृ० १०-१९
७ प्रो०रि०आ०स०इं०, वे०स०, १९०४-०५, पृ० ६१
८ जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० ११४-१५   ९ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३०५
१० प्रो०रि०आ०स०इं०,वे०स०, १९०७-०८, पृ० ४३, ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३३३-३४
११ प्रो०रि०आ०स०इं०,वे०स०, १९०७-०८, पृ० ५९; कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० ३६; ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३२८-३२
१२ मन्दिर के गूढ़मण्डप की द्वारशाखा पर भी इस देवी की एक मूर्ति है।

चित्रण मे निर्वाणकलिका के निर्देशों का पालन किया गया है। गूढमण्डप के उत्तरंग पर स्थानक मुद्रा में द्विभुज नवग्रहों की मूर्तिया उत्कीर्ण है।[1] गूढमण्डप के एक स्तम्भ पर चतुर्भुज गणेश एवं ललाट-बिम्ब पर सुपार्श्वनाथ की मूर्तियां है। देवकुलिकाओं की भित्तियों पर वैरोट्या, चक्रेश्वरी, वज्राकुशी एवं सरस्वती की मूर्तियां उत्कीर्ण है।

सादरी

पार्श्वनाथ मन्दिर—सादरी (पाली) का पार्श्वनाथ मन्दिर ग्यारहवी शती ई० का है।[2] मन्दिर पर चतुर्भुज महाविद्याओ, सरस्वती, दिक्पालों, अप्सराओं एवं जैन ग्रन्थो मे अवर्णित देवियों की मूर्तियां है। सर्वानुभूति एवं अम्बिका या किसी अन्य यक्ष-यक्षी की एक भी मूर्ति नही उत्कीर्ण है। मन्दिर पर केवल ११ महाविद्याएं निरूपित हुई। ये रोहिणी, वज्राकुशी, वज्रशृखला, अप्रतिचक्रा, गौरी, पुरुषदत्ता, काली, महाकाली, महाज्वाला, वैरोट्या एवं महामानसी है।[3]

पूर्वी वरण्ड पर एक चतुर्भुज देवता की मूर्ति है। देवता के हाथों मे छल्ला, पद्म, पद्म और कमण्डलु है। देवता की पहचान सम्भव नही है। महाविद्याओं के बाद सर्वाधिक मूर्तिया शान्तिदेवी की है। शान्तिदेवी के दो हाथो में पद्म है। मन्दिर पर जैन परम्परा में अनुल्लिखित नौ चतुर्भुज देवियां भी उत्कीर्ण है। इनकी निचली भुजाओं में सर्वदा अभय- (या वरद-) मुद्रा एव फल (या जलपात्र) है। पहली गजवाहना देवी की ऊपरी भुजाओं मे त्रिशूल एव शूल, दूसरी देवी की भुजाओ में सनालपद्म एवं खेटक, तीसरी देवी की भुजाओं मे त्रिशूल, चौथी देवी की भुजाओं मे खड्ग एवं अभयमुद्रा, पाचवी देवी की भुजाओ मे पाश एवं पद्म, छठी सिंहवाहना देवी की भुजाओ में अकुश एवं धनुष, सातवी गजवाहना देवी की भुजाओ मे शूल एवं पाश, आठवी देवी की भुजाओं मे गदा एव पाश, और नवी सिंहवाहना देवी की भुजाओ मे अकुश एवं पाश प्रदर्शित है। ल० ग्यारहवी शती ई० का एक नन्दीश्वर द्वीप पट्ट मन्दिर की चहारदीवारी के समीप की दीवार पर उत्कीर्ण है। नन्दीश्वर द्वीप पट्ट का सम्भवतः यह प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है।[4]

वर्माण

महावीर मन्दिर—वर्माण (पाली) मे परवर्ती नवी शती ई० का एक महावीर मन्दिर है।[5] इस श्वेताम्बर मन्दिर मे २४ देवकुलिकाए सयुक्त है। मन्दिर मे महावीर, अम्बिका एव महालक्ष्मी की मूर्तिया है।

सेवड़ी

महावीर मन्दिर—सेवडी (पाली) का महावीर मन्दिर (श्वेताम्बर) ग्यारहवी शती ई० का चतुर्विंशति जिनालय है।[6] मन्दिर की भित्तियों पर द्विभुज अप्रतिचक्रा एवं वैरोट्या महाविद्याओ, जीवन्तस्वामी महावीर, क्षेत्रपाल, ब्रह्मशान्ति यक्ष एवं महावीर की मूर्तिया है। द्विभुज क्षेत्रपाल निर्वस्त्र है और गदा एवं सर्प से युक्त है। श्मश्रु एवं पादुका से युक्त ब्रह्मशान्ति के हाथो मे अक्षमाला एवं जलपात्र है। गूढमण्डप के द्वारशाखाओ पर चक्रेश्वरी, निर्वाणी एवं पद्मावती यक्षियो की मूर्तियां है। गर्भगृह के प्रवेश-द्वार पर यक्षियों एवं महाविद्याओं की मूर्तिया है। महाविद्याओ मे रोहिणी, वज्रांकुशा, गाधारी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, प्रज्ञप्ति एव महामानसी की पहचान सम्भव है। उत्तरंग की जिन आकृति के पार्श्वों मे पुरुषदत्ता, चक्रेश्वरी एव काली महाविद्याओं की मूर्तिया है। तीन देवियों की पहचान सम्भव नही है। पहली नरवाहना

१ श्वेताम्बर मन्दिरों मे नवग्रहो का चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है।
२ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३४५-४६
३ अन्यत्र विशेष लोकप्रिय प्रज्ञप्ति, अच्छुप्ता एवं मानसी महाविद्याओं की एक भी मूर्ति नहीं है।
४ १३वी-१४वी शती ई० के दो अन्य उदाहरण कुभारिया के नेमिनाथ एवं राणकपुर के आदिनाथ (चौमुखी) मंदिरों में है—स्ट०जै०आ०, पृ० ११९-२१
५ ढाकी, एम०ए०, पू०नि०, पृ० ३२७-२८
६ प्रो०रि०आ०स०ई०,वे०स०, १९०७-०८, पृ० ५३, ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३३७-४०

देवी की दो भुजाओं में पुस्तक, दूसरी नागवाहना देवी की भुजाओ मे पात्र एवं दण्ड, और तीसरी अजवाहना देवी की भुजाओं में खड्ग एवं फलक है ।

नाडोल

नाडोल या नड्डुल (पाली) म पद्मप्रभ, नेमिनाथ एवं शान्तिनाथ को समर्पित ग्यारहवी शती ई० के तीन श्वेताम्बर जैन मन्दिर है ।[१]

नेमिनाथ मन्दिर—नेमिनाथ मन्दिर के शिखर पर चक्रेश्वरी एवं शान्तिदेवी की चतुर्भुज मूर्तियां है । दक्षिणी शिखर पर किसी जिन के जन्म-कल्याणक का दृश्य है जिसमें एक बालक (जिन) चतुर्भुज इन्द्र की गोद में बैठा है । इन्द्र ध्यानमुद्रा में विराजमान है और उनकी निचली भुजायें गोद मे हैं तथा ऊपरी में अंकुश एवं वज्र है । जगती की एक वृषभवाहना (?) देवी की भुजाओ में गदा प्रदर्शित है । देवी की पहचान सम्भव नहीं है । गूढमण्डप की पश्चिमी भित्ति पर चतुर्भुज कृष्ण निरूपित है । कृष्ण समभंग में खड़े है और किरीटमुकुट, छन्नवीर और वनमाला से अलंकृत है । उनकी ऊपरी भुजाओं में गदा और चक्र है । सम्भवतः नेमिनाथ मन्दिर होने के कारण ही कृष्ण को यहां आमूर्तित किया गया ।

शान्तिनाथ मन्दिर—मन्दिर की भित्ति पर स्त्री दिक्पालो की आकृतियां है ।[२] जंघा की मूर्तियों मे केवल गौरी महाविद्या की ही पहचान सम्भव है । भित्ति की गजवाहना और भुजाओं मे वरदमुद्रा, परशु, मुद्गर एवं जलपात्र, तथा वरदाक्ष, त्रिशूल, नाग एवं फल मे युक्त दो देवियो की पहचान सम्भव नही है ।

पद्मप्रभ मन्दिर—पद्मप्रभ मन्दिर नाडोल का विशालतम जैन मन्दिर है । मन्दिर की भित्तियों पर अप्रतिचक्रा, वैरोट्या एवं वज्रशृंखला महाविद्याओ एवं अष्ट-दिक्पालो की मूर्तिया है । अधिष्ठान पर सर्वानुभूति यक्ष एवं अम्बिका यक्षी की भी मूर्तियां है । अधिष्ठान की पद्म, खड्ग और जलपात्र से युक्त एक यक्ष की पहचान सम्भव नही है । यहां शान्तिदेवी की सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तिया (११) है । शान्तिदेवी की ऊपरी भुजाओं मे सनाल पद्म और निचली में वरदमुद्रा एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित है । वीणा और पुस्तक धारिणी सरस्वती की भी चार मूर्तिया है । अधिष्ठान पर वज्रांकुशा (१), वज्रशृंखला (१), अप्रतिचक्रा (३), महाकाली[३] (१), काली (१)[४] महाविद्याओं एवं महालक्ष्मी की भी मूर्तिया है । त्रिशूल, सर्प, फल; दो ऊपरी भुजाओं मे स्रुक, और गदा एवं धनुष धारण करने वाली तीन देवियो की पहचान सम्भव नही है ।

नाड्लाई

नाड्लाई (पाली) मे दसवी-ग्यारहवी शती ई० के श्वेताम्बर जैन मन्दिर है ।[५] यहां के मुख्य मन्दिर आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ को समर्पित है । इनमे आदिनाथ मन्दिर विशालतम एवं प्राचीन है । मन्दिर के लेख से ज्ञात होता है कि मन्दिर मूलतः महावीर को समर्पित था । इसका निर्माण दसवी शती ई० के अन्त में हुआ ।[६] मन्दिर के गर्भगृह की दहलीज पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका की द्विभुज मूर्तिया है । नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ मन्दिरों का निर्माण ग्यारहवी शती ई० मे हुआ । इन पर मूर्तियां नही उत्कीर्ण है । केवल शान्तिनाथ मन्दिर (११वी शती ई०) पर ही जैन देवो की मूर्तियां है ।

---

१ ढाकी, एम० ए०, पूoनि०, पृ० ३४३-४५   २ वही, पृ० ३४३

३ देवी वरदमुद्रा, अंकुश, त्रिशूल-घण्टा एवं कुण्डिका से युक्त है ।

४ काली की ऊपरी भुजाओं में गदा एवं सनाल पद्म हैं । विमलवसही के रंगमण्डप की मूर्ति मे भी काली की भुजाओं मे गदा एवं सनाल पद्म प्रदर्शित है ।

५ ढाकी, एम० ए०, पूoनि०, पृ० ३४१–४२ । शान्तिनाथ मन्दिर के अतिरिक्त अन्य मन्दिरों पर मूर्तियां नहीं उत्कीर्ण है ।

६ साहित्यिक परम्परा में इस मन्दिर के निर्माण की तिथि ९०८ ई० है—ढाकी, एम०ए०, पूoनि०,पृ० ३४१

शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्तियां केवल अधिष्ठान पर उत्कीर्ण हैं। इनमें चतुर्भुज महाविद्याओं, शान्तिदेवी, सरस्वती एवं यक्षों की मूर्तियां हैं। वरदमुद्रा, त्रिशूल, सर्प एवं जलपात्र, और वरदमुद्रा, दण्ड, पद्म एवं जलपात्र से युक्त दो देवताओं की सम्भावित पहचान क्रमशः ईश्वर और ब्रह्मशान्ति यक्षों से की जा सकती है। महाविद्याओं में केवल रोहिणी, वज्रांकुशी[1] एवं अप्रतिचक्रा[2] की ही मूर्तियां हैं। दो उदाहरणों में देवियों की पहचान सम्भव नहीं है। पहली देवी वरदमुद्रा, अंकुश एवं जलपात्र, और दूसरी वरदमुद्रा, पाश, पद्म एवं धनुष (?) से युक्त है। वेदिकाबन्ध पर काम-क्रिया में रत ५० युगलों की मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।[3]

आबू

विमलवसही—आबू (सिरोही) स्थित विमलवसही आदिनाथ को समर्पित है। यह श्वेताम्बर मन्दिर अपने शिल्प वैभव के लिए विश्व प्रसिद्ध है। विमलवसही के मूलप्रासाद और गूढमण्डप चौलुक्य शासक भीमदेव प्रथम के दण्डनायक विमल द्वारा ग्यारहवीं शती ई० के प्रारम्भ (१०३१ ई०) में बनवाये गये। रंगमण्डप, भ्रमिका और ५४ देवकुलिकाओं का निर्माण कुमारपाल के मन्त्री पृथ्वीपाल एवं पृथ्वीपाल के पुत्र धनपाल के काल (११४५–८९ ई०) में हुआ।[4]

कुम्भारिया के जैन मन्दिरों की भांति विमलवसही की जिन मूर्तियां भी मूलप्रासाद, गूढमण्डप एवं देवकुलिकाओं में स्थापित हैं। देवकुलिकाओं की जिन मूर्तियों पर १०६२ ई० से ११८८ ई० के लेख हैं। विमलवसही की जिन मूर्तियों की सामान्य विशेषताएं कुम्भारिया की जिन मूर्तियों के समान हैं।[5] अधिकांशतः जिन ध्यानमुद्रा में आसीन हैं। सिंहासन के मध्य की शान्तिदेवी की भुजाओं में वरदमुद्रा, पद्म, पद्म (या पुस्तक) एवं कमण्डलु हैं। सुपार्श्व और पार्श्व के साथ क्रमशः पांच और सात सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं। अन्य जिनों की पहचान के आधार पीठिका लेखों में उत्कीर्ण उनके नाम हैं। पार्श्ववर्ती चामरधरों की एक भुजा में चामर है और दूसरी में घट है या जानु पर स्थित है। मूलनायक के पार्श्वों में जिन मूर्तियों के उत्कीर्ण होने पर चामरधरों की मूर्तियां पीठ छोरों पर बनी हैं। मूलनायक के पार्श्वों में सामान्यतः सुपार्श्व या पार्श्व निरूपित हैं। ऊपर दो ध्यानस्थ जिन भी आमूर्तित हैं। सिंहासन छोरों पर यक्ष-यक्षी युगल निरूपित हैं। ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व की कुछ मूर्तियों के अतिरिक्त अन्य उदाहरणों में सभी जिनों के साथ यक्ष-यक्षी रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। देवकुलिकाओं एवं गूढमण्डप के देहलीज पर भी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही हैं।[7] गर्भगृह एवं देवकुलिका २१ की दो ऋषभ मूर्तियों में यक्ष-यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी हैं। देवकुलिका १९ की सुपार्श्व मूर्ति में गजारूढ यक्ष सर्वानुभूति है पर यक्षी पारम्परिक है। देवकुलिका ४ की पार्श्व मूर्ति (११८८ ई०) में यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र एवं पद्मावती हैं।

देवकुलिका १७ में एक जिन चौमुखी है। पीठिका लेखों के आधार पर चौमुखी के तीन जिनों की पहचान क्रमशः ऋषभ, चन्द्रप्रभ एवं महावीर से सम्भव है। तीन जिनों के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं, पर ऋषभ के साथ

१ गजारूढ एवं वरदमुद्रा, अंकुश (?), पाश और जलपात्र से युक्त।

२ वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एवं जलपात्र से युक्त।

३ पूर्व-मध्यकालीन कुछ जैन ग्रन्थों में भी ऐसे उल्लेख हैं जिनसे कलाकारों ने काम-क्रिया से सम्बन्धित मूर्तियों के जैन मन्दिरों पर अंकन की प्रेरणा प्राप्त की होगी—**हरिवंशपुराण** (जिनसेन कृत) २९.१–५।

४ जयन्तविजय, मुनिश्री, **होली आबू** (अनु० यू० पी० शाह), भावनगर, १९५४, पृ० २८–२९; ढाकी, एम० ए०, 'विमलवसही की डेट का समस्या' (गुजराती), **स्वाध्याय**, ख० ९, अं० ३, पृ० ३४९–६४

५ मूलनायक की मूर्तियां अधिकांश उदाहरणों में गायब हैं।

६ एक जिन चौमुखी (देवकुलिका १७) में वज्रांकुशी भी उत्कीर्ण है।

७ गूढमण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार पर चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है।

गोमुख एवं चक्रेश्वरी निरूपित है। देवकुलिका २० में एक जिन समवसरण भी सुरक्षित है। भ्रमिका के वितानों पर जिनों के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। देवकुलिका ९ और १६ के वितानों पर जिनों के पंचकल्याणकों के अंकन हैं। पर इनमें जिनों की पहचान सम्भव नहीं है। देवकुलिका १० के वितान पर नेमि और देवकुलिका १२ के वितान पर शान्ति के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। बारहवीं शती ई० के एक पट्ट पर १७० जिन आकृतियां बनी हैं।

अन्य श्वेताम्बर स्थलों के समान ही विमलवसही में भी महाविद्याओं का चित्रण ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। यहां १६ महाविद्याओं के सामूहिक अंकन के दो उदाहरण हैं। एक उदाहरण रंगमण्डप में और दूसरा देवकुलिका ४१ के वितान पर है। रंगमण्डप के १६ महाविद्याओं के निरूपण में पारम्परिक वाहन एवं आयुध प्रदर्शित हैं।[1] महाविद्याएं दोनों उदाहरणों में त्रिभंग में खड़ी हैं। रंगमण्डप के उदाहरण में महाविद्याएं चतुर्भुज और देवकुलिका ४१ के उदाहरण में षड्भुज हैं। रंगमण्डप की कुछ महाविद्याओं के निरूपण में हिन्दू देवकुल के मूर्ति-वैज्ञानिक-तत्त्वों का अनुकरण किया गया है। प्रज्ञप्ति की भुजा में शक्ति के स्थान पर कुक्कुट का प्रदर्शन हिन्दू कौमारी का प्रभाव है।[2] गौरी का वाहन गोधा के स्थान पर वृषभ है जो हिन्दू शिवा का प्रभाव है। अप्रतिचक्रा की केवल दो भुजाओं में चक्र, महाकाली के वाहन के रूप में नर के स्थान पर हंस, महाज्वाला के साथ विडाल या शूकर के स्थान पर सिंहवाहन, काली की भुजा में पुस्तक, गांधारी की भुजा में पाश, और मानसी के वाहन के रूप में हंस के स्थान पर मेष के चित्रण कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनका जैन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता। अच्छुप्ता की भुजाओं में खड्ग और फलक भी नहीं प्रदर्शित हैं।

देवकुलिका ४१ की षड्भुज महाविद्याओं की मध्य की दो भुजाओं में सामान्यतः ज्ञानमुद्रा व्यक्त है, और उनकी निचली भुजाओं में वरदमुद्रा और फल (या कमण्डलु) हैं। इस प्रकार महाविद्याओं के विशिष्ट आयुध केवल दो ऊपरी भुजाओं में ही प्रदर्शित हैं। इनमें वाहन भी नहीं उत्कीर्ण हैं। रंगमण्डप की महाविद्याओं और देवकुलिका ४१ की महाविद्याओं के मूर्ति लक्षणों में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत होता है। यहां अप्रतिचक्रा की दो मूर्तियां हैं। एक में ऊपरी भुजाओं में चक्र, एवं दूसरे में गदा और चक्र हैं। अंकुश-पाश, त्रिशूल-चक्र, वीणा-पुस्तक एवं स्रुक्-पुस्तक धारण करने वाली चार महाविद्याओं की पहचान सम्भव नहीं है। केवल रोहिणी, वज्रांकुशा, अप्रतिचक्रा, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, पुरुषदत्ता, गौरी, मानवी एवं महाकाली महाविद्याओं की ही पहचान सम्भव है। महाविद्याओं के सामूहिक अंकनों के अतिरिक्त उनकी अनेक स्वतन्त्र मूर्तियां भी हैं। इनमें मुख्यतः रोहिणी, अप्रतिचक्रा, वज्रांकुशा, वज्रशृंखला, वैरोट्या,[3] पुरुषदत्ता, अच्छुप्ता[4] एवं महामानसी की मूर्तियां हैं। मानवी, गौरी, गान्धारी एवं मानसी की केवल कुछ ही मूर्तियां हैं। षोडशभुज रोहिणी (देवकुलिका ११), अच्छुप्ता (देवकुलिका ४३), वैरोट्या (देवकुलिका ४९) एवं विंशतिभुज महामानसी (देवकुलिका २९) की मूर्तियां लाक्षणिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

महाविद्याओं के अतिरिक्त अम्बिका, सरस्वती, शान्तिदेवी[5] एवं महालक्ष्मी की भी अनेक मूर्तियां हैं। सिंहवाहना अम्बिका की द्विभुज और चतुर्भुज मूर्तियां हैं (चित्र ५४)। हंसवाहना सरस्वती की भुजाओं में वरदाक्ष (कमण्डलु), सनाल-पद्म, पुस्तक और वीणा (या स्रुक्) हैं। सरस्वती की एक षोडशभुज मूर्ति देवकुलिका ४८ के वितान पर है। महालक्ष्मी सर्वदा ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और उसके शीर्ष भाग में दो गजों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। देवी की निचली भुजाएं गोद में हैं और ऊपरी भुजाओं में पद्म प्रदर्शित हैं। देवी के पद्मासन पर कभी-कभी नवनिधि के सूचक नौ घट उत्कीर्ण हैं।

---

१ रंगमण्डप की महाविद्याओं के निरूपण में मुख्यतः **निर्वाणकलिका** के निर्देशों का पालन किया गया है।

२ विमलवसही की ही कुछ मूर्तियों में प्रज्ञप्ति के दोनों हाथों में शूल भी प्रदर्शित है।

३ रंगमण्डप से सटे वितान पर वैरोट्या की एक विशिष्ट मूर्ति है। सहस्रफण पार्श्व मूर्ति के समान ही इसमें भी वैरोट्या चारों ओर सर्प की कुण्डलियों से वेष्टित है। उसके हाथों में खड्ग, सर्प, खेटक और सर्प हैं।

४ अच्छुप्ता की भुजाओं में खड्ग और खेटक के स्थान पर धनुष और बाण हैं।

५ शान्तिदेवी की सर्वाधिक मूर्तियां हैं।

सर्वानुभूति[1] एवं ब्रह्मशान्ति यक्षों और अष्ट-दिक्पालों की भी कई मूर्तियां है। एक षड्भुज मूर्ति मे ब्रह्मशान्ति यक्ष का वाहन हंस है और उसकी भुजाओं में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, छत्र, सनालपद्म, पुस्तक एवं कमण्डलु है। रंगमण्डप से सटे वितान पर इन्द्र की दशभुज मूर्तियां है। रंगमण्डप के उत्तर और दक्षिण के छज्जों पर १० ऐसी मूर्तियां है जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। देवकुलिका ४० के वितान पर महालक्ष्मी की एक मूर्ति है जिसके चारो ओर षड्भुज अष्ट-दिक्पालों की स्थानक आकृतियां बनी है।

विमलवसही मे १६ ऐसी देवियां है जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। प्रारम्भ की तीन देवियां विमलवसही के अतिरिक्त कुंभारिया, तारंगा एवं अन्य श्वेताम्बर स्थलों पर भी लोकप्रिय थी।[2] अधिकांश देवियां चतुर्भुज हैं और उनकी निचली भुजाओं मे कोई मुद्रा (अभय या वरद), एवं कमण्डलु (या फल) प्रदर्शित है। अतः यहां हम केवल ऊपरी भुजाओं की ही सामग्री का उल्लेख करेंगे। पहली वृषभवाहना देवी की भुजाओं मे त्रिशूल एवं सर्प है। दूसरी देवी की भुजाओं में त्रिशूल है। दोनों देवियों पर हिन्दू शिवा का प्रभाव है। तीसरी सिंहवाहना देवी की भुजाओं मे अंकुश एवं पाश है। चौथी देवी ने पद्मकलिका एवं पाश धारण किया है। पांचवीं देवी गदा एवं पुस्तक[3], और छठीं देवी पुस्तक एवं त्रिशूल से युक्त है। सातवीं गजवाहना देवी की भुजाओं मे अंकुश है। आठवीं देवी के हाथों म गदा और पाश, और नवीं देवी के हाथों मे कलश है। दसवीं गोवाहना देवी की भुजाओं मे ध्वज है। ग्यारहवीं देवी की भुजाओं मे त्रिशूल-घंट, और बारहवीं देवी की भुजाओं मे धन का थैला है। तेरहवीं सिंहवाहना देवी की भुजाओं में पाश है। चौदहवीं सिंहवाहना देवी वज्र एवं मुसल से युक्त है। पन्द्रहवीं षड्भुज देवी का वाहन मृग है, और उसके करों मे शंख एवं धनुष है। सोलहवीं गजवाहना देवी ने शंख एवं चक्र धारण किया है।

रंगमण्डप के समीप के अर्धमण्डप के वितान पर भरत एवं बाहुबली के युद्ध, और बाहुबली की तपश्चर्या के अंकन है। समीप ही आर्द्रकुमार की कथा भी उत्कीर्ण है।[4] देवकुलिका २९ के वितान पर कृष्ण के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं, जैसे कालियदमन, चाणूर-युद्ध, कन्दुकक्रीडा के दृश्य भी उत्कीर्ण है। देवकुलिका ४९ के वितान पर षोडशभुज नरसिंह की मूर्ति है। नरसिंह को हिरण्यकश्यपु का उदर विदीर्ण करते हुए दिखाया गया है।

लूणवसही—आबू (सिरोही) स्थित लूणवसही का निर्माण चौलुक्य शासक वीरधवल के महामन्त्री तेजपाल ने १२३० ई० (वि० सं० १२८७) मे कराया।[5] यह श्वेताम्बर मन्दिर नेमिनाथ को समर्पित है। लूणवसही की भ्रमन्तिका मे कुल ४८ देवकुलिकाएं है, जिनमे १२३० ई० से १२३६ ई० के मध्य की जैन मूर्तियां सुरक्षित है। कुछ रथिकाओं मे १२४० ई० की भी मूर्तियां है। विमलवसही के समान ही लूणवसही मे भी जिनों, महाविद्याओं, अम्बिका यक्षी एवं शान्तिदेवी की मूर्तियां और जिनों एवं कृष्ण के जीवनदृश्य है।

जिन मूर्तियों की सामान्य विशेषताएं विमलवसही और कुंभारिया की जिन मूर्तियों के समान है। मूलनायक के पार्श्वों मे कायोत्सर्ग मे जिनों के उत्कीर्णन की परम्परा यहां लोकप्रिय नहीं थी। गर्भगृह की नेमि-मूर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी उदाहरण मे लांछन नहीं उत्कीर्ण है। केवल सुपार्श्व एवं पार्श्व के साथ सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित है। अन्य जिनों की पहचान केवल पीठिका लेखों मे उत्कीर्ण नामों के आधार पर की गई है। सभी जिनों के साथ यक्ष-यक्षी रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित है। रंगमण्डप के वितान पर ध्यानस्थ जिनों की ७२ मूर्तियां उत्कीर्ण है। यह वर्तमान, भूत एवं भविष्य के जिनों का सामूहिक अंकन प्रतीत होता है। ऐसा ही एक पट्ट देवकुलिका ४१ में भी सुरक्षित है। हस्तिशाला में तीन मंजिली नेमि की एक जिन चौमुखी सुरक्षित है। देवकुलिकाओं के वितानों पर जिनों के जीवनदृश्य है। देवकुलिका ९ और

१ सर्वानुभूति यक्ष की सर्वाधिक मूर्तियां है।
२ प्रथम दो देवियों के अतिरिक्त अन्य देवियों की मूर्तियां केवल प्रवेश-द्वारों पर ही है।
३ रंगमण्डप की काली-मूर्ति से तुलना के आधार पर इसे काली से पहचाना जा सकता है।
४ जयन्तविजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० ५६–६३
५ वही, पृ० ९१–९२

११ के वितानों पर नेमि के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। देवकुलिका १६ के वितान पर पार्श्व के जीवनदृश्य हैं। देवकुलिका १९ में एक पट्ट है जिस पर मुनिसुव्रत के जीवन से सम्बन्धित अश्वावबोध एवं शकुनिका विहार की कथाएं उत्कीर्ण हैं।

रंगमण्डप के वितान पर १६ महाविद्याओं की चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। वज्रांकुशी, काली, पुरुषदत्ता, मानवी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, मानसी एवं महामानसी महाविद्याओं के अतिरिक्त अन्य सभी महाविद्याओं की मूर्तियां नवीन हैं। महाविद्याओं की लाक्षणिक विशेषताएं विमलवसही के रंगमण्डप की १६ महाविद्या मूर्तियों के समान हैं। विमलवसही से भिन्न यहां मानवी की ऊपरी भुजाओं में अंकुश और पाश प्रदर्शित हैं। रोहिणी, पुरुषदत्ता, गौरी, काली, वज्रश्रृंखला एवं अच्छुप्ता महाविद्याओं की कई स्वतन्त्र मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।

अम्बिका (७), महालक्ष्मी (५) और शान्तिदेवी की भी कई मूर्तियां हैं। देवकुलिका २४ की अम्बिका मूर्ति के परिकर में रोहिणी, मानवी, पुरुषदत्ता, अप्रतिचक्रा आदि महाविद्याओं एवं ब्रह्मशान्ति यक्ष की लघु आकृतियां उत्कीर्ण हैं। रंगमण्डप के समीप के वितान पर अष्टभुज महालक्ष्मी की चार मूर्तियां हैं। इनमें देवी की पांच भुजाओं में पद्म और शेष में पाश, अभयमुद्रा और कलश है। हंसवाहना सरस्वती की कई चतुर्भुज एवं षड्भुज मूर्तियां हैं। इनमें देवी वीणा, पद्म एवं पुस्तक से युक्त हैं। चक्रेश्वरी यक्षी की केवल एक मूर्ति (देवकुलिका १०) है। गरुडवाहना यक्षी अष्टभुज है और उसके करों में वरदमुद्रा, चक्र, व्याख्यानमुद्रा, छल्ला, छल्ला, पद्मकलिका, चक्र एवं फल हैं। गूढ़मण्डप के प्रवेश-द्वार पर पद्मावती की दो मूर्तियां हैं। चतुर्भुजा पद्मावती वरदाक्ष, सर्प, पाश एवं फल से युक्त है और उसका वाहन सम्भवतः नक्र है। ब्रह्मशान्ति यक्ष की एक षड्भुज मूर्ति रंगमण्डप से सटे वितान पर है। श्मश्रु एवं जटामुकुट से शोभित ब्रह्मशान्ति का वाहन हंस है और उसकी भुजाओं में वरदाक्ष, अभयमुद्रा, पद्म, स्रुक, वज्र और कमण्डलु प्रदर्शित हैं। धरणेन्द्र यक्ष की एक चतुर्भुज मूर्ति गूढ़मण्डप के प्रवेश-द्वार (दक्षिणी) के चौखट पर है। धरणेन्द्र की तीन अवशिष्ट भुजाओं में वरदाक्ष, सर्प एवं सर्प है।

लूणवसही में चार ऐसी भी देवियां हैं जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। पहली देवी की ऊपरी भुजाओं में पाश एवं अंकुश, दूसरी की भुजाओं में धन का थैला, तीसरी की भुजाओं में गदा एवं अंकुश, और चौथी की भुजाओं में दण्ड है। रंगमण्डप से सटे वितान पर त्रिशूल एवं शूल से युक्त एक षड्भुज देवता निरूपित है। देवता के दोनों पार्श्वों में सिंह और शूकर की आकृतियां हैं। यह सम्भवतः कपर्दि यक्ष है। गूढ़मण्डप के पश्चिमी प्रवेश-द्वार की चौखट पर सर्पवाहन से युक्त एक चतुर्भुज देवता की मूर्ति है। देवता की भुजाओं में बाण, गदा एवं शंख हैं। देवता की पहचान सम्भव नहीं है। सर्वानुभूति यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं है। अजमुख नैगमेषी की कई मूर्तियां हैं। नैगमेषी की एक भुजा में सदैव एक बालक प्रदर्शित है। रंगमण्डप के समीप के वितान पर कृष्ण-जन्म एवं उनकी बाल-क्रीड़ा के कुछ दृश्य उत्कीर्ण हैं।

जालोर

जालोर की पहाड़ियों पर बारहवीं-तेरहवीं शती ई० के तीन श्वेतांबर जैन मन्दिर हैं, जो आदिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर को समर्पित हैं।[१] महावीर मन्दिर चौलुक्य शासक कुमारपाल के शासनकाल का है।[२] महावीर मन्दिर जालोर के जैन मन्दिरों में विशालतम और शिल्प सामग्री की दृष्टि से समृद्ध भी है। आदिनाथ और पार्श्वनाथ मन्दिर तेरहवीं शती ई० के हैं। सभी मन्दिरों की मूर्तियां खण्डित हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप की दीवार में बारहवीं शती ई० का एक पट्ट है जिस पर मुनिसुव्रत के जीवन की अश्वावबोध एवं शकुनिका विहार की कथाएं उत्कीर्ण हैं। यहां केवल महावीर मन्दिर की मूर्तिवैज्ञानिक सामग्री का ही उल्लेख किया जाएगा।

---

१ प्रो०रि०आ०स०इं०,वे०स०, १९०७–०८, पृ० ३४–३५; जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० १२०

२ जालोर लेख (११६४ ई०) से ज्ञात होता है कि महावीर मन्दिर मूलतः पार्श्वनाथ को समर्पित था। मन्दिर के गर्भगृह में आज १७ वीं शती ई० की महावीर मूर्ति है—नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, कलकत्ता, १९१८, पृ० २३९, लेख स० ८९९

मन्दिर पर शान्तिदेवी (४०), महालक्ष्मी (७), महाविद्याओं, अम्बिका, सरस्वती एवं दिक्पालों की चतुर्भुज मूर्तियां हैं। शान्तिदेवी की भुजाओं में वरदमुद्रा, पद्म, पद्म और जलपात्र हैं। दो गजों से अभिषिक्त महालक्ष्मी के करों में अभयाक्ष (या वरदाक्ष), पद्म, पद्म एवं जलपात्र हैं। पद्मासन में विराजमान महालक्ष्मी के आसन के नीचे नौ घट (नवनिधि के सूचक) उत्कीर्ण हैं। जंघा पर महाविद्याओं की सवाहन मूर्तियां हैं। इनमें केवल रोहिणी (३), वज्रांकुशी (७), अप्रतिचक्रा (३), महाकाली (२), गौरी (३), मानवी (२), अच्छुप्ता (१) एवं मानसी (५) की ही मूर्तियां हैं। महाकाली का वाहन मानव के स्थान पर पद्म है। गौरी के साथ वाहन रूप में गोधा और वृषभ दोनों ही प्रदर्शित हैं। हंसवाहना मानसी की ऊपरी भुजाओं में वज्र के स्थान पर खड्ग एवं पुस्तक प्रदर्शित हैं।

मन्दिर पर अष्ट-दिक्पालों के दो समूह उत्कीर्ण हैं। इनमें सामान्य पारम्परिक विशेषताएं प्रदर्शित हैं। गूढ़मण्डप की दक्षिणी भित्ति पर जटामुकुट एवं मेषवाहन (?) से युक्त ब्रह्मशान्ति यक्ष (?) की एक मूर्ति है। यक्ष की तीन अवशिष्ट भुजाओं में स्रुक, पुस्तक एवं पद्म हैं। अम्बिका की दो मूर्तियां हैं। अधिष्ठान की एक मूर्ति में सिंहवाहना अम्बिका की निचली भुजाओं में आम्रलुंबि एवं बालक और ऊपरी भुजाओं में दो चक्र प्रदर्शित हैं। गूढ़मण्डप की पूर्वी देवकुलिका के प्रवेश-द्वार की अप्रतिचक्रा एवं वज्रांकुशी महाविद्याओं की मूर्तियों में तीन और पांच सर्पफणों के छत्र भी प्रदर्शित हैं। सम्भव है देवकुलिकाओं की सुपार्श्व या पार्श्व की मूर्तियों के कारण महाविद्याओं के मस्तक पर सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हुए हों। सम्प्रति इन देवकुलिकाओं में सत्रहवीं शती ई० की जिन मूर्तियां हैं।

मन्दिर में कुछ ऐसी भी देवियां हैं जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। गूढ़मण्डप की पश्चिमी भित्ति की वृषभ-वाहना (?) देवी की ऊपरी भुजाओं में दो वज्र हैं। गूढ़मण्डप की दक्षिणी जंघा की दूसरी वृषभवाहना देवी वरदाक्ष, शूल, पद्मकलिका एवं जलपात्र से युक्त है। गूढ़मण्डप एवं मूलप्रासाद की पश्चिमी भित्तियों पर ऊपरी भुजाओं में बाण और खेटक धारण करनेवाली दो देवियां उत्कीर्ण हैं। एक उदाहरण में वाहन पद्म है और दूसरे में नर। गूढ़मण्डप की पूर्वी जंघा की सिंहवाहना देवी की तीन अवशिष्ट भुजाओं में वरदाक्ष, घण्टा और घण्टा प्रदर्शित हैं। गूढ़मण्डप की पूर्वी देवकुलिका की गजवाहना देवी वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं जलपात्र से युक्त है।

आबू रोड स्टेशन से लगभग ६ किलोमीटर दूर स्थित चन्द्रावती (सिरोही) में ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की दस जैन मूर्तियां मिली हैं। इनमें द्विभुज अम्बिका एवं जिनों की मूर्तियां हैं।[1] सिरोही जिले के आसपास के अन्य कई क्षेत्रों में भी जैन मूर्तियां मिली हैं। झालरा का शान्तिनाथ मन्दिर, नडियाद का महावीर मन्दिर एवं आडोली और मुंगथला के जैन मन्दिर ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० के हैं। चित्तौड़ जिले का सम्भिधेश्वर मन्दिर बारहवीं शती ई० का है। इस मन्दिर पर अप्रतिचक्रा, वज्रांकुशी और वज्रशृंखला महाविद्याओं एवं दिक्पालों की मूर्तियां हैं। कोजरा, बाघिण, पाल्डी, फलोदी, सुजार, सागानेर, पाल्डसापाटन, टूस, लोद्रवा, कृष्णविलास, नागौर, बघेरा एवं सागोड आदि स्थलों से भी ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की जैन मूर्तियां मिली हैं।[2] भरतपुर में भरतपुर, कटरा, बयाना, जघीना, कोटा में शेरगढ़, बांसवाड़ा में तलवर एवं अर्थूणा और अलवर में पारानगर एवं बहादुरपुर से ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की अनेक दिगंबर जैन मूर्तियां मिली हैं। चित्तौलिया में चाहमान शासकों के काल में निर्मित पार्श्वनाथ के पांच मन्दिरों के भग्नावशेष हैं।[3]

उत्तर प्रदेश

देवगढ़ (ललितपुर) एवं मथुरा उत्तर प्रदेश के सर्वाधिक महत्वपूर्ण मध्ययुगीन जैन स्थल हैं। यहां से आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की प्रचुर शिल्प सामग्री मिली है। उत्तर प्रदेश की जैन मूर्तियां दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बद्ध

१ तिवारी, एम० एन० पी०, 'चन्द्रावती का जैन पुरातत्त्व', **अनेकान्त**, वर्ष १५, अं० ४-५, पृ० १४५-४७

२ **प्रो०रि०आ०स०इं०,वे०स०**,१९०५, पृ० ६०,१९०९-१०, पृ० ४७,१९११-१२, पृ०५३; जैन, के०सी०, **पू०नि०**, पृ० ११७-१८, १२०-२२, १३२

३ टाड, जेम्स, **एशाल्स ऐण्ड ऐन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान**, खं० २, लन्दन, १९५७, पृ० ५९५

है।[१] इस क्षेत्र मे जिनों की सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। जिनों मे ऋषभ[२] और पार्श्व सबसे अधिक लोकप्रिय थे। लोकप्रियता के क्रम में ऋषभ और पार्श्व के बाद महावीर एवं नेमि की मूर्तियां हैं। अजित, सम्भव, सुपार्श्व, विमल, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शान्ति, मल्लि[३] एवं मुनिसुव्रत की भी कई मूर्तियां मिली है। जिन मूर्तियों में अष्ट-प्रातिहार्यों, लांछनों एवं यक्ष-यक्षी युगलों का नियमित चित्रण हुआ है। ऋषभ, नेमि एवं कुछ उदाहरणों मे पार्श्व महावीर और शान्ति के साथ वैयक्तिक विशिष्टताओ वाले पारम्परिक या अपारम्परिक यक्ष-यक्षी निरूपित है। अन्य जिनों के साथ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी या सर्वानुभूति एव अम्बिका आमूर्तित है। नेमि के साथ देवगढ, मथुरा एवं बटेश्वर की कुछ मूर्तियों मे बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित है (चित्र २७, २८)।[४] चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती एवं सिद्धायिका यक्षियों की स्वतन्त्र मूर्तिया भी मिली हैं। सर्वानुभूति यक्ष, बाहुबली, भरत चक्रवर्ती, सरस्वती, क्षेत्रपाल, जैन युगल, जिन चौमुखी एवं जिन चौबीसी की भी अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई है। ल० नवी शती ई० तक इस क्षेत्र की सभी जिन मूर्तियों मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (डी७) को ल० दसवी शती ई० की एक द्विभुज अम्बिका मूर्ति मे बलराम, कृष्ण, गणेश एवं कुबेर की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ की दो ऋषभ (जे ७८) और मुनिसुव्रत (जे ७७६) मूर्तियों मे बलराम और कृष्ण की भी मूर्तिया बनी है। इसी संग्रहालय की १००६ ई० की एक मुनिसुव्रत मूर्ति (जे ७७६) के परिकर मे वस्त्राभूषणो से सज्जित जीवन्तस्वामी की दो लघु मूर्तिया चित्रित है। जीवन्तस्वामी की दो आकृतिया इस बात का संकेत देती है कि महावीर के अतिरिक्त भी अन्य जिनों के जीवन्तस्वामी स्वरूप की कल्पना की गई थी। इलाहाबाद संग्रहालय मे कोशाम्बी, पभोसा एवं लच्छगिरि आदि स्थलो मे प्राप्त दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की ९ जैन मूर्तिया सुरक्षित है। इनमे चन्द्रप्रभ, शान्ति एवं जिन चौमुखी मूर्तिया है (चित्र १७, १९)।[५] सारनाथ संग्रहालय मे विमल की एक मूर्ति (२३६) है (चित्र १८)।

देवगढ़

देवगढ (ललितपुर) मे नवी (८६२ ई०) से बारहवी शती ई० के मध्य की वैविध्यपूर्ण एव प्रचुर जैन मूर्ति सम्पदा सुरक्षित है। किसी समय इस स्थल पर ३५ से ४० जैन मन्दिर थे। सम्प्रति यहा ३१ जैन मन्दिर है। यहा लगभग १०००–११०० जैन मूर्तिया हैं। इनमें स्तम्भो, प्रवेश-द्वारों आदि की लघु आकृतियां सम्मिलित नही है।[६] देवगढ़ की जैन शिल्प सामग्री दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। मन्दिर १२ (शान्तिनाथ मन्दिर) एवं मन्दिर १५ नवी शती ई० के है।[७]

जैन मूर्तिविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से मन्दिर १२ की भित्ति की २४ यक्षियां सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं (चित्र ४८)।[८] २४ यक्षियो के सामूहिक चित्रण का यह प्राचीनतम उदाहरण है। मन्दिर की भित्ति पर कुल २५ देवियां है। इनमें दो देवियों की मूर्तियां पश्चिम की देवकुलिकाओ की दीवारों के पीछे छिपी है।[९] भित्ति की यक्षियां त्रिभंग मे हैं और उनके शीर्ष भाग मे ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण है। जिनो एवं यक्षियो के नाम उनकी आकृतियों के नीचे लिखे है। जिनो के साथ लांछन नहीं उत्कीर्ण है। यहा तक कि ऋषभ की जटाए और सुपार्श्व एव पार्श्व के सर्पफण भी नही प्रदर्शित हैं। २४ जिनों की सूची मे तीन जिनो (अजित, सम्भव, सुमति) के नाम नही है। दो उदाहरणो में नाम स्पष्ट

१ राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे कुछ श्वेतांबर मूर्तिया भी है–जे १४२, १४३, १४४, १४५, ७७६, ८८५, ९४९

२ ऋषभ की लोकप्रियता की पुष्टि न केवल मूर्तियों की संख्या वरन् ऋषभ के साथ अम्बिका एव लक्ष्मी जैसी लोकप्रिय देवियों के निरूपण से भी होती है।

३ राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ८८५

४ राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ७९३, ६५.५३, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा ३७.२७३८, देवगढ़ (मन्दिर २)

५ चंद्र, प्रमोद, **स्टोन स्कल्पचर इन दि एलाहाबाद म्यूजियम**, बम्बई, १९७०, पृ० १३८, १४२-४४, १४७, १५३, १५८

६ **जि०इ०दे०**, पृ० १

७ कृष्ण देव, **पू०नि०**, पृ० २५

८ जि०इ०दे०, पृ० ९८–१०७

९ दोनों आकृतियां स्तन से युक्त हैं। अतः उनका देवियां होना निश्चित है।

नहीं हैं और पश्चिमी देवकुलिका के पीछे की जिन मूर्ति के नाम की जानकारी सम्भव नहीं है। पहले जिन ऋषभ से सातवें जिन सुपार्श्व की मूर्तियां पारम्परिक क्रम में भी नहीं उत्कीर्ण है।[1]

यक्षियों में केवल चक्रेश्वरी, अनन्तवीर्या, ज्वालामालिनी, बहुरूपिणी, अपराजिता, तारादेवी, अम्बिका, पद्मावती एवं सिद्धायिका के ही नाम दिगम्बर परम्परासम्मत है।[2] अन्य यक्षियों के नाम किसी साहित्यिक परम्परा में नहीं प्राप्त होते। यह भी उल्लेखनीय है कि केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती ही परम्परा के अनुसार सम्बन्धित जिनों (ऋषभ, नेमि, पार्श्व) के साथ निरूपित है। लाक्षणिक विशेषताओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि केवल अम्बिका का ही लाक्षणिक स्वरूप नियत हो सका था।[3] कुछ यक्षियों के निरूपण में जैन महाविद्याओं की लाक्षणिक विशेषताओं का अनुकरण किया गया है। पर उनके नाम महाविद्याओं से भिन्न है। साहित्यिक साक्ष्य में परिचित कुछ यक्षियों के अंकन करने, मयूरवाहिनी एवं सरस्वती नामों में सरस्वती और भिन्न नामों में महाविद्याओं के स्वरूप का अनुकरण करने के बाद भी चौबीस की संख्या पूरी न होने पर अन्य यक्षियां सादी, समरूप एवं व्यक्तिगत विशिष्टताओं से रहित है। इस प्रकार देवगढ़ में प्रत्येक जिन के साथ एक यक्षी की कल्पना तो की गई पर अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्षी की मूर्तिवैज्ञानिक विशेषताएं सुनिश्चित नहीं हुई।

देवगढ़ की स्वतन्त्र जिन मूर्तियां अष्ट-प्रातिहार्यों, लांछनों एवं यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त है (चित्र ८,१५,३८)।[4] जिन मूर्तियों में लघु जिन आकृतियों एवं नवग्रहों के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे। कभी-कभी परिकर की २३ लघु जिन मूर्तियां मूलनायक के साथ मिलकर जिन चौबीसी का चित्रण करती है। ऋषभ की कुछ मूर्तियों में स्कन्धों के नीचे तक लटकती लम्बी जटाएं प्रदर्शित है। पार्श्व की सर्पकुण्डलियां भी घुटनों या चरणों तक प्रसारित है। एक उदाहरण में (मन्दिर ६) पार्श्व के दोनों ओर नाग आकृतियां और दूसरे (मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी) में पार्श्व के आसन पर लांछन रूप में कुक्कुट-सर्प अंकित है (चित्र ३१, ३२)। देवगढ़ में केवल ११ जिनों की मूर्तियां मिली है। ये जिन ऋषभ (७० से अधिक), अजित (६), सम्भव (१०),अभिनन्दन (१),पद्मप्रभ (१),सुपार्श्व (४),चन्द्रप्रभ (१०), शान्ति (६), नेमि (२६), पार्श्व (५० से अधिक) एवं महावीर (९) है (चित्र ८, १५, २७, ३१, ३२, ३८)।[5] पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल ऋषभ,[6] नेमि एवं पार्श्व के साथ निरूपित है। चन्द्रप्रभ, शान्ति एवं महावीर के साथ स्वतन्त्र किन्तु परम्परा में अवर्णित यक्ष-यक्षी आमूर्तित है। अन्य जिनों के साथ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण है। कुछ उदाहरणों में ऋषभ एवं महावीर के साथ भी यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है।[7] सर्वानुभूति एवं अम्बिका देवगढ़ के सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी है। लोकप्रियता के क्रम में गोमुख-चक्रेश्वरी का दूसरा स्थान है।[8] मन्दिर २ की ल० दसवीं शती ई० की एक नेमि मूर्ति में बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित है (चित्र २७)।

जिनों की स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त देवगढ़ में द्वितीर्थी (५०), त्रितीर्थी (१५), चौमुखी (५०) मूर्तियां एवं चौबीसी पट्ट भी है (चित्र ६२, ६४, ६५, ७५)। द्वितीर्थी एवं त्रितीर्थी जिन मूर्तियों में दो या तीन जिन कायोत्सर्ग-

---

१ ऋषभ के पूर्व अभिनन्दन और बाद में वर्धमान का उल्लेख हुआ है। २ तिलोयपण्णत्ति ४.९३७-३९

३ यक्षियों की विस्तृत लाक्षणिक विशेषताएं छठें अध्याय में विवेचित है।

४ ऋषभ एवं पार्श्व की कुछ विशाल मूर्तियों में यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित है। पार्श्व के साथ लांछन एक ही उदाहरण में उत्कीर्ण है।

५ एक त्रितीर्थी जिन मूर्ति में कुंथु और शीतल की भी मूर्तियां उत्कीर्ण है।

६ मन्दिर ४ की १०वीं शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति में यक्ष अनुपस्थित है और सिंहासन छोरों पर अम्बिका एवं चक्रेश्वरी निरूपित है।

७ मन्दिर ४, ८ और ११ की ऋषभ, शान्ति एवं महावीर मूर्तियों में यक्षी अम्बिका है। एक में अम्बिका के मस्तक पर सर्पफण का छत्र भी प्रदर्शित है।

८ मन्दिर १ की चन्द्रप्रभ मूर्ति में यक्ष गोमुख है। मन्दिर १६ की नेमि मूर्ति में यक्ष-यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी हैं।

मुद्रा में साधारण पीठिका या सिंहासन पर प्रातिहार्यों एवं लांछनों के साथ खड़े हैं। कुछ उदाहरणों में (मन्दिर १,१९,२८, ल० ११वीं-१२वीं शती ई०) में यक्ष-यक्षी युगल भी चित्रित हैं। मन्दिर १ और २ की ल० ग्यारहवीं शती ई० की दो त्रितीर्थी मूर्तियों में जिनों के साथ क्रमशः सरस्वती और बाहुबली की मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं (चित्र ६५, ७५)।[1] जिन चौमुखी मूर्तियों में सामान्यतः केवल दो ही जिनों की पहचान क्रमशः ऋषभ एवं पार्श्व (या सुपार्श्व) से सम्भव है। केवल एक चौमुखी (मन्दिर २९) में वृषभ, कपि, अर्धचन्द्र एवं मृग लांछनों के आधार पर सभी जिनों की पहचान सम्भव है। दो उदाहरणों (मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी) में चारों जिनों के साथ यक्ष-यक्षी भी आमूर्तित हैं। स्थानीय साहू जैन संग्रहालय में एक जिन चौबीसी पट्ट भी है। पट्ट की २४ जिन मूर्तियां लांछनों, अष्ट-प्रातिहार्यों एवं यक्ष यक्षी युगलों से युक्त है। मन्दिर ५ में १००८ जिनों का चित्रण करने वाली एक विशाल प्रतिमा (११वीं शती ई०) है।

देवगढ़ में ऋषभ पुत्र बाहुबली की छह मूर्तियां (१० वीं-१२ वीं शती ई०) हैं (चित्र ७४, ७५)।[2] बाहुबली कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं और उनकी भुजाओं, चरणों एवं वक्षस्थल से माधवी लिपटी है। शरीर पर वृश्चिक एवं सर्प आदि जन्तु भी उत्कीर्ण हैं।[3] ऋषभ पुत्र भरत चक्रवर्ती की भी चार (१० वीं-१२ वीं शती ई०) मूर्तियां हैं (चित्र ७०)। इनमें भरत कायोत्सर्ग में खड़े हैं और उनके आसन पर गज एवं अश्व आकृतियां, और पार्श्वों में कुबेर, नवनिधि के सूचक नवघट एवं चक्रवर्ती के अन्य लक्षण (चक्र, वज्र, खड्ग) चित्रित हैं।[4]

यक्षियों में अम्बिका सर्वाधिक लोकप्रिय थी। उसकी ५० से भी अधिक मूर्तियां मिली हैं (चित्र ५१)। अम्बिका के बाद सर्वाधिक मूर्तियां चक्रेश्वरी की हैं। चक्रेश्वरी की चतुर्भुज से विंशतिभुज मूर्तियां हैं (चित्र ४५, ४६)। रोहिणी, पद्मावती एवं सिद्धायिका (मन्दिर ५, उत्तरंग) यक्षियों और सरस्वती एवं लक्ष्मी की भी कई मूर्तियां हैं (चित्र ४७, ६५)। मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के स्तम्भ (९वीं शती ई०) पर ब्रह्मशान्ति यक्ष (या अग्नि) की एक चतुर्भुज मूर्ति है। देवता की भुजाओं में अभयमुद्रा, स्रुक, पुस्तक एवं कलश प्रदर्शित हैं। यहां क्षेत्रपाल (६) और कुबेर (? मन्दिर ८) की भी मूर्तियां हैं। मन्दिर १२ के प्रवेश-द्वार पर १६ मांगलिक स्वप्न उत्कीर्ण हैं। मन्दिर ५, १२ और ३१ के प्रवेश-द्वारों, स्वतन्त्र उत्तरंगों एवं जिन मूर्तियों पर नवग्रहों की आकृतियां बनी हैं। द्वारशाखाओं पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्म-वाहिनी यमुना की मूर्तियां हैं। जैन युगलों की ४० मूर्तियां हैं, जिनमें पुरुष एवं स्त्री दोनों की एक भुजा में बालक, और दूसरे में पुष्प (या फल या कोई मुद्रा) प्रदर्शित है। मन्दिर ८ और ३० में जिनों की माताओं की दो मूर्तियां (११ वीं शती ई०) हैं। देवगढ़ में जैन आचार्यों का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। स्थापना के समीप विराजमान जैन आचार्यों की दाहिनी भुजा से व्याख्यान-(या ज्ञान-या-अभय-) मुद्रा व्यक्त है और बायीं में पुस्तक है।

देवगढ़ के मन्दिर १८ की द्वारशाखाओं पर जैन-परम्परा-विरुद्ध कुछ चित्रण है। मयूर पीचिका से युक्त एक नग्न जैन साधु को एक स्त्री के साथ आलिंगन की मुद्रा में दिखाया गया है।

देवगढ़ के अतिरिक्त मदनपुर, दुदही, चांदपुर एवं सिरोनी खुर्द आदि स्थलों से भी ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की जैन मूर्तियां मिली हैं। इन स्थलों से मुख्यतः ऋषभ, पार्श्व, शान्ति, सम्भव, चन्द्रप्रभ, चक्रेश्वरी, अम्बिका, सरस्वती एवं क्षेत्रपाल की मूर्तियां मिली हैं।[5]

---

१ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए यूनीक त्रि-तीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ़', ललितकला, अं० १७, पृ० ४१-४२; 'ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज फ्राम नार्थ इण्डिया', ईस्ट वे०, ख० २३, अं० ३-४, पृ० ३५२-५३

२ तिवारी, एम०एन०पी०, 'बाहुबली', पू०नि०, पृ० ३५२-५३

३ जिन मूर्तियों के समान ही बाहुबली के साथ भी अष्ट-प्रातिहार्य और यक्ष-यक्षी युगल (मन्दिर २, ११) प्रदर्शित हैं।

४ १०वीं-११वीं शती ई० की दो मूर्तियां मन्दिर २ और १, एवं एक मूर्ति मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर हैं।

५ शास्त्री, परमानन्द जैन, 'मध्य भारत का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १९, अं०१-२, पृ० ५७-५८; ब्रुन, क्लाज, 'जैन तीर्थज इन मध्य देश : दुदही, चांदपुर', जैनयुग, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९-३३, वर्ष २, अप्रैल १९५९, पृ० ६७-७०

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश में लगभग सभी क्षेत्रों में आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य के जैन मन्दिर एवं मूर्ति अवशेष मिले हैं। ये अवशेष मुख्यतः ग्यारसपुर, खजुराहो, गंधावल, अहाड, पधावली, नरवर, ऊन, नवागढ, ग्वालियर, सतना (पतियानदाई मन्दिर), अजयगढ़, चन्देरी, उज्जैन, गुना, शिवपुरी, शहडोल, तेरही, दमोह, बानपुर आदि स्थलों पर हैं। मध्य प्रदेश का जैन शिल्प दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बद्ध है।

मध्य प्रदेश में जिन मूर्तियां सर्वाधिक हैं। इनमें ऋषभ, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियां सबसे अधिक हैं। अजित, सम्भव, सुपार्श्व, पद्मप्रभ, शान्ति, मुनिसुव्रत एवं नेमि की भी पर्याप्त मूर्तियां हैं। जिन मूर्तियों में लांछनों, अष्ट-प्रातिहार्यों[1] एवं यक्ष-यक्षी युगलों का नियमित अंकन हुआ है। कुछ उदाहरणों में नवग्रह भी उत्कीर्ण हैं। पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल ऋषभ, नेमि, पार्श्व एवं कुछ उदाहरणों में महावीर के साथ निरूपित हैं। अन्य जिनों के साथ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी हैं। जिनों की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी, चौमुखी एवं चौबीसी मूर्तियां भी मिली हैं। ७२ और १०८ जिनों का अंकन करने वाले पट्ट भी मिले हैं।

यक्षियों में केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती एवं सिद्धायिका की ही स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। इनमें अम्बिका एवं चक्रेश्वरी की सर्वाधिक मूर्तियां हैं। पतियानदाई मन्दिर (सतना) की ग्यारहवीं शती ई० की एक अम्बिका मूर्ति के परिकर में अन्य २३ यक्षियां भी निरूपित हैं (चित्र ५३)। यह मूर्ति सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय (ए०एम० २९३) में है।[2] यक्षों में केवल गोमुख एवं सर्वानुभूति की ही स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। महाविद्याओं के चित्रण का एकमात्र सम्भावित उदाहरण खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर के मण्डोवर पर देखा जा सकता है।[3] सरस्वती, लक्ष्मी, जैन युगलों, बाहुबली, जैन आचार्यों, १६ मांगलिक स्वप्नों आदि के भी अनेक उदाहरण हैं।

सतना के समीप का पतियानदाई मन्दिर ल० सातवीं-आठवीं शती ई० का है।[4] बडोह का गाडरमल जैन मन्दिर ल० नवीं-दसवीं शती ई० का है। ग्वालियर किले एवं समीप के स्थलों से गुप्तकाल से आधुनिक युग तक की जैन मूर्तियां मिली हैं। ग्वालियर स्थित तेली के मन्दिर से ल० नवीं शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति मिली है।[5] ग्यारसपुर एवं खजुराहो के जैन मूर्ति अवशेषों का यहां विस्तार से उल्लेख किया गया है।

ग्यारसपुर

ग्यारसपुर (विदिशा) का मालादेवी मन्दिर दिगंबर जैन मन्दिर है। कुछ जैन मूर्तियां ग्यारसपुर के हिन्दू मन्दिर बजरामठ के प्रकोष्ठों में भी सुरक्षित हैं।

मालादेवी मन्दिर—मालादेवी मन्दिर का निर्माण नवीं शती ई० के उत्तरार्ध[6] या दसवीं शती ई० के प्रारम्भ[7] में हुआ। कुछ समय पूर्व तक इसे हिन्दू मन्दिर समझा जाता था।[8] गर्भगृह एवं भित्ति की जिन एवं चक्रेश्वरी और अम्बिका

---

१ अष्ट-प्रातिहार्यों में सामान्यतः अशोक वृक्ष नहीं उत्कीर्ण है।

२ कनिंघम, ए०, आ०सं०इं०रि०, खं० ९, पृ० ३१–३३, प्रो०रि०आ०स०इं०, वे०स०, १९१९–२०, पृ० १०८–०९; स्ट०जै०आ०, पृ० १८

३ द्रष्टव्य, तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट ऑन दि फिगरस ऑव सिक्सटीन जैन गॉडेसेस ऑन दि आदिनाथ टेम्पल् ऐट खजुराहो', **ईस्ट वे०** (स्वीकृत)

४ कनिंघम, ए०, पू०नि०, पृ० ३१–३३

५ कनिंघम, ए०, आ०स०इं०रि०, १८६४–६५, खं० २, पृ० ३६२–६५; स्ट०जै०आ०, पृ० २३–२४

६ कृष्ण देव, 'मालादेवी टेम्पल् ऐट ग्यारसपुर', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बम्बई, १९६८, पृ० २६०

७ ब्राउन, पर्सी, पू०नि०, पृ० ११५　　　　८ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० २६९

मूर्तियों के आधार पर इसका जैन मन्दिर होना निर्विवाद है।[1] गर्भगृह में ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की पांच जिन मूर्तियां हैं। गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति पर सिंह-लांछन से युक्त महावीर की एक ध्यानस्थ मूर्ति (१० वीं शती ई०) है। शान्ति एवं नेमि की दसवीं शती ई० की दो मूर्तियां मण्डप की उत्तरी और दक्षिणी रथिकाओं में सुरक्षित है। मन्दिर की जंघा की रथिकाओं में दिक्पाल[2] एवं जैन यक्ष और यक्षियों की मूर्तियां है।

मन्दिर के मण्डोवर की रथिकाओं में द्विभुज से द्वादशभुज देवियों की मूर्तियां है। अधिकांश देवियों की निश्चित पहचान सम्भव नहीं है।[3] केवल चक्रेश्वरी (३), अम्बिका (३), पद्मावती (४) यक्षियों, पार्श्व यक्ष (१) और सरस्वती की ही पहचान संभव है। उत्तरी अधिष्ठान की एक चतुर्भुज देवी की तीन अवशिष्ट भुजाओं में अभयमुद्रा, पद्म और पद्म प्रदर्शित है। देवी लक्ष्मी या शान्तिदेवी है। गर्भगृह की भित्ति पर भी पद्म धारण करनेवाली द्विभुज देवी की आठ मूर्तियां है। जंघा की बहुभुजी देवियां द्विपद्मासन पर ललितमुद्रा मे विराजमान है।

पूर्वी भित्ति की अष्टभुजा देवी के आसन के नीचे दो मुखों वाला मयूर जैसा कोई पक्षी (सम्भवतः कुक्कुट-सर्प) है। देवी की अवशिष्ट भुजाओं मे तूणीर, पद्म, चामर, चामर, ध्वज, सर्प और धनुष प्रदर्शित है। कृष्णदेव ने वाहन को कुक्कुट-सर्प माना है और उसी आधार पर देवी की सम्भावित पहचान पद्मावती से की है।[4] पर उसी स्थल की अन्य पद्मावती मूर्तियों के शीर्षभाग मे सर्पफणों का प्रदर्शन, जो इस मूर्ति मे अनुपस्थित है, इस पहचान मे बाधक है। यह देवी दूसरी यक्षी प्रज्ञप्ति, या तेरहवीं यक्षी वैरोट्या भी हो सकती है।

दक्षिणी जंघा की गजवाहना एवं चतुर्भुजा देवी के करों मे खड्ग, चक्र, खेटक और शंख है। गजवाहन एवं चक्र के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान पांचवीं यक्षी पुरुषदत्ता से की जा सकती है। दक्षिणी जंघा की दूसरी देवी अष्टभुज है और उसका वाहन अश्व है। देवी की अवशिष्ट भुजाओं मे खड्ग, पद्म (जिसका निचला भाग शृंखला के समान है), कलश, घण्टा, फलक, आम्रलुम्बि और फल प्रदर्शित हैं। अश्ववाहन और खड्ग के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान छठी यक्षी मनोवेगा से की जा सकती है। दक्षिणी जंघा की तीसरी मृगवाहना देवी चतुर्भुजा है। देवी की भुजाओं मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, नीलोत्पल एवं फल है। मृगवाहन और पद्म एवं वरदमुद्रा के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान ग्यारहवीं यक्षी मानवी से की जा सकती है।

पश्चिमी जंघा की चतुर्भुजा देवी के पद्मासन के समीप मकरमुख (वाहन) उत्कीर्ण है। आसन के नीचे एक पंक्ति मे नवनिधि के सूचक नौ घट है। देवी की अवशिष्ट भुजाओं मे पद्म एवं दर्पण है। मकरवाहन और पद्म के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान बारहवीं यक्षी गांधारी से की जा सकती है। पर नौ घटों का चित्रण इस पहचान मे बाधक है।

उत्तरी अधिष्ठान की एक द्वादशभुज देवी लोहासन पर विराजमान है। लोहासन के नीचे सम्भवतः गजमस्तक उत्कीर्ण है। देवी की सुरक्षित भुजाओं मे पद्म, वज्र, चक्र, शंख, पुष्प और पद्म है। लोहासन और शंख एवं चक्र के आधार पर देवी की पहचान दूसरी यक्षी रोहिणी से की जा सकती है। उत्तरी जंघा पर अश्ववाहना चतुर्भुजा देवी निरूपित है। देवी के करों मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म और फल है। वाहन के आधार पर देवी की पहचान किसी दिगंबर यक्षी से सम्भव नहीं है। श्वेतांबर परम्परा में अश्ववाहन और पद्म पन्द्रहवीं यक्षी कन्दर्पा से सम्बन्धित है।

पूर्वी जंघा पर अश्ववाहना चतुर्भुजा देवी आमूर्तित है। देवी के करों मे वज्र, दंड (शीर्ष भाग पर पंखयुक्त मानव आकृति), चामर और छत्र है। कृष्णदेव ने देवी की पहचान हिन्दू देव रेवन्त की शक्ति से की है।[5] जैन मूर्तियों के सन्दर्भ मे यह पहचान उचित नहीं प्रतीत होती है। सम्भवतः यह सातवीं यक्षी मनोवेगा है। गर्भगृह की जंघा पर द्विभुज सरस्वती

---

१ मूर्तियों के शीर्ष भाग में लघु जिन आकृतियां भी उत्कीर्ण है।

२ उत्तरी जंघा पर कुबेर एवं इन्द्र दिक्पालों की द्विभुज मूर्तियां है। कुबेर का वाहन गज के स्थान पर मेष है।

३ हमने दिगंबर ग्रन्थों के आधार पर देवियों की सम्भावित पहचान के प्रयास किये हैं।

४ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० २६२–६३

५ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० २६५

की तीन स्थानक मूर्तियां है। दो उदाहरणो मे सरस्वती की भुजाओ मे पुस्तक एवं पद्म (या व्याख्यान-मुद्रा) हैं। उत्तरी जंघा की तीसरी मूर्ति में दोनो भुजाओं मे वीणा है।

बजरामठ—यह दसवी शती ई० के प्रारम्भ का हिन्दू मन्दिर है।[1] पर इसके प्रकोष्ठों मे ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की जैन मूर्तियां रखी है। मन्दिर के मण्डोवर पर सूर्य, विष्णु, नरसिंह, गणेश, वराह आदि हिन्दू देवो की मूर्तियां है। बायी ओर के पहले प्रकोष्ठ मे लाछनरहित किन्तु जटाओं से शोभित ऋषभ की एक विशाल मूर्ति (बी १२) है। मध्य के प्रकोष्ठ मे भी लाछन, जटाओ एव पारम्परिक यक्ष-यक्षी से युक्त ऋषभ की एक मूर्ति है। अन्तिम प्रकोष्ठ में ऋषभ, नेमि, सुपार्श्व एव पार्श्व की चार कायोत्सर्ग मूर्तिया है।

खजुराहो

खजुराहो (छतरपुर) के मन्दिर अपनी वास्तुकला एव शिल्प वैभव के लिए विश्व प्रसिद्ध है। हिन्दू मन्दिरो के साथ ही यहां चन्देल शासको के काल के कई जैन मन्दिर भी है।[2] सम्प्रति यहा तीन प्राचीन (पार्श्वनाथ, आदिनाथ, घंटई) और ३२ नवीन जैन मन्दिर है।[3] वर्तमान मे पार्श्वनाथ और आदिनाथ मन्दिर ही पूर्णतः सुरक्षित है। खजुराहो की जैन शिल्प सामग्री दिगबर सम्प्रदाय से सम्बद्ध है[4] और उसका समय-सीमा ल० ९५० ई० से ११५० ई० है।

पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथ मन्दिर जैन मन्दिरो मे प्राचीनतम और स्थापत्यगत योजना एव मूर्त अलंकरणों की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट एवं विशालतम है। कृष्णदेव ने पार्श्वनाथ मन्दिर को धग के शासनकाल के प्रारम्भिक दिनों (९५०–७० ई०) मे निर्मित माना है।[5] पार्श्वनाथ मन्दिर मूलतः प्रथम तीर्थंकर ऋषभ को समर्पित था। गर्भगृह मे स्थापित १८६० ई० की काले प्रस्तर की पार्श्वनाथ मूर्ति के कारण ही कालान्तर मे इसे पार्श्वनाथ मन्दिर के नाम से जाना जाने लगा। गर्भगृह मे मूल प्रतिमा के सिंहासन और परिकर सुरक्षित है। मूल प्रतिमा की पीठिका पर ऋषभ के लाछन (वृषभ) और यक्ष-यक्षी (गोमुख एव चक्रेश्वरी) उत्कीर्ण है। साथ ही मूलनायक के पार्श्वों मे सुपार्श्व और पार्श्व मूर्तिया भी सुरक्षित है। मण्डप के ललाट-बिम्ब पर भी चक्रेश्वरी की ही मूर्ति है।

मन्दिर की बाह्य भित्तियों पर तीन पंक्तियों मे देव मूर्तिया उत्कीर्ण है।[6] मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से केवल निचली दो पंक्तियों की मूर्तिया ही महत्वपूर्ण है। ऊपरी पंक्ति मे केवल पुष्पमाल से युक्त विद्याधर युगल, गन्धर्व एवं किन्नर-किन्नरियों की उड्डीयमान आकृतियां उत्कीर्णित है। मध्य की पंक्ति मे विभिन्न देव युगलों, लक्ष्मी एवं जिनो (लाछन रहित) आदि की मूर्तिया है। निचली पंक्ति मे जिनों, अष्ट-दिक्पालों, देवयुगलों (शक्ति के साथ आलिंगन-मुद्रा मे), अम्बिका यक्षी, शिव, विष्णु, ब्रह्मा एव विश्वप्रसिद्ध अप्सराओं[7] की मूर्तिया हैं।

---

१ ब्राउन, पर्सी, पू०नि०, पृ० ११५
२ कनिंघम, ए०, आ०स०इं०रि०, १८६४–६५, ख० २, पृ० ४३१–३५, ब्राउन, पर्सी, पू०नि०, पृ० ११२–१३
३ नवीन जैन मन्दिरो मे भी चन्देलकालीन जैन मूर्तियां रखी है। नवीन जैन मन्दिरो की संख्या का उल्लेख हमने १९७० मे उन मन्दिरो पर अंकित स्थानीय संख्या के अनुसार किया है।
४ जिनों की निर्वस्त्र मूर्तियां और १६ मांगलिक स्वप्नों के चित्रण दिगबर संप्रदाय की विशेषताएं है। ज्ञातव्य है कि श्वेतांबर सम्प्रदाय मे मांगलिक स्वप्नों की संख्या १४ है।
५ कृष्ण देव, 'दि टेम्पल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया', ऐं०इं०, अं० १५, पृ० ५५
६ ब्रुन, क्लाज, 'दि फिगर ऑव टू लोअर रिलीफ्स आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल ऐट खजुराहो', **आचार्य श्री विजयवल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ**, बंबई, १९५६, पृ० ७–३५
७ पार्श्वनाथ मन्दिर की दर्पण देखती, पत्र लिखती, पैर से कांटा निकालती, पैर मे पायजेब बांधती कुछ अप्सरा मूर्तियां अपनी भावभंगिमाओ एवम् शिल्पगत विशेषताओं के कारण विश्वप्रसिद्ध हैं।

निचली दोनों पंक्तियों की देव युगल[१] एवं स्वतन्त्र मूर्तियों मे देवता सदैव चतुर्भुज हैं। पर देवताओं की शक्तियां द्विभुजा हैं। सभी मूर्तियां त्रिभंग में खड़ी हैं। इन मूर्तियों में शक्ति की एक भुजा आलिंगन-मुद्रा में है और दूसरी में दर्पण या पद्म है।[२] तात्पर्य यह कि विभिन्न देवों के साथ पारम्परिक शक्तियों, यथा विष्णु के साथ लक्ष्मी, ब्रह्मा के साथ ब्रह्माणी, के स्थान पर सामान्य एवं व्यक्तिगत विशेषताओं से रहित देवियां निरूपित हैं। स्वतन्त्र देव मूर्तियो में शिव (१९), विष्णु (१०) एवं ब्रह्मा (१) की मूर्तियां है। देवयुगलों में शिव (९), विष्णु (७), ब्रह्मा (१), अग्नि (१) कुबेर (१), राम (१)[३] एवं बलराम (१) की मूर्तियां है। अम्बिका (२), चक्रेश्वरी (१), सरस्वती (६), लक्ष्मी (५) एव त्रिमुख ब्रह्माणी (३) की भी मूर्तियां उत्कीर्ण है। जिन, अम्बिका एवं चक्रेश्वरी की मूर्तियों के अतिरिक्त मण्डोवर की अन्य सभी मूर्तियां हिन्दू देवकुल से सम्बन्धित और प्रभावित है। उत्तरी एवं दक्षिणी शिखर पर काम-क्रिया मे रत दो युगल चित्रित है।[४] उल्लेखनीय है कि खजुराहो के दुलादेव, लक्ष्मण, कन्दरिया महादेव, देवी जगदम्बी एव विश्वनाथ मन्दिरों पर उत्कीर्ण काम-क्रिया से सम्बन्धित विभिन्न मूर्तियो मे अनेकशः मुण्डित-मस्तक, निर्वस्त्र एव मयूरपीछिका लिए जैन साधुओं को रतिक्रिया की विभिन्न मुद्राओं मे दरशाया गया है। लक्ष्मण मन्दिर की उत्तरी भित्ति की ऐसी एक दिगम्बर मूर्ति मे जैन साधु के वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न भी उत्कीर्ण है। **हरिवंशपुराण** (२९.१–५) मे एक स्थान पर जिन मन्दिर में सम्पूर्ण प्रजा के कौतुक के लिए कामदेव और रति की मूर्ति बनवाने और मन्दिर के कामदेव मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध होने के उल्लेख है। ये बातें जैन धर्म म आये शिथिलन का संकेत देती है।

गर्भगृह की भीत्ति पर अष्ट-दिक्पाल, जिनो, बाहुबली एवं शिव (८) की मूर्तियां है। उत्तरंगों पर द्विभुज नवग्रहों (३ समूह) और द्वार-शाखाओं पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्तियां हैं।

मण्डप की भित्ति की जिन मूर्तियों मे लांछन और यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण है। पर गर्भगृह की भित्ति की जिन मूर्तियो (९) मे लांछन[५], अष्ट-प्रातिहार्य एवं यक्ष-यक्षी आमूर्तित है। यक्ष-यक्षी सामान्यतः अभयमुद्रा एवं फल (या जल पात्र) से युक्त है। लांछनों के आधार पर अभिनन्दन, सुमति (?), चन्द्रप्रभ एवं महावीर की पहचान सम्भव है। मन्दिर की जिन मूर्तिया मूर्तिवैज्ञानिक दृष्टि से प्रारम्भिक कोटि की है। जिनों के स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी युगलों के स्वरूप का निर्धारण अभी नही हो पाया था। गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति पर बाहुबली की एक मूर्ति है।[६] सिंहासन पर कायोत्सर्ग मे निर्वस्त्र खड़े बाहुबली के साथ जिन मूर्तियो की विशेषताएं (सिंहासन, चामरधर, उड्डीयमान गन्धर्व) प्रदर्शित है। बाहुबली के पार्श्वों मे विद्याधरियों की दो आकृतियां भी उत्कीर्ण है।[७]

घण्टई मन्दिर—कृष्ण देव ने स्थापत्य, मूर्तिकला और लिपि सम्बन्धी साक्ष्यों के आधार पर घण्टई मन्दिर को दसवी शती ई० के अन्त का निर्माण माना है।[८] मन्दिर के अर्धमण्डप के उत्तरंग पर ललाट-बिम्ब के रूप मे अष्टभुज चक्रेश्वरी की मूर्ति उत्कीर्ण है जो मन्दिर के ऋषभदेव को समर्पित होने की सूचक है। उत्तरंग पर द्विभुज नवग्रहों एवं

---

१ देवयुगलो की कुछ मूर्तियां मन्दिर के अन्य भागो पर भी है।

२ विभिन्न देवताओं का शक्तियों के साथ आलिंगन-मुद्रा मे अंकन जैन परम्परा के विरुद्ध है। जैन परम्परा मे कोई भी देवता अपनी शक्ति के साथ नहीं निरूपित है, फिर शक्ति के साथ और वह भी आलिंगन-मुद्रा मे चित्रण का प्रश्न ही नही उठता।

३ मन्दिर के दक्षिणी शिखर पर रामकथा से सम्बन्धित एक दृश्य भी उत्कीर्ण है। क्लांतमुख सीता अशोक वाटिका मे बैठी हैं और हनुमान उन्हे राम की अंगूठी दे रहे है—तिवारी, एम०एन०पी०, 'ए नोट आन एन इमेज आॅव राम ऐण्ड सीता आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल, खजुराहो', **जैन जर्नल**, खं० ८, अ० १, पृ० ३०–३२

४ द्रष्टव्य, त्रिपाठी, एल०के०, 'दि एराटिक स्कल्पचर्स आॅव खजुराहो ऐण्ड देयर प्राबेबल एक्सप्लानेशन', **भारती**, अं० ३, पृ० ८२-१०४

५ केवल चार उदाहरणो मे लांछन स्पष्ट है।

६ प्राचीनतम मूर्ति जूनागढ़ संग्रहालय मे है।

७ **हरिवंशपुराण** ११.१०१

८ कृष्ण देव, **पूर्वो०**, पृ० ६०

गोमुख (८) की भी मूर्तियां हैं। गोमुख आकृतियों की भुजाओं में पद्म और घट है। प्रवेश-द्वार पर १६ मांगलिक स्वप्न और गंगा-यमुना की मूर्तियां भी अंकित हैं। छतों और स्तम्भों पर जिनों एवं जैनाचार्यों की लघु मूर्तियां है।

आदिनाथ मन्दिर—योजना, निर्माण शैली एवं मूर्तिकला की दृष्टि से आदिनाथ मन्दिर खजुराहो के वामन मन्दिर (ल० १०५०-७५ ई०) के निकट है। कृष्णदेव ने इसी आधार पर मन्दिर को ग्यारहवीं शती ई० के उत्तरार्ध में निर्मित माना है।[1] गर्भगृह में ११५८ ई० की काले प्रस्तर की एक आदिनाथ मूर्ति है। ललाट-बिम्ब पर चक्रेश्वरी आमूर्तित है। मन्दिर के मण्डोवर पर मूर्तियों की तीन समानान्तर पंक्तियां है। ऊपर की पंक्ति में गन्धर्व, किन्नर एवं विद्याधर मूर्तियां है। मध्य की पंक्ति में चार कोनों पर त्रिभंग में आठ चतुर्भुज गोमुख आकृतियां उत्कीर्ण है। आठ गोमुख आकृतियां सम्भवतः अष्ट-वासुकिया का चित्रण है।[2] इनके करों में वरदमुद्रा, चक्राकार सनाल पद्म (या परशु), चक्राकार सनाल पद्म एवं जलपात्र है। निचली पंक्ति मे अष्ट-दिक्पालों की चतुर्भुज मूर्तिया है। दक्षिणी अधिष्ठान पर ललितमुद्रा मे आसीन चतुर्भुज क्षेत्रपाल की मूर्ति है। क्षेत्रपाल का वाहन श्वान् है और करों मे गदा, नकुलक, सर्प एवं फल प्रदर्शित है। सिंहवाहना अम्बिका की तीन और गरुडवाहना चक्रेश्वरी की दो मूर्तिया है।

आदिनाथ मन्दिर के मण्डोवर की १६ रथिकाओं मे १६ देवियो की मूर्तिया उत्कीर्ण है। ये मूर्तिया मूर्ति-वैज्ञानिक दृष्टि से विशेष महत्व की है। भिन्न आयुधो एवं वाहनो वाली स्वतन्त्र देवियो की सम्भावित पहचान १६ महाविद्याओं से की जा सकती है।[3] ललितमुद्रा मे आसीन या त्रिभंग मे खड़ी देविया चार से आठ भुजाओं वाली है। उत्तर और दक्षिण की भित्तियो पर ७-७ और पश्चिम की भित्ति पर दो देविया उत्कीर्ण है।[4] सभी उदाहरणों मे रथिका-बिम्ब काफी विरूप है, जिसकी वजह से उनकी पहचान कठिन हो गई है। केवल कुछ ही देवियों के निरूपण में पश्चिम भारत के लाक्षणिक ग्रन्थो के निर्देशों का आंशिक अनुकरण किया गया है। सभी देविया वाहन से युक्त है और उनके शीर्ष भाग मे लघु जिन आकृतियां उत्कीर्ण है। देवियो के स्कन्धो के ऊपर सामान्यतः अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र से युक्त देवियों की दो छोटी मूर्तिया उत्कीर्ण है। दिगम्बर ग्रन्थो से तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर कुछ देवियो की सम्भावित पहचान के प्रयास किए गये हैं। वाहनो या कुछ विशिष्ट आयुधो या फिर दोनों के आधार पर जाम्बूनदा, गौरी, काली, महाकाली, गांधारी, पुरुषदत्ता एवं वैरोट्या महाविद्याओं की पहचान की गई है।

मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर वाहन से युक्त चतुर्भुज देविया निरूपित है। इनमे केवल लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती की ही निश्चित पहचान सम्भव है।[5] दहलीज पर दो चतुर्भुज पुरुष आकृतियां ललितमुद्रा मे उत्कीर्ण है। इनकी तीन अवशिष्ट भुजाओं मे अभयमुद्रा, परशु एवं चक्राकार पद्म है। देवता की पहचान सम्भव नही है। दहलीज के बायें छोर पर महालक्ष्मी की मूर्ति है। दाहिने छोर पर त्रिसर्पफणो और पद्मासना देवी की मूर्ति है। देवी की पहचान सम्भव नही है। प्रवेश-द्वार पर मकरवाहिनी गंगा एवं कूर्मवाहिनी यमुना और १६ मांगलिक स्वप्न उत्कीर्ण है।

शान्तिनाथ मन्दिर—शान्तिनाथ मन्दिर (मन्दिर १) मे शान्ति की एक विशाल कायोत्सर्ग प्रतिमा है। कनिंघम ने इस मूर्ति पर १०२८ ई० का लेख देखा था, जो सम्प्रति प्लास्टर के अन्दर छिप गया है।[6]

---

१ **वही**, पृ० ५८

२ खजुराहो के चतुर्भुज एवं दूलादेव हिन्दू मन्दिरों पर भी समान विवरणों वाली आठ गोमुख आकृतियां उत्कीर्ण है। इनकी भुजाओं मे वरदमुद्रा (या वरदाक्ष), त्रिशूल (या स्रुक), पुस्तक-पद्म एवं जलपात्र प्रदर्शित है।

३ मध्य भारत मे १६ महाविद्याओं के सामूहिक चित्रण का यह एकमात्र सम्भावित उदाहरण है।

४ उत्तरी भित्ति की दो रथिकाओं के बिम्ब सम्प्रति गायब है।

५ तिवारी, एम० एन० पी०, 'खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर के प्रवेश-द्वार की मूर्तियां', **अनेकान्त**, **वर्ष** २४, **अं०** ५, पृ० २१८–२१

६ **कनिंघम, ए०, आ०स०इं०रि०**, १८६४–६५, खं० २, पृ० ४३४

प्राचीन जैन मन्दिरों के अतिरिक्त स्थानीय संग्रहालयों[१] एवं नवीन जैन मन्दिरों में भी जैन मूर्तियां सुरक्षित हैं। उनका भी संक्षेप में उल्लेख अपेक्षित है। खजुराहो की प्राचीनतम जिन मूर्तियां पार्श्वनाथ मन्दिर की है। खजुराहो से दसवी से बारहवी शतीई० के मध्य की लगभग २५०जिन मूर्तियां मिली है (चित्र४२)।[२] ये मूर्तियां श्रीवत्स एवं लांछनों से युक्त है। यहां जिनों की ध्यानस्थ मूर्तियां अपक्षाकृत अधिक है। सुपार्श्व एवं पार्श्व अधिकांशतः कायोत्सर्ग मे निरूपित है। अष्ट-प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी युगलो से युक्त[३] जिन मूर्तियों के परिकर मे नवग्रहों एव जिनो की छोटी मूर्तिया भी उत्कीर्ण है। सभी जिनो के साथ स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी नही निरूपित है। केवल ऋषभ (गोमुख-चक्रेश्वरी), नेमि (सर्वानुभूति-अम्बिका), पार्श्व (धरणेन्द्र-पद्मावती) एवं महावीर (मातंग-सिद्धायिका) के साथ ही पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। अन्य जिनो के साथ वैयक्तिक विशिष्टताओं से रहित सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी आमूर्तित है। खजुराहो मे केवल ऋषभ (६०), अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व (११) एवं महावीर (९) की ही मूर्तियां है। यहा द्वितीर्थी (९), त्रितीर्थी (१, मन्दिर ८) और चौमुखी (१, पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो १५८८) जिन मूर्तियां भी है (चित्र ६१, ६३)। मन्दिर १८ के उत्तरंग पर किसी जिन के दीक्षा-कल्याणक का दृश्य है। जैन युगलो (७) एवं आचार्यों की भी कई मूर्तिया है। जैन युगलो के शीर्ष भाग मे वृक्ष एवं लघु जिन मूर्ति उत्कीर्ण है। स्त्री की बायी भुजा मे सदैव एक बालक प्रदर्शित है।

अम्बिका (११) एव चक्रेश्वरी (१३) खजुराहो की सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षिया है (चित्र५७)। पार्श्वनाथ मन्दिर की दक्षिणी जंघा की एक द्विभुज मूर्ति के अतिरिक्त अम्बिका सदैव चतुर्भुज है। चक्रेश्वरी चार से दस भुजाओं वाली है। पद्मावती की भी तीन मूर्तियां है। मन्दिर २४ के उत्तरंग पर सिद्धायिका की भी एक मूर्ति है। अश्ववाहना मनोवेगा की एक मूर्ति पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (९४०) मे है। यक्षों मे केवल कुबेर की ही स्वतन्त्र मूर्तिया (४) मिली है।

अन्य स्थल

जबलपुर-भेड़ाघाट मार्ग के समीप त्रिपुरी के अवशेष है जिसमे चक्रेश्वरी, पद्मावती, ऋषभ एव नेमि की मूर्तिया है।[४] बिल्हारी (जबलपुर) मे ल० दसवी शती ई० का जैन मन्दिर एवं मूर्ति अवशेष है। मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर पार्श्व और बाहुबली की मूर्तिया है। यहा से चक्रेश्वरी एवं बाहुबली की भी मूर्तिया मिली है। जबलपुर से अर की एक मूर्ति मिली है। शहडोल से ऋषभ, पार्श्व, पद्मावती, जैन युगल एवं जिन चौमुखी मूर्तिया (११वी शती ई०) प्राप्त हुई है (चित्र५५)। ऊन (इन्दौर) और अहाड (टीकमगढ) से ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की जैन मूर्तियां मिली है (चित्र ६७)।[५] अहाड से शान्ति (११८० ई०), कुंथु, अर एवं महावीर की मूर्तियां उपलब्ध हुई है। अहाड से कुछ दूर बानपुर एव जतरा से भी जैन मूर्तिया (१२ वी-१३ वी शती ई०) मिली है। टीकमगढ स्थित नवागढ से बारहवी शती ई० के जैन मन्दिर एवं मूर्ति अवशेष मिले है। यहा से अर (११४५ ई०) और पार्श्व की मूर्तिया मिली है।[६] विदिशा के बडोह एव पठारी मे दसवी-ग्यारहवी शती ई० के जैन मन्दिर एवं मूर्तियां प्राप्त हुई है। पठारी से अम्बिका एवं महावीर की मूर्तियां मिली है। रीवां एवं गुर्गी से जिनो एव जैन युगलो की मूर्तिया (११ वी शती ई०) मिली है। देवास और गंधावल मे प्राप्त जैन मूर्तियो (११ वी-१२ वी शती ई०) में पार्श्व एवं विंशतिभुज चक्रेश्वरी की मूर्तिया उल्लेखनीय है।[७]

---

१ जैन मूर्तियां आदिनाथ मन्दिर के पीछे (शान्तिनाथ संग्रहालय, पुरातात्विक संग्रहालय एव जार्डिन संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

२ इस संख्या मे उत्तरंगों, प्रवेश-द्वारो एवं मन्दिरो के अन्य भागो की लघु जिन आकृतिया नही सम्मिलित है।

३ कुछ उदाहरणो मे ऋषभ, अजित, सुपार्श्व, पार्श्व, मुनिसुव्रत एवं महावीर के साथ यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित है।

४ शास्त्री, अजयमित्र, 'त्रिपुरी का जैन पुरातत्व', **जैन मिलन**, वर्ष १२, अं० २, पृ० ६९-७२

५ स्ट०जै०आ०, पृ० २३; जैन, नीरज, 'अतिशय क्षेत्र अहार', **अनेकान्त**, वर्ष १८, अं० ४, पृ० १७७-७९

६ जैन, नीरज, 'नवागढ़ : एक महत्वपूर्ण मध्ययुगीन जैन तीर्थ', **अनेकान्त**, वर्ष १५, अं० ६, पृ० २७७-७८

७ गुप्ता, एस०पी० तथा शर्मा, बी०एन०, 'गन्धावल और जैन मूर्तिया', **अनेकान्त**, खं० १९, अं० १-२, पृ०१२९-३०

बिहार

बिहार में मुख्यत. राजगिर (वैभार, सोनभण्डार, मनियार मठ), मानभूम एवं बक्सर के विभिन्न स्थलों से जैन शिल्प सामग्री मिली है। इस क्षेत्र की मूर्तियां दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। जिन मूर्तियों की संख्या सबसे अधिक है। इनमें ऋषभ और पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तिया है। साथ ही अजित, सम्भव, अभिनन्दन, नेमि एवं महावीर की भी मूर्तियां मिली है। जिन मूर्तियो मे लांछन सदैव प्रदर्शित है पर श्रीवत्स, सिंहासन एवं धर्मचक्र के चित्रण मे नियमितता नही प्राप्त होती है। जिन मूर्तियों मे दुन्दुभिवादक, गजों और यक्ष-यक्षी[1] की आकृतियां नही प्रदर्शित है। शीर्ष भाग मे अशोक वृक्ष का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। अम्बिका, पद्मावती (?), जिन चौमुखी और जैन युगलों की भी कुछ मूर्तियां मिली है।

राजगिर की सभी पांच पहाड़ियों से प्राचीन जैन मूर्तियां मिली है।[2] इनमें वैभार पहाड़ी पर सर्वाधिक मूर्तियां है। उदयगिरि पहाड़ी के आधुनिक जैन मन्दिर मे पार्श्व की एक मूर्ति (९वीं शतीई०) सुरक्षित है। वैभार पहाड़ी के आधुनिक जैन मन्दिर मे ऋषभ, सम्भव, पार्श्व, महावीर एवं जैन युगलों की मूर्तिया है।[3] मनियार मठ से भी जैन मूर्तिया मिली है।[4] वैभार पहाड़ी की सोनभण्डार गुफाओं मे भी नवीं-दसवीं शती ई० की जिन मूर्तिया है।

मानभूम जिले के विभिन्न स्थलो से दसवीं-बारहवीं शती ई० की जैन मूर्तिया मिली है। अलुआरा ग्राम से २९ जैन कांस्य मूर्तिया मिली है।[5] बोरम ग्राम के जैन मन्दिर और चन्दनक्यारी से ५ मील दूर कुम्हारी और कुमर्दग ग्रामो में ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की जैन मूर्तियां है। बुधपुर, दारिका, पवनपुर, मानगढ, दुलमी, बेगलर, अनई, कतरासगढ एवं अरगा से भी जैन मूर्तियां मिली है।[6] चौसा (शाहाबाद) से नवीं शतीई० तक की जैन मूर्तियां मिली है। चौसा ग्राम के समीप मसाढ़ (आरा मे ६मील) से भी कुछ जैन अवशेष मिले है। आरा के आसपास कई जैन मन्दिर है जिनमें से कुछ प्राचीन है।[7] सिंहभूम मे वेणुसागर मे प्राचीन जैन मन्दिर एवं मूर्तियां है।[8] वैशाली से काले प्रस्तर की एक पालयुगीन महावीर मूर्ति मिली है।[9] चम्पा (भागलपुर) से भी कुछ प्राचीन जैन अवशेष मिले है।[10]

उड़ीसा

उड़ीसा मे पुरी जिले की उदयगिरि-खण्डगिरि पहाड़ियों (पुरी) की जैन गुफाओं से सर्वाधिक मूर्तिया मिली है। इनमें आठवीं-नवीं से बारहवीं शती ई० तक की मूर्तिया है। जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से इन गुफाओं की चौबीस जिनों एवं यक्षियों की मूर्तियां विशेष महत्व की है। जेयपुर, नन्दपुर, काकटपुर, तथा कोरापुट के भैरवसिंहपुर, क्योंझर के पोट्टासिंगीदो, मयूरभंज के बडशाही, बालेश्वर के चरपा और कटक के जाजपुर आदि स्थलों से भी जैन मूर्ति अवशेष मिले है। कटक के जाजपुर स्थित अखण्डलेश्वर एवं मैत्रक मन्दिरों के समूहों मे भी जैन मूर्तियां सुरक्षित है।[11]

१ केवल भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता की एक चन्द्रप्रभ मूर्ति (ल० ११ वीं शती ई०) मे ही यक्ष-यक्षी निरूपित है। राजगिर के समीप से मिली एक ऋषभ मूर्ति (१२ वीं शती ई०) मे सिंहासन के मध्य मे चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है—**स्ट०जै०आ०, फलक १६, चित्र ४४, आ०स०इं०ऐ०रि०**, १९२५-२६, फलक ५७, चित्र बी

२ ये मूर्तिया राजगिर की पहाड़ियो के आधुनिक जैन मन्दिरों मे सुरक्षित है।

३ कुरैशी, मुहम्मद हमीद, **राजगिर**, दिल्ली, १९६०, पृ० १६-१७

४ चन्दा, आर०पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', **आ०स०इं०ऐ०रि०**, १९२५-२६, पृ० १२१-२७

५ प्रसाद, एच०के०, **पू०नि०**, पृ० २८३-८९

६ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, पाटिल, डी० आर०, **दि एन्टिक्वेरियन रिमेन्स इन बिहार**, पटना, १९६३ : पाटिल की पुस्तक मे १८वीं-१९वीं शती ई० तक की सामग्रियों के उल्लेख है।

७ प्रसाद, एच० के०, **पू०नि०**, पृ० २७५

८ रायचौधरी, पी० सी०, **जैनिज़म इन बिहार**, पटना, १९५६, पृ० ६४

९ ठाकुर, उपेन्द्र, 'ए हिस्टारिकल सर्वे ऑव जैनिज़म इन नार्थ बिहार', **ज०बि०रि०सो०**, ख०४५, भाग १-४, पृ०२०२

१० वही, पृ० १९८

११ **जैन जर्नल**, खं० ३, अं० ४, पृ० १७१-७४

उड़ीसा की जैन मूर्तिकला दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। यहां भी जिन मूर्तियां ही सर्वाधिक हैं (चित्र५८)। जिनो मे क्रमशः पार्श्व, ऋषभ, शान्ति एवं महावीर की सबसे अधिक मूर्तियां मिली है। जिनो के साथ लांछन उत्कीर्ण हैं। इस क्षेत्र की जिन मूर्तियों में सिंहासन के सूचक सिंहों का चित्रण नियमित नही था। धर्मचक्र, देवदुन्दुभि एवं गजों के चित्रण भी नही प्राप्त होते। जिनो के साथ यक्ष-यक्षी युगलों के निरूपण की परम्परा नही थी। द्वितीर्थी, जिन चौबीसी, चक्रेश्वरी, अम्बिका, रोहिणी, सरस्वती एवं गणेश की भी स्वतन्त्र मूर्तियां मिली है। यक्षों एवं महाविद्याओं की एक भी मूर्ति नही मिली है।

उदयगिरि-खण्डगिरि की ललाटेन्दुकेसरी (या सिंहराजा गुफा), नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल (या हनुमान) गुफाओ में पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तिया है। बारभुजी एवं नवमुनि गुफाओ मे जिन मूर्तियो के नीचे स्वतन्त्र रथिकाओं में यक्षिया निरूपित है। बारभुजी एव त्रिशूल गुफाओं (ल० ११वीं-१२वीं शती ई०) मे २४ जिनो की लांछनयुक्त मूर्तियां है। त्रिशूल गुफा की मूर्तियो में शीतल,अनन्त और नमि की पहचान परम्परागत लांछनों के अभाव मे सम्भव नहीं है।[1] चन्द्रप्रभ के बाद जिनो की मूर्तियां पारम्परिक क्रम में भी नहीं उत्कीर्ण है।[2]

बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रण मे जिन केवल ध्यानमुद्रा में निरूपित है। जिन मूर्तियों के नीचे स्वतन्त्र रथिकाओं मे सम्बन्धित जिनों की यक्षिया आमूर्तित है (चित्र ५९)। श्रीवत्स से रहित जिन मूर्तियों मे त्रिछत्र, भामण्डल, दुन्दुभि, चामरधर सेवक एवं उड्डीयमान मालाधर चित्रित है। सम्भव, सुमति, सुपार्श्व, अनन्त एवं नेमि[3] के लांछन या तो अस्पष्ट है, या फिर परम्परा के विरुद्ध है।[4] जिनो की मूर्तिया पारम्परिक क्रम मे उत्कीर्ण है।

नवमुनि गुफा (११ वी शती ई०) मे जिनो की सात ध्यानस्थ मूर्तियां उत्कीर्ण है। ये मूर्तिया ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, वासुपूज्य, पार्श्व और नेमि की है।[5] जिनो के साथ भामण्डल, श्रीवत्स एव सिंहासन नही उत्कीर्ण है। जिन मूर्तियो के नीचे उनकी यक्षिया आमूर्तित है। ललितमुद्रा मे विराजमान[6] यक्षिया वाहन से युक्त और दो से दस भुजाओ वाली हैं। अजित एवं वासुपूज्य की यक्षियो के अंकन मे हिन्दू देवी इन्द्राणी एव कौमारी की लाक्षणिक विशेषताएं प्रदर्शित है। अभिनन्दन एवं वासुपूज्य की यक्षियों की गोद में परम्परा के विरुद्ध बालक प्रदर्शित है। अजित एवं अभिनन्दन की यक्षियों के वाहन क्रमशः गज और कपि है, जो सम्बन्धित जिनो के लांछन है। गुफा मे गजमुख गणेश की भी एक मूर्ति है जो मोदकपात्र, परशु, अक्षमाला और पद्मनालिका से युक्त है।[7] ललाटेन्दु गुफा मे जिनो की आठ कायोत्सर्ग मूर्तियां है। पाच उदाहरणो मे पार्श्व उत्कीर्ण है।[8] खण्डगिरि पहाड़ी की कुछ पार्श्व, ऋषभ एवं महावीर की द्वितीर्थी तथा अम्बिका मूर्तियां ब्रिटिश संग्रहालय में भी है।[9]

यहां हम बारभुजी गुफा (खण्डगिरि, पुरी) की २४ यक्षी मूर्तियों का कुछ विस्तार से उल्लेख करेंगे। स्मरणीय है कि २४ यक्षियों के सामूहिक चित्रण का यह दूसरा ज्ञात उदाहरण है।[10] गुफा की द्विभुज से विंशतिभुज यक्षियां वाहन से युक्त

१ दो जिनो के साथ लांछन मयूर और कोई पौधा है। वज्र लांछन दो जिनों के साथ उत्कीर्ण है।

२ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा, पृ० २८०-८२

३ नेमि के साथ अम्बिका यक्षी निरूपित हैं।

४ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २७९-८० : एक उदाहरण मे लांछन श्वान् है और अन्य दो मे शूकर एवं वज्र। शूकर एवं वज्र दो जिनो के साथ उत्कीर्ण है।

५ गुफा मे ऋषभ, चन्द्रप्रभ एवं पार्श्व की तीन अन्य मूर्तियां भी है। पार्श्व के आसन पर लांछन रूप मे दो नाग उत्कीर्ण हैं।

६ जटामुकुट से शोभित गरुडवाहना चक्रेश्वरी योगासन में बैठी है।

७ मित्रा, देबला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, पृ० १२७-२८

८ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८३

९ चंदा, आर० पी०, मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, लंदन, १९३६, पृ० ७१

१० प्रारम्भिकतम उदाहरण देवगढ़ के मन्दिर १२ पर है।

हैं। चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती यक्षियों के अतिरिक्त अन्य के निरूपण में सामान्यत: परम्परा का निर्वाह नहीं किया गया है। चक्रेश्वरी एवं पद्मावती के निरूपण में भी परम्परा का निर्वाह कुछ विशिष्ट लक्षणों तक ही सीमित है। शान्ति एवं मुनिसुव्रत की यक्षियां क्रमशः ध्यानमुद्रा (योगासन) में और लेटी हैं। अन्य यक्षियां ललितमुद्रा में हैं। बीस देवियां पायोंवाले आसन पर और शेष चार पद्म पर विराजमान हैं। कुछ यक्षियों के निरूपण में ब्राह्मण एवं बौद्ध देवकुलों की देवियों के लाक्षणिक स्वरूपों के अनुकरण किये गये हैं। शान्ति, अर एवं नेमि की यक्षियों के निरूपण में क्रमशः गजलक्ष्मी, तारा (बौद्ध देवी) और त्रिमुख ब्रह्माणी के प्रभाव स्पष्ट हैं।[1] २४ यक्षियों के अतिरिक्त इस गुफा में चक्रेश्वरी एवं रोहिणी की दो अन्य मूर्तियां (द्वादशभुज) भी हैं।

कटक के जैन मन्दिर में कई मध्ययुगीन जिन मूर्तियां हैं। इनमें ऋषभ और पार्श्व की द्वितीर्थी और भरत एवं बाहुबली से वेष्टित ऋषभ की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। क्योंझर के पोट्टासिंगीदी और बालेश्वर के चरम्पा ग्राम से आठवीं से दसवीं शती ई० के मध्य की ऋषभ, अजित, शान्ति, पार्श्व, महावीर एवं अम्बिका की मूर्तियां मिली हैं, जो सम्प्रति राज्य संग्रहालय, उड़ीसा में हैं।[2]

बंगाल

पुरुलिया, बांकुड़ा, मिदनापुर, सुन्दरबन, राढ़ एवं बर्दवान के पुरातात्विक सर्वेक्षण से ल० आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की जैन प्रतिमाविज्ञान की प्रचुर सामग्री मिली है। बंगाल की जैन मूर्तियां दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं (चित्र ९–११, ६८)। बंगाल में जिनों, चौमुखी,[3] द्वितीर्थी, सर्वानुभूति, चक्रेश्वरी, अम्बिका, सरस्वती और जैन युगलों की मूर्तियां मिली हैं। जिनों में ऋषभ एवं पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां हैं। लटों से युक्त ऋषभ कभी-कभी जटामुकुट से शोभित हैं। ऋषभ एवं पार्श्व के बाद लोकप्रियता के क्रम में शान्ति, महावीर, नेमि एवं पद्मप्रभ की मूर्तियां हैं। जिन मूर्तियों में लांछन सदैव प्रदर्शित हैं पर सिंहासन, धर्मचक्र, अशोकवृक्ष एवं दुन्दुभिवादक के चित्रण नियमित नहीं रहे हैं। जिनों की कायोत्सर्ग मूर्तियां ही अधिक हैं। जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का निरूपण नहीं हुआ है।[4] जिन मूर्तियों के परिकर में नवग्रहों एवं २३ या २४ लघु जिन आकृतियां के चित्रण इस क्षेत्र में विशेष लोकप्रिय थे। परिकर की लघु जिन आकृतियां सामान्यतः लांछनों से युक्त हैं। जिन चौमुखी मूर्तियों में अधिकांशतः चार स्वतन्त्र जिन चित्रित हैं।

सुरोहर (दिनाजपुर, बांगलादेश) से ध्यानस्थ ऋषभ की एक मनोज्ञ मूर्ति (१०वीं शती ई०) मिली है (चित्र ९)।[5] मूर्ति के परिकर में लांछनों से युक्त २३ लघु जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[6] राजशाही जिले के मण्डोली से मिली एक ऋषभ मूर्ति में नवग्रह एवं गणेश निरूपित हैं।[7] राजशाही संग्रहालय में बंगाल की अम्बिका एवं जैन युगल मूर्तियां भी संकलित हैं। बांकुड़ा में पारसनाथ, रानीबांध, अम्बिकानगर, केन्दुआ, बरकोला, दुगलभीर, बहुलर,[8] और पुरुलिया

---

१ मित्रा, देबला, पूर्वनि०, पृ० १२९–३३

२ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट ऑन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, खं० १०, अं० ४, पृ० ३०-३२; दश, एम० पी०, 'जैन एन्टिक्विटीज फ्राम चरंपा', उ०हि०रि०ज०, खं० ११, अं० १, पृ० ५०–५३

३ जिन चौमुखी का उत्कीर्णन अन्य किसी क्षेत्र की तुलना में यहां अधिक लोकप्रिय था।

४ केवल एक जिन मूर्ति (ऋषभ) में यक्ष-यक्षी का अंकन हुआ है—मित्र, कालीपद, 'आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ऐन इमेज', इं०हि०क्वा०, खं० १८, अं० ३, पृ० २६१–६६

५ गांगुली, कल्याणकुमार, 'जैन इमेजेज इन बंगाल', इण्डि०क०, खं० ६, पृ० १३८–३९

६ सुमति एवं सुपार्श्व के साथ पशु एवं पद्म लांछनों का अंकन परम्पराविरुद्ध है।

७ जैन जर्नल, खं० ३, अं० ४, पृ० १६१

८ बांकुड़ा से पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां मिली हैं—चौधरी, रवीन्द्रनाथ, 'आर्किअलाजिकल सर्वे रिपोर्ट बांकुड़ा डिस्ट्रिक्ट', माडर्न रिव्यू, खं० ८६, अं० १, पृ०२११–१२

मे देओली, पक्बीरा, संक एवं सेनारा आदि स्थानों से जैन मूर्तियां मिली हैं (चित्र ११, ६८)। मिदनापुर के राजपारा से शान्ति (१० वी शती ई०) एवं पार्श्व की दो मूर्तिया प्राप्त हुई हैं। अम्बिकानगर एवं बरकोला से अम्बिका की मूर्तियां, और बरकोला से ऋषभ (या सुविधि) एवं अजित तथा जिन चौमुखी मिली है।[1] कुमारी नदी के किनारे से दसवीं शतीई० की पार्श्व एवं कुछ अन्य जैन मूर्तियां उपलब्ध हुई है।[2] धरपत जैन मन्दिर से ग्यारहवी शती ई० की पार्श्व एवं महावीर मूर्तियां मिली है।[3] महावीर मूर्ति के परिकर मे २४ लघु जिन आकृतिया है। देउभेर्य से पार्श्व (परिकर में २४ जिनों से युक्त), सर्वानुभूति एवं अम्बिका की मूर्तियां (८ वी-९ वी शती ई०) मिली है।[4] अम्बिकानगर की एक ऋषभ मूर्ति (११ वी शती ई०) के परिकर में २४ जिनो की लाछन युक्त मूर्तियां है।[5] छितगिरि से शान्ति एवं पारसनाथ से पार्श्व की मूर्तियां मिली है।[6] पार्श्व के आसन पर नाग-नागी की आकृतियां है। केन्दुआ से मिली पार्श्व की मूर्ति मे दो नाग आकृतियां एवं चामरधर सेवक आमूर्तित है।[7] पुरुलिया के पक्बीरा से ऋषभ, पद्मप्रभ एवं जिन चौमुखी मूर्तियां प्राप्त हुई है (चित्र ६८)। आसपास के क्षेत्र से भी पार्श्व, जैन युगल एवं अम्बिका की मूर्तियां ज्ञात है।[8] बर्दवान मे रेन, कटवा, उजनी आदि स्थलो से जैन मूर्तियां मिली है।[9]

• • •

१ **जैन जर्नल**, खं० ३, अं० ४, पृ० १६३

२ बनर्जी, आर० डी०, 'इस्टर्न सर्किल, बंगाल सरेनगढ', **आ०स०इं०ऐ०रि०**, १९२५–२६, पृ० ११५

३ चौधरी, रवीन्द्रनाथ, 'धरपत टेम्पल्' **माडर्न रिव्यू**, खं० ८८, अं० ४, पृ० २९६–९८

४ मित्रा, देबला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बाकुड़ा, वेस्ट बंगाल', **ज०ए०सो०बं०**, खं० २४, अं० २, पृ० १३२

५ वही, पृ० १३३–३४   ६ वही, पृ० १३४

७ बनर्जी, आर० डी०, 'दि मेडिवल आर्ट ऑव साऊथ-वेस्टर्न बंगाल', **माडर्न रिव्यू**, ख० ४६, अं० ६, पृ० ६४०–४६

८ बनर्जी, ए०, 'ट्रेसेज ऑव जैनिजम इन बंगाल', **ज०यू०पी०हि०सो०**, खं० २३, भाग १–२, पृ० १६८

९ **जैन जर्नल**, ख० ३, अं० ४, पृ० १६५

पञ्चम अध्याय

जिन-प्रतिमाविज्ञान

इस अध्याय मे साहित्य और शिल्प के आधार पर जिन मूर्तियों का संक्षेप मे काल एवं क्षेत्रगत विकास प्रस्तुत किया गया है जिसमें उनकी सामान्य विशेषताओं का भी उल्लेख है। साथ ही प्रत्येक जिन के मूर्तिविज्ञान के विकास का अलग-अलग भी अध्ययन किया गया है। इस प्रकार यह अध्याय २४ भागों मे विभक्त है। प्रारम्भ से सातवी शती ई० तक के उदाहरणों का अध्ययन कालक्रम में तथा उसके बाद का, क्षेत्र के सन्दर्भ मे स्थानीय भिन्नताओं एवं विशेषताओ को दृष्टिगत करते हुए किया गया है। इस सन्दर्भ मे प्रतिमाविज्ञान के आधार पर उत्तर भारत को तीन भागो मे बाटा गया है। पहले भाग मे गुजरात और राजस्थान, दूसरे में उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश तथा तीसरे मे बिहार, उड़ीसा और बगाल सम्मिलित हैं। यक्ष-यक्षियों के छठें अध्याय मे भी यही पद्धति अपनायी गयी है।

प्रत्येक जिन के जीवनवृत्त के सक्षेप मे उल्लेख के उपरान्त स्वतन्त्र मूर्तियों के आधार पर उस जिन के मूर्तिविज्ञान के विकास का अध्ययन किया गया है। इसमे मूर्तियो की देश और कालगत विशेषताओ का भी उद्घाटन किया गया है। साथ ही सश्लिष्ट यक्ष-यक्षी युगल की विशिष्टताओं का भी अति सामान्य उल्लेख है क्योकि इनका विस्तृत अध्ययन आगे के अध्याय मे है। अध्ययन की पूर्णता की दृष्टि से जिनो के जीवनवृत्तो के चित्रणों का भी इस अध्याय मे अध्ययन किया गया है। चौबीस जिनो के अलग-अलग मूर्तिविज्ञानपरक अध्ययन के उपरान्त जिनो की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एव चौमुखी (सर्वतोभद्र-प्रतिमा) मूर्तियो और चतुर्विशति पट्टो एव जिन-समवसरणो का भी अलग-अलग अध्ययन है। अध्ययन मे आवश्यकतानुसार दक्षिण भारतीय जिन मूर्तियों से तुलना भी की गई है।

जिन मूर्तियो मे जिनो की पहचान के मुख्यतः तीन आधार हैं—लांछन, अभिलेख एवं एक सीमा तक यक्ष-यक्षी युगल। गुजरात और राजस्थान की श्वेतांबर जिन मूर्तियों मे सामान्यतः लाछनों के स्थान पर पीठिका लेखो मे जिनो के नामोल्लेख की परम्परा ही अधिक लोकप्रिय थी। जिनो की पहचान में यक्ष-यक्षियो से सहायता की वहीं आवश्यकता होती है जहा मूर्तियों मे लाछन या तो नष्ट हो गए है या अस्पष्ट है। जिन मूर्तियो की क्षेत्रीय एवं कालगत भिन्नता भी मुख्यतः लांछन, अभिलेख एवं यक्ष-यक्षी युगल के चित्रण से ही सम्बद्ध है। जिन मूर्तियो की भिन्नता परिकर की लघु जिन आकृतियों, नवग्रहो एव कुछ अन्य देवो के अंकन मे भी देखी जा सकती है।

जिन-मूर्तियो का विकास

ल० तीसरी शती ई० पू० से पहली शती ई० पू० के मध्य की तीन प्रारम्भिक जिन मूर्तिया क्रमशः लोहानीपुर, चौसा एव प्रिंस आव वेल्स संग्रहालय, बंबई की है (चित्र २)। इनमे जिनो के वक्ष स्थल मे श्रीवत्स चिह्न नही उत्कीर्ण है।[1] सभी मूर्तियां निर्वस्त्र है और कायोत्सर्ग-मुद्रा मे खडी है। जिन की ध्यानमुद्रा मे आसीन मूर्ति सर्वप्रथम पहली शती ई० पू० के मथुरा के आयागपट (राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे २५३) पर उत्कीर्ण हुई। उल्लेखनीय है कि जिन मूर्तियों के निरूपण में केवल उपर्युक्त दो मुद्राएं, कायोत्सर्ग एव ध्यान, ही प्रयुक्त हुई है।

ल० पहली शती ई०पू० की चौसा, प्रिंस ऑव वेल्स संग्रहालय, बंबई एवं मथुरा के आयागपट (राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे २५३) की तीन प्रारम्भिक जिन मूर्तिया मे पार्श्व सर्पफणो के छत्र से आच्छादित निरूपित है। इस प्रकार जिन

१ वक्षःस्थल मे श्रीवत्स चिह्न का अंकन जिन मूर्तियो की विशिष्टता और उनकी पहचान का मुख्य आधार है। श्रीवत्स का अंकन सर्वप्रथम ल० पहली शती ई० पू० के मथुरा के आयागपटो की जिन मूर्तियों मे हुआ। इसके उपरान्त श्रीवत्स का अंकन सर्वत्र हुआ। केवल उड़ीसा की कुछ मध्ययुगीन जिन मूर्तियां में श्रीवत्स नही उत्कीर्ण है।

मूर्तियों में सर्वप्रथम पार्श्व का ही वैशिष्ट्य स्पष्ट हुआ। पार्श्व के बाद ऋषभ के लक्षण निश्चित हुए। मथुरा की पहली शती ई० की जिन मूर्तियों में स्कन्धों पर लटकती जटाओ वाले ऋषभ निरूपित है। परवर्ती युगों में भी ऋषभ के साथ जटाएं एवं पार्श्व के साथ सप्त सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं।

पहली-दूसरी शती ई० मे मथुरा में प्रचुर संख्या मे जिनो की कायोत्सर्ग एवं ध्यान मुद्राओं में स्वतन्त्र मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। ऋषभ एव पार्श्व के अतिरिक्त कुछ उदाहरणो मे बलराम एवं कृष्ण के साथ नेमि भी उत्कीर्ण है। अन्य जिनों (सम्भव, मुनिसुव्रत एवं महावीर)[1] की पहचान केवल लेखो मे उनके नामो के आधार पर की गई है। चौसा की कुषाणकालीन जिन मूर्तियों मे केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। इस युग की सभी जिन मूर्तियां निर्वस्त्र अंकित की गई है। इस प्रकार कुषाण काल मे केवल छह ही जिन निरूपित हुए।

कुषाण युग मे मथुरा मे ही सर्वप्रथम जिन मूर्तियो के साथ प्रातिहार्यों, धर्मचक्र,मांगलिक चिह्नों एव उपासको के उत्कीर्णन प्रारम्भ हुए। मथुरा मे जैन परम्परा के आठ प्रातिहार्यों मे से केवल सात ही प्रदर्शित है। ये प्रातिहार्य सिंहासन, भामण्डल, चामरधर सेवक, उड्डीयमान मालाधर, छत्र, चैत्यवृक्ष एवं दिव्य-ध्वनि है। जिनों की हथेलियों, चरणो एवं उंगलियो पर धर्मचक्र एवं त्रिरत्न जैसे मांगलिक चिह्न भी उत्कीर्ण है।[2] कभी-कभी पार्श्व के सर्पफणों पर भी मांगलिक चिह्न दृष्टिगत होते है। मथुरा संग्रहालय की एक पार्श्व मूर्ति (बी ६२) मे फणो पर श्रीवत्स, पूर्णघट, स्वस्तिक, वर्धमानक, मत्स्य एवं नद्यावर्त अंकित है।[3] कुषाण युग मे जिन चौमुखी का भी निर्माण प्रारम्भ हुआ (चित्र ६६)। इनमे चारो ओर चार जिनो की मूर्तियां अंकित की जाती है। चार जिनो म से केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। कुषाण युग में ऋषभ एव महावीर के जीवनदृश्य भी उत्कीर्ण हुए।[4] इनमे नीलाजना के नृत्य के फलस्वरूप ऋषभ की वैराग्य प्राप्ति एव महावीर के गर्भापहरण के दृश्य है (चित्र १२, ३९)।

गुप्तकाल मे जिन प्रतिमाविज्ञान मे कुछ महत्वपूर्ण विकास हुआ। जिनों के साथ लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलो एवं अष्ट-प्रातिहार्यों का निरूपण प्रारम्भ हुआ। **बृहत्संहिता** (वराहमिहिरकृत) मे ही सर्वप्रथम जिन मूर्ति की लाक्षणिक विशेषताएं भी निरूपित हुई।[5] ग्रन्थ मे जिन मूर्ति के श्रीवत्स चिह्न मे युक्त, निर्वस्त्र, आजानुलंबबाहु और तरुण स्वरूप में निरूपण का उल्लेख है। गुप्तकाल मे गुजरात मे (अकोटा) श्वेताम्बर जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हुई (चित्र ५, ३६)। अन्य क्षेत्रों की जिन मूर्तियां दिगंबर सम्प्रदाय की है।

राजगिर और भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) की दो गुप्तकालीन नेमि और महावीर की मूर्तियो में जिनो के लांछन प्रदर्शित है (चित्र ३५)। गुप्तकाल तक सभी जिनो के लांछनो का निर्धारण नहीं हो सका था। इसी कारण ऋषभ, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के अतिरिक्त अन्य किसी जिन के साथ लांछन नही प्रदर्शित है। गुप्तकाल मे अष्ट-प्रातिहार्यों का अंकन नियमित हो गया। भामण्डल कुषाणकाल की तुलना मे अधिक अलंकृत है। सिंहासन के मध्य मे

---

१ ज्योतिप्रसाद जैन ने मथुरा की एक कुषाणकालीन मुनिसुव्रतनाथ मूर्ति (८४ई०) का भी उल्लेख किया है—जैन, ज्योति प्रसाद, **दि जैन सोर्सेज ऑव दि हिस्ट्री ऑव ऐन्शण्ट इण्डिया**, दिल्ली, १९६४, पृ० २६८

२ जोशी, एन० पी०, 'यूस ऑव आस्पिशस सिम्बल्स इन दि कुषाण आर्ट ऐट मथुरा', **मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम**, नागपुर, १९६५, पृ० ३१३ ३ **वही**, पृ० ३१४ ४ राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे ३५४, जे ६२६

५ आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः॥ **बृहत्संहिता** ५८.४५
द्रष्टव्य, **मानसार** ५५.४६,७१-९५। मानसार (ल० छठी शती ई०) के अनुसार जिनमूर्ति में दो हाथ और दो नेत्र हों, मुख पर श्मश्रु न दिखाये जायें। मस्तक पर जटाजूट दिखाया जाय। श्रीवत्स से युक्त जिन-मूर्ति मे शरीर आकर्षक (सुरूप) हो और किसी प्रकार का आभूषण या वस्त्र न प्रदर्शित हो। **जै०क०स्था०**, खं० ३, पृ० ४८१

उपासकों से वेष्टित धर्मचक्र भी उत्कीर्ण है। सिंहासन के छोरो एवं परिकर पर लघु जिन मूर्तियों का उत्कीर्णन भी प्रारम्भ हुआ। इसी समय की अकोटा की जिन मूर्तियों में धर्मचक्र के दोनों ओर दो मृगों के उत्कीर्णन की परम्परा प्रारम्भ हुई, जो गुजरात-राजस्थान की श्वेतांबर जिन मूर्तियों मे निरन्तर लोकप्रिय रही।

यक्ष-यक्षी से युक्त प्राचीनतम जिन मूर्ति (ल० छठीं शती ई०) अकोटा से मिली है।[१] द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। ल० सातवी-आठवी शती ई० से जिन मूर्तियों मे नियमित रूप से यक्ष-यक्षी-निरूपण प्रारम्भ हुआ। सातवी से नवी शती ई० की ऐसी कुछ जिन मूर्तियां भारत कला भवन, वाराणसी (२१२), मथुरा एवं लखनऊ संग्रहालयों, तथा अकोटा, ओसिया (महावीर मन्दिर) एवं धाक (काठियावाड) में सुरक्षित है (चित्र २६)। इन सभी उदाहरणों में यक्ष-यक्षी सामान्यतः द्विभुज सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। आठवी-नवी शती ई० के बाद की जिन मूर्तियों मे ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के साथ पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी निरूपित है। पर गुजरात एवं राजस्थान की श्वेतांबर जिन मूर्तियो मे सभी जिनो के साथ अधिकांशतः सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही आमूर्तित है।[२] मूर्तियों मे यक्ष दाहिने और यक्षी बाएं पार्श्व में उत्कीर्ण है।[३]

ल० आठवी-नवी शती ई० तक साहित्य मे २४ जिनों के लाछनो का निर्धारण हुआ। श्वेतांबर और दिगम्बर दोनो ही परम्परा के ग्रन्थों मे २४ जिनों के निम्नलिखित लाछनो के उल्लेख है: वृषभ, गज, अश्व, कपि, क्रौंच पक्षी, पद्म, स्वस्तिक,[४] शशि, मकर, श्रीवत्स,[५] गण्डक (या खड्गी), महिष, शूकर, श्येन, वज्र, मृग, छाग (बकरा), नंद्यावर्त,[६] कलश, कूर्म, नीलोत्पल, शंख, सर्प एवं सिंह।[७]

मूर्तियो में जिनो के लाछन सिंहासन के ऊपर या धर्मचक्र के समीप उत्कीर्ण है। लटकती जटाओ से शोभित ऋषभ के साथ वृषभ लाछन सर्वदा प्रदर्शित है, पर सर्पफणों से शोभित सुपार्श्व एवं पार्श्व के लाछन (स्वस्तिक एवं सर्प) केवल कुछ ही उदाहरणों मे उत्कीर्ण है।[८] उल्लेखनीय है कि गुजरात एवं राजस्थान की श्वेतांबर जिन मूर्तियों मे लांछनो

---

१ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बम्बई, १९५९, पृ० २८–२९, फलक १०, ११

२ कुछ ऋषभ, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियों मे स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण है।

३ **प्रतिष्ठासारोद्धार** १.७७; **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ४.१२

४ **तिलोयपण्णत्ति** मे स्वस्तिक के स्थान पर नंद्यावर्त का उल्लेख है।

५ **तिलोयपण्णत्ति** मे श्रीवत्स के स्थान पर स्वस्तिक एवं **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे श्रीद्रुम के उल्लेख है।

६ **तिलोयपण्णत्ति** मे नद्यावर्त के स्थान पर तगरकुसुम (मत्स्य) का उल्लेख है।

७ वसह गय तुरय वानर। कुंचू कमलं च सत्थिओ चंदो॥
मयर सिरिवच्छ गंडो। महिस वराहो य सेणो य॥
वज्जं हरिणा छगलो। नदावत्तो य कलस कुम्मोय॥
नीलुप्पल संख फणी। सीहो य जिणाण चिन्हाइं॥ **प्रवचनसारोद्धार** ३८१–८२,
अभिधान चिंतामणि, देवाधिदेव काण्ड, ४७–४८
रिसहादीणं चिण्हं गोवदिगयतुरगवाणरा कोकं।
पउमं णंदावत्तं अद्धससी मयरसोत्तीया॥
गंडं महिसवराहा साही वज्जाणि हरिणछगलाय।
तगरकुसुमा य कलसा कुम्मुप्पलसंखअहिसिहा॥ **तिलोयपण्णत्ति** ४.६०४–६०५,
प्रतिष्ठासारोद्धार १.७८–७९, **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.८०–८१

८ मध्ययुगीन जिन मूर्तियों मे ऋषभ के अतिरिक्त कुछ अन्य जिनो के साथ भी जटाएं प्रदर्शित है। सम्भवतः इसी कारण ऋषभ के साथ लांछन का प्रदर्शन आवश्यक प्रतीत हुआ होगा।

के उत्कीर्णन के स्थान पर पीठिका लेखों में जिनों के नामोल्लेख की परम्परा ही विशेष लोकप्रिय थी। पर ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व के साथ क्रमशः जटाएं एवं पांच और सात सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित है। ल० छठी-सातवी शती ई० से जिन मूर्तियों में अष्ट-प्रातिहार्यों का नियमित अंकन हुआ है। ये अष्ट-प्रातिहार्य[1] निम्नलिखित है: अशोक वृक्ष, देव-पुष्पवृष्टि, दिव्य-ध्वनि, चामर, सिंहासन, त्रिछत्र, देवदुन्दुभि एवं भामण्डल।[2] मूर्त अंकनों मे अशोक वृक्ष का चित्रण बहुत नियमित नहीं था। दिव्य-ध्वनि एवं देवदुन्दुभि में से केवल एक का निरूपण नियमित था।[3]

जयसेन, वसुनन्दि, आशाधर, नेमिचन्द्र, कुमुदचन्द्र आदि दिगम्बर ग्रन्थकारो ने अपने प्रतिष्ठाग्रन्थो मे जिन-प्रतिमा का विस्तार से वर्णन किया है। जयसेन के **प्रतिष्ठापाठ** में जिन-बिम्ब को शान्त, नासाग्रदृष्टि, निर्वस्त्र, ध्याननिमग्न और किंचित् नम्र ग्रीव बताया गया है। कायोत्सर्ग-मुद्रा मे जिन समभंग मे खड़े होते है और उनके हाथ लम्बवत् नीचे लटके होते है। ध्यानमुद्रा में जिन दोनो पैर मोड़कर (पद्मासन) बैठे होते है और उनकी हथेलियां गोद मे (बायी के ऊपर दाहिनी) रखी होती हैं।[४] **प्रतिष्ठापाठ** मे उल्लेख है कि जिन-प्रतिमा केवल उपर्युक्त दो आसनों मे ही निरूपित होनी चाहिए। वसुनन्दि[५] एव आशाधर[६] आदि ने भी जिन-प्रतिमा के उपर्युक्त लक्षणो के ही उल्लेख किये है।

उत्तर भारत के विभिन्न पुरातात्विक स्थलो की जिन-मूर्तियों के अध्ययन से हमे ज्ञात होता है कि ऋषभ, पार्श्व, महावीर, नेमि, शान्ति एवं सुपार्श्व इसी क्रम मे सर्वाधिक लोकप्रिय थे।[७] ल० नवी-दसवी शती ई० तक मूर्तिविज्ञान की

---

१ दक्षिण भारत की जिन मूर्तियों म अष्ट-प्रातिहार्यों मे से केवल त्रिछत्र, अशोक वृक्ष, चामरधर, उड्डीयमान गन्धर्व, सिंहासन एवं भामण्डल का ही नियमित अंकन हुआ है। सिंहासन के मध्य मे धर्मचक्र का उत्कीर्णन भी नियमित नही था।

२ अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च।
भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्र सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम्॥
हस्तीमल के **जैनधर्म का मौलिक इतिहास** (भाग १, जयपुर, १९७१, पृ० ३३) से उद्धृत।
स्थापयेदर्हतां छत्रत्रयाशोक प्रकीर्णकम्।
पीठभामण्डल भाषा पुष्पवृष्टि च दुन्दुभिम्॥
स्थिरेतरार्चयोः पादपीठस्याधो यथायथम्।
लांछनं दक्षिणे पार्श्वे यक्षं यक्षी च वामके॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** १.७६-७७;
हरिवंशपुराण ३.३१-३८; **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.८२-८३

३ केवल गुजरात-राजस्थान की मूर्तियों मे ही दोनो का नियमित अंकन हुआ है। त्रिछत्र के दोनो ओर देवदुन्दुभि और परिकर मे वीणा एवं वेणुवादन करती दिव्य-ध्वनि की सूचक दो आकृतियां उत्कीर्ण हैं। अन्य क्षेत्रों की मूर्तियों मे देवदुन्दुभि सामान्यत. त्रिछत्र के समीप उत्कीर्ण है।

४ जैन, बालचन्द्र, 'जैन प्रतिमालक्षण', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० ३, पृ० २११

५ अथ बिम्बं जिनेन्द्रस्य कर्तव्यं लक्षणान्वितम्।
ऋज्वायत सुसंस्थानं तरुणाङ्गं दिगम्बरं॥
श्रीवृक्षभूषितोरस्कं जानुप्राप्तकराग्रजं।
निजाङ्गुलप्रमाणेन साष्टाङ्गुलशतायतम्॥
कक्षादिरोमहीनाङ्गं श्मश्रु लेखाविवर्जितम्।
ऊर्ध्वं प्रलम्बकं दत्वा समाप्त्यन्तं च धारयेत्॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ४.१, २, ४

६ **प्रतिष्ठासारोद्धार** १.६२; **मानसार** ५५.३६-४२; **रूपमण्डन** ६.३३-३५

७ दक्षिण भारतीय शिल्प में महावीर एवं पार्श्व सर्वाधिक लोकप्रिय थे। ऋषभ की मूर्तियां तुलनात्मक दृष्टि से नगण्य है।

दृष्टि से जिन-मूर्तिया पूर्णतः विकसित हो चुकी थी। पूर्ण विकसित जिन-मूर्तियों में लांछनो, यक्ष-यक्षी युगलों एवं अष्ट-प्रातिहार्यों[1] के साथ ही परिकर में दूसरी छोटी जिन-मूर्तिया,[2] नवग्रह,[3] गज,[4] महाविद्याएं एवं अन्य आकृतियां भी अंकित हैं (चित्र ७, ९, १५, २०)। विभिन्न क्षेत्रों की जिन-मूर्तियों की कुछ अपनी विशिष्टताएं रही है, जिनकी अति संक्षेप मे चर्चा यहां अपेक्षित है।

गुजरात-राजस्थान—सिंहासन के मध्य मे चतुर्भुज शान्तिदेवी (या आदिशक्ति)[5] एवं गजो और मृगों के चित्रण[6] गुजरात एवं राजस्थान की श्वेताम्बर जिन मूर्तियो की क्षेत्रीय विशेषताएं थी।[7] परिकर में हाथ जोड़े या कलश लिये गोमुख आकृतियां, वीणा एवं वेणुवादन करती दो आकृतियो तथा त्रिछत्र के ऊपर कलश और नमस्कार-मुद्रा मे एक आकृति के अंकन भी गुजरात एवं राजस्थान मे ही लोकप्रिय थे (चित्र २०)।[8] मूलनायक के पार्श्वों में पाच या सात सर्पफणों के छत्रों वाली या लांछन विहीन दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियों का उत्कीर्णन भी इस क्षेत्र की विशेषता थी। दिलवाड़ा एवं कुम्भारिया की कुछ जिन-मूर्तियो के परिकर मे महाविद्याएं भी अंकित है। इस क्षेत्र मे ऋषभ और पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। नेमि और महावीर की मूर्तियो की संख्या अन्य क्षेत्रों की तुलना मे काफी कम है। इस क्षेत्र मे जिनो के जीवनदृश्यों के चित्रण भी विशेष लोकप्रिय थे[9] जिनमे जिनो के पंचकल्याणको (च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य, निर्वाण) एवं कुछ अन्य विशिष्ट घटनाओं को उत्कीर्ण किया गया है। जीवनदृश्यों के मुख्य उदाहरण ओसिया, कुम्भारिया एवं दिलवाड़ा में है जो ऋषभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर से संबद्ध है (चित्र १३,१४,२२,२९,४०,४१)।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—उत्तर प्रदेश की कुछ नेमि मूर्तियो (देवगढ एव राज्य संग्रहालय, लखनऊ) मे बलराम एवं कृष्ण आमूर्तित है (चित्र २७, २८)। इस क्षेत्र की पार्श्वनाथ मूर्तियो मे कभी-कभी पार्श्ववर्ती चामरधर सेवक सर्पफणों से युक्त है और उनके हाथों मे लम्बा छत्र प्रदर्शित है। जिन-मूर्तियां के परिकर में बाहुबली, जीवन्तस्वामी, क्षेत्रपाल, सरस्वती, लक्ष्मी आदि के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र की जिन मूर्तियों मे सिंहासन, धर्मचक्र, गजो एवं दुन्दुभिवादक के नियमित चित्रण नही हुए है। सिंहासन के छोरो पर यक्ष-यक्षी का अंकन भी नियमित नही था।

१ पार्श्व की मूर्तियो मे शीर्षभाग के सर्पफणो के कारण सामान्यत. त्रिछत्र एव दुन्दुभिवादक की आकृतिया नही उत्कीर्ण हुई।

२ कुछ उदाहरणो मे परिकर मे २३ या २४ छोटी जिन मूर्तियां बनी है। परिकर की छोटी जिन-मूर्तियां साधारणतः लांछनविहीन है। पर बगाल मे परिकर की छोटी जिन-मूर्तियो के साथ लाछनो का प्रदर्शन लोकप्रिय था।

३ गुजरात एवं राजस्थान की श्वेताम्बर जिन-मूर्तियां मे अन्य क्षेत्रो के विपरीत नवग्रहो के केवल मस्तक ही उत्कीर्ण हैं।

४ कलश धारण करने वाली गज आकृतियो की पीठ पर सामान्यतः एक या दो पुरुष आकृतिया बैठी हैं।

५ चतुर्भुज शान्तिदेवी के करो मे सामान्यतः अभय-(या वरद-) मुद्रा, पद्म, पद्म (या पुस्तक) एवं फल प्रदर्शित है।

६ आदिशक्तिर्जिनेंद्राणां आसनं गर्भ संस्थिता।
सहजा कुलजाऽधाना पद्महस्ता वरप्रदा ॥
अर्कमानं विधातव्यमुपाङ्ग सहितं भवेत्।
देव्याधोगर्भे मृगयुग्मं धर्मचक्र सुशोभनम् ॥
द्वौ गजौ वामदक्षिणे दशाङ्गुलानि विस्तरे।
सिंहौ रौद्रमहाकायौ जीवा क्रोधो च रक्षणे ॥ **वास्तुविद्या**, जिनपरिकरलक्षण २२.१०–१२

७ मध्यप्रदेश (ग्यारसपुर एवं खजुराहो) की कुछ दिगम्बर जिन मूर्तियां मे भी ये विशेषताएं प्रदर्शित है।

८ **वास्तुविद्या** २२.३३–३९

९ गुजरात-राजस्थान के बाहर जिनों के जीवनदृश्यो के अंकन दुर्लभ है।

अति संक्षेप में पूर्णविकसित मध्ययुगीन जिन मूर्तियों की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार थी। श्रीवत्स से युक्त जिन मूर्तियां कायोत्सर्ग में खड़ी या ध्यानमुद्रा मे आसीन है। सामान्यतः गुच्छकों के रूप में प्रदर्शित केश रचना उष्णीष के रूप में आबद्ध है। कायोत्सर्ग मे खडे जिनो के लटकते हाथों की हथेलियो में सामान्यतः पद्म अंकित है। मूलनायक का पद्मासन रत्न, पुष्प एवं कीर्तिमुख आदि से अलंकृत है। आसन के नीचे सिंहासन के सूचक दो रौद्र सिंह उत्कीर्ण है।[१] ये सिंह आकृतियां सामान्यतः एक दूसरे की ओर पीठकर दर्शकों की ओर देखने की मुद्रा में प्रदर्शित है। सिंहासन के मध्य में धर्मचक्र उत्कीर्ण है। गुजरात एवं राजस्थान को श्वेताम्बर मूर्तियों में सिहासन के मध्य मे धर्मचक्र के स्थान पर शान्तिदेवी की मूर्ति है। शान्तिदेवी की आकृति के नीचे दो मृगो एवं उपासकों के साथ धर्मचक्र चित्रित है। शान्तिदेवी के दोनो ओर दो गज आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

धर्मचक्र के समीप या आसन पर जिनो के लाछन उत्कीर्ण है। सिहासन–छोरो पर ललितमुद्रा मे यक्ष (दाहिनी) और यक्षी (बायी) की मूर्तिया निरूपित है।[२] यक्ष-यक्षी की अनुपस्थिति मे छोरो पर सामान्यतः जिन आकृतिया उत्कीर्ण है। जिनो के पार्श्वों में चामरधर सेवक आमूर्तित है, जिनकी एक भुजा मे चामर है और दूसरी भुजा जानु पर रखी है।[३] चामरधरों के समीप नमस्कार-मुद्रा मे दो उपासक भी है। भामण्डल सामान्यतः ज्यामितीय, पुष्प एव पद्म अलंकरणों से अलंकृत हैं। जिन के सिर के ऊपर त्रिछत्र है जिसके ऊपर दुन्दुभिवादक की अपूर्ण आकृति या केवल दो हाथ प्रदर्शित है। कुछ उदाहरणों में त्रिछत्र के समीप अशोक वृक्ष की पत्तियां भी चित्रित है। परिकर मे दो गज एव उड्डीयमान मालाधर भी बने है।[४] परिकर मे दो अन्य मालाधर युगल एवं वाद्यवादन करती आकृतिया भी उत्कीर्ण हैं। मूर्ति के छोरों पर गज-व्याल-मकर अलंकार एवं आक्रामक मुद्रा मे एक योद्धा अंकित है।[५]

आगे प्रत्येक जिन का मूर्तिविज्ञानपरक अध्ययन किया जायगा।

(१) ऋषभनाथ[६]

जीवनवृत्त

जैन परम्परा के अनुसार ऋषभ मानव समाज के आदि व्यवस्थापक एवं वर्तमान अवसर्पिणी युग के प्रथम जिन है। प्रथम जिन होने के कारण ही उन्हे आदिनाथ भी कहा गया। महाराज नाभि ऋषभ के पिता और मरुदेवी उनकी माता है। ऋषभ के गर्भधारण की रात्रि मे मरुदेवी ने १४ मांगलिक स्वप्न देखे थे।[७] दिगम्बर परम्परा में इन स्वप्नों की सख्या १६ बताई गई है।[८] उल्लेखनीय है कि अन्य जिनों की माताओं ने भी गर्भधारण की रात्रि मे इन्ही शुभ स्वप्नो को देखा था। किन्तु अन्य जिनों की माताओं ने स्वप्न मे जहां सबसे पहले गज देखा, वहां ऋषभ की माता ने सबसे पहले वृषभ का दर्शन किया। प्रथम स्वप्न के रूप में वृषभ का दर्शन ऋषभ के नामकरण एवं लाछन-निर्धारण की दृष्टि मे

१ **वास्तुविद्या** २२.१२ २ **वास्तुविद्या** २२.१४; **प्रतिष्ठासारोद्धार** १.७७

३ दूसरी भुजा में कभी-कभी फल या पुष्प या घट भी प्रदर्शित है।

४ गज की सूड़ में घट या पुष्प प्रदर्शित है।

५ अर्चा वामे यक्षिण्या यक्षो दक्षिणे चतुर्दश। स्तम्भिका मृणालयुक्तं मकरैर्ग्रासरूपकैः॥ **वास्तुविद्या** २२.१४

६ ऋषभ एवं अन्य जिनों के नामों के साथ 'नाथ' या 'देव' शब्द का प्रयोग किया गया है जो उनके प्रति भक्ति एवं सम्मान का सूचक है।

७ १४ शुभ स्वप्न निम्नलिखित हैं—गज, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी (या श्री), पुष्पहार, चन्द्र, सूर्य, ध्वज-दण्ड, पूर्णकुम्भ, पद्मसरोवर, क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि और निर्धूम अग्नि। **कल्पसूत्र** ३३

८ दिगम्बर परम्परा में ध्वज-दण्ड के स्थान पर नागेन्द्र भवन का उल्लेख है। साथ ही मत्स्य-युगल एवं सिंहासन को सम्मिलित कर शुभ स्वप्नो की संख्या १६ बताई गई है—**हरिवंशपुराण** ८.५८-७४, **महापुराण(आदिपुराण)** १२.१०१-१२०

महत्वपूर्ण है । **आवश्यकचूर्णि** में उल्लेख है कि माता द्वारा देखे प्रथम स्वप्न (वृषभ) एवं बालक के वक्षःस्थल पर वृषभ चिह्न के अंकित होने के कारण ही बालक का नाम ऋषभ रखा गया ।[1]

देवपति शक्रेन्द्र के निर्देश पर ऋषभ ने सुनन्दा एवं सुमंगला से विवाह किया । विवाह के पश्चात् ऋषभ का राज्याभिषेक हुआ । सुमंगला ने भरत एवं ब्राह्मी और ९६ अन्य सन्तानों को जन्म दिया । सुनन्दा ने केवल बाहुबली और सुन्दरी को जन्म दिया । काफी समय गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के बाद ऋषभ ने राज्य वैभव एवं परिवार को त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण की । ऋषभ ने विनीता नगर के बाहर सिद्धार्थ उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे वस्त्राभूषणों का त्यागकर दीक्षा ली थी ।[2] दीक्षा के पूर्व ऋषभ ने अपने केशों का चतुर्मुष्टिक लुंचन भी किया था । इन्द्र की प्रार्थना पर ऋषभ ने एक मुष्टि केश सिर पर ही रहने दिया ।[3] उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त परम्परा के कारण ही सभी क्षेत्रों की मूर्तियों में ऋषभ के साथ लटकती जटाएं प्रदर्शित की गयी । **कल्पसूत्र** एवं **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** में उल्लेख है कि ऋषभ के अतिरिक्त अन्य सभी जिनों ने दीक्षा के पूर्व अपने मस्तक के सम्पूर्ण केशों का पांच मुष्टियों में लुंचन किया । कुछ ग्रन्थों में ऋषभ के भी पञ्चमुष्टि में सारे केशों के लुंचन का उल्लेख है ।[4]

दीक्षा के बाद काफी समय तक विचरण एवं कठिन साधना के उपरांत ऋषभ को पुरिमताल नगर के बाहर शकटमुख उद्यान में वटवृक्ष के नीचे कैवल-ज्ञान प्राप्त हुआ । कैवल्य प्राप्ति के बाद देवताओं ने ऋषभ के लिए **समवसरण** का निर्माण किया, जहां ऋषभ ने अपना पहला उपदेश दिया । ज्ञातव्य है कि कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् सभी जिन अपना पहला उपदेश देवनिर्मित समवसरण में ही देते हैं । समवसरण में ही देवताओं द्वारा सम्बन्धित जिन के तीर्थ एवं संघ की रक्षा करनेवाले शासनदेवता (यक्ष-यक्षी) नियुक्त किये जाते हैं । ऋषभ ने विभिन्न स्थलों पर धर्मोपदेश देकर धर्मतीर्थों की स्थापना की और अन्त में अष्टापद पर्वत पर निर्वाणपद प्राप्त किया ।

प्रारम्भिक मूर्तियां

ऋषभ का लाछन वृषभ है और यक्ष-यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी (या अप्रतिचक्रा) हैं । ऋषभ की प्राचीनतम मूर्तियां कुषाण काल की हैं । ये मूर्तियां मथुरा और चौसा से मिली हैं । इनमें ऋषभ ध्यानमुद्रा में आसीन या कायोत्सर्ग में खड़े हैं और तीन या पांच लटकती केशवल्लरियों से शोभित हैं । मथुरा की तीन मूर्तियों में पीठिका-लेखों में भी ऋषभ का नाम है ।[5] चौसा से ऋषभ की दो मूर्तियां मिली हैं । इनमें ऋषभ कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं । ये मूर्तियां सम्प्रति पटना संग्रहालय (६५३८, ६५३९) में सुरक्षित हैं ।

गुप्तकालीन ऋषभ मूर्तियां मथुरा, चौसा एवं अकोटा से मिली हैं । मथुरा से छह मूर्तियां मिली हैं । इनमें से तीन में ऋषभ कायोत्सर्ग में खड़े हैं ।[6] इनमें अलंकृत भामण्डल एवं पार्श्ववर्ती चामरधरों से युक्त ऋषभ तीन या पांच लटों से शोभित हैं । एक उदाहरण (पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा १२.२६८) में पीठिका लेख में ऋषभ का नाम भी उत्कीर्ण है । पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा की एक मूर्ति (बी ७) में सिंहासन के धर्मचक्र के दोनों ओर दो ध्यानस्थ जिन मूर्तियां भी बनी हैं (चित्र ४) । चौसा से चार मूर्तियां मिली हैं जिनमें जटाओं से सुशोभित ऋषभ ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं । अकोटा से ऋषभ की दो गुप्तकालीन श्वेताम्बर मूर्तियां मिली हैं (चित्र ५) । तीन लटों से शोभित ऋषभ दोनों उदाहरणों में कायोत्सर्ग में खड़े हैं । ल० छठी शती ई० की दूसरी मूर्ति में ऋषभ के आसन के समक्ष दो मृगों से वेष्टित धर्मचक्र और छोरों

१ **आवश्यकचूर्णि**, पृ० १५१
२ हस्तीमल, **जैन धर्म का मौलिक इतिहास**, खं० १, जयपुर, १९७१, पृ० ९–२९
३ ''''सयमेव चउमुट्ठियं लोयं करेइ''''। **कल्पसूत्र** १९५; **त्रि०श०पु०च०** ३.६०–७०
४ **पउमचरिय** ३.१३६, **हरिवंशपुराण** ९.९८; **आदिपुराण** १७.२०१; **पद्मपुराण** ३.२८३
५ दो मूर्तियां राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे २६, जे ६९) एवं एक मथुरा संग्रहालय (बी ३६) में है ।
६ पांच मूर्तियां मथुरा संग्रहालय और एक राज्य संग्रहालय, लखनऊ (०.७२) में है ।

पर द्विभुज सर्वानुभूति एवं अम्बिका आमूर्तित हैं।[1] जिन के साथ यक्ष-यक्षी के चित्रण का यह प्राचीनतम उदाहरण है। इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तकाल तक ऋषभ की मूर्तियों में उनके लांछन वृषभ का तो नहीं किन्तु यक्ष-यक्षी का (जो परम्परा-सम्मत नहीं थे) निरूपण प्रारम्भ हो गया था।

अकोटा से ल० सातवीं शती ई० की भी तीन मूर्तियां मिली है।[2] इनमे भो जटाओं से शोभित ऋषभ के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही है। सिंहासन केवल एक उदाहरण में उत्कीर्ण है। वसन्तगढ (पिण्डवाड़ा, राजस्थान) से भी सातवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है।[3]

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तियां

गुजरात-राजस्थान—वसन्तगढ की आठवीं शती ई० के प्रारम्भ को एक ध्यानस्थ मूर्ति मे सिंहासन के छोरो पर यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित है।[4] ओसिया के महावीर मन्दिर के अर्धमण्डप पर भी ऋषभ की एक ध्यानस्थ मूर्ति है (ल० ९वीं शती ई०) जिसमें द्विभुज सर्वानुभूति एवं अम्बिका आमूर्तित है। आठवीं-नवीं शती ई० की एक मूर्ति गोधा (गुजरात) से मिली है।[5] कायोत्सर्ग मे खड़ी मूर्ति निर्वस्त्र है। वृषभ लांछन केवल वसंतगढ की एक मूर्ति (८वीं-९वीं शती ई०) में ही प्रदर्शित है।[6] अकोटा से आठवीं से दसवीं शती ई० के मध्य की पाच श्वेतांबर मूर्तियां मिली है।[7] इनमें केवल जटाओं के आधार पर ही ऋषभ की पहचान की गई है। इन मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका हैं। लिल्वादेव (पांचमहल, गुजरात) से दसवीं शती ई० की कई मूर्तियां मिली हैं।[8] एक मूर्ति में सिंहासन पर नवग्रहो एवं अम्बिका यक्षी की मूर्तियां है। दूसरी मूर्ति मे सिंहासन के छोरों पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका और मूलनायक के पार्श्वों में दो जिन (कायोत्सर्ग-मुद्रा मे) आमूर्तित है। दो अन्य मूर्तियों के परिकर में २३ छोटी जिन-आकृतिया उत्कीर्ण है।[9] १०९४ ई० की एक मूर्ति पिण्डवाड़ा (सिरोही, राजस्थान) के जैन मन्दिर में सुरक्षित है। इसके परिकर मे २३ जिन आकृतिया, गोमुख यक्ष और (चक्रेश्वरी के स्थान पर) अम्बिका यक्षी उत्कीर्ण हैं।[10]

गंगा गोल्डेन जुबिली संग्रहालय, बीकानेर मे ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की दो जिन मूर्तियां (बी०एम०१६६१ एव १६६८) सुरक्षित है। इनमें ध्यानमुद्रा मे आसीन ऋषभ के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। एक मूर्ति (११४१ ई०) मे मूलनायक के पार्श्वों मे दो जिन एव आसन पर नवग्रह आकृतियां उत्कीर्ण है।[11] विमलवसही मे ऋषभ की चार मूर्तिया है। वृषभ लांछन केवल गर्भगृह की मूर्ति में उत्कीर्ण है। अन्य उदाहरणों मे पीठिका लेखों में ऋषभ के नाम दिये है। गर्भगृह एवं देवकुलिका २५ की दो मूर्तियों मे गोमुख-चक्रेश्वरी और देवकुलिका १४ एवं २८ की मूर्तियों मे सर्वानुभूति-अम्बिका निरूपित है। देवकुलिका १४ एवं २८ की मूर्तियो मे मूलनायक के पार्श्वों मे कायोत्सर्ग और ध्यानमुद्रा मे दो जिन मूर्तियां भी है।

बोस्टन संग्रहालय में राजस्थान से मिली एक ध्यानस्थ मूर्ति (६४-४८७ : ९ वीं-१० वीं शती ई०) सुरक्षित है। ऋषभ वृषभ लाछन एवं पारम्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख-चक्रेश्वरी, से युक्त है। लटो मे शोभित ऋषभ की केशरचना

---

१ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज,** बंबई, १९५९, पृ० २६, २८-२९ २ **वही,** पृ० ३८, ४१-४३
३ शाह, यू० पी०, 'ब्रोन्ज होर्ड फ्राम वसन्तगढ़', **ललितकला,** अं० १-२, पृ० ५६ ४ **वही,** पृ० ५८
५ देवकर, वी० एल०, 'ए जैन तीर्थंकर इमेज रीसेन्टली एक्वायर्ड बाइ दि बड़ौदा म्यूजियम', **बु०म्यू०पि०गै०,** खं० १९, पृ० ३५-३६ ६ शाह, यू० पी०, **पू०नि०,** पृ० ५९
७ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज,** पृ० ४५, ५६-५९
८ राव, एस० आर०, 'जैन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वादेव', **ज०इं०म्यू०,** खं० ११, पृ० ३०-३३
९ शाह, यू० पी०, 'सेवेन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वा-देव', **बु०ब०म्यू०,** खं० ९, भाग १-२, पृ० ४७-४८
१० शाह, यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', **ज०ओ०इं०,** खं०२०, अ०३, पृ०३०१
११ श्रीवास्तव, वी०एस०, **कैटलाग ऐण्ड गाईड टू गंगा गोल्डेन जुबिली म्यूजियम, बीकानेर,** बंबई, १९६१, पृ०१७-१९

जटाजूट के रूप में आबद्ध है। बयाना (भरतपुर, राजस्थान) से प्राप्त एक ध्यानस्थ मूर्ति (१० वी शती ई०) में लांछन नष्ट हो गया है पर चतुर्भुज गोमुख एवं चक्रेश्वरी की मूर्तियां सुरक्षित है।[1] बारहवी शती ई० की बडौदा संग्रहालय की एक दिगम्बर मूर्ति[2] वृषभ लाछन और परिकर मे चार लघु जिन आकृतियों से युक्त है।

विश्लेषण—इस प्रकार गुजरात-राजस्थान की मूर्तियों मे सामान्यत: लटकती जटाओ एवं पीठिका लेखों में उत्कीर्ण नाम के आधार पर ही ऋषभ की पहचान की गई है। वृषभ लाछन एवं गोमुख-चक्रेश्वरी केवल कुछ ही उदाहरणों, विशेषकर दिगम्बर मूर्तियो, मे उत्कीर्ण है। इनका उत्कीर्णन ल० आठवी मे दसवी शती ई० के मध्य प्रारम्भ हुआ। अधिकाश उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—ऋषभ की सर्वाधिक मूर्तियां इसी क्षेत्र मे उत्कीर्ण हुई।[3] आठवी-नवी शती ई० की मूर्तियां मुख्यत: लखनऊ (जे ७८) और मथुरा (१८.१५०-४) संग्रहालयों एवं देवगढ़ मे है जिनका कुछ विस्तार से उल्लेख किया जायगा। ग्वालियर स्थित तेली के मन्दिर पर नवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है जिसके परिकर में २४ जिन-आकृतियां उत्कीर्ण है।[4] ग्यारसपुर के बजरामठ मन्दिर मे दसवी शती ई० की (ध्यानमुद्रा मे) दो मूर्तियां है। लाछन और यक्ष-यक्षी (गोमुख और चक्रेश्वरी) एक मे ही उत्कीर्ण है। धर्मचक्र के दोनो ओर दो गज बने है, जिनका चित्रण केवल गुजरात एव राजस्थान की श्वेताम्बर जिन मूर्तियो म ही लोकप्रिय था। पार्श्ववर्ती चामरधरो के समीप दो देव आकृतिया है जिनके हाथो मे अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं कलश प्रदर्शित है। परिकर मे दस छोटी जिन-मूर्तिया और साथ ही शंख बजाती एवं घट से युक्त मूर्तियां भी उत्कीर्ण है।

राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे आठवी से बारहवी शती ई० के मध्य की २३ मूर्तिया है। १५ उदाहरणो मे ऋषभ कायोत्सर्ग मे खड़े है। केवल एक उदाहरण (जे ९४९) मे जिन धोती मे युक्त है। वृषभ लाछन से युक्त ऋषभ दो, तीन या पांच लटो से शोभित है। नौ उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी नही आमूर्तित है। एक मूर्ति (जे ९५०, ११ वी शती ई०) मे (केतु के अतिरिक्त) आठ ग्रहों की भी मूर्तिया उत्कीर्ण है। दुबकुण्ड (ग्वालियर) की एक मूर्ति (जे ८२०, ११ वी शती ई०) में त्रिछत्र के ऊपर आमलक एवं कलश, और परिकर मे २२ छोटी जिन मूर्तियां बनी है। इनमे तीन और पाच सर्पफणो से आच्छादित दो जिनो की पहचान पार्श्व एव सुपार्श्व से सम्भव है।

ककाली टीले की ल० आठवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ७८) मे वृषभ लाछन एवं जटाओ से शोभित ऋषभ के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। यक्ष-यक्षी की आकृतियो के ऊपर सात सर्पफणो के छत्र से शोभित बलराम एव किरीटमुकुट मे शोभित कृष्ण की स्थानक मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। बलराम के तीन हाथों मे प्याला, मुसल एवं हल प्रदर्शित है और चौथी भुजा जानु पर स्थित है। कृष्ण अभयमुद्रा, ध्वजयुक्त गदा, चक्र एवं शंख से युक्त हैं। ज्ञातव्य है कि सर्वानुभूति यक्ष, अम्बिका यक्षी एवं बलराम-कृष्ण नेमिनाथ से सम्बन्धित है। अत: ऋषभ के साथ इनका निरूपण परम्परा के विरुद्ध है।

लखनऊ संग्रहालय की ६ मूर्तियो मे ऋषभ के साथ यक्ष निरूपित है। गोमुख यक्ष केवल तीन ही उदाहरणों मे उत्कीर्ण है। शेष मे सर्वानुभूति आमूर्तित है। ११ उदाहरणो मे यक्षी चक्रेश्वरी है। कुछ मे सामान्य लक्षणो वाली यक्षी (जे ७८९) एवं अम्बिका (जे ७८, एस ९१४) भी निरूपित हैं। ल० दसवी-ग्यारहवी शती ई० की दो मूर्तियो (१६.०.१७८, जे ९४९) मे ऋषभ के साथ चक्रेश्वरी के अतिरिक्त अम्बिका, पद्मावती एवं लक्ष्मी की भी मूर्तियां उत्कीर्ण है, जो ऋषभ की विशेष प्रतिष्ठा की सूचक है (चित्र ७)। अधिकांश मूर्तियो के परिकर मे ४, १४, २०, २२ या २३

---

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह १५७.१२

२ शाह, यू० पी०, 'जैन स्कल्पचर्स इन दि बड़ौदा म्यूजियम', बु०ब०म्यू०, खं० १, भाग २, पृ० २९

३ ल० नवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कोसम (उ० प्र०) से मिली है (चित्र ६)।

४ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ८३.६९

छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण है। सहेठ-महेठ की दसवीं शती ई० की एक दुर्लभ मूर्ति (जे ८५७) में मूलनायक को उन्नत वक्षःस्थल और अंतःप्रविष्ट उदर के साथ निरूपित किया गया है। इस दुर्लभ उदाहरण में सम्भवतः एक योगी की ऊर्ध्व श्वांस प्रक्रिया को दरशाया गया है।

पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा में आठवीं से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य की ऋषभ की चार मूर्तियां हैं। सभी में वृषभ लांछन और जटाएं प्रदर्शित है,पर यक्ष-यक्षी केवल दो उदाहरणो मे उत्कीर्ण है। एक मूर्ति (बी २१,१० वी शतीई०) में यक्षी चक्रेश्वरी है; और यक्ष का मुखभाग खण्डित है। सिंहासन के नीचे एक पक्ति में कायोत्सर्ग-मुद्रा में सात जिन-मूर्तियां उत्कीर्ण है। परिकर मे भी आठ जिन आकृतिया सुरक्षित है। ग्यारहवी शती ई० की एक मूर्ति (१६ १२०७) मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका है। परम्परा विरुद्ध यक्ष बायी ओर और यक्षी दाहिनी ओर निरूपित है। मूलनायक के पार्श्वों में केतु को छोड़कर आठ ग्रहों की मूर्तियां उत्कीर्ण है।

खजुराहो में दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की ५० से अधिक मूर्तियां है। इनमे से केवल ३६ मूर्तिया अध्ययन की दृष्टि से सुरक्षित है। लखनऊ संग्रहालय (१६.०.१७८) की एक मूर्ति की भाति खजुराहो के जार्डिन संग्रहालय की एक मूर्ति (१६५१) मे भी पारम्परिक यक्ष-यक्षी के साथ ही लक्ष्मी एवं अम्बिका निरूपित है जो ऋषभ की विशेष प्रतिष्ठा की सूचक है। ऋषभ केवल पाच ही उदाहरणो मे कायोत्सर्ग में खडे है। छह उदाहरणो मे ऋषभ की केशरचना पृष्ठभाग मे जटा के रूप मे संवारी गई है। दो उदाहरणो मे सिंहासन के सूचक सिंह अनुपस्थित है। एक उदाहरण में ऋषभ की जटाएं और एक अन्य में (मन्दिर ८) वृषभ लांछन नही उत्कीर्ण है। चामरधरो की एक भुजा मे कभी-कभी फल या सनाल पद्म भी प्रदर्शित है। तीन उदाहरणो में पार्श्ववर्ती चामरधरो के स्थान पर पांच या सात सर्पफणों के छत्र से शोभित सुपार्श्व एवं पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तियां बनी हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की ऋषभ मूर्ति में यक्ष-यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी है। पार्श्वनाथ मन्दिर की मूर्ति मे पारम्परिक यक्ष-यक्षी के उत्कीर्णन के पश्चात् खजुराहो की अन्य मूर्तियो में यक्ष-यक्षी युगल का अभाव या अपारंपरिक यक्ष-यक्षी के चित्रण इस बात के सूचक है कि कलाकार परंपरा के प्रति पूरी तरह आस्थावान नही थे। कई उदाहरणों में गरुडवाहना यक्षी चक्रेश्वरी है पर यक्ष वृषानन नही है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति मे मूलनायक के दोनों ओर स्वतन्त्र सिंहासनो पर पाच एवं सात सर्पफणो से आच्छादित सुपार्श्व एवं पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तियां उत्कीर्ण है। परिकर मे ३३ लघु जिन मूर्तियां भी है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह के प्रदक्षिणा पथ मे भी ऋषभ की एक मूर्ति (१०वी शतीई०) सुरक्षित है। मूर्ति के परिकर मे २३ जिन आकृतियां उत्कीर्ण है जिनमें से दो के सिरो पर पांच सर्पफणों के छत्र हैं। स्थानीय संग्रहालयो (के ६२, १६८२) की दो मूर्तियो (११ वी शती ई०) के परिकर मे क्रमशः २४ और ५२ छोटी जिन आकृतिया उत्कीर्ण है। मन्दिर १७ की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) के परिकर में तीन जिनो एवं बाहुबली की आकृतियां बनी है। पाच उदाहरणो मे ऋषभ के पार्श्वों मे सात सर्पफणों के शिरस्त्राण से युक्त पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तिया है। जार्डिन संग्रहालय की एक मूर्ति (१६१२) में पार्श्व एवं सुपार्श्व की मूर्तियां है। चार उदाहरणों मे आसन के नीचे नवग्रहो की आकृतियां उत्कीर्ण है।[1]

देवगढ़ में नवी से बारहवी शती ई० के मध्य की ६० से अधिक ऋषभ मूर्तियां हैं (चित्र ८)। अधिकांश उदाहरणों मे ऋषभ कायोत्सर्ग में निरूपित है। लटकती जटाओं[2] से शोभित ऋषभ के साथ वृषभ लांछन, और अधिकांश उदाहरणो में यक्ष-यक्षी प्रदर्शित हैं। कुछ उदाहरणो मे ऋषभ जटाजूट से अलकृत हैं, और कुछ में उनके केश पीछे की ओर सवारे गए है। अधिकांश उदाहरणों में यक्ष-यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी हैं। चार उदाहरणो[3] में यक्षी अम्बिका है और

१ ये मूर्तियां मन्दिर १, २७, जार्डिन संग्रहालय एवं पुरातात्विक संग्रहालय (१६८२) में है।

२ स्कन्धो पर सामान्यतः २, ३ या ५ लटें प्रदर्शित हैं।

३ मन्दिर १२, १३, १६ एवं २१

यक्ष भी वृषानन नहीं है।[1] आठ उदाहरणों[2] में यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं जिनके हाथों में कलश, पद्म एवं पुस्तक हैं तथा एक अभयमुद्रा में प्रदर्शित है। चामरधरों की एक भुजा में सामान्यतः पद्म (या फल) है। नवीं से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य की २५ विशाल कायोत्सर्ग मूर्तियों में ऋषभ साधारण पीठिका या पद्मासन पर खड़े हैं और उनकी लम्बी जटाएं भुजाओं तक लटक रही हैं।[3] इन मूर्तियों में उष्णीष, लांछन एवं यक्ष-यक्षी नहीं प्रदर्शित हैं।

देवगढ़ में छत्रत्रयी के दोनों ओर अशोक वृक्ष की पत्तियों एवं कलश धारण करनेवाली दो पुरुष आकृतियों का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय था। परिकर में कभी-कभी दो के स्थान पर चार गज आकृतिया उत्कीर्ण हैं। उड्डीयमान स्त्री आकृतियों के एक हाथ मे कभी-कभी चामर एवं घट भी प्रदर्शित है। मन्दिर १२ की एक मूर्ति के सिंहासन पर चतुर्भुज लक्ष्मी की दो मूर्तियां[4] हैं। दो मूर्तियों[5] मे सिंहासन पर पुस्तक से युक्त दो जैन आचार्यों को शास्त्रार्थ की मुद्रा में निरूपित किया गया है। मन्दिर ४ की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) मे यक्ष के स्थान पर अम्बिका और दूसरे छोर पर चक्रेश्वरी निरूपित है। सात मूर्तियों के परिकर में २३ लघु जिन आकृतिया उत्कीर्ण है।[6] दो मूर्तियों के परिकर में २४ जिन मूर्तियां हैं।[7]

गोलकोट एवं बूढ़ी चन्देरी की वृषभ लांछनयुक्त मूर्तियों (१० वीं–११ वीं शती ई०) मे गोमुख-चक्रेश्वरी निरूपित है। दुदही की एक मूर्ति में जटाओं से शोभित ऋषभ के दोनों ओर सर्पफणों से युक्त कायोत्सर्ग जिन आमूर्तित है। त्रिछत्र के ऊपर आमलक एवं चतुर्भुज दुन्दुभिवादक बने है।[8] धुबेला संग्रहालय की एक मूर्ति (३८) मे सिंहासन के मध्य मे धर्मचक्र के स्थान पर चक्रेश्वरी है।[9] शहडोल की एक विशाल मूर्ति (११ वीं शती ई०) के परिकर मे १०६ लघु जिन आकृतियां बनी है।[10] सिंहासन के मध्य मे धर्मचक्र के स्थान पर चतुर्भुज शान्तिदेवी की मूर्ति है। गुना की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) मे ऋषभ जटाजूट से शोभित है।[11] ऋषभ के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका अंकित है।

विश्लेषण—उत्तरप्रदेश–मध्यप्रदेश में ऋषभ की मूर्तियों मे सर्वाधिक विकास परिलक्षित होता है। इस क्षेत्र मे जटाओ के साथ ही वृषभ लांछन और यक्ष-यक्षी का नियमित चित्रण हुआ है। लांछन का चित्रण सर्वप्रथम इसी क्षेत्र मे (ल० ८वीं शती ई०) प्रारम्भ हुआ।[12] अधिकांश उदाहरणों मे यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी है। सर्वानुभूति एवं अम्बिका और सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी केवल कुछ ही उदाहरणों मे निरूपित है। अष्ट-प्रातिहार्यों एवं परिकर में लघु जिन-मूर्तियों का उत्कीर्णन भी लोकप्रिय था। परिकर मे सामान्यतः २३ या २४ लघु जिन आकृतिया उत्कीर्ण हैं। कुछ उदाहरणों मे नवग्रहों की भी आकृतिया बनी है। ऋषभ के साथ परिकर मे शान्तिदेवी, जैन आचार्यों, बाहुबली, पद्मावती एवं लक्ष्मी की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं, जिनके चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—ल० आठवीं शती ई० की ऋषभ की एक ध्यानस्थ मूर्ति राजगिर की वैभार पहाड़ी पर है।[13] जटामुकुट एवं केशवल्लरियों से शोभित मूर्ति की पीठिका के धर्मचक्र के दोनों ओर वृषभ लांछन की दो मूर्तियां

---

१ केवल मन्दिर २१ को एक मूर्ति मे यक्षी अम्बिका है पर यक्ष गोमुख है।
२ मन्दिर २, ८, २५, २६, २७ एव साहू जैन संग्रहालय।
३ ऐसी मूर्तिया मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर सुरक्षित है।
४ लक्ष्मी के करों मे अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं कलश प्रदर्शित हैं।
५ मन्दिर ४ एवं मन्दिर १२ की चहारदीवारी
६ मन्दिर ४, ८, १२, २४, २५ एवं साहू जैन संग्रहालय
७ मन्दिर १२ की चहारदीवारी एवं मन्दिर १६
८ ब्रुन, क्लाज, 'जैन तीर्थंज इन मध्य देश, दुदही', **जैनयुग**, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९–३२
९ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज–चित्र संग्रह ५४.९८
१० **वही,** ए ७.५२
११ गर्ग, आर०एस०, 'मालवा के जैन प्राच्यावशेष', **जैoसिoभाo**, ख० २४, अं० १, पृ० ५८
१२ राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे ७८
१३ **आ०स०इं०ऐ०रि०**,१९२५–२६, फलक ५६

हैं। गया से मिली एक दिगंबर मूर्ति (८ वीं–९ वीं शती ई०) इलाहाबाद संग्रहालय (२८०) में सुरक्षित है।[१] कायोत्सर्ग मे खड़े ऋषभ जटामुकुट एवं केशवल्लरियों से युक्त हैं। सिंहासन पर वृषभ लांछन एवं परिकर में लांछनयुक्त २४ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। परिकर में सर्पफणों एवं जटाओं से युक्त पार्श्व एवं ऋषभ की मूर्तियां हैं। काकटपुर (पुरी) से वृषभ लांछन युक्त दो दिगंबर मूर्तियां मिली हैं, जो भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में संगृहीत है।[२] जटा से शोभित ऋषभ कायोत्सर्ग में खड़े हैं। एक उदाहरण में आठ ग्रह भी उत्कीर्ण हैं। नवीं से ग्यारहवी शती ई० के मध्य की आठ मूर्तियां अलुआरा (मानभूम) से मिली है, जो सम्प्रति पटना संग्रहालय मे हैं।[३] सात उदाहरणो मे ऋषभ निर्वस्त्र है और कायोत्सर्ग में खड़े हैं। इनमे केवल जटाओं के आधार पर ही ऋषभ की पहचान की गई है।

ल० नवी शती ई० की दो मूर्तियां पोट्टासिंगीदी (क्योंझर) से मिली है और उड़ीसा राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर मे सुरक्षित है।[४] ध्यानमुद्रावाली एक मूर्ति मे वृषभ लांछन के साथ ही लेख मे ऋषभ का नाम भी उत्कीर्ण है। दूसरी मूर्ति में ऋषभ निर्वस्त्र है और कायोत्सर्ग मे खड़ा हैं। जटाओं से शोभित ऋषभ त्रिछत्र के स्थान प्रर एकछत्र से युक्त है। चरंपा (बालासोर) की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (९ वी–१० वी शती ई०) मे जटा, वृषभ लांछन, एक छत्र और आठ ग्रह उत्कीर्ण है।[५]

दसवी शती ई० की एक मनोज्ञ मूर्ति सुरोहर (दिनाजपुर, बांगलादेश) मे मिली है और वरेन्द्र शोध संग्रहालय (१४७२) मे सुरक्षित है (चित्र ९)।[६] ऋषभ ध्यानमुद्रा मे सिंहासन पर विराजमान है और जटामुकुट एवं केशवल्लरियों से शोभित है। वृषभ लांछन भी उत्कीर्ण है। परिकर मे जिनों का २३ लाछन युक्त छोटी मूर्तियां बनी है। २३ जिनो मे से केवल सुपार्श्व एवं सुमति की पहचान सम्भव नही है। इनके साथ पारम्परिक लाछन (स्वस्तिक एवं क्रौच) के स्थान पर पद्म और पशु (सम्भवतः श्वान्) उत्कीर्ण है। आशुतोष सग्रहालय मे भी ल० दसवी शती ई० की एक मूर्ति है,[७] जिसमें जटामुकुट एवं लांछन से युक्त ऋषभ कायोत्सर्ग में निरूपित है। मूर्ति के परिकर मे चार जिन मूर्तियां बनी है। घटेश्वर (बंगाल) से मिली दसवी शती ई० की एक दिगंबर मूर्ति के परिकर मे २४ छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण है।[८] ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानमुद्रावाली मूर्ति तालागुड़ी (पुरुलिया) से भी मिली है।[९] इसमे जटाजूट एवं लांछन से युक्त ऋषभ के वक्ष पर श्रीवत्स नही है। ऋषभ की कुछ मूर्तियां भेलोवा (दिनाजपुर, बांगलादेश) एवं संक (पुरुलिया, बंगाल) से भी मिली है (चित्र १०, ११)।

खण्डगिरि की जैन गुफाओ मे भी ऋषभ की कई मूर्तिया (११ वी-१२ वी शती ई०) हैं। नवमुनि गुफा मे दो मूर्तियां ध्यानमुद्रा मे हैं। इनमें वृषभ लांछन और जटाएं प्रदर्शित है पर सिंहासन, भामण्डल, श्रीवत्स एवं उड्डीयमान मालाधर नही है। एक मूर्ति में ऋषभ के साथ दशभुज चक्रेश्वरी है। समान लक्षणो वाली एक अन्य ध्यानमुद्रावाली मूर्ति बारभुजी गुफा मे है जिसमे सिंहासन, भामण्डल एवं उड्डीयमान मालाधर चित्रित हैं। यहां चक्रेश्वरी बारह भुजाओवाली

---

१ चंद्र, प्रमोद, **स्टोन स्कल्पचर इन दि एलाहाबाद म्यूजियम**, बम्बई, १९७०, पृ० ११२

२ रामचन्द्रन, टी०एन०, **जैन मान्युमेण्ट्स ऐण्ड प्लेसेज आव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स**, कलकत्ता, १९४४, पृ० ५९-६०

३ १०६७९, १०६८०–८१, १०६८३–८७

४ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट आन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', **उ०हि०रि०ज०**, खं० १०, अं० ४, पृ० ३०-३१

५ दश, एम०पी०, 'जैन एन्टिक्विटीज फ्राम चरंपा', **उ०हि०रि०ज०**, खं० ११, अं० १, पृ० ५०–५१

६ गांगुली, कल्याण कुमार, 'जैन इमेजेज इन बंगाल', **इण्डि०क०**, खं० ६, पृ० १३८–३९

७ सरकार, शिवशंकर, 'आन सम जैन इमेजेज फ्राम बंगाल', **माडर्न रिव्यू**, ख० १०६, अं० २, पृ० १३०–३१

८ दत्त, कालीदास, 'दि एन्टिक्विटीज ऑव खारी', **ऐनुअल रिपोर्ट, वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी**, १९२८–२९, पृ० ५–६

९ नाहटा, भंवरलाल, 'तालागुड़ी की जैन प्रतिमा', **जैन जगत**, वर्ष १३, अं० ९–११, पृ० ६०–६१

है ।[१] त्रिशूल गुफा मे भी चार मूर्तियां है ।[२] इनमे वृषभ लांछन, जटा एवं जटामुकुट से युक्त ऋषभ कायोत्सर्ग में खड़े हैं । उड़ीसा के किसी स्थल से मिली ऋषभ की जटामुकुट से शोभित और कायोत्सर्ग मे खड़ी एक मूर्ति (१२ वी शती ई०) म्यूजेगीमे, पेरिस में है ।[३] चामरधर और आठ ग्रह भी अंकित है ।

अम्बिका नगर (बांकुड़ा) से लांछन एव जटामुकुट से शोभित एक विशाल कायोत्सर्ग मूर्ति (११ वी शती ई०) मिली है,[४] जिसके परिकर मे २४ जिनो की लांछनयुक्त छोटी मूर्तिया है । मानभूम एवं बारभूम (मिदनापुर) की दो मूर्तियां (११ वी शती ई०) भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता मे हे ।[५] इनमें भी २४ लघु जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं । आशुतोष संग्रहालय की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११ वी शती ई०) मे लाछन, नवग्रह एवं गणेश की आकृतियां बनी है । बंगाल की केवल एक ही ऋषभ मूर्ति (११ वी शती ई०) में यक्ष-यक्षी निरूपित हे ।[६] यक्षी अम्बिका है पर द्विभुज यक्ष की पहचान सम्भव नही है ।

विश्लेषण—बिहार-उड़ीसा-बंगाल की ऋषभ मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट है कि ऋषभ के साथ वृषभ लांछन एवं जटाओ के साथ ही जटामुकुट का प्रदर्शन भी लोकप्रिय था । वृषभ लाछन का चित्रण ल० आठवी शती ई० से ही प्रारम्भ हो गया । यक्ष-यक्षी का अकन केवल एक ही उदाहरण मे हुआ हे, और उसमे भी वे पारम्परिक नही है ।[७] परिकर में २३ या २४ जिनों की छोटी मूर्तियो एव नवग्रहो के अकन विशेष लोकप्रिय थे ।

जीवनदृश्य

ऋषभ के जीवनदृश्यो के उदाहरण राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ३५४), ओसिया की देवकुलिका, कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरो एव **कल्पसूत्र** के चित्रों में सुरक्षित है। ओसिया और कुम्भारिया के उदाहरण ग्यारहवी शती ई० और **कल्पसूत्र** के चित्र पन्द्रहवी शती ई० के है ।

मथुरा से प्राप्त और राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे सुरक्षित ल० पहली शती ई० के एक पट्ट (जे ३५४) पर नीलांजना के नृत्य का दृश्य उत्कीर्ण है (चित्र १२) । नीलांजना इन्द्रलोक की नर्तकी थी । नीलांजना के नृत्य के कारण ही ऋषभ को वैराग्य उत्पन्न हुआ था ।[८] नीलांजना के नृत्य से सम्बन्धित पट्ट का दूसरा भाग भी प्राप्त हो गया है ।[९] वी०एन० श्रीवास्तव ने दोनो पट्टो के दृश्यो को पाच भागो मे विभाजित किया है । दाहिने कोने की आकृति को उन्होने नीलाजना के नृत्य को देखते हुए शासक ऋषभ माना है । पट्ट पर ऋषभ के संसार त्यागने एवं केवल-ज्ञान प्राप्त करने के भी चित्रण है ।

---

१ मित्रा, देबला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', **ज०ए०सो०**, ख० १, अं० २, पृ० १२८–३०

२ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, **लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा**, कलकत्ता, १९३१, पृ० २८१

३ **जै०क०स्था०**, खं० ३, पृ० ५६२–६३

४ मित्रा, देबला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बाकुड़ा, वेस्ट बंगाल', **ज०ए०सो०बं०**, ख० २४, अं० २, पृ० १३२

५ एण्डरसन, जे०, **केटलाग ऐण्ड हैण्डबुक टू दि आर्किअलाजिकल कलेक्शन इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता**, भाग १, कलकत्ता, १८८३, पृ० २०२; बनर्जी, जे० एन०, 'जैन इमेजेज', **दि हिस्ट्री ऑव बंगाल,** खं० १, ढाका, १९४३, पृ० ४६४–६५

६ मित्र, कालीपद, 'आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ऐन इमेज', **इं०हि०क्वा०**, खं० १८, अं० ३, पृ० २६१–६६

७ नवमुनि एव बारभुजी गुफाओं की दो ऋषभ मूर्तियों में मूर्तियों के नीचे चक्रेश्वरी आमूर्तित है ।

८ **पउमचरिय** ३.१२२–२६, **हरिवंशपुराण** ९.४७–४८

९ राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे ६०९ : श्रीवास्तव, वी० एन०, 'सम इन्टरेस्टिंग जैन स्कल्पचर्स इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', **सं०पु०प०**, अं० ९, पृ० ४७–४८

ओसिया के महावीर मन्दिर के समीप की पूर्वी देवकुलिका के वेदिकाबंध पर ऋषभ के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। इस पहचान का मुख्य आधार नीलांजना के नृत्य का अंकन है। उत्तर की ओर ऋषभ की माता नवजात शिशु के साथ लेटी है। समीप ही गोद में शिशु लिए अजमुख नैगमेषी आमूर्तित है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि जिनों के जन्म के बाद इन्द्र ने अपने सेनापति नैगमेषी को शिशु को अभिषेक हेतु मेरु पर्वत पर लाने का आदेश दिया था। उपर्युक्त चित्रण नैगमेषी द्वारा शिशु को मेरुपर्वत पर ले जाने से सम्बन्धित है। जैन परम्परा में यह भी उल्लेख है कि नैगमेषी ने मरुदेवी को गहरी निद्रा में सुलाकर उनके समीप शिशु की एक प्रतिकृति रख दी और शिशु को मेरु पर्वत पर ले गया। आगे गज पर दो आकृतियां बैठी हैं, जिनमें से एक की गोद में शिशु है। यह इन्द्र द्वारा शिशु (ऋषभ) को मेरु पर्वत पर ले जाने का दृश्य है। आगे घट एवं वाद्ययंत्रों से युक्त ३५ आकृतियां उत्कीर्ण है, जो ऋषभ के जन्म-कल्याणक पर आनन्दोत्सव मना रही है। आगे ध्यानमुद्रा मे बैठी इन्द्र की आकृति है, जिसकी गोद मे शिशु (ऋषभ) है। पूर्वी वेदिकाबन्ध पर ऋषभ के राज्यारोहण का दृश्य है। दक्षिणी वेदिकाबन्ध पर पशुओं और योद्धाओं की मूर्तियां एवं युद्ध से सम्बन्धित दृश्य है। समीप ही नृत्य करती एक स्त्री की आकृति है जिसके पास वाद्यवादन करती तीन आकृतियां हैं। यह नीलाजना के नृत्य का अंकन है। समीप ही भिक्षापात्र एवं मुख-पट्टिका से युक्त दो साधु आकृतियां उत्कीर्ण है जो सम्भवतः ऋषभ की मूर्तिया है।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के वितान (उत्तर से प्रथम) पर ऋषभ के जीवनदृश्यो के विस्तृत चित्रण है (चित्र १४)। सारा दृश्य चार आयतों मे विभाजित है। बाहर से प्रथम आयत मे पूर्व की ओर (बायें से) मरुदेवी और नाभि की वार्तालाप करती आकृतिया उत्कीर्ण है। आगे सेविकाओं से वेष्टित मरुदेवी शय्या पर लेटी है। समीप ही १४ मागलिक स्वप्न उत्कीर्ण है।[1] उत्तर की ओर (बायें से) भी नाभि एवं मरुदेवी की वार्तालाप मे सलग्न मूर्तियां है। आगे मरुदेवी की शय्या पर लेटी आकृति भी उत्कीर्ण है जिसके समीप चार वृषभ एव अश्व पर आरूढ़ एक आकृति बनी है। यह सम्भवत. ऋषभ के पूर्वभव (वज्रनाभ) के जीव के मरुदेवी के गर्भ मे च्यवन करने का चित्रण है। अश्वारूढ आकृति वज्रनाभ का जीव है। आगे नाभिराय को जैन आचार्यों से मरुदेवी के स्वप्नों का फल पूछते हुए दरशाया गया है। दक्षिण की ओर ऋषभ के राज्यारोहण एवं विवाह के दृश्य है।

दूसरे आयत मे पूर्व की ओर ऋषभ को शासक के रूप मे विभिन्न कलाओं का ज्ञान देते हुए दिखाया गया है। जैन परम्परा में ऋषभ को सभी कलाओ का प्रणेता कहा गया है। इन दृश्यों मे ऋषभ को पात्र (प्रथम पात्र) लिए और युद्ध की शिक्षा देते हुए दिखाया गया है। उत्तर की ओर ऋषभ की दीक्षा का दृश्य उत्कीर्ण है। पद्मासन में ऋषभ की पाच मूर्तियां उत्कीर्ण हैं, जिनमे वाम भुजा गोद मे है और दक्षिण से ऋषभ अपने केशो का लुंचन कर रहे है। पांचवी आकृति के समक्ष इन्द्र खडे है जो ऋषभ से एक मुष्टि केश सिर पर ही रहने देने का अनुरोध कर रहे है। जैन परम्परा के अनुसार इन्द्र ने ही ऋषभ के लुंचित केशों को जल मे प्रवाहित किया था। आगे कायोत्सर्ग-मुद्रा मे ऋषभ तपस्यारत है। ऋषभ के पार्श्वों मे खड्‌गधारी नमि-विनमि की आकृतियां है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि राज्य-लक्ष्मी प्राप्त करने की इच्छा से नमि-विनमि तपस्यारत ऋषभ के समीप काफी समय तक खडे रहे। अन्त मे धरणेन्द्र ने उपस्थित होकर नमि-विनमि को ४८ हजार विद्याओं का स्वामित्व प्रदान किया।[2] पश्चिम की ओर खड्‌गधारी नमि-विनमि की आकृतिया उत्कीर्ण हैं। दक्षिण की ओर ऋषभ का समवसरण है जिसके मध्य में ऋषभ की ध्यानस्थ मूर्ति है।

तीसरे आयत में ऋषभ के दो पुत्रों, भरत एवं बाहुबली के मध्य हुए युद्ध का विस्तृत चित्रण है। इन दृश्यों में दोनों पक्षों की सेनाओं के युद्ध के साथ ही भरत एवं बाहुबली के द्वन्द्वयुद्ध भी प्रदर्शित हैं। जैन परम्परा के अनुसार युद्ध मे

१ मांगलिक स्वप्नों में चतुर्भुज महालक्ष्मी ध्यानमुद्रा मे विराजमान है। महालक्ष्मी की निचली भुजाए गोद में रखी हैं और ऊपरी भुजाओं में सनाल पद्म हैं। पद्म के ऊपर की दो गज आकृतियां देवी का अभिषेक कर रही हैं।

२ त्रि०श०पु०च० १.३.१३४-४४

होने वाले नरसंहार को बचाने के उद्देश्य से भरत एवं बाहुबली ने द्वन्द्वयुद्ध के माध्यम से निर्णय करने का निश्चय किया था।[1] युद्ध मे विजयश्री बाहुबली को मिली पर उसी समय उनके मन मे संसार के प्रति विरक्ति का भाव उत्पन्न हुआ, और बाहुबली ने दीक्षा लेकर कठोर तपस्या की। अन्त में बाहुबली को कैवल्य प्राप्त हुआ। कठोर और लम्बी अवधि की तपस्या के कारण बाहुबली के शरीर से माधवी, सर्प एव वृश्चिक आदि लिपट गये, किन्तु बाहुबली विचलित न होकर तपस्यारत बने रहे। बायी ओर शरीर से लिपटी माधवी के साथ बाहुबली की कायोत्सर्ग-मुद्रा में तपस्यारत आकृति बनी है। बाहुबली के दोनों ओर उनकी बहनों, ब्राह्मी और सुन्दरी की मूर्तियां है जिनके नीचे 'ब्राह्मी' और 'सुन्दरी' अभिलिखित है। जैन परम्परा के अनुसार ऋषभ के आदेश पर ब्राह्मी और सुन्दरी बाहुबली के समीप गई थी। ब्राह्मी एवं सुन्दरी के आगमन के बाद ही बाहुबली को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ था। चौथे आयत में चतुर्भुज गोमुख और चक्रेश्वरी आमूर्तित हैं।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका (उत्तर से प्रथम) के वितान पर भी ऋषभ के जीवनदृश्यों के विशद अंकन है (चित्र १३)। सम्पूर्ण दृश्य तीन आयतो मे विभाजित है। पहले आयत मे पूर्व की ओर सर्वार्थसिद्ध स्वर्ग का चित्रण है, जिसमे वार्तालाप की मुद्रा मे कई आकृतियां उत्कीर्ण है। स्मरणीय है कि वज्रनाभ का जीव सर्वार्थसिद्ध स्वर्ग से ही मरुदेवी के गर्भ मे आया था। आगे वार्तालाप की मुद्रा मे ऋषभ के माता-पिता की आकृतियां है। उत्तर मे (बायें से) मरुदेवी की शय्या पर लेटी मूर्ति है। आगे १४ मांगलिक स्वप्न और वार्तालाप की मुद्रा मे ऋषभ के माता-पिता की मूर्तियां है। अन्य दृश्य कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के समान है।

दूसरे आयत में उत्तर की ओर (बायें से) सेविकाओं से वेष्टित मरुदेवी शिशु के साथ लेटी है। नीचे 'ऋषभ जन्म' अभिलिखित है। बायी ओर नमस्कार-मुद्रा में सम्भवतः इन्द्र की मूर्ति उत्कीर्ण है। श्वेतांबर परम्परा मे इन्द्र द्वारा नव शिशु को मेरुपर्वत पर ले जाने का उल्लेख है।[2] पूर्व मे मेरुपर्वत पर शिशु को इन्द्र की गोद मे बैठे दिखाया गया है। पीछे छत्र लिए एक मूर्ति उत्कीर्ण है। इन्द्र के पार्श्वों में अभिषेक हेतु कलशधारी आकृतियां बनी हैं। दक्षिण में ध्यानस्थ ऋषभ की एक मूर्ति उत्कीर्ण है, जो अपने बायें हाथ से केशो का लुंचन कर रही है। बायी ओर ऋषभ को कायोत्सर्ग-मुद्रा मे दो वृक्षो के मध्य खड़ा प्रदर्शित किया गया है। समीप ही ऋषभ की एक अन्य कायोत्सर्ग मूर्ति भी उत्कीर्ण है। ये मूर्तियां ऋषभ की तपश्चर्या की सूचक है। आगे ऋषभ का समवसरण है। तीसरे आयत में ऋषभ के पारम्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख-चक्रेश्वरी और पाच अन्य देवता निरूपित है। लेख मे चक्रेश्वरी को 'वैष्णवी देवी' कहा गया है। अन्य मूर्तिया ब्रह्मशान्ति यक्ष,[3] सिंहवाहना अम्बिका, सरस्वती शान्तिदेवी एव महाविद्या वैरोट्या[4] की है।

कल्पसूत्र के चित्रो मे भी ऋषभ के पंचकल्याणको के विस्तृत अंकन है।[5] चित्रो के विवरण कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरो की दृश्यावलियों के समान है। इनमे ऋषभ के विवाह, राज्याभिषेक एवं सिद्ध-पद प्राप्त करने के दृश्य है। चतुर्भुज शक्र को ऋषभ का राज्याभिषेक करते हुए दिखाया गया है।

दक्षिण भारत—इस क्षेत्र मे महावीर एवं पार्श्व की तुलना मे ऋषभ की मूर्तियां काफी कम है। ऋषभ मूर्तियों मे जटाओ, वृषभ लाछन, गोमुख-चक्रेश्वरी एवं २३ या २४ छोटी जिन मूर्तियों के नियमित अंकन प्राप्त होते है।

---

१ **पउमचरिय** ४.५४–५५; **हरिवंशपुराण** ११.९८–१०२, **आदिपुराण**, खं० २, ३६.१०६–८५; **त्रि०श०पु०च०**, खं० १, ५.७४०–९८

२ **त्रि०श०पु०च०** १.२.४०७–३०

३ चतुर्भुज ब्रह्मशान्ति का वाहन हंस है और करों में वरदमुद्रा, पद्म, पुस्तक एवं जलपात्र हैं।

४ चतुर्भुजा वैरोट्या के हाथों मे खड्ग, सर्प, खेटक एवम् फल प्रदर्शित हैं।

५ ब्राउन, डब्ल्यू०एन०, **ए डेस्क्रिप्टिव ऐण्ड इलस्ट्रेटेड केटलॉग ऑव मिनियेचर पेंटिंग्स ऑव दि जैन कल्पसूत्र**, वाशिंगटन, १९३४, पृ० ५०–५३, फलक ३५–३८

ल० दसवीं शती ई० की एक मूर्ति पुडुकोट्टई से मिली है।[1] कायोत्सर्ग में खड़ी ऋषभ मूर्ति के परिकर में २३ छोटी जिन मूर्तियां और पीठिका पर गोमुख-चक्रेश्वरी निरूपित हैं। ऋषभ की जटाएं और वृषभ लांछन भी उत्कीर्ण हैं। कलसमंगलम (पुडुकोट्टई) से मिली एक अन्य मूर्ति में भी गोमुख-चक्रेश्वरी एवं परिकर में २४ छोटी जिन मूर्तियां बनी हैं।[2] समान लक्षणों वाली कन्नड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूजियम की एक ध्यानस्थ मूर्ति[3] के परिकर मे ७१ जिन आकृतियां और मूलनायक के दोनों ओर सुपार्श्व एवं पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।

विश्लेषण

संपूर्ण अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उत्तर भारत की जिन मूर्तियो मे ऋषभ सर्वाधिक लोकप्रिय थे।[4] ल० ८वीं शती ई० में उनके वृषभ लाछन और नवीं-दसवीं शती ई० में पारम्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख एवं चक्रेश्वरी का अंकन प्रारम्भ हुआ।[5] ऋषभ की जटाओं का निर्धारण मथुरा मे पहली शती ई० में ही हो गया था। देवगढ़, खजुराहो, कुम्भारिया (महावीर मन्दिर) एवं लखनऊ संग्रहालय की कुछ मूर्तियों में ऋषभ के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी के साथ ही अम्बिका, पद्मावती, शान्तिदेवी, सरस्वती, लक्ष्मी, वैरोट्या एवं ब्रह्मशान्ति भी निरूपित है। ऋषभ के साथ इन देवों का निरूपण ऋषभ की विशेष प्रतिष्ठा का सूचक है।

ऋषभ के निरूपण मे हिन्दू देव शिव का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। शिव का प्रभाव ऋषभ की जटाओं, वृषभ लाछन एवं गोमुख यक्ष के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। गोमुख यक्ष वृषानन है और उसका वाहन भी वृषभ है। गोमुख यक्ष के हाथो में भी शिव से सम्बन्धित परशु एवं पाश प्रदर्शित हैं।[6] ऋषभ की चक्रेश्वरी यक्षी वाहन (गरुड) और आयुधो (चक्र, शख, गदा) के आधार पर हिन्दू वैष्णवी से प्रभावित प्रतीत होती है।[7] कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की एक चक्रेश्वरी मूर्ति में देवी को स्पष्टतः 'वैष्णवी देवी' कहा गया है। इस प्रकार शैव एवं वैष्णव धर्मों के प्रमुख आराध्य देवो को जैन धर्म के आदि तीर्थंकर ऋषभ के शासनदेवता के रूप में निरूपित करके सम्भवतः जैन धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है।

(२) अजितनाथ

जीवनवृत्त

अजितनाथ इस अवसर्पिणी युग के दूसरे जिन है। विनीता नगरी के महाराज जितशत्रु उनके पिता और विजया देवी उनकी माता थी। अजित के माता के गर्भ में आने के बाद से जितशत्रु अविजित रहे, इसी कारण बालक का नाम अजित रखा गया। **आवश्यकचूर्णि** मे उल्लेख है कि गर्भकाल मे जितशत्रु विजया को खेल मे न जीत सके थे, इसी कारण बालक का नाम अजित रखा गया। राजपद के भोग के बाद पंचमुष्टिक मे केशों का लुंचन कर अजित ने दीक्षा ग्रहण की।

१ बालसुब्रह्मण्यम, एस० आर० तथा राजू, वी० वी०, 'जैन वेस्टिजेज इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', **क्वा०ज०मै०स्टे०**, खं० २४, अं० ३, पृ० २१३-१४

२ वेंकटरमन, के० आर०, 'दि जैनज इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', **जैन एण्टि०**, खं० ३, अं० ४, पृ० १०५

३ अन्निगेरी, ए० एम०, **ए गाइड टू दि कन्नड़ रिसर्च इंस्टिट्यूट म्यूजियम**, धारवाड़, १९५८, पृ० २६-२७

४ केवल उड़ीसा की उदयगिरि-खण्डगिरि गुफाओं में ही ऋषभ की तुलना मे पार्श्व की अधिक मूर्तियां हैं।

५ देवगढ़, विमलवसही एवं कुछ अन्य स्थलो की मूर्तियो में ऋषभ के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका भी आमूर्तित है। बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का उत्कीर्णन लोकप्रिय नहीं था।

६ बनर्जी, जे० एन०, **दि डीवेलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, कलकत्ता, १९५६, पृ० ५६२

७ राव, टी० ए० गोपीनाथ, **एलिमेन्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, खं० १, भाग २, वाराणसी, १९७१ (पु०मु०), पृ० ३८४-८५

बारह वर्षों की कठिन तपस्या के बाद अजित को अयोध्या में सप्तपर्ण (न्यग्रोध) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। अजित को सम्मेद शिखर पर निर्वाण प्राप्त हुआ।[१]

प्रारम्भिक मूर्तियां

अजित का लांछन गज है और यक्ष-यक्षी महायक्ष एवं अजितबला (या अजिता या विजया) हैं। दिगंबर परम्परा में अजित की यक्षी रोहिणी है। केवल दिगंबर स्थलों की अजित मूर्तियों मे ही यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। पर उनके निरूपण मे लेशमात्र भी परम्परा का निर्वाह नही किया गया है। साथ ही उनके स्वतन्त्र स्वरूप भी कभी स्थिर नही हो सके। ल० छठी-सातवी शती ई० में अजित के लांछन और आठवी शती ई० मे यक्ष-यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हुआ।

अजित की प्रारम्भिकतम मूर्ति ल० छठी-सातवी शती ई० की है। वाराणसी से मिली यह मूर्ति सम्प्रति राज्य संग्रहालय, लखनऊ (४९-१९९) में है।[२] अजित कायोत्सर्ग-मुद्रा में निर्वस्त्र खड़े है और पीठिका पर गज लाछन की दो मूर्तिया उत्कीर्ण है। भामण्डल के अतिरिक्त कोई अन्य प्रातिहार्य नहीं उत्कीर्ण है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तिया

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से अजित की तीन मूर्तिया मिली है। ल० आठवी शती ई० की अकोटा की एक मूर्ति मे धर्मचक्र के दोनो ओर अजित के गज लांछन उत्कीर्ण हैं।[३] पीठिका छोरों पर द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित है, जिनके आयुध स्पष्ट नहीं हैं। पीठिका पर अष्टग्रहों की भी मूर्तियां है। १०५३ ई० की दूसरी मूर्ति अहमदाबाद के अजितनाथ मन्दिर मे है[४] जिसमे लाछन नही उत्कीर्ण है। पर पीठिका-लेख मे अजित का नाम आया है। तीसरी मूर्ति कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर मे है। ११११९ ई० की इस मूर्ति मे कायोत्सर्ग मे अवस्थित मूलनायक की पीठिका पर गज लांछन बना है। यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण हैं, पर तोरण स्तम्भो पर अप्रतिचक्रा, पुरुषदत्ता, महाकाली, वज्रशृंखला, वज्रांकुशी, रोहिणी महाविद्याओ एवं शान्तिदेवी की मूर्तियां है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र मे केवल देवगढ़ एवं खजुराहो मे ही अजित की मूर्तिया मिली हैं।[५] देवगढ़ मे दसवी से बारहवीं शती ई० के मध्य की पाच मूर्तिया है (चित्र १५)। चार मूर्तियों मे अजित कायोत्सर्ग मे खड़े है। गज लाछन सभी में उत्कीर्ण है। मन्दिर २१ की दसवी शती ई० की एक मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी निरूपित है। तीन उदाहरणो मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं।[६] इनकी भुजाओ मे अभयमुद्रा एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित है। मन्दिर २९ की बारहवी शती ई० की एक मूर्ति मे यक्ष-यक्षी चतुर्भुज है। इस मूर्ति मे चामरधरों के समीप हार और घट लिए हुए दो आकृतियां खड़ी हैं। मन्दिर १२ की चहारदीवारी की दो मूर्तियों (१०वी-११शती ई०) के परिकर में क्रमशः चार और पांच छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण है।

खजुराहो मे ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की चार मूर्तिया हैं।[७] सभी मूर्तियां स्थानीय संग्रहालय मे सुरक्षित है। तीन उदाहरणों मे अजित ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। यक्ष-यक्षी केवल एक ही मूर्ति (के ४३) मे निरूपित हैं। एक

१ हस्तीमल, **पू०नि०**, पृ० ६४-६७

२ शर्मा, आर० सी०, 'जैन स्कल्पचर्स ऑव दि गुप्त एज इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बम्बई, १९६८, पृ० १५५

३ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० ४७, चित्र ४१ बी०

४ मेहता, एन०सी०, 'ए मेडिवल जैन इमेज ऑव अजितनाथ-१०५३ ए०डी०', **इण्डि०एण्टि०**, खं०५६, पृ०७२-७४

५ अजीत, सम्भव, अभिनन्दन एवं पद्मप्रभ की कुछ कायोत्सर्ग मूर्तियां मध्य प्रदेश के शिवपुरी संग्रहालय में हैं। द्रष्टव्य, **जै०क०स्था०**, खं० ३, पृ० ६०४

६ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी से हमारा तात्पर्य सदैव ऐसे द्विभुज यक्ष-यक्षी से है जिनके करो मे अभयमुद्रा (या पद्म) एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित है।

७ तिवारी, एम०एन०पी०, 'दि जिन इमेजेज ऑव खजुराहो विद स्पेशल रेफरेन्स टू अजितनाथ', **जैन जर्नल**, खं० १०, अं० १, पृ० २२-२५

उदाहरण (के ६६) में चामरधरों के स्थान पर पार्श्वों मे दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। सिंहासन-छोरों पर एवं परिकर मे चार अन्य जिन मूर्तियां भी बनी है। एक मूर्ति (के २२) में पीठिका पर पांच ग्रहो एवं परिकर में ६ जिनों की मूर्तियां है। दो अन्य मूर्तियो (के ४३, के ५९) के परिकर में क्रमशः दो और सात जिन मूर्तियां उत्कीर्ण है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—राजगिर के सोनभण्डार गुफा मे ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है।[1] पीठिका पर सिंहासन के सूचक सिंहों के स्थान पर दो गज (लांछन) आकृतिया उत्कीर्ण है। पीठिका-छोरों पर ध्यानस्थ जिनों की दो मूर्तियां हैं। मूलनायक के पार्श्वों मे दो चामरधर एवं परिकर मे दो उड्डीयमान मालाधर आमूर्तित है। अलुआरा (मानभूम) से एक कायोत्सर्ग मूर्ति (१०वी–११वी शती ई०) मिली है, जो सम्प्रति पटना संग्रहालय (१०६९७) मे सुरक्षित है।[2] सिंहासन पर गज लांछन, और परिकर में चामरधर, त्रिछत्र, उड्डीयमान मालाधर, गज, आमलक एवं छोटी जिन आकृतियां उत्कीर्ण है। चरंपा (उड़ीसा) से मिली एक ध्यानस्थ मूर्ति (१०वी-११वीं शती ई०) उड़ीसा राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर मे संकलित है।[3] उड़ीसा की नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं मे अजित की तीन मूर्तियां हैं।[4] नवमुनि एव बारभुजी गुफाओ की मूर्तियो के नीचे यक्षियां भी आमूर्तित है। बिहार के मानभूम जिलान्तर्गत पालमा से भी अजित की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वी शती ई०) मिली है।[5] गज लांछन युक्त यह मूर्ति शिखर युक्त मन्दिर मे प्रतिष्ठित है।

(२) सम्भवनाथ

जीवनवृत्त

सम्भवनाथ इस अवसर्पिणी के तीसरे जिन है। श्रावस्ती के शासक जितारि उनके पिता और सेनादेवी (या सुषेणा) उनकी माता थी। जैन परम्परा के अनुसार सम्भव के गर्भ मे आने के बाद से देश मे प्रभूत मात्रा मे साम्ब एवं मृग धान्य उत्पन्न हुए, इसी कारण बालक का नाम सम्भव रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद सम्भव ने सहस्राम्रवन मे दीक्षा ली। १४ वर्षों की कठोर तपःसाधना के बाद श्रावस्ती नगर मे शालवृक्ष के नीचे सम्भव को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। निर्वाण इन्होने सम्मेद शिखर पर प्राप्त किया।[6]

प्रारम्भिक मूर्तियां

सम्भव का लांछन अश्व है और यक्ष-यक्षी त्रिमुख एवं दुरितारि हैं। दिगंबर परम्परा मे यक्षी का नाम प्रज्ञप्ति है। मूर्त अंकनो में सम्भव के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नही प्राप्त होता। ल० दसवी शती ई० मे सम्भव के अश्व लाछन और यक्ष-यक्षी का अकन प्रारम्भ हुआ।

सम्भव की प्राचीनतम मूर्ति मथुरा से मिली है और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे १९) मे सुरक्षित है (चित्र १६)। कुषाणकालीन मूर्ति पर अंकित सं० ४८ (=१२६ ई०) के लेख मे 'सम्भवनाथ' का नाम उत्कीर्ण है। सम्भव ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। पीठिका पर धर्मचक्र और त्रिरत्न उत्कीर्ण है। इस मूर्ति के बाद दसवी शती ई० के पूर्व की एक भी सम्भव मूर्ति नही मिली है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तिया

गुजरात और राजस्थान के जैन मन्दिरों की देवकुलिकाओ की सम्भव मूर्तियां सुरक्षित नही है। बिहार एवं बंगाल से सम्भव की एक भी मूर्ति नही मिली है। उड़ीसा की नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं मे सम्भव की तीन ध्यानस्थ मूर्तियां है।[7] इनमें से दो उदाहरणो में यक्षियां भी उत्कीर्ण है।

---

१ आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली, चित्र संग्रह १४३१.५५

२ गुप्ता, पी० एल०, **बि पटना म्यूजियम कैटलाग ऑव दि एन्टिक्विटीज**, पटना, १९६५, पृ० ९०

३ दश, एम० पी, पू०नि०, पृ० ५१–५२

४ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

५ **जै०क०स्था०**, खं० २, पृ० २६७

६ हस्तीमल, **पू०नि०**, पृ० ६८–७१

७ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, **पू०नि०**, पृ० २८१

उत्तर भारत में केवल उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश के क्षेत्र में देवगढ, खजुराहो एवं बिजनौर से सम्भवनाथ की मूर्तियां मिली है। दो मूर्तियां (१०वी–११वी शती ई०) राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे मी है। लखनऊ संग्रहालय की दोनों मूर्तियों मे सम्भव निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग मे खड़े हैं। इनमे अष्ट-प्रातिहार्य एवं यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित है। एक मूर्ति (जे ८५५) में धर्मचक्र के दोनों ओर अश्व लांछन उत्कीर्ण है। दूसरी मूर्ति (०·११८) मे सम्भव के स्कन्धों पर जटाएं प्रदर्शित है।

देवगढ़ में दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की ११ मूर्तिया है। अश्व लांछन से युक्त सम्भव सभी मे कायोत्सर्ग मे खड़े है। तीन उदाहरणों मे यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण है। ६ उदाहरणो मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। इनके हाथो में अभयमुद्रा (या गदा) एव फल (या कलश) प्रदर्शित है। मन्दिर १५ की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) में यक्षी द्विभुजा है, पर यक्ष चतुर्भुज है। मन्दिर ३० की एक मूर्ति (१२ वी शती ई०) मे यक्ष-यक्षी दोनो चतुर्भुज हैं। चार मूर्तियों[1] मे सम्भव के स्कन्धो पर जटाएं प्रदर्शित है। पाच उदाहरणो में परिकर में कलशधारी, मन्दिर १७ की मूर्ति में चार जिन और मन्दिर ३० की मूर्ति मे जैन आचार्य की मूर्तियां उत्कीर्ण है।

खजुराहो मे ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की चार मूर्तियां है।[2] ११५८ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (मन्दिर २७) में एक भी सहायक आकृति नही उत्कीर्ण है। अन्य उदाहरणों में सम्भव ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं। दो उदाहरणों मे द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित है। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो की मूर्ति (१७१५, ११वी शती ई०) मे मूलनायक के पार्श्वों मे सुपार्श्व की दो खड्गासन मूर्तिया उत्कीर्ण है। पार्श्ववर्ती जिनों के समीप दो स्त्री चामरधारिणी भी चित्रित है। परिकर मे तीन ध्यानस्थ जिनो एवं वेणुवादको की भी मूर्तियां हैं।

पारसनाथ किले (बिजनौर) से १०१० ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति मिली है।[3] इसके पीठिका लेख मे सम्भव का नाम उत्कीर्ण है। सम्भव के पार्श्वों में नेमि एव चन्द्रप्रभ की कायोत्सर्ग मूर्तिया निरूपित हैं। यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं।

(४) अभिनंदन

जीवनवृत्त

अभिनंदन इस अवसर्पिणी के चौथे जिन है। अयोध्या के महाराज संवर उनके पिता और सिद्धार्था उनकी माता थी। अभिनदन के गर्भ में आने के बाद से सर्वत्र प्रसन्नता छा गई, इसी कारण बालक का नाम अभिनंदन रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद अभिनंदन ने दीक्षा ग्रहण की और कठिन तपस्या के बाद अयोध्या में शाल (या पियक) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली भी सम्मेदशिखर है।[4]

मूर्तियां

दसवी शती ई० मे पूर्व की अभिनंदन की एक भी मूर्ति नही मिली है। अभिनंदन का लांछन कपि है और यक्ष-यक्षी यक्षेश्वर (या ईश्वर) एवं कालिका (या काली) है। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम वज्रशृंखला है। शिल्प में अभिनंदन के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नही प्राप्त होता।

---

१ मन्दिर ४, ९, २१

२ तिवारी, एम०एन०पी०, 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि इमेजेज ऑव सम्भवनाथ ऐट खजुराहो', ज०गु०रि०सो०, खं० ३५, अं० ४, पृ० ३–९

३ वाजपेयी, के० डी०, 'पार्श्वनाथ किले के जैन अवशेष', चन्दाबाई अभिनंदन ग्रन्थ, आरा, १९५४, पृ० ३८९

४ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ७२–७४

अभिनंदन की स्वतन्त्र मूर्तिया केवल देवगढ, खजुराहो एवं उड़ीसा की नवमुनि, बारभुजी और त्रिशूल गुफाओं मे है। देवगढ़ से केवल एक मूर्ति (मन्दिर ९, १० वी शती ई०) मिली है। कायोत्सर्ग मे खड़े अभिनन्दन के आसन पर कपि लाछन एवं सिंहासन-छोरों पर सामान्य लक्षणां वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी अंकित है। यक्ष-यक्षी के करो में अभयमुद्रा और कलश प्रदर्शित है। अभिनन्दन के स्कन्धो पर जटाएं प्रदर्शित है। खजुराहो से दो मूर्तियां (१० वीं-११ वी शती ई०) मिली है। दोनों में जिन ध्यानमुद्रा मे विराजमान है। पहली मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति पर और दूसरी मन्दिर २९ में हैं। दोनो मे कपि लाछन और सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी अभयमुद्रा और फल (या कलश) के साथ निरूपित हैं। मन्दिर २९ की मूर्ति मे चार छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण है। तीन ध्यानस्थ मूर्तियां नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओ मे है।[1] दो मूर्तियो मे यक्षियां भी आमूर्तित है।

(५) सुमतिनाथ

जीवनवृत्त

सुमतिनाथ इस अवसर्पिणी के पांचवें जिन हैं। अयोध्या के शासक मेघ (या मेघप्रभ) उनके पिता और मंगला उनकी माता थी। मंगला ने गर्भकाल में अपनी सुन्दर मति से जटिलतम समस्याओं का हल प्रस्तुत किया, अत: गर्भस्थ बालक का उसके जन्म के उपरान्त सुमतिनाथ नाम रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद सुमति ने दीक्षा ली और २० वर्षों की कठिन तपस्या के बाद अयोध्या के सहस्राम्रवन मे प्रियंगु वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[2]

मूर्तियां

सुमतिनाथ को भी दसवी शती ई० से पूर्व की एक भी मूर्ति नही प्राप्त हुई है। सुमति का लाछन क्रौंच पक्षी, यक्ष तुम्बरु तथा यक्षी महाकाली हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम नरदत्ता (या पुरुषदत्ता) है। मूर्त अंकनों मे सुमति के पारम्परिक यक्ष-यक्षी नही निरूपित हुए।

गुजरात-राजस्थान क्षेत्र मे आबू और कुम्भारिया से सुमतिनाथ की मूर्तियां मिली है। विमलवसही की देवकुलिका २७ एवं कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ५ मे बारहवी शती ई० की दो मूर्तिया हैं। दोनों उदाहरणों में मूलनायक की मूर्तियां नष्ट है, पर लेखो मे सुमतिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। विमलवसही की मूर्ति में मूलनायक के पार्श्वों में दो कायोत्सर्ग और दो ध्यानस्थ जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। कुम्भारिया की मूर्ति मे यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण है। सिंहासन के मध्य मे शान्तिदेवी के स्थान पर दो चामरधरो से सेवित चतुर्भुज महाकाली आमूर्तित है। मूर्ति के तोरण-स्तम्भो पर अप्रतिचक्रा, वज्रांकुशी, वज्रशृंखला, वैरोट्या, रोहिणी, मानवी, सर्वास्त्र-महाज्वाला एवं महामानसी महाविद्याओ तथा सरस्वती एवं कुछ अन्य देवियो की मूर्तियां हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश के क्षेत्र मे केवल खजुराहो एवं महोबा (११५८ ई०)[3] से सुमति की मूर्तियां मिली है। खजुराहो मे दसवी-ग्यारहवी शती ई० की दो ध्यानस्थ मूर्तियां हैं। दोनों उदाहरणों में लांछन और सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी आमूर्तित है। यक्ष-यक्षी के करों मे अभयमुद्रा (या पुष्प) एवं फल प्रदर्शित है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की उत्तरी भित्ति की मूर्ति मे चामरधरो के समीप दो खड्गासन जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण है। मन्दिर ३० की दूसरी मूर्ति के परिकर मे चार कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां है।

---

१ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१ २ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ७५-७८

३ स्मिथ, वी०ए० तथा ब्लैक, एफ०सी०, 'आब्जरवेशन आन सम चन्देल एन्टिक्विटीज', ज०ए०सो०बं०, खं० ५८, अं० ४, पृ० २८८

उड़ीसा में बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में दो ध्यानस्थ मूर्तियां है ।[1] दोनो उदाहरणों मे क्रौंच पक्षी की पहचान निश्चित नहीं है, पर मूर्तियों के पारम्परिक क्रम मे उत्कीर्ण होने के आधार पर उनकी सुमति से पहचान की गई है ।

(६) पद्मप्रभ

जीवनवृत्त

पद्मप्रभ वर्तमान अवसर्पिणी के छठें जिन है। कौशाम्बी के शासक धर (या धरण) इनके पिता और सुसीमा इनकी माता थी। जैन परम्परा में उल्लेख है कि गर्भकाल मे माता को पद्म की शय्या पर सोने की इच्छा हुई थी तथा नवजात बालक के शरीर की प्रभा भी पद्म के समान थी, इसी कारण बालक का नाम पद्मप्रभ रखा गया।[2] राजपद के उपभोग के बाद पद्मप्रभ ने दीक्षा ली और छह माह की तपस्या के बाद कौशाम्बी के सहस्राम्र वन में प्रियंगु (या वट) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर पर इन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ।[3]

मूर्तियां

पद्मप्रभ का लांछन पद्म है और यक्ष-यक्षी कुसुम एवं अच्युता (या श्यामा या मानसी) है। दिगंबर परम्परा मे यक्षी का नाम मनोवेगा है। मूर्त अंकनो मे पद्मप्रभ के पारम्परिक यक्ष-यक्षी कभी निरूपित नहीं हुए। दसवीं शती ई० से पहले की पद्मप्रभ की एक भी मूर्ति नहीं मिली है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश के क्षेत्र मे पद्मप्रभ की मूर्तियां केवल खजुराहो, छतरपुर देवगढ़, नरवर एवं ग्वालियर से ही मिली है। दसवीं शती ई० की एक विशाल पद्मप्रभ मूर्ति खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप मे सुरक्षित है। पद्मप्रभ ध्यानमुद्रा मे विराजमान हैं और उनकी पीठिका पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी एवं कायोत्सर्ग-मुद्रा में दो जिन मूर्तियां उत्कीर्ण है। परिकर मे वीणावादन करती सरस्वती की भी दो मूर्तियां है। साथ ही कई छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण है। ग्वालियर से मिली मूर्ति (१०वी-११वी शती ई०) ध्यानमुद्रा मे है और भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता मे संगृहीत है।[4] देवगढ़ के मन्दिर १ से मिली मूर्ति कायोत्सर्ग-मुद्रा मे और ११ वी शती ई० की है। १११४ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति ऊर्दमऊ (म० प्र०) के मन्दिर मे है।[5] छतरपुर से मिली कायोत्सर्ग मूर्ति (११४९ ई०) राज्य संग्रहालय, लखनऊ (०'१२२) मे है। इसमे मूलनायक के स्कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित है।

कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ६ की मूर्ति (१२०२ ई०) के लेख मे पद्मप्रभ का नाम उत्कीर्ण है। उड़ीसा की बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओ मे ध्यानस्थ पद्मप्रभ की दो मूर्तियां है। बारभुजी गुफा की मूर्ति में चतुर्भुज यक्षी भी आमूर्तित है।

(७) सुपार्श्वनाथ

जीवनवृत्त

सुपार्श्वनाथ इस अवसर्पिणी के सातवें जिन है। वाराणसी के शासक प्रतिष्ठ (या सुप्रतिष्ठ) उनके पिता और पृथ्वी उनकी माता थी। राजपद के उपभोग के बाद सुपार्श्व ने दीक्षा ली और नौ माह की तपस्या के बाद वाराणसी के सहस्राम्रवन मे सिरीश (या प्रियंगु) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[7]

---

१ मित्रा, देबला, 'शासन देवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अ० २, पृ० १३०; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

२ त्रि०श०पु०च० ३.४.३८, ५१

३ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ७८-८१

४ जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ६०४

५ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० ६२

६ जैन, कामताप्रसाद, 'दि स्टैचू ऑव पद्मप्रभ ऐट ऊर्दमऊ', वा०अहि०, खं० १३, अं० ९, पृ०१९१-९२

७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ८२-८४

मूर्तियां

सुपार्श्व का लांछन स्वस्तिक है।[1] शिल्प मे सुपार्श्व का लांछन कुछ उदाहरणों में ही उत्कीर्ण है। मूर्तियों में सुपार्श्व की पहचान मुख्यतः एक, पांच या नौ सर्पफणो के शिरस्त्राण के आधार पर की गई है।[2] जैन ग्रन्थों में उल्लेख है कि गर्भकाल में सुपार्श्व की माता ने स्वप्न मे अपने को एक, पाच और नौ फणों वाले सर्पों को शय्या पर सोते हुए देखा था। **वास्तुविद्या** के अनुसार सुपार्श्व तीन या पांच सर्पफणों के छत्र से शोभित होंगे।[3] एक या नौ सर्पफणो के छत्रों वाली सुपार्श्व की स्वतन्त्र मूर्तिया नही मिली है। पर दिगंबर स्थलों की कुछ जिन मूर्तियों के परिकर में एक या नौ सर्पफणों के छत्रों वाली सुपार्श्व की लघु मूर्तियां अवश्य उत्कीर्ण है। स्वतन्त्र मूर्तियों में सुपार्श्व सदैव पाच सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं। सर्प की कुण्डलियां सामान्यतः चरणों तक प्रसारित है।

सुपार्श्व के यक्ष-यक्षी मातंग और शाता है। दिगंबर परम्परा मे यक्षी का नाम काली (या कालिका) है। दसवी शती ई० से पूर्व की सुपार्श्व मूर्ति नही मिली है। सुपार्श्व की मूर्तियों मे यक्ष-यक्षी का चित्रण ग्यारहवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। मूर्तियो मे पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण अनुपलब्ध है। पर कुछ उदाहरणों मे सुपार्श्व से सम्बद्ध करने के उद्देश्य से यक्ष-यक्षी के सिरों पर सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित किये गये है।

गुजरात-राजस्थान—१०८५ ई० को ध्यानमुद्रा में बनी एक मूर्ति कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की देवकुलिका ७ में है। मूलनायक के दोनो ओर दो कायोत्सर्ग और दो ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। ग्यारहवी शती ई० की कुछ मूर्तियां ओसिया की देवकुलिकाओ पर भी हैं। कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप मे ११५७ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है। इसमें पाच सर्पफणों के छत्र और स्वस्तिक लांछन दोनों उत्कीर्ण हैं, पर पारम्परिक यक्ष-यक्षी के स्थान पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित है। यक्ष-यक्षी के बाद दोनो ओर महाविद्या, रोहिणी और वैरोट्या की चतुर्भुज मूर्तियां है। परिकर में सरस्वती, प्रज्ञप्ति, वज्रांकुशी, सर्वास्त्रमहाज्वाला एवं वज्रशृंखला की भी मूर्तियां है।

कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ७ की मूर्ति (१२०२ ई०) में पांच सर्पफणो के छत्र और साथ ही लेख मे सुपार्श्व का नाम भी उत्कीर्ण है। बारहवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति विमलवसही की देवकुलिका १९ में है। सुपार्श्व के यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति और पद्मावती निरूपित हैं। पांच सर्पफणों के छत्र एवं स्वस्तिक लांछन से युक्त बारहवीं शती ई० की एक मूर्ति बड़ौदा संग्रहालय मे है।[4] दो मूर्तियां (१२ वी शती ई०) राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली (एल ५५-११) एवं राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (५६) मे भी है।

विश्लेषण—इस प्रकार स्पष्ट है कि गुजरात एवं राजस्थान से ग्यारहवी शती ई० के पूर्व की सुपार्श्व मूर्तियां नही मिली है। इस क्षेत्र में सुपार्श्व के साथ पांच सर्पफणों के छत्र का नियमित चित्रण हुआ है। साथ ही लेखों में सुपार्श्व के नामोल्लेख की परम्परा भी लोकप्रिय थी। कुछ उदाहरणों मे स्वस्तिक लाछन भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सदैव सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही है। केवल एक मूर्ति मे पार्श्वनाथ की यक्षी पद्मावती आमूर्तित है।

---

१ **त्रि०श०पु०च०** के अनुसार सुपार्श्व जन्म के समय स्वस्तिक चिह्न से युक्त थे। **तिलोयपण्णत्ति** मे सुपार्श्व का लाछन नन्द्यावर्त बताया गया है।

२ एकः पंच नव च फणाः, सुपार्श्वे सप्तमे जिने।
भट्टाचार्य, बी० सी०, **दि जैन आइकानोग्राफी**, लाहौर, १९३९, पृ० ६०।

३ त्रिपंचफणः सुपार्श्वः पार्श्वः सप्तनवस्तथा। **वास्तुविद्या** २२.२७

४ शाह, यू० पी०, 'जैन स्कल्पचर्स इन दि बड़ौदा म्यूजियम', **बु०ब०म्यू०**, खं० १, भाग २, पृ० २९-३०

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—सुपार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां इसी क्षेत्र में उत्कीर्ण हुई। पांच सर्पफणों के छत्र से शोभित और कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े सुपार्श्व की दसवीं शती ई० की एक मूर्ति शहडोल से मिली है।[1] दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां क्रमशः मथुरा संग्रहालय (बी० २६) एवं ग्यारसपुर के बजरामठ (बी० ११) में है। ध्यानमुद्रावाली एक मूर्ति बैजनाथ (कांगड़ा) से मिली है।[2] स्वस्तिक लांछन युक्त मूलनायक के दोनों ओर चन्द्रप्रभ एवं वासुपूज्यकी लांछन युक्त मूर्तियां उत्कीर्ण है। ग्यारहवीं शती ई० की ध्यानमुद्रा में ही एक मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ९३५) में है जिसके पीठिका-छोरों पर तीन सर्पफणो के छत्र वाले यक्ष-यक्षी निरूपित है।

देवगढ़ मे ग्यारहवीं शती ई० की पाच मूर्तियां है। सभी मे पाच सर्पफणों के छत्र से शोभित सुपार्श्व कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े है। स्वस्तिक लांछन केवल मन्दिर १२ की चहारदीवारी की एक मूर्ति में उत्कीर्ण है। इसी चहारदीवारी की एक अन्य मूर्ति मे सुपार्श्व जटाओं से युक्त है। यक्ष-यक्षी केवल एक ही मूर्ति (मन्दिर ४) मे निरूपित है। तीन सर्पफणों की छत्रावली से शोभित द्विभुज यक्ष-यक्षी के करो मे पुष्प एवं कलश प्रदर्शित है। मन्दिर १२ (उत्तरी चहारदीवारी) की एक मूर्ति के परिकर मे द्विभुज अम्बिका की दो मूर्तिया है। मन्दिर ४ और मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी के दो उदाहरणो मे परिकर मे चार जिन एवं दो घटधारी आकृतियां उत्कीर्ण है।

खजुराहो मे बारहवीं शती ई० की दो मूर्तिया (मन्दिर ५ एवं २८) है। दोनों मे सुपार्श्व पांच सर्पफणों वाले और कायोत्सर्ग-मुद्रा मे है। दूसरी मूर्ति मे पीठिका पर स्वस्तिक लांछन और शान्तिदेवी[3] उत्कीर्ण है। बायी ओर तीन अन्य चतुर्भुज देवियां भी निरूपित है। इनकी भुजाओ मे कुण्डलित पद्मनाल, पद्म, पद्म एवं फल प्रदर्शित है। मन्दिर ५ की मूर्ति में बायी ओर एक चतुर्भुज देवी आमूर्तित है जिसकी अवशिष्ट वाम भुजाओं में पद्म एवं फल है। ऊपर तीन छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण है।

विश्लेषण—उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश की मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र मे पाच सर्पफणो के छत्रो का प्रदर्शन नियमित था। सर्प की कुण्डलियां सामान्यतः घुटनो या चरणो तक प्रसारित है। सुपार्श्व अधिकांशतः कायोत्सर्ग-मुद्रा में निरूपित है। स्वस्तिक लांछन केवल कुछ ही उदाहरणो में है। यक्ष-यक्षी का चित्रण विशेष लोकप्रिय नही था। कुछ मूर्तियो में सुपार्श्व से सम्बन्ध प्रदर्शित करने के उद्देश्य से यक्ष-यक्षी के मस्तकों पर भी सर्पफणो के छत्र प्रदर्शित है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—बिहार एवं बंगाल से सुपार्श्व की मूर्तिया नहीं ज्ञात है। उड़ीसा मे बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में दो मूर्तिया है। बारभुजी गुफा की मूर्ति के शीर्षभाग मे सर्पफण नही प्रदर्शित है। पीठिका पर उत्कीर्ण लांछन भी सम्भवतः नन्द्यावर्त है।[4] नीचे यक्षी की मूर्ति उत्कीर्ण है। त्रिशूल गुफा की मूर्ति मे भी सर्पफण नही प्रदर्शित है। पर स्वस्तिक लांछन बना है।[5]

(८) चन्द्रप्रभ

जीवनवृत्त

चन्द्रप्रभ इस अवसर्पिणी के आठवें जिन है। चन्द्रपुरी के शासक महासेन उनके पिता और लक्ष्मणा (या लक्ष्मी देवी) उनकी माता थीं। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल मे माता की चन्द्रपान की इच्छा पूर्ण हुई थी और बालक की

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑब इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ५९.२८

२ वत्स, एम० एस०, 'ए नोट आन टू इमेजेज फ्राम बनीपार महाराज ऐण्ड बैजनाथ', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२९-३०, पृ० २२८

३ चतुर्भुज शान्तिदेवी अभयमुद्रा, कुण्डलित पद्मनाल, पुस्तक-पद्म एवं जलपात्र से युक्त है। शान्तिदेवी के सिर पर सर्पफण की छत्रावली भी है।

४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

५ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

प्रभा भी चन्द्रमा की तरह थी, इसी कारण बालक का नाम चन्द्रप्रभ रखा गया।[1] राजपद के उपभोग के बाद चन्द्रप्रभ ने दीक्षा ली और तीन माह की तपस्या के बाद चन्द्रपुरी के सहस्राम्र वन में प्रियंगु (या नाग) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर उनकी निर्वाण-स्थली है।[2]

मूर्तियां

चन्द्रप्रभ का लांछन शशि है और यक्ष-यक्षी विजय (या श्याम) एवं भृकुटि (या ज्वाला) हैं। मूर्तियों में पारम्परिक यक्ष-यक्षी का अंकन नहीं हुआ है। ल० नवीं शती ई० में चन्द्रप्रभ के लांछन और यक्ष-यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ। चन्द्रप्रभ की प्राचीनतम मूर्ति ल० चौथी शती ई० की है।[3] विदिशा से मिली इस ध्यानस्थ मूर्ति के लेख में चन्द्रप्रभ का नाम है। मूर्ति में लांछन नहीं है, यद्यपि चामरधर, सिंहासन और प्रभामण्डल उत्कीर्ण हैं। इस मूर्ति के बाद और नवीं शती ई० के पूर्व की एक भी मूर्ति नहीं मिली है।

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से केवल दो मूर्तियां मिली हैं जो ध्यानमुद्रा में हैं। ११५२ ई० की पहली मूर्ति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर में है।[4] दूसरी मूर्ति (१२०२ ई०) कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ८ में है। लेख में चन्द्रप्रभ का नाम उत्कीर्ण है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—नवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कौशाम्बी से मिली है और इलाहाबाद संग्रहालय (२९५) में सुरक्षित है (चित्र १७)।[5] पीठिका पर चन्द्र लांछन और द्विभुज यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की शशि लांछनयुक्त तीन मूर्तियां राज्य संग्रहालय, लखनऊ में हैं।[6] दो उदाहरणों में चन्द्रप्रभ ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। सिरोनी खुर्द (ललितपुर) की दसवीं शती ई० के तीसरे उदाहरण में जिन कायोत्सर्ग-मुद्रा में (जे ८८१) तथा द्विभुज यक्ष-यक्षी के साथ निरूपित हैं। चन्द्रप्रभ के स्कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं।

खजुराहो में दो ध्यानस्थ मूर्तियां हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति की मूर्ति में द्विभुज यक्ष-यक्षी और दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर ३२ की दूसरी मूर्ति (१२वीं शती ई०) में भी यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। चामरधरों की दोनों भुजाओं में चामर प्रदर्शित हैं। परिकर में तीन जिन एवं ६ उड्डीयमान मालाधर चित्रित हैं।

देवगढ़ में दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की लांछन युक्त नौ चन्द्रप्रभ मूर्तियां हैं (चित्र १५,१६)। छह उदाहरणों में चन्द्रप्रभ ध्यानमुद्रा में आसीन हैं। सात उदाहरणों में यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। चार उदाहरणों[7] में द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। मन्दिर १ की मूर्ति (११वीं शती ई०) में द्विभुज यक्ष गोमुख है। स्मरणीय है कि गोमुख ऋषभनाथ के यक्ष हैं। मन्दिर २१ की मूर्ति (११वीं शती ई०) में यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं। मन्दिर २० की मूर्ति (११वीं शती ई०) में सिंहासन के दोनों छोरों पर चतुर्भुज यक्षी ही आमूर्तित है। परिकर में चार जिन आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। मन्दिर ४ और १२ (प्रदक्षिणा पथ) की मूर्तियों में भी चार छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर २१ की मूर्ति में चन्द्रप्रभ जटाओं से युक्त हैं। परिकर में आठ जिन आकृतियां भी हैं। मन्दिर १ और १२ (चहारदीवारी) की मूर्तियों में क्रमशः ६ और ४ जिन आकृतियां बनी हैं।

विश्लेषण—ज्ञातव्य है कि चन्द्रप्रभ की सर्वाधिक मूर्तियां उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में ही उत्कीर्ण हुईं। इस क्षेत्र में शशि लांछन का चित्रण नियमित था। यक्ष-यक्षी का चित्रण भी लोकप्रिय था। कुछ उदाहरणों में अपारम्परिक किन्तु स्वतन्त्र लक्षणोंवाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।

---

१ त्रि०श०पु०च० ३.६.४९ २ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ८५–८७

३ अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', ज०ओ०इं०, खं० १८, अं० ३, पृ० २५३

४ इण्डियन आर्किअलाजी—ए रिव्यू, १९५७–५८, पृ० ७६ ५ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १४२–४३

६ जे ८८०, जे ८८१, जी ११३ ७ मन्दिर १, १२, साहू जैन संग्रहालय

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—अलुआरा (पटना संग्रहालय १०६९५)[1] एवं सोनगिरि[2] से चन्द्रप्रभ की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां (११ वीं शती ई०) मिली हैं। ग्यारहवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में भी है।[3] इसमें पीठिका पर यक्ष-यक्षी और परिकर में २३ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में भी चन्द्रप्रभ की दो ध्यानस्थ मूर्तियां है।[4] बारभुजी गुफा की मूर्ति में द्वादशभुज यक्षी भी आमूर्तित है। कोणार्क (उड़ीसा) के निकटवर्ती ककतपुर से प्राप्त चन्द्रप्रभ की कायोत्सर्ग में खड़ी एक धातु मूर्ति (१२ वीं शती ई०) आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता में है।[5]

(९) सुविधिनाथ या पुष्पदन्त

जीवनवृत्त

सुविधिनाथ (या पुष्पदन्त) इस अवसर्पिणी के नवें जिन है। काकन्दी नगर के शासक सुग्रीव उनके पिता और रामादेवी उनकी माता थी। जैन परम्परा में उल्लेख है कि गर्भकाल में माता सब विधियों में कुशल रही, और उन्हें पुष्प का दोहद उत्पन्न हुआ, इसी कारण बालक का नाम क्रमशः सुविधि और पुष्पदन्त रखा गया।[6] श्वेतांबर परम्परा में सुविधि और पुष्पदन्त दोनों नामों के उल्लेख है, पर दिगबर परम्परा में केवल पुष्पदन्त नाम ही प्राप्त होता है। राजपद के उपभोग के बाद सुविधि ने दीक्षा ली और चार माह की तपस्या के बाद काकन्दी के सहस्राम्र वन में मालूर (या माली या अक्ष) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[7]

मूर्तिया

सुविधि का लाछन मकर है और यक्ष-यक्षी अजित (या जय) एवं सुतारा (या चण्डालिका) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम महाकाली है। मूर्त अकनों में सुविधि के यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित हुए। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में ही यक्षी निरूपित है।

पुष्पदन्त की प्राचीनतम मूर्ति ल० चौथी शती ई० की है।[8] विदिशा से मिली इस मूर्ति में पुष्पदन्त ध्यानमुद्रा में विराजमान है। लेख मे पुष्पदन्त का नाम उत्कीर्ण है। भामण्डल और चामरधर भी चित्रित है। इस मूर्ति और ग्यारहवीं शती ई० के बीच की कोई मूर्ति ज्ञात नहीं है। मकर लाछन युक्त दो ध्यानस्थ मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं मे है।[9] ११५१ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति छतरपुर से मिली है।[10] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ९ (१२०२ ई०) मे भी एक मूर्ति है। इस मूर्ति के लेख में सुविधि का नाम उत्कीर्ण है। परिकर मे दो जिन मूर्तियां भी बनी है।

(१०) शीतलनाथ

जीवनवृत्त

शीतलनाथ इस अवसर्पिणी के दसवें जिन है। भद्दिलपुर के महाराज दृढरथ उनके पिता और नन्दादेवी उनकी माता थी। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि गर्भकाल मे नन्दा देवी के स्पर्श से एक बार दृढरथ के शरीर की भयंकर पीड़ा

१ प्रसाद, एच० के, पू०नि, पृ० २८७
२ बा०अहि०, खं० १२, अं० ९
३ स्ट०जै०आ०, फलक १६, चित्र ४४
४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१
५ जै०क०स्था०, खं० २, पृ० २७७
६ त्रि०श०पु०च० ३.७.४९–५०
७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ८८–९०
८ अग्रवाल, आर० सी०, पू०नि०,पृ० २५२–५३
९ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१
१० शास्त्री, हीरानन्द, 'सम रिसेन्टली ऐडेड स्कल्पचर्स इन दि प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ', मे०आ०स०इं०, अं० ११, पृ० १४

शान्त हुई थी, इसी कारण बालक का नाम शीतलनाथ रखा गया।[1] राजपद के उपभोग के बाद उन्होंने दीक्षा ली और तीन माह की तपस्या के बाद सहस्राम्र वन में प्लक्ष (पीपल) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[2]

मूर्तियां

शीतल का लांछन श्रीवत्स है और यक्ष-यक्षी ब्रह्म (या ब्रह्मा) एवं अशोका (या गोमेधिका) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी मानवी है। मूर्त अंकनों मे यक्ष-यक्षी का चित्रण दुर्लभ है। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी निरूपित है। शीतल की दसवी शती ई० से पहले की एक भी मूर्ति नही मिली है।

बारभुजी गुफा में श्रीवत्स-लांछन-युक्त एक ध्यानस्थ मूर्ति है।[3] दसवी-ग्यारहवी शती ई० की दो मूर्तियां आरंग (म० प्र०) से मिली हैं।[4] त्रिपुरी (जबलपुर) से प्राप्त एक मूर्ति भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता मे है।[5] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका १० में भी एक मूर्ति (१२०२ ई०) है। मूर्ति के लेख मे शीतलनाथ का नाम उत्कीर्ण है।

(११) श्रेयांशनाथ

जीवनवृत्त

श्रेयांशनाथ इस अवसर्पिणी के ग्यारहवें जिन हैं। सिंहपुरी के शासक विष्णु उनके पिता और विष्णुदेवी (या वेणुदेवी) उनकी माता थी। जैन परम्परा के अनुसार बालक के जन्म से राजपरिवार और सम्पूर्ण राष्ट्र का श्रेय-कल्याण हुआ, इसी कारण बालक का नाम श्रेयांश रखा गया।[6] राजपद के उपभोग के बाद सहस्राम्र वन मे श्रेयांश ने अशोक वृक्ष के नीचे दीक्षा ली और दो मास की तपस्या के बाद सिंहपुर के उद्यान में तिन्दुक (या पलाश) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[7]

मूर्तियां

श्रेयांश का लांछन गेंडा (खड्गी) है और यक्ष-यक्षी ईश्वर (या यक्षराज) एवं मानवी है। दिगंबर परम्परा मे यक्षी गौरी है। मूर्तियों मे यक्ष-यक्षी का निरूपण नही हुआ है। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी निरूपित है। ग्यारहवी शती ई० से पहले की श्रेयांश की एक भी मूर्ति नहीं मिला है। ल० ग्यारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति पक्बीरा (पुरुलिया) से मिली है।[8] दो मूर्तिया बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओ मे है।[9] एक मूर्ति इन्दौर संग्रहालय मे है।[10] लांछन सभी मे उत्कीर्ण है। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ११ मे श्रेयांश की मूर्ति का सिंहासन (१२०२ ई०) सुरक्षित है। इसकी पीठिका पर श्रेयांश का नाम उत्कीर्ण है।

(१२) वासुपूज्य

जीवनवृत्त

वासुपूज्य इस अवसर्पिणी के बारहवें जिन है। चम्पानगरी के महाराज वसुपूज्य उनके पिता और जया (या विजया) उनकी माता थी। वसुपूज्य का पुत्र होने के कारण ही इनका नाम वासुपूज्य रखा गया। जैन परम्परा मे

---

१ त्रि०श०पु०च० ३.८.४७ २ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ९१-९३ ३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

४ जैन, बालचन्द्र, 'महाकौशल का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त**, वर्ष १७, अं० ३, पृ० १३२

५ एण्डरसन, जे०, पू०नि०, पृ० २०६

६ त्रि०श०पु०च० ४.१.८६ ७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ९४-९८

८ बनर्जी, ए०, 'टू जैन इमेजेज', **ज०बि०उ०रि०सो०**, खं० २८, भाग १, पृ० ४४

९ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२

१० दिस्कालकर, डी० बी०, **दि इन्दौर म्यूजियम**, इन्दौर, १९४२, पृ० ५

इनके अविवाहित-रूप में दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख है। इन्होंने राजपद भी नही ग्रहण किया था। दीक्षा के बाद एक माह की तपस्या के उपरान्त इन्हें चम्पा के उद्यान में पाटल वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त हुआ। चम्पा इनकी निर्वाण-स्थली भी है।[1]

मूर्तियां

वासुपूज्य का लाछन महिष है और यक्ष-यक्षी कुमार एवं चन्द्रा (या चण्डा या अजिता) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम गान्धारी है। ल० दसवी शती ई० मे मूर्तियों में वासुपूज्य के साथ लाछन और यक्ष-यक्षी का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ, किन्तु यक्ष-यक्षी पारम्परिक नही थे।

ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति शहडोल (म० प्र०) से मिली है (चित्र १७)।[2] इसकी पीठिका पर महिष लाछन और यक्ष-यक्षी, तथा परिकर में २३ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण है। दो मूर्तिया बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं मे है।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी भी आमूर्तित है। विमलवसही की देवकुलिका ४१ मे ११८८ ई० की एक मूर्ति है जिसके लेख मे वासुपूज्य का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी के रूप मे सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित है। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका १२ मे भी एक मूर्ति है। इसके १२०२ ई० के लेख मे वासुपूज्य का नाम उत्कीर्ण है। मूर्ति मे चामरधरो के स्थान पर दो खड्गासन जिन मूर्तियां बनी है।

(१३) विमलनाथ

जीवनवृत्त

विमलनाथ इस अवसर्पिणी के तेरहवें जिन हैं। कंपिलपुर के शासक कृतवर्मा उनके पिता और श्यामा उनकी माता थी। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल मे माता तन-मन मे निर्मल बनी रही, इसी कारण बालक का नाम विमलनाथ रखा गया।[4] राजपद के उपभोग के बाद विमल ने सहस्राम्रवन मे दीक्षा ली और दो वर्षो की तपस्या के बाद कपिलपुर (सहेतुक वन) के उद्यान मे जम्बू वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[5]

मूर्तियां

विमल का लांछन वराह है और यक्ष-यक्षी षण्मुख एव विदिता (या वैरोटया) है। शिल्प मे विमल के पारम्परिक यक्ष-यक्षी कभी नही निरूपित हुए। नवी शती ई० में मूर्तियों मे जिन के लाछन और ग्यारहवी शती ई० में यक्ष-यक्षी का चित्रण प्रारम्भ हुआ।

नवी शती ई० की एक मूर्ति वाराणसी से मिली है जो सारनाथ संग्रहालय (२३६) मे सुरक्षित है (चित्र १८)।[6] विमल कायोत्सर्ग-मुद्रा मे साधारण पीठिका पर निर्वस्त्र खडे है। पीठिका पर लाछन उत्कीर्ण है। पार्श्ववर्ती चामरधरो के अतिरिक्त अन्य कोई सहायक आकृति नहीं है। १००९ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे है। बटेश्वर (आगरा) से मिली इस मूर्ति में विमल निर्वस्त्र है। सिंहासन पर लांछन और सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। यक्ष-यक्षी के करो मे अभयमुद्रा और घट प्रदर्शित हैं। अलुआरा से प्राप्त ल० ग्यारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति पटना संग्रहालय (१०६७४) मे सुरक्षित है।[7] लाछन युक्त दो मूर्तिया बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं मे है।[8]

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ९९–१०१
२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ५९.३४, १०२.६
३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१
४ त्रि०श०पु०च० ४.३.४८
५ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १०२–०४
६ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ७.८९
७ प्रसाद, एच०के०, पू०नि०, पृ० २८८
८ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

पहली मूर्ति में अष्टभुज यक्षी भी आमूर्तित है। विमलवसही की देवकुलिका ५० मे एक मूर्ति है जिसके ११८८ ई० के लेख में विमल का नाम है तथा पीठिका के बायें छोर पर यक्षी अम्बिका निरूपित है।

(१४) अनन्तनाथ

जीवनवृत्त

अनन्तनाथ इस अवसर्पिणी के चौदहवें जिन है। अयोध्या के महाराज सिंहसेन उनके पिता और सुयशा (या सर्वयशा) उनकी माता थीं। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि अनन्त के गर्भकाल में पिता ने भयंकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी, इसी कारण बालक का नाम अनन्त रखा गया।[1] राजपद के उपभोग के बाद अनन्त ने प्रव्रज्या ग्रहण की और तीन वर्षों की तपस्या के बाद अयोध्या के सहस्राम्र वन मे अशोक (या पीपल) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[2]

मूर्तियां

श्वेतांबर परम्परा मे अनन्त का लांछन श्येन पक्षी और दिगंबर परम्परा में रीछ बताया गया है।[3] अनन्त के यक्ष-यक्षी पाताल एवं अंकुशा (या वरभृता) है। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम अनन्तमति है। मूर्तियों मे पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नही हुआ है। अनन्त की भी ग्यारहवीं शती ई० से पूर्व की कोई मूर्ति नही मिली है। ध्यानस्थ अनन्त की एक मूर्ति बारभुजी गुफा मे है।[4] मूर्ति के नीचे अष्टभुज यक्षी भी निरूपित है। एक ध्यानस्थ मूर्ति (१२ वी शती ई०) विमलवसही की देवकुलिका ३३ मे है जिसमें यक्ष-यक्षी रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं।

(१५) धर्मनाथ

जीवनवृत्त

धर्मनाथ इस अवसर्पिणी के पन्द्रहवें जिन हैं। रत्नपुर के महाराज भानु उनके पिता और सुव्रता उनकी माता थी। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल में माता को धर्मसाधन का दोहद उत्पन्न हुआ, इसी कारण बालक का नाम धर्मनाथ रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद धर्म ने दीक्षा ग्रहण की और दो वर्षों की तपस्या के बाद रत्नपुर के उद्यान में दधिपर्ण वृक्ष के नीचे उन्होंने केवल-ज्ञान प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[5]

मूर्तियां

धर्मनाथ का लांछन वज्र है और यक्ष-यक्षी किन्नर एवं कन्दर्पा (या मानसी) है। मूर्त अंकनों में यक्ष-यक्षी का अंकन नही हुआ है। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति मे नीचे यक्षो भी आमूर्तित है। ग्यारहवीं शती ई० से पहले की धर्मनाथ की कोई मूर्ति नही मिली है। वज्र-लांछन-युक्त दो ध्यानस्थ मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं मे हैं।[6] बारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति इन्दौर संग्रहालय मे है।[7] विमलवसही की देवकुलिका १ की मूर्ति (१२वी शती ई०) के लेख मे धर्मनाथ का नाम उत्कीर्ण है। मूर्ति मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।

---

१ त्रि०श०पु०च० ४.४.४७
२ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १०५–०७
३ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ७०
४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१
५ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १०८–१३
६ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१
७ दिस्कालकर, डी० बी०,पू०नि०, पृ० ५

(१६) शान्तिनाथ

जीवनवृत्त

शान्तिनाथ इस अवसर्पिणी के सोलहवें जिन हैं। हस्तिनापुर के शासक विश्वसेन उनके पिता और अचिरा उनकी माता थीं। जैन परम्परा में उल्लेख है कि शान्तिनाथ के गर्भ मे आने के पूर्व हस्तिनापुर नगर में महामारी का रोग फैला था, पर इनके गर्भ मे आते ही महामारी का प्रकोप शान्त हो गया। इसी कारण बालक का नाम शान्तिनाथ रखा गया। शान्ति ने २५ हजार वर्षों तक चक्रवर्ती पद से सम्पूर्ण भारत पर शासन किया और उसके बाद दीक्षा ली। एक वर्ष की कठोर तपस्या के बाद शान्ति को हस्तिनापुर के सहस्राम्र उद्यान म नन्दिवृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त हुआ। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[1]

मूर्तियां

शान्ति का लांछन मृग है और यक्ष-यक्षी गरुड (या वाराह) एव निर्वाणी (या धारिणी) है। दिगंबर परम्परा मे यक्षी का नाम महामानसी है। मूर्तिया मे शान्ति के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का अंकन नही हुआ है। ल० सातवी शती ई० से पूर्व की कोई शान्ति मूर्ति नही मिली हैं। शान्ति की मूर्तियों मे ल० आठवीं शती ई० मे लांछन और यक्ष-यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हुआ।

गुजरात-राजस्थान—ल० सातवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति खेड्ब्रह्मा से मिली है।[2] इसमे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। सिंहासन पर धर्मचक्र के दोनों ओर दो मृग उत्कीर्ण हैं जिन्हे यू० पी० शाह ने जिन के लांछन (मृग) का सूचक माना है।[3] सातवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति धांक गुफा मे भी है।[4] इसमे सिंहासन के मध्य में मृग लांछन और परिकर में त्रिछत्र एवं चामरधर सेवक आमूर्तित हैं।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका १ मे ग्यारहवी शती ई० की एक मूर्ति है। मूर्ति के लेख में शान्तिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। मूलनायक के दोनों ओर सुपार्श्व एव पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तियां है। परिकर मे २४ छोटी जिन आकृतियां भी हैं। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप में ११९९–२० ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है (चित्र २०)। पीठिका पर मृग लांछन और लेख में शान्तिनाथ का नाम है। यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण है। परिकर मे आठ चतुर्भुज देवियां निरूपित हैं। इनमें वज्रांकुशी, मानवी, सर्वास्त्रमहाज्वाला, अच्छुप्ता एवं महामानसी महाविद्याओं और शान्तिदेवी की पहचान सम्भव है। ११३८ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (४६८) में है। लेख में शान्तिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। ११६८ ई० की चाहमान काल की एक मनोज्ञ कांस्य मूर्ति विक्टोरिया ऐण्ड अलबर्ट संग्रहालय, लन्दन में है।[5] यहां शान्ति अलंकृत आसन पर ध्यानमुद्रा मे बैठे हैं।

---

१ हस्तीमल, **पू०नि०**, पृ० ११४–१८

२ शाह, यू० पी०, 'ऐन ओल्ड जैन इमेज फ्राम खेड्ब्रह्मा (नार्थ गुजरात)', **ज०ओ०इं०**, खं० १०, अं० १, पृ० ६१–६३

३ यह पहचान तर्कसंगत नही है क्योंकि धर्मचक्र के दोनो ओर दो मृगों का उत्कीर्णन गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर जिन मूर्तियो की एक सामान्य विशेषता थी। अतः यहां मृगों को लांछन का सूचक मानना उचित नही होगा।

४ संकलिया, एच० डी०, 'दि अर्लियस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़', **ज०रा०ए०सो०**, जुलाई १९३८, पृ० ४२८–२९; **स्ट०जै०आ०**, पृ० १७

५ **जै०क०स्था०**, खं० ३, पृ० ५६०–६१

विमलवसही की देवकुलिकाओं (१२, २४, ३०) मे बारहवीं शती ई० की तीन मूर्तियां हैं। सभी के लेखों में शान्तिनाथ का नाम है। सभी उदाहरणों में यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। लूणवसही की देवकुलिका १४ की मूर्ति (१२३६ ई०) में भी सर्वानुभूति एवं अम्बिका का ही अंकन है। शान्तिनाथ की एक चौवीसी (१५१० ई०) भारत कला भवन, वाराणसी (२१७३३) में है (चित्र २१)।

विश्लेषण—इस प्रकार स्पष्ट है कि कुछ उदाहरणों (कुम्भारिया, थांक) के अतिरिक्त इस क्षेत्र में लांछन नहीं उत्कीर्ण किया गया है। पर पीठिका-लेखों में शान्ति का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सभी उदाहरणो में सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—ल० आठवी शतीई० की ध्यानमुद्रा मे एक मूर्ति मथुरा से मिली है जो सम्प्रति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (बी ७५) में है। इसमें धर्मचक्र के दोनों ओर मृग लांछन की दो आकृतियां उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। परिकर में ग्रहों की भी आठ मूर्तियां बनी हैं। इनमें केतु नहीं है। कौशाम्बी से मिली ल०नवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति इलाहाबाद संग्रहालय (५३५) में है।[1] इसमें धर्मचक्र के दोनों ओर मृग लाछन उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी नहीं बने है। दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (एम ५४) ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के मण्डप की दक्षिणी रथिका मे सुरक्षित है। इसकी पीठिका पर मृग लांछन और चतुर्भुज यक्ष-यक्षी, तथा परिकर में चार जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ल० दसवी शती ई० की शान्तिनाथ की एक कायोत्सर्ग मूर्ति दुदही (ललितपुर) से मिली है।[2] इसमे जिन निर्वस्त्र हैं और उनका मृग लांछन धर्मचक्र के दोनो ओर उत्कीर्ण है।

देवगढ़ में नवी से बारहवी शती ई० के मध्य की मृग-लांछन-युक्त ६ मूर्तियां हैं।[3] पाच उदाहरणों मे शान्ति कायोत्सर्ग मे निर्वस्त्र खडे है। मन्दिर १२ के गर्भगृह की नवी शती ई० की विशाल मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरणो में यक्ष-यक्षी निरूपित है। तीन उदाहरणों[4] में द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की दो मूर्तियों में यक्षी चतुर्भुजा है पर यक्ष केवल एक में ही चतुर्भुज है। मन्दिर १२ (प्रदक्षिणापथ) एवं मन्दिर ४ की दो मूर्तियों (११वी शती ई०) में शान्ति के स्कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं। मन्दिर १२ (गर्भगृह) एवं साहू जैन संग्रहालय की मूर्तियों मे नवग्रहों की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। साहू जैन संग्रहालय की मूर्ति में ग्रहों की मूर्तियां ध्यानमुद्रा में बनी है। यहां केतु स्त्री-रूप में निरूपित है। मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की मूर्ति के परिकर में चार छोटी जिन आकृतियां एवं चार उड्डीयमान मालाधर आमूर्तित हैं। मन्दिर ४ की मूर्ति के परिकर में चार जिन एवं दो घटधारी आकृतियां बनी हैं। मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की एक अन्य मूर्ति के परिकर में दस और प्रदक्षिणा-पथ की मूर्ति में दो जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो में ग्यारहवीं-बारहवीं शतीई० की मृग-लांछन-युक्त चार मूर्तियां हैं। दो उदाहरणों में शान्ति कायोत्सर्ग में खडे है। स्थानीय संग्रहालय की एक मूर्ति (के ३९) में चामरधरो के स्थान पर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १ की विशाल कायोत्सर्ग मूर्ति (१०२८ ई०) में चामरधरों के समीप पार्श्वनाथ की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं। परिकर में २४ छोटी जिन मूर्तियां भी बनी हैं। सिंहासन-छोरों पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी है। स्थानीय संग्रहालय की एक ध्यानस्थ मूर्ति (के ६३) में स्कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित है। पीठिका-छोरों पर द्विभुज यक्ष-यक्षी एवं परिकर में छह जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। स्थानीय संग्रहालय की एक मूर्ति (के ३९) में यक्ष-यक्षी नही हैं, पर पार्श्वों में दो जिन मूर्तियां बनी

---

१ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १४३

२ ब्रुन, क्लाज, 'जैन तीर्थंज इन मध्यदेश : दुदही', *जैन युग*, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० ३२–३३

३ मन्दिर ८ के बरामदे में शान्ति की मूर्ति का एक सिंहासन भी सुरक्षित है। इसमें यक्ष चतुर्भुज है और यक्षी के रूप में द्विभुज अम्बिका निरूपित है। यक्ष के करों में गदा, परशु, पद्म एवं फल हैं।

४ साहू जैन संग्रहालय, मन्दिर १२ (प्रदक्षिणापथ), मन्दिर ४

हैं। जार्डिन संग्रहालय की एक मूर्ति में द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है, पर यक्षी की पहचान सम्भव नहीं है। परिकर में चार जिन मूर्तियां भी बनी हैं।

पभोसा की मृग-लांछन-युक्त एक ध्यानस्थ मूर्ति (११ वीं शती ई०) इलाहाबाद संग्रहालय (५३३) में है (चित्र १९)।[१] मूर्ति में यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित है। पार्श्ववर्ती चामरधरों के स्थान पर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां बनी है। परिकर में दो छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण है। सामान्य मालाधर युगलों के अतिरिक्त ६ अन्य मालाधर भी चित्रित है। पधावली एवं अहाड़ (११८० ई०) से दो कायोत्सर्ग मूर्तिया मिली हैं। एक मूर्ति (११४६ ई०) धुबेला संग्रहालय में भी है। यहां लेख में शान्ति का नाम उत्कीर्ण है।[२] ११७९ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति बजरंगगढ़ (गुना) से मिली है।[३] इसकी पीठिका पर यक्ष-यक्षी भी निरूपित है। १०५३ ई० एवं ११४७ ई० की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां मदनपुर से प्राप्त हुई हैं।[४]

विश्लेषण—उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश से प्राप्त मूर्तियो मे शान्तिनाथ अधिकाशतः कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं। इस क्षेत्र की जिन मूर्तियों में मृग लांछन का नियमित अंकन हुआ है। कुछ उदाहरणों मे लेख मे भी शान्ति का नाम उत्कीर्ण है। इस क्षेत्र मे धर्मचक्र के दोनों ओर मृग लांछन के चित्रण की परम्परा विशेष लोकप्रिय थी। यक्ष-यक्षी अधिकांशतः सर्वानुभूति एवं अम्बिका, तथा शेष में सामान्य लक्षणों वाले है। कुछ उदाहरणो मे शान्ति के साथ जटाएं भी प्रदर्शित है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—ल० नवी शती ई० की मृग-लांछन-युक्त एक मूर्ति राजपारा (मिदनापुर) से मिली है।[५] चरंपा से मिली ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति उड़ीसा राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर मे सुरक्षित है।[६] पीठिका पर यक्ष-यक्षी आमूर्तित है। पकबीरा (पुरुलिया) से ग्यारहवी शती ई० की मृग-लाछन-युक्त एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है।[७] परिकर में अजमुख नैगमेषी एवं अंजलि-मुद्रा में चार स्त्रिया आमूर्तित है। सिंहासन के नीचे कलश और शिवलिंग बने है। परिकर की नवग्रहों की मूर्तियां खण्डित है। छितगिरि (अम्बिकानगर) के मन्दिर में भी शान्ति की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है। परिकर मे चार छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण है। उजेनी (बर्दवान), अलुआरा एवं मानभूम से भी शान्ति की ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की कायोत्सर्ग मूर्तिया मिली है।[८] दो ध्यानस्थ मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओ मे है।[९] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी भी निरूपित है।

विश्लेषण—अध्ययन से स्पष्ट है कि बिहार, उडीसा एवं बगाल की मूर्तियों में भी शान्ति अधिकांशतः कायोत्सर्ग मे ही निरूपित है। मृग लांछन का चित्रण नियमित था, पर यक्ष-यक्षी का अंकन लोकप्रिय नही था।

---

१ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १५८
२ जैन, बालचन्द्र, 'धुबेला संग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० ४, पृ० २४४–४५
३ जैन, नीरज, 'बजरंगगढ़ का विशद जिनालय', **अनेकान्त**, वर्ष १८, अं० २, पृ० ६५–६६
४ कोठिया, दरबारीलाल, 'हमारा प्राचीन विस्मृत वैभव', **अनेकान्त**, वर्ष १४, अगस्त १९५६, पृ० ३१
५ गुप्ता, पी०सी० दास, 'आर्किअलाजिकल डिस्कवरी इन वेस्ट बंगाल', **बुलेटिन ऑव दि डाइरेक्टरेट ऑव आर्किअलाजी, वेस्ट बंगाल**, अं० १, १९६३, पृ० १२
६ दश, एम०पी०, पू०नि०, पृ० ५२
७ डे, सुधीन, 'टू यूनीक इन्स्क्राइब्ड जैन स्कल्पचर्स', **जैन जर्नल**, खं० ५, अं० १, पृ० २४–२६
८ गुप्ता, पी०एल०, पू०नि०, पृ० ९०; एण्डरसन, जे०, पू०नि०, पृ० २०१–०२
९ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

जीवनदृश्य

शान्ति के जीवनदृश्यों के चित्रण कुम्मारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरो (११वी शती ई०) तथा विमलवसही की देवकुलिका १२ (१२वीं शती ई०) के वितानों पर मिलते हैं।[1]

कुम्मारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के दूसरे वितान पर शान्ति के जीवनदृश्य हैं। शान्ति के पूर्वजन्म की एक कथा के चित्रण के आधार पर ही सम्पूर्ण दृश्यावली की पहचान की गई है। **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** मे उल्लेख है कि पूर्वभव मे शान्ति मेघरथ महाराज थे।[2] एक बार ईशानेन्द्र देवसभा में मेघरथ के धर्माचरणो की प्रशंसा कर रहे थे। इस पर सुरूप नाम के एक देवता ने मेघरथ की परीक्षा लेने का निश्चय किया। पृथ्वी पर आते समय सुरूप ने एक बाज और कपोत को लड़ते हुए देखा। परीक्षा लेने के उद्देश्य से सुरूप कपोत के शरीर मे प्रविष्ट हो गया। कपोत रक्षा के लिए आर्तनाद करता हुआ मेघरथ की गोद मे आ गिरा। मेघरथ ने उसे प्राण रक्षा का वचन दिया। कुछ देर बाद बाज भी वहां पहुंचा और उसने मेघरथ से कहा कि वह क्षुधा से व्याकुल है, इसलिए उसके आहार (कपोत) को वे लौटा दें। पर मेघरथ ने बाज से कपोत के स्थान पर कुछ और ग्रहण करने को कहा। इस पर बाज ने कहा कि यदि उसे कपोत के भार के बराबर मनुष्य का मांस मिल जाय तो उससे वह अपनी क्षुधा शान्त कर लेगा। मेघरथ ने तत्क्षण एक तराजू मंगवाया और अपने शरीर से मांस काट कर उस पर रखने लगे। पर कपोत के भीतर के देवता ने धीरे-धीरे अपना भार बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। अन्त में मेघरथ स्वयं तराजू पर बैठ गये। इस प्रकार मेघरथ को किसी भी प्रकार धर्म से च्युत होने न देखकर सुरूप देव ने अन्त में अपने को प्रकट किया और मेघरथ को आशीर्वाद दिया।

शान्तिनाथ मन्दिर के दृश्य तीन आयतों मे विभक्त हैं। बाहर से प्रथम आयत मे पश्चिम की ओर सैनिकों एवं संगीतज्ञों से वेष्टित मेघरथ एक ऊंचे आसन पर विराजमान हैं। आगे एक तराजू बनी है जिस पर एक ओर कपोत और दूसरी ओर मेघरथ बैठे हैं। दक्षिण की ओर मेघरथ जैन आचार्यों के उपदेशों का श्रवण कर रहे हैं। पूर्व की ओर सम्भवतः मेघरथ की कायोत्सर्ग में तपस्यारत मूर्ति है। आगे वार्तालाप की मुद्रा मे शान्ति के माता-पिता की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। समीप ही माता की विश्रामरत मूर्ति एवं १४ शुभ स्वप्न भी अंकित हैं। दूसरे आयत मे पूर्व की ओर शान्ति की माता शिशु के साथ लेटी हैं। आगे नैगमेषी द्वारा शिशु को मेरु पर्वत पर ले जाने का दृश्य है। दक्षिण की ओर इन्द्र की गोद में बैठे शिशु (शान्ति) के जन्म-अभिषेक का दृश्य उत्कीर्ण है। इन्द्र के पार्श्वों मे चामरधर एवं कलशधारी सेवक चित्रित हैं। तीसरे आयत में चक्रवर्ती पद के कुछ लक्षण, यथा नवनिधि के सूचक नौ घट, खड्ग, छत्र, चक्र आदि उत्कीर्ण हैं। आगे कई आकृतियां है जिनके समीप चक्रवर्ती शान्ति ऊंचे आसन पर विराजमान हैं। समीप की आकृतियां सम्भवतः अधीनस्थ शासकों की सूचक हैं। दाहिनी ओर शान्ति का समवसरण उत्कीर्ण है जिसमें ऊपर की ओर शान्ति की ध्यानस्थ मूर्ति है।

कुम्मारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के ५वें वितान पर भी शान्ति के जीवनदृश्य अंकित हैं (चित्र २२ दक्षिणार्ध)। सम्पूर्ण दृश्यावली तीन आयतो मे विभक्त है। बाहर से प्रथम आयत में दक्षिण की ओर शान्ति के माता-पिता की वार्तालाप में संलग्न आकृतियां हैं। पश्चिम की ओर (बायें से) शान्ति की माता शय्या पर लेटी है। आगे १४ मांगलिक स्वप्न और नवजात शिशु के साथ माता की विश्रामरत मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। समीप ही सेविकाओं एवं नैगमेषी की भी मूर्तियां हैं। नीचे 'श्री अचिरादेवी-प्रसूतिगृह-शान्तिनाथ' उत्कीर्ण है। उत्तर-पूर्व के कोने पर शान्ति के जन्माभिषेक का दृश्य है, जिसमें एक शिशु इन्द्र की गोद में बैठा अंकित है। इन्द्र के दोनों पार्श्वों में कलशधारी आकृतियां खड़ी हैं। आगे चक्रवर्ती शान्ति एक ऊँचे आसन पर विराजमान है। नीचे 'शान्तिनाथ-चक्रवर्ती-पद' लिखा है। दक्षिणी-पूर्वी कोने पर शान्ति की गज और अश्व पर आरूढ कई मूर्तियां हैं जिनके नीचे शान्तिनाथ का नाम भी उत्कीर्ण है। ये आकृतियां

---

१ लूणवसही की देवकुलिका १४ की शान्तिनाथ मूर्ति के आधार पर वितान के दृश्यों की भी सम्भावित पहचान शान्ति से की गई है : जयन्तविजय, मुनिश्री, **होली आबू**, भावनगर, १९५४, पृ० १२२–२३

२ **त्रि०श०पु०च०**, खं० ३, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज १०८, बड़ोदा, १९४९, पृ० २९१–९३

सम्भवतः चक्रवर्ती पद प्राप्त करने के पूर्व विभिन्न युद्धों के लिए प्रस्थान करते हुए शान्ति के अंकन हैं। उत्तर की ओर शान्ति की दीक्षा का दृश्य है। ध्यानमुद्रा में विराजमान शान्ति केशों का लुंचन कर रहे हैं। दाहिनी ओर इन्द्र शान्ति के लुंचित केशों को एक पात्र में संचित कर रहे हैं। आगे शान्ति की कायोत्सर्ग में खड़ी एवं ध्यानमुद्रा में आसीन मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां उनकी तपस्या और कैवल्य प्राप्ति को प्रदर्शित करती है। उत्तर की ओर शान्ति का समवसरण बना है जिसके ऊपर शान्ति की ध्यानस्थ मूर्ति है।

विमलवसही की देवकुलिका १२ के वितान पर शान्ति के पंचकल्याणकों के चित्रण हैं। विवरण की दृष्टि से विमलवसही के चित्रण कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के समान है। तुला में एक ओर कपोत और दूसरी ओर मेघरथ की आकृतियां हैं। दीक्षा-कल्याणक के दृश्य में शान्ति को शिविका में बैठकर दीक्षास्थल की ओर जाते हुए दिखाया गया है। शान्ति के केश लुंचन और इन्द्र द्वारा उन्हें संचित करने के भी दृश्य उत्कीर्ण है। आगे शान्ति की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं जो उनकी तपस्या और कैवल्य प्राप्ति की सूचक है। मध्य में शान्ति का समवसरण भी बना है।

(१७) कुंथुनाथ

जीवनवृत्त

कुंथुनाथ इस अवसर्पिणी के सत्रहवें जिन है। हस्तिनापुर के शासक वसु (या सूर्यसेन) उनके पिता और श्रीदेवी उनकी माता थीं। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल में माता ने कुंथु नाम के रत्नों की राशि देखी थी, इसी कारण बालक का नाम कुंथुनाथ रखा गया। चक्रवर्ती शासक के रूप में काफी समय तक शासन करने के बाद कुंथु ने दीक्षा ली और १६ वर्षों की तपस्या के बाद गजपुरम् के उद्यान में तिलक वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[१]

मूर्तियां

कुंथु का लांछन छाग (या बकरा) है और उनके यक्ष-यक्षी गन्धर्व एवं बला (या अच्युता या गान्धारिणी) है। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम जया (या जयदेवी) है। मूर्त अंकनों में कुंथु के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नहीं हुआ है। ग्यारहवीं शती ई० के पहले की कुंथु की कोई स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। ग्यारहवीं शती ई० की मूर्तियों में कुंथु के लांछन और बारहवीं शती ई० की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हुए।

ल० ग्यारहवीं शती ई० की लाछन युक्त ६ मूर्तियां अलुआरा से मिली हैं और सम्प्रति पटना संग्रहालय (१०६७५, १०६८९ से १०६९३) में संकलित है।[२] सभी उदाहरणों में कुंथु कायोत्सर्ग-मुद्रा में निर्वस्त्र खड़े है। तीन उदाहरणों में पीठिका पर ग्रहों की मूर्तियां भी उत्कीर्ण है। दो ध्यानस्थ मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में है।[३] बारभुजी गुफा की मूर्ति में दशभुज यक्षी भी निरूपित है। बारहवीं शती ई० की एक विशाल कायोत्सर्ग मूर्ति बजरंगगढ़ (गुना) से मिली है।[४] ११४४ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर में है। इसमें कुंथु निर्वस्त्र है। पीठिका लेख में उनका नाम भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी भी जो सर्वानुभूति एवं अम्बिका है, सिंहासन के छोरों पर न होकर चामरधरों के समीप खड़े है। विमलवसही की देवकुलिका ३५ में ११८८ ई० की एक मूर्ति है। मूर्ति-लेख में कुंथुनाथ का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है।

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ११९–२१

२ प्रसाद, एच० के, पू०नि०, पृ० २८६–८७

३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

४ जैन, नीरज, 'बजरंगगढ़ का विशद जिनालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अं० २, पृ० ६५–६६

(१८) अरनाथ

जीवनवृत्त

अरनाथ इस अवसर्पिणी के अठारहवें जिन है। हस्तिनापुर के शासक सुदर्शन उनके पिता और महादेवी (या मित्रा) उनकी माता थी। गर्भकाल मे माता ने रत्नमय चक्र के अर को देखा था, इसी कारण बालक का नाम अरनाथ रखा गया। चक्रवर्ती शासक के रूप में काफी समय तक राज्य करने के पश्चात् अर ने दीक्षा ली और तीन वर्षो की तपस्या के बाद गजपुरम् के सहस्राम्रवन में आम्र वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी भी निर्वाण-स्थली है।[१]

मूर्तियां

श्वेतांबर परम्परा मे अर का लाछन नन्द्यावर्त है, और दिगंबर परम्परा में मत्स्य। उनके यक्ष-यक्षी यक्षेन्द्र (या यक्षेश या खेन्द्र) और धारिणी (या काली) है। दिगंबर परम्परा में यक्षी तारावती (या विजया) है। शिल्प में अर के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का निरूपण नही हुआ है। अर की मूर्तियो में सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी के चित्रण दसवी शती ई० में प्रारम्भ हुए।

पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा मे सुरक्षित (१३८८) और मथुरा से ही प्राप्त एक गुप्तकालीन जिन मूर्ति की पहचान डा० अग्रवाल ने अर से की है। सिंहासन पर उत्कीर्ण मीन-मिथुन को उन्होंने मत्स्य लाछन का अंकन माना है।[२] पर हमारी दृष्टि मे यह पहचान ठीक नही है क्योंकि मीन-मिथुन के खुले मुखो से मुक्तावली प्रसारित हो रही है जो सिंहासन का सामान्य अलकरण प्रतीत होता है। सहेठ-महेठ (गोंडा) की दसवी शती ई० की एक मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ८६१) मे है। इसकी पाठिका पर मत्स्य लाछन और यक्ष-यक्षी निरूपित है। मत्स्य-लाछन-युक्त दो मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओ मे भी है।[३] बारभुजी गुफा की मूर्ति म यक्षी भी आमूर्तित है। नवागढ़ (टीकमगढ़) से ११४५ ई० की एक विशाल खड्गासन मूर्ति मिली है।[४] मूर्ति की पीठिका पर मत्स्य लाछन और यक्ष-यक्षी चित्रित हैं। १०५३ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति मदनपुर पहाडी के मन्दिर १ मे है।[५] बारहवी शती ई० की तीन खड्गासन मूर्तियां क्रमशः अहाड़ (११८० ई०), मदनपुर (मन्दिर २, ११४७ ई०) एवं बजरंगगढ़ (११७९ ई०) से मिली है।[६] सभी उदाहरणो मे अर निर्वस्त्र है।

(१९) मल्लिनाथ

जीवनवृत्त

मल्लिनाथ इस अवसर्पिणी के उन्नीसवें जिन है। मिथिला के शासक कुम्भ उनके पिता और प्रभावती उनकी माता थी। श्वेतांबर परम्परा के अनुसार मल्लि नारी तीर्थंकर है। पर दिगंबर परम्परा मे मल्लि को पुरुष तीर्थंकर ही बताया गया है। दिगंबर परम्परा मे नारी को मुक्ति या निर्वाण की अधिकारिणी ही नही माना गया है। इसलिए नारी के तीर्थंकर-पद प्राप्त करने का प्रश्न ही नही उठता। इनकी माता को गर्भकाल मे पुष्प शय्या पर सोने का दोहद उत्पन्न हुआ था, इसी कारण बालिका का नाम मल्लि रखा गया। श्वेतांबर परम्परा के अनुसार मल्लि अविवाहिता थी और दीक्षा के दिन ही उन्हे अशोकवृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त हो गया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[७]

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १२२–२४

२ अग्रवाल, वी०एस०, 'कैटलाग आव दि मथुरा म्यूजियम', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २३, भाग १–२, पृ० ५७

३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२

४ जैन, नीरज, 'नवागढ़ : एक महत्वपूर्ण मध्यकालीन जैनतीर्थ', अनेकान्त, वर्ष १५, अं० ६, पृ० २७७

५ कोठिया, दरबारी लाल, 'हमारा प्राचीन विस्मृत वैभव', अनेकान्त, वर्ष १४, अगस्त १९५६, पृ० ३१

६ जैन, नीरज, 'बजरंगगढ़ का विशद जिनालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अं० २, पृ० ६५–६६

७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १२५–३३

मूर्तियां

मल्लि का लाछन कलश है और यक्ष-यक्षी कुबेर एव वैरोट्या (या अपराजिता) है। मूर्तियों में मल्लि के यक्ष-यक्षी का चित्रण दुर्लभ है। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी उत्कीर्ण है। ग्यारहवीं शती ई० से पहले की मल्लि की कोई मूर्ति नही मिली है।

ग्यारहवी शती ई० की एक श्वेतांबर मूर्ति उन्नाव से मिली है और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे० ८८५) मे संगृहीत है (चित्र २३)। यह मल्लि की नारी मूर्ति है। ध्यानमुद्रा मे विराजमान मल्लि के वक्षःस्थल में श्रीवत्स नहीं उत्कीर्ण है। पर वक्षःस्थल का उभार स्त्रियोचित है और पृष्ठभाग की केशरचना भी वेणी के रूप में प्रदर्शित है। पीठिका पर कलश (?) उत्कीर्ण है। नारी के रूप मे मल्लि के निरूपण का सम्भवतः यह अकेला उदाहरण है। घट-लांछन-युक्त दो ध्यानस्थ मूर्तिया बारभुजी एव त्रिशूल गुफाओं मे है।[1] ल० बारहवी शती ई० की घट-लाछन-युक्त एक ध्यानस्थ मूर्ति तुलसी संग्रहालय, सतना मे भी है।[2] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका १८ में ११७९ ई० की एक मूर्ति है। मूर्ति-लेख में मल्लिनाथ का नाम भी उत्कीर्ण है।

(२०) मुनिसुव्रत

जीवनवृत्त

मुनिसुव्रत इस अवसर्पिणी के बीसवें जिन है। राजगृह के शासक सुमित्र उनके पिता और पद्मावती उनकी माता थी। गर्भकाल मे माता ने सम्यक् रीति से व्रतों का पालन किया, इसी कारण बालक का नाम मुनिसुव्रत रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद मुनिसुव्रत ने दीक्षा ली और ११ माह की तपस्या के बाद राजगृह के नीलवन मे चम्पक (चपा) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है। जैन परम्परा के अनुसार राम (पद्म) एवं लक्ष्मण (वासुदेव) मुनिसुव्रत के समकालीन थे।[3]

मूर्तियां

मुनिसुव्रत का लाछन कूर्म है और यक्ष-यक्षी वरुण एव नरदत्ता (बहुरूपा या बहुरूपिणी) है। मूर्तियों मे मुनिसुव्रत के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का अंकन नही प्राप्त होता। मुनिसुव्रत की उपलब्ध मूर्तिया ल० नवीं० मे बारहवी शती ई० के मध्य की है।[4] मुनिसुव्रत के लांछन और यक्ष-यक्षी का अंकन ल० दसवी-ग्यारहवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ।

गुजरात-राजस्थान—ग्यारहवी शती ई० की एक श्वेतांबर मूर्ति गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल म्यूजियम, जयपुर मे है (चित्र २४)।[5] इसमें मुनिसुव्रत कायोत्सर्ग में खड़े है और आसन पर कूर्म लांछन उत्कीर्ण है। इसमें चामरधरों एव उपासकों के अतिरिक्त अन्य कोई आकृति नहीं है। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २० मे ११७९ ई० की एक मूर्ति है। लेख मे 'मुनिसुव्रत' का नाम उत्कीर्ण है। यहा यक्ष-यक्षी नही बने हैं। दो मूर्तियां विमलवसही की देवकुलिका ११ (११४३ ई०) और ३१ में है। दोनों उदाहरणों मे लेखों में मुनिसुव्रत का नाम और यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एवं अम्बिका उत्कीर्ण है। देवकुलिका ३१ की मूर्ति में मूलनायक के पार्श्वों मे दो खड्गासन जिन मूर्तियां भी बनी है जिनके ऊपर दो ध्यानस्थ जिन आमूर्तित है।

---

१ मिश्र, देबला, पू०नि०, पृ० १३२, कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२
२ जैन, जे०, 'तुलसी संग्रहालय का पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १६, अं० ६, पृ० २८०
३ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १३४–३५
४ राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे २०) में १५७ ई० की एक मुनिसुव्रत मूर्ति की पीठिका सुरक्षित है : शाह, यू०पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० ५
५ अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह १५७.७७

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—ल० दसवीं शती ई० की एक मूर्ति बजरामठ (ग्यारसपुर) के प्रकोष्ठ में है।[1] १००६ ई० की एक श्वेतांबर मूर्ति आगरा के समीप से मिली है और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ७७६) में सुरक्षित है। मूर्ति काले पत्थर मे उत्कीर्ण है। ज्ञातव्य है कि जैन परम्परा मे मुनिसुव्रत के शरीर का रंग काला बताया गया है। सिंहासन पर कूर्म लांछन और लेख में 'मुनिसुव्रत' नाम आया है। मुनिसुव्रत ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। मूर्ति के परिकर मे जीवन्तस्वामी एवं बलराम और कृष्ण की मूर्तियां है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। यक्ष के समीप एक स्त्री आकृति है जिसकी वाम भुजा मे पुस्तक है। चामरधरो के समीप कायोत्सर्ग-मुद्रा में दो श्वेतांबर जिन मूर्तिया बनी हैं। इन आकृतियो के ऊपर जीवन्तस्वामी की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं।[2] जीवन्तस्वामी मुकुट, हार, बाजूबंद, कर्णफूल आदि से शोभित हैं। मूलनायक के त्रिछत्र के ऊपर एक ध्यानस्थ जिन मूर्ति उत्कीर्ण है जिसके दोनो ओर चतुर्भुज बलराम एवं कृष्ण की मूर्तियां है। कृष्ण एवं बलराम की मूर्तियो के आधार पर मध्य की जिन मूर्ति की पहचान नेमि से की जा सकती है। वनमाला एवं तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त बलराम की भुजाओं मे वरदमुद्रा, मुसल, हल एवं फल है। किरीटमुकुट एवं वनमाला से सज्जित कृष्ण के तीन अवशिष्ट करो मे वरदमुद्रा, गदा एवं शंख प्रदर्शित है। ल० ग्यारहवी शती ई० की कूर्म-लाछन-युक्त एक कायोत्सर्ग मूर्ति खजुराहो के मन्दिर २० मे है। इसमे यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण है। पर परिकर मे चार छोटी जिन मूर्तियां बनी है। ११४२ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति धुबेला संग्रहालय (४२) मे सुरक्षित है।[3] पीठिका लेख मे मुनिसुव्रत का नाम उत्कीर्ण है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र मे बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओ में दो मूर्तिया है।[4] इनमे मुनिसुव्रत ध्यानमुद्रा मे विराजमान है। बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी भी आमूर्तित है। एक मूर्ति (ल० ९वीं-१०वीं शती ई०) राजगिर से भी मिली है।[5] ध्यानस्थ जिन के सिंहासन के नीचे बहुरूपिणी यक्षी की शय्या पर लेटी मूर्ति बनी है।

जीवनदृश्य

मुनिसुव्रत के जीवनदृश्य केवल स्वतन्त्र पट्टो पर उत्कीर्ण है। इन पट्टो पर मुनिसुव्रत के जीवन की केवल दो ही घटनाएं मिलती है जो अश्वावबोध एवं शकुनिका-विहार-तीर्थ की उत्पत्ति से सम्बन्धित है। गुजरात एव राजस्थान में बारहवीं-तेरहवी शती ई० के ऐसे चार पट्ट मिले है। बारहवी शती ई० का एक पट्ट जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढमण्डप मे है। अन्य सभी पट्ट तेरहवी शती ई० के है और कुम्भारिया के महावीर एवं नेमिनाथ मन्दिरों,[6] लूणवसही की देवकुलिका १९ एवं कैम्बे के जैन मन्दिर में सुरक्षित है। सभी पट्टो के दृश्यांकन विवरणो की दृष्टि से लगभग समान है।

जैन ग्रन्थों में मुनिसुव्रत के जीवन से सम्बन्धित उपर्युक्त दोनों ही घटनाओं के विस्तृत उल्लेख है।[7] कैवल्य प्राप्ति के बाद मतिज्ञान से एक बार मुनिसुव्रत को ज्ञात हुआ कि एक अश्व को उनके उपदेशो की आवश्यकता है। इसके

१ जिन के आसन के नीचे शय्या पर लेटी यक्षी (बहुरूपिणी) के आधार पर जिन की सम्भावित पहचान मुनिसुव्रत से की गयी है।

२ जीवन्तस्वामी की दो मूर्तियो का उत्कीर्णन इस बात का संकेत है कि महावीर के अतिरिक्त अन्य जिनो के भी जीवन्तस्वामी स्वरूप की कल्पना की गई थी। कुछ परवर्ती ग्रन्थो मे पार्श्वनाथ के जीवन्तस्वामी स्वरूप का उल्लेख भी हुआ है। जैसलमेर संग्रहालय मे जीवन्तस्वामी चन्द्रप्रभ की एक मूर्ति भी है।

३ जैन, बालचन्द्र, 'धुबेला संग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० ४, पृ० २४४

४ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३२; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, **पू०नि०**, पृ० २८२

५ **जै०क०स्था०**, खं० १, पृ० १७२

६ कुम्भारिया का पट्ट १२८१ ई० के लेख से युक्त है। पट्ट के दृश्यो के नीचे उनके विवरण भी उत्कीर्ण है।

७ **त्रि०श०पु०च०**, खं० ४, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज १२५, बड़ौदा, १९५४, पृ० ८६–८८; जयन्त विजय, मुनिश्री, **पू०नि०**, पृ० १००–०५

बाद मुनिसुव्रत भृगुकच्छ गये और वहां कोरण्टवन में अपना उपदेश प्रारम्भ किया। भृगुकच्छ के शासक जितशत्रु के अश्वमेघ यज्ञ का अश्व भी रक्षकों के साथ मुनिसुव्रत के उपदेशों का श्रवण कर रहा था। अपने उपदेश मे मुनिसुव्रत ने अपने और उस अश्व के पूर्व जन्मों की कथा का भी उल्लेख किया। उपदेशों के बाद उस अश्व ने छह माह तक जैन श्रावक के लिए बताये गये मार्ग का अनुसरण किया। अगले जन्म मे यही अश्व सौधर्म लोक (स्वर्ग) मे देवता हुआ। मतिज्ञान से पिछले जन्म की बातो का स्मरण कर वह मुनिसुव्रत के उपदेश-स्थल पर गया और वहां उसने मुनिसुव्रत के मन्दिर का निर्माण किया। मुनिसुव्रत की मूर्ति के समक्ष ही उसने अश्वरूप मे अपनी भी एक मूर्ति प्रतिष्ठित की। उसी समय से वह स्थान अश्वावबोध तीर्थ के रूप मे जाना जाने लगा।

दूसरी कथा इस प्रकार है। सिंहल द्वीप के रत्नाशय देश मे श्रीपुर नाम का एक नगर था, जहां का शासक चन्द्रगुप्त था। एक बार उसके दरबार मे भृगुकच्छ का एक व्यापारी (धनेश्वर) आया। दरबार मे इस व्यापारी के 'ओम नमो अरिहंतानाम' मंत्र के उच्चारण से चन्द्रगुप्त की पुत्री सुदर्शना पूर्वजन्म की कथा का स्मरण कर मूर्छित हो गयी। पूर्वजन्म मे सुदर्शना भृगुकच्छ के समीप कोरण्ट उद्यान में शकुनि पक्षी थी। एक बार वह शिकारी के बाणो से घायल होकर कराह रही थी। उसी समय पास मे गुजरते हुए एक जैन आचार्य ने उसके ऊपर जलस्राव किया और उसे नवकार मन्त्र सुनाया। नवकार मन्त्र के प्रति अपनी श्रद्धा के कारण ही शकुनि मृत्यु के बाद सुदर्शना के रूप मे उत्पन्न हुई। पूर्वजन्म की इस घटना का स्मरण होने के बाद मे सुदर्शना सासारिक सुखो मे विरक्त हो गई। उसने व्यापारी के साथ भृगुकच्छ के तीर्थ की यात्रा भी की। सुदर्शना ने अश्वावबोध तीर्थ में मुनिसुव्रत की पूजा की और उस तीर्थस्थली का पुनरुद्धार करवाकर वहा २४ जिनालयो का निर्माण करवाया। इस घटना के कारण उस स्थल को शकुनिका-विहार-तीर्थ भी कहा गया। चौलुक्य शासक कुमारपाल के मन्त्री उदयन के पुत्र आम्रभट्ट ने इस देवालय का पुनरुद्धार करवाया था।

जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर के पट्ट के दृश्य दो भागो मे विभक्त है। ऊपर अश्वावबोध और नीचे शकुनिका-विहार-तीर्थ की कथाएं उत्कीर्ण है। ऊपरी भाग मे मध्य में एक जिनालय उत्कीर्ण है जिसमे मुनिसुव्रत की ध्यानस्थ मूर्ति है। जिनालय के समीप के एक अन्य देवालय में मुनिसुव्रत के चरण-चिह्न अंकित है। बायी ओर एक अश्व आकृति उत्कीर्ण है। कुम्भारिया के पट्ट पर अश्व आकृति के नीचे 'अश्वप्रतिबोध' लिखा है। अश्व के समीप कुछ रक्षक भी खडे है। जिनालय के दाहिनी ओर सिंहलद्वीप के शासक चन्द्रगुप्त की मूर्ति है। सुदर्शना चन्द्रगुप्त की गोद मे बैठी है। समीप ही दो सेवकों एव व्यापारी की मूर्तिया हैं। पट्ट के निचले भाग मे दाहिने छोर पर एक वृक्ष उत्कीर्ण है जिसकी डाल पर शकुनि बैठी है। वृक्ष के दाहिने ओर शिकारी और बायी ओर जैन साधुओं की दो आकृतिया चित्रित है। नीचे एक वृत्त के रूप मे समुद्र उत्कीर्ण है जिसमे जिनालय की ओर आती एक नाव प्रदर्शित है। नाव मे सुदर्शना बैठी है। यह सुदर्शना के अश्वावबोध तीर्थ की ओर आने का दृश्याकन है।

(२१) नमिनाथ

जीवनवृत्त

नमिनाथ इस अवसर्पिणी के इक्कीसवें जिन है। मिथिला के शासक विजय उनके पिता और वप्रा (या विपरीता) उनकी माता थी। जब नमि का जीव गर्भ में था उसी समय शत्रुओं ने मिथिला नगरी को घेर लिया था। वप्रा ने जब राजप्रासाद की छत से शत्रुओं को सौम्य दृष्टि से देखा तो शत्रु शासक का हृदय बदल गया और वह विजय के समक्ष नतमस्तक हो गया। शत्रुओं के इस अप्रत्याशित नमन के कारण ही बालक का नाम नमिनाथ रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद नमि ने दीक्षा ली और नौ माह की तपस्या के बाद मिथिला के चित्रवन में बकुल (या जम्बू) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[1]

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १३६–३८

मूर्तियां

नमि का लांछन नीलोत्पल है और यक्ष-यक्षी भृकुटि एवं गांधारी (या मालिनी या चामुण्डा) हैं। शिल्प में नमि के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नही हुआ है। उपलब्ध नमि मूर्तियां ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की है। ग्यारहवी शती ई० की एक मूर्ति पटना संग्रहालय में है।[1] मूर्ति के परिकर मे २४ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण है। एक ध्यानस्थ मूर्ति बारभुजी गुफा में है।[2] नीचे यक्षी भी निरूपित है। रैदिघो (बंगाल) के समीप मथुरापुर से कायोत्सर्ग में खड़ी एक श्वेतांबर मूर्ति मिली है।[3] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २१ मे ११७९ ई० की एक नमि मूर्ति है। लूणवसही की देवकुलिका १९ में भी १२३३ ई० की एक मूर्ति है। यहां पीठिका-लेख में नमि का नाम भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है।

(२२) नेमिनाथ (या अरिष्टनेमि)

जीवनवृत्त

नेमिनाथ या अरिष्टनेमि इस अवसर्पिणी के बाईसवें जिन है। द्वारावती के हरिवंशी महाराज समुद्रविजय उनके पिता और शिवा देवी उनकी माता थी। शिवा के गर्भकाल में समुद्रविजय सभी प्रकार के अरिष्टो मे बचे थे तथा गर्भावस्था में माता ने अरिष्टचक्र नेमि का दर्शन किया था, इसी कारण बालक का नाम अरिष्टनेमि या नेमि रखा गया। समुद्रविजय के अनुज वसुदेव सारिपुर के शासक थे। वसुदेव की दो पत्नियां, रोहिणी और देवकी थी। रोहिणी से बलराम, ओर देवकी से कृष्ण उत्पन्न हुए। इस प्रकार कृष्ण एवं बलराम नेमि के चचेरे भाई थे। इस सम्बन्ध के कारण ही मथुरा, देवगढ़, कुम्भारिया, विमलवसही एवं लूणवसही के मूर्त अकनों में नेमि के साथ कृष्ण एवं बलराम भी अंकित हुए।

कृष्ण और रुक्मिणी के आग्रह पर नेमि राजीमती के साथ विवाह के लिए तैयार हुए। विवाह के लिए जाते समय नेमि ने मार्ग मे पिंजरों मे बन्द ओर जालपाशों में बंधे पशुओ को देखा। जब उन्हे यह ज्ञात हुआ कि विवाहोत्सव के अवसर पर दिये जानेवाले भोज के लिए उन पशुओ का वध किया जायगा तो उनका हृदय विरक्ति से भर गया। उन्होंने तत्क्षण पशुओं को मुक्त करा दिया और बिना विवाह किये वापिस लौट पड़े; और साथ ही दीक्षा लेने के निर्णय की भी घोषणा की। नेमि के निष्क्रमण के समय मानवेन्द्र, देवेन्द्र, बलराम एवं कृष्ण उनकी शिविका के साथ-साथ चल रहे थे। नेमि ने उज्जयत पर्वत पर सहस्राम्र उद्यान मे अशोक वृक्ष के नीचे अपने आभरणो एवं वस्त्रों का परित्याग किया और पंचमुष्टि मे केशों का लुंचन कर दीक्षा ग्रहण की। ५४ दिनों की तपस्या के बाद उज्जयंतगिरि स्थित रेवतगिरि पर बेतस वृक्ष के नीचे नेमि को कैवल्य प्राप्त हुआ। यही देवनिर्मित समवसरण मे नेमि ने अपना पहला धर्मोपदेश भी दिया। नेमि की निर्वाण-स्थली भी उज्जयंतगिरि है।[4]

प्रारम्भिक मूर्तियां

नेमि का लांछन शंख है[5] और यक्ष-यक्षी गोमेध एवं अम्बिका (या कुष्माण्डी) हैं। नेमि की मूर्तियों में यक्षी सदैव अम्बिका है पर यक्ष गोमेध के स्थान पर प्राचीन परम्परा का सर्वानुभूति (या कुबेर) यक्ष है। जैन ग्रन्थों में नेमि से सम्बन्धित बलराम एवं कृष्ण की भी लाक्षणिक विशेषताएं विवेचित है। कृष्ण के मुख्य लक्षण गदा (कुमुद्वती), खड्ग (नन्दक), चक्र, अंकुश, शंख एवं पद्म है। कृष्ण किरीटमुकुट, वनहार, कौस्तुभमणि आदि से सज्जित है।[6] माला एवं मुकुट से शोभित बलराम के मुख्य लक्षण गदा, हल, मुसल, धनुष एव बाण है।[7]

---

१ गुप्ता, पी०एल०, पू०नि०, पृ० ९० २ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२

३ दत्त, कालिदास, 'दि एन्टिक्विटीज ऑव खारी', **ऐनुअलरिपोर्ट, वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी**, १९२८-२९, पृ० १-११

४ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १३९–२३९

५ नेमि का शंख लांछन उनके पूर्वभव के शंख नाम से सम्बन्धित रहा हो सकता है।

६ **हरिवंशपुराण** ३५.३५ ७ **हरिवंशपुराण** ४१.३६–३७

मथुरा से पहली से चौथी शती ई० के मध्य की पांच मूर्तियां मिली है जो सम्प्रति राज्य संग्रहालय, लखनऊ में हैं। चार मूर्तियों में नेमि की पहचान पार्श्ववर्ती बलराम एवं कृष्ण की आकृतियों के आधार पर की गई है। बलराम पांच या सात सर्पफणों के छत्र से युक्त है। एक कायोत्सर्ग मूर्ति (जे ८, ९७ ई०) के लेख मे अरिष्टनेमि का नाम भी उत्कीर्ण है। परवर्ती कुषाण काल की एक मूर्ति का उल्लेख डॉ० अग्रवाल ने किया है।[1] यह मूर्ति मथुरा संग्रहालय (२५०२) मे है। मूर्ति का निचला भाग खण्डित है। नेमि के दाहिने और बांयें पार्श्वों में क्रमशः बलराम एवं कृष्ण की चतुर्भुज मूर्तिया उत्कीर्ण है। बलराम की दो अवशिष्ट भुजाओं में से एक मे हल है और दूसरी जानु पर स्थित है। कृष्ण की अवशिष्ट भुजाओं मे गदा और चक्र है।

पहली शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ जे ४७) मे चतुर्भुज बलराम की ऊपरी भुजाओं मे गदा और हल है। वक्ष स्थल के समक्ष मुड़ी दाहिनी भुजा मे एक पात्र है। चतुर्भुज कृष्ण वनमाला से शोभित है। उनकी तीन अवशिष्ट भुजाओ मे अभयमुद्रा, गदा और पात्र प्रदर्शित है।[2] दूसरी-तीसरी शती ई० की दो अन्य ध्यानस्थ मूर्तियों मे केवल बलराम की ही मूर्ति उत्कीर्ण है।[3] सात सर्पफणो के छत्र से युक्त द्विभुज बलराम नमस्कार-मुद्रा मे है।[4] ल० चौथी शती ई० की एक मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे १२१) मे नेमि कायोत्सर्ग मे खड़े है (चित्र २५)। उनके पार्श्वों मे चतुर्भुज बलराम एवं कृष्ण की मूर्तियां है। नेमि के वाम पार्श्व मे एक छोटी जिन आकृति और चरणों के समीप तीन उपासक चित्रित है। सिंहासन के धर्मचक्र के दोनों ओर दो ध्यानस्थ जिन आकृतियां उत्कीर्ण है। पांच सर्पफणों की छत्रावली से युक्त बलराम की तीन भुजाओं मे मुसल, चषक और हल (?) है। ऊपर की दाहिनी भुजा सर्पफणों के समक्ष प्रदर्शित है। कृष्ण की तीन अवशिष्ट भुजाओं मे फल (?), गदा और शंख है।

ल० चौथी शती ई० की एक मूर्ति राजगिर के वैभार पहाड़ी से मिली है। पीठिका-लेख मे 'महाराजाधिराज श्रीचन्द्र' का उल्लेख है, जिसकी पहचान गुप्त शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय से की गई है।[5] सिंहासन के मध्य मे एक पुरुष आकृति खड़ी है जिसके दाहिने हाथ से अभयमुद्रा व्यक्त है। यह आकृति आयुध पुरुष की है[6] या नेमि का राजपुरुष के रूप मे अंकन है।[7] इस आकृति के दोनो ओर नेमि का शंख लाछन उत्कीर्ण है। लाछन से युक्त यह प्राचीनतम जिन मूर्ति है। शंख लाछन के समीप दो छोटी जिन आकृतियां हैं। परिकर म चामरधर या कोई अन्य सहायक आकृति नही उत्कीर्ण है।

ल० सातवीं शती ई० की एक मूर्ति राजघाट (वाराणसी) मे मिली है और सम्प्रति भारत कला भवन, वाराणसी (२१२) मे सुरक्षित है (चित्र २६)।[8] इसमें नेमि ध्यानमुद्रा मे सिंहासन पर विराजमान है। लांछन नही उत्कीर्ण है, किन्तु यक्षी अम्बिका की मूर्ति के आधार पर मूर्ति की नेमि से पहचान सम्भव है। मूर्ति दो भागों मे विभक्त है। ऊपरी भाग म मूलनायक की मूर्ति, चामरधर, सिंहासन, भामण्डल, त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक और उड्डीयमान मालाधर तथा निचले भाग में एक वृक्ष (सम्भवतः कल्पवृक्ष) उत्कीर्ण है। वृक्ष के दोनो ओर त्रिभंग मे खडी द्विभुज यक्ष-यक्षी मूर्तियां निरूपित है। सिंहासन के छोरो के स्थान पर सिंहासन के नीचे यक्ष-यक्षी का चित्रण मूर्ति की दुर्लभ विशेषता है। दक्षिण

---

१ अग्रवाल, वी० एस०, पू०नि०, पृ० १६-१७
२ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ५०
३ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे ११७, जे ६०
४ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ५०-५१
५ चंदा, आर०पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५-२६, पृ० १२५-२६
६ स्ट०जै०आ०, पृ० १४
७ चंदा, आर०पी०, पू०नि०, पृ० १२६
८ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ए नोट आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ए तीर्थंकर इमेज ऐट भारत कला भवन, वाराणसी, जैन जर्नल, खं० ६, अं० १, पृ० ४१-४३

पार्श्व के यक्ष के हाथों में पुष्प और घट (? निधिपात्र) हैं। वाम पार्श्व की यक्षी के दाहिने हाथ में पुष्प[1] और बायें में बालक हैं। अम्बिका का दूसरा पुत्र उसके दक्षिण पार्श्व में खड़ा है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तियां

गुजरात-राजस्थान—गुजरात और राजस्थान में जहां ऋषभ और पार्श्व की स्वतन्त्र मूर्तियां छठी-सातवीं शती ई० मे उत्कीर्ण हुई (अकोटा), वहीं नेमि और महावीर की मूर्तियां नवीं शती ई० के बाद की है। यह तथ्य नेमि और महावीर की इस क्षेत्र मे सीमित लोकप्रियता का सूचक है। इस क्षेत्र की मूर्तियो मे या तो शंख लांछन या फिर लेख मे नेमिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी के रूप मे सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही निरूपित है। ल० दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कटरा (भरतपुर) से मिली है और भरतपुर राज्य संग्रहालय (२९३) मे सुरक्षित है।[2] यहां शंख लाछन उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी अनुपस्थित हैं। ११७९ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २२ मे है। लेख में नेमिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। बारहवीं शती ई० की शंख-लांछन-युक्त एक मूर्ति अमरसर (राजस्थान) से मिली है और सम्प्रति गंगा गोल्डेन जुबिली संग्रहालय, बीकानेर (१६५९) मे सुरक्षित है।[3] लूणवसही के गर्भगृह की विशाल ध्यानस्थ मूर्ति मे शंख लाछन और सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र की नेमि मूर्तियों मे अष्ट-प्रातिहार्यो, शंख लाछन और सर्वानुभूति एवं अम्बिका[4] का नियमित अंकन हुआ है। स्मरणीय है कि नेमि के लाछन और यक्ष-यक्षी के चित्रण सर्वप्रथम इसी क्षेत्र मे प्राप्त होते है। स्वतन्त्र नेमि मूर्तियो मे बलराम और कृष्ण का निरूपण भी केवल इसी क्षेत्र मे हुआ है।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की आठ मूर्तियां है। सभी उदाहरणो में शंख लाछन, चामरधर, सिंहासन, त्रिछत्र एवं भामण्डल उत्कीर्ण है। पाच उदाहरणों मे यक्ष-यक्षी भी निरूपित है। यक्ष-यक्षी सामान्यतः सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। पांच उदाहरणो मे नेमि कायोत्सर्ग मे खड़े हैं। एक उदाहरण (६६.५३) के अतिरिक्त अन्य सभी मे नेमि निर्वस्त्र है। दो उदाहरणो मे नेमि के साथ बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित है।

बटेश्वर (आगरा) की दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ७९३) में पीठिका पर चार जिनो और सर्वानुभूति एवं अम्बिका की मूर्तिया उत्कीर्ण है। चामरधरों के समीप द्विभुज बलराम एवं कृष्ण की मूर्तियां हैं। बलराम के दाहिने हाथ में चषक है किन्तु बायें हाथ का आयुध स्पष्ट नही है। कृष्ण की दक्षिण भुजा में शंख है और वाम भुजा जानु पर स्थित है। मूलनायक के स्कन्धो पर जटाएं भी प्रदर्शित है। ल० ग्यारहवीं शती ई० की एक श्वेतांबर मूर्ति (६६.५३) मे नेमि कायोत्सर्ग में खड़े है (चित्र २८)। परिकर मे तीन जिनो एवं चतुर्भुज बलराम और कृष्ण की मूर्तियां हैं। तीन सर्पफणों के छत्र और बनमाला से शोभित बलराम के तीन अवशिष्ट हाथों मे से दो में मुसल और हल प्रदर्शित है, और तीसरा जानु पर स्थित है। किरीटमुकुट एवं वनमाला से सज्जित कृष्ण की भुजाओ में अभयमुद्रा, गदा, चक्र और शंख प्रदर्शित है।

मैहर (म० प्र०) की ग्यारहवीं शती ई० की एक खड्गासन मूर्ति (१४.०.११७) मे सिंहासन-छोरो के स्थान पर यक्ष-यक्षी मूलनायक के वाम पार्श्व में आमूर्तित है। यक्षी अम्बिका है। परिकर में एक चतुर्भुज देवी निरूपित है जिसके हाथों मे अभयमुद्रा, पद्म, पद्म और कलश है। ११७७ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ९३६) में यक्ष सर्वानुभूति है पर यक्षी

१ अम्बिका की एक भुजा में आम्रलुंबि के स्थान पर पुष्प का प्रदर्शन मथुरा की सातवीं-आठवीं शती ई० की कुछ अन्य मूर्तियों मे भी देखा जा सकता है।

२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह १५७.१७

३ श्रीवास्तव, वी० एस०, पू०नि०, पृ० १४

४ कुछ उदाहरणों मे सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं।

अम्बिका नहीं है। लांछन भी नही उत्कीर्ण है।[1] परिकर में चार छोटी जिन मूर्तियां भी बनी हैं। सहेठ-महेठ (गोंडा) से प्राप्त समान विवरणों वाली दूसरी मूर्ति (जे ८५८) में लांछन उत्कीर्ण है और यक्षी भी अम्बिका है। ११५१ ई० की एक मूर्ति (०.१२३) में नेमि के कंधो पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं।

पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा मे दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तिया है। मथुरा से मिली दसवी शती ई० की एक मूर्ति (३७.२७३८) में ध्यानमुद्रा में विराजमान नेमि के साथ लांछन और यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण है। पर पार्श्वों मे बलराम एवं कृष्ण की मूर्तियां बनी है। वनमाला से शोभित चतुर्भुज बलराम त्रिभंग मे खड़े है। उनके तीन हाथों में चषक, मुसल और हल हैं, और चौथा हाथ जानु पर स्थित है। वनमाला से युक्त कृष्ण समभंग मे खड़े हैं। उनके तीन सुरक्षित करो मे से दो में वरदमुद्रा और गदा प्रदर्शित हैं और तीसरा जानु पर स्थित है। दूसरी मूर्ति (बी ७७) में लांछन उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी अनुपस्थित है। मूलनायक के कन्धों पर जटाएं है।

देवगढ़ में दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की ३० से अधिक मूर्तिया है। अधिकांश उदाहरणो मे नेमि अष्ट-प्रातिहार्यों, शंख लाछन और पारम्परिक यक्ष-यक्षी से युक्त है। सत्रह उदाहरणो मे नेमि कायोत्सर्ग मे निर्वस्त्र खड़े है। दस उदाहरणो मे शख लाछन नही उत्कीर्ण है, पर सर्वानुभूति एव अम्बिका की मूर्तियो के आधार पर नेमि से पहचान सम्भव है।[2] केवल तीन उदाहरणों में यक्षी-यक्षी नही निरूपित है।[3] कुछ उदाहरणो मे परम्परा के विरुद्ध यक्ष को नेमि के बायी ओर और यक्षी का दाहिनी ओर आमूर्तित किया गया है।[4] मन्दिर २ की दसवी शती ई० की एक मूर्ति मे बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित है (चित्र २७)।[5] मथुरा के बाहर नेमि की स्वतन्त्र मूर्ति मे बलराम एवं कृष्ण के उत्कीर्णन का यह सम्भवत: अकेला उदाहरण है। पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त द्विभुज बलराम के हाथों मे फल और हल है। किरीट-मुकुट से सज्जित चतुर्भुज कृष्ण की तीन अवशिष्ट भुजाओ मे चक्र, शंख और गदा है।

उन्नीस उदाहरणो मे नेमि के साथ द्विभुज सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित है। मन्दिर १६ की दसवीं शती ई० की शख-लाछन-युक्त एक खड्गासन मूर्ति मे यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी है। नेमि की केश रचना भी जटाओं के रूप मे प्रदर्शित है। स्पष्टत: कलाकार ने यहां नेमि के साथ ऋषभ की मूर्तियों की विशेषताएं प्रदर्शित की है। मूर्ति के परिकर मे २४ छोटी जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण हैं। सात उदाहरणों मे नेमि के साथ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी भी निरूपित है।[6] कई उदाहरणो मे मूलनायक के कंधो पर जटाए प्रदर्शित है।[7] मन्दिर १५ का मूर्ति के परिकर मे सात, मन्दिर २६ की मूर्ति मे चार, मन्दिर १२ का चहारदीवारी की दो मूर्तियों मे चार और छह, मन्दिर २१ की मूर्ति मे दो, मन्दिर ११ की मूर्ति मे दस, मन्दिर २० की मूर्ति मे चार और मन्दिर ३१ की मूर्ति मे दो छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण है। मन्दिर १२ के प्रदक्षिणापथ की ग्यारहवी शती ई० की कायोत्सर्ग मूर्ति के परिकर मे द्विभुज नवग्रहों की भी मूर्तिया हैं।

ल० दसवी शती ई० की दो मूर्तियां ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर में है।[8] नेमि के लांछन दोनों उदाहरणों मे नही उत्कीर्ण हैं पर यक्ष यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। एक मूर्ति के परिकर मे चार और दूसरे मे ५२ छोटी जिन मूर्तियां

---

१ सर्वानुभूति यक्ष के आधार पर प्रस्तुत मूर्ति की सम्भावित पहचान नेमि से की गई है। एक अन्य मूर्ति (जे ७९२) में भी लांछन और अम्बिका नही उत्कीर्ण है।

२ मन्दिर १५

३ मन्दिर १२ के प्रदक्षिणापथ, चहारदीवारी और मन्दिर २६

४ मन्दिर ३, १२, १३, १५

५ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अन्पब्लिश्ड इमेज ऑव नेमिनाथ फ्राम देवगढ़', **जैन जर्नल**, खं० ८, अं० २, पृ० ८४-८५

६ मन्दिर १२ की चहारदीवारी, मन्दिर २,११,२०,२१,३०

७ मन्दिर ११,१५,२१,२६,३१

८ एक में नेमि कायोत्सर्ग मे खड़े हैं।

उत्कीर्ण हैं। ग्यारसपुर के बजरामठ मे भी नेमि की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वी शती ई०, बी० ९) है। इसमें भी लांछन नहीं उत्कीर्ण है, पर यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है।

खजुराहो में ग्यारहवी-बारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां है। दोनों में नेमि ध्यानमुद्रा में विराजमान है। मन्दिर १० की ग्यारहवी शती ई० की मूर्ति मे लांछन स्पष्ट नही है, पर यक्षी अम्बिका ही है। पीठिका पर ग्रहों की सात मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। स्थानीय संग्रहालय की दूसरी मूर्ति (के १४) मे शख लांछन और सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। परिकर मे २३ छोटी जिन मूर्तियां भी बनी हैं। गुर्गी (रीवा) की ग्यारहवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति इलाहाबाद संग्रहालय (ए०एम० ४९८) मे है।[1] यहां नेमि के साथ शख लाछन और सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण है। पुरुषों के स्थान पर स्त्री चामरधारिणी सेविकाएं बनी है। चार छोटी जिन मूर्तिया भी चित्रित है। धुबेला संग्रहालय (म० प्र०) मे भी एक मूर्ति है।[2] इसमे नेमि ध्यानमुद्रा मे विराजमान है और परिकर मे २२ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण है। धुबेला सग्रहालय की ११४२ ई० की एक दूसरी मूर्ति के लेख मे नेमिनाथ का नाम उत्कीर्ण है।[3] ११५१ ई० की एक मूर्ति हार्निमन संग्रहालय मे है। नेमि का शंख लांछन पीठिका के साथ ही वक्षःस्थल पर भी उत्कीर्ण है।[4]

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र से केवल चार मूर्तिया (११वी-१२वी शती ई०) मिली है। इस क्षेत्र मे शंख लाछन का चित्रण नियमित था। पर यक्ष-यक्षी का निरूपण नही हुआ है। उड़ीसा में बारभुजी एवं नवमुनि गुफाओं की दो मूर्तियो मे केवल अम्बिका ही निरूपित है। अलुअर से मिली एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वी शती ई०) पटना संग्रहालय (१०६८८) मे सुरक्षित है।[5] नवमुनि, बारभुजी एव त्रिशूल गुफाओ मे नेमि की तीन ध्यानस्थ मूर्तियां है।[6]

जीवनदृश्य

नेमि के जीवनदृश्यो के अंकन कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों (११वी शती ई०) और विमलवसही (१२ वी शती ई०) एवं लूणवसही (१३ वी शती ई०) मे है। कल्पसूत्र के चित्रो मे भी नेमि के जीवनदृश्यो के अंकन है। इनमे पंचकल्याणको के अतिरिक्त नेमि के विवाह और कृष्ण की आयुधशाला मे नेमि के शौर्य प्रदर्शन से सम्बन्धित दृश्य विस्तार से अंकित है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर एव लूणवसही की देवकुलिका ११ के वितानो के दृश्यो मे नेमि एव राजीमती को विवाह वेदिका के समक्ष खडा प्रदर्शित किया गया है, जबकि जैन परम्परा के अनुसार नेमि विवाह-स्थल पर गये बिना मार्ग से ही दीक्षा के लिए लौट पड़े थे।[7]

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के पांचवें वितान पर नेमि के जीवनदृश्य हैं (चित्र २९)। सम्पूर्ण दृश्यावली तीन आयतो मे विभक्त है। बाहरी आयत मे पूर्व और उत्तर की ओर नेमि के पूर्वभव (महाराज शंख) के चित्रण है। महाराज शख को अपनी भार्या यशोमती, योद्धाओ एवं सेवको के साथ आमूर्तित किया गया है। पश्चिम की ओर नेमि को माता शिवा शय्या पर लेटी है। समीप ही १४ मांगलिक स्वप्न और नेमि के माता-पिता की वार्तालाप में संलग्न मूर्तिया और राजा समुद्रविजय की विजयो के दृश्य है। दूसरे आयत मे दक्षिण की ओर शिवादेवी नवजात शिशु के साथ लेटी है। आगे नैगमेषी द्वारा शिशु को जन्माभिषेक के लिए मेरु पर्वत पर ले जाने का दृश्य है। आगे कलशधारी

१ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० ११५

२ दीक्षित, एस०के०, **ए गाईड टू दि स्टेट म्यूजियम धुबेला (नवगांव), विन्ध्यप्रदेश**, नवगांव, १९५९, पृ० १२

३ जैन, बालचन्द्र, 'धुबेला संग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० ४, पृ० २४४

४ कीलहार्न, एफ०, 'ऑन ए जैन स्टैचू इन दि हार्निमन म्यूजियम', **ज०रा०ए०सो०**, १८९८, पृ० १०१–०२

५ प्रसाद, एच० के०, **पू०नि०**, पृ० २८७

६ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १२९, १३२; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, **पू०नि०**, पृ० २८२

७ **त्रि०श०पु०च०**, खं० ५, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९६२, पृ० २५८–६०

देवों और वज्र से युक्त इन्द्र की मूर्तियां हैं। चामर एवं कलश धारण करने वाली आकृतियों से वेष्टित इन्द्र की गोद में एक शिशु विराजमान है।

पश्चिम की ओर रथ पर बैठे नेमि को बारात के साथ विवाह-स्थल की ओर जाते हुए दिखाया गया है। साथ में खड्गधारी और अश्वारोही योद्धाओं की एवं दूसरे लोगो की आकृतिया भी प्रदर्शित हैं। आगे एक पिंजरे में बन्द शूकर, मृग एव मेष जैसे पशुओ की आकृतियां है। इन्ही पशुओं के भावी वध की बात जानकर नेमि ने विवाह न करने और दीक्षा लेने का निश्चय किया था। समीप ही विवाह-मण्डप को वेदिका के दोनों ओर राजीमती और नेमि की आकृतियां खड़ी है। पूर्वोक्त सन्दर्भ मे यह चित्रण परम्परा के विरुद्ध ठहरता है।

तीसरे आयत मे दक्षिण की ओर नेमि के विवाह से लौटने का दृश्यांकन है। नेमि रथ में बैठे है और समीप ही नमस्कार-मुद्रा मे खड़े एक पुरुष की आकृति है। यह आकृति सम्भवतः राजीमती के पिता की है जो दीक्षा ग्रहण के लिए तत्पर नेमि से ऐसा न कर विवाह-मण्डप वापस चलने की प्रार्थना कर रहे है। आगे नेमि को शिविका मे बैठकर दीक्षा के लिए जाते हुए दरशाया गया है। समीप ही ९ नृत्य एवं वाद्यवादन करती आकृतियां हैं, जो दीक्षा-कल्याणक के अवसर पर आनन्द मग्न है। आगे नेमि के आभरणो के परित्याग एवं केश-लुंचन के दृश्य है। समीप ही नेमि की कायोत्सर्ग मे तपस्यारत मूर्ति भी उत्कीर्ण है। दाहिने छोर पर गिरनार पर्वत और देवालय बने है। देवालय मे द्विभुज अम्बिका की मूर्ति प्रतिष्ठापित है। पश्चिम की ओर नेमि का समवसरण उत्कीर्ण है जिसमे ऊपर की ओर नेमि की ध्यानस्थ मूर्ति है। समवसरण मे परस्पर शत्रुभाव रखने वाले पशु-पक्षियो (गज-सिंह, मयूर-सर्प) को साथ-साथ प्रदर्शित किया गया है। बायीं ओर के जिनालय मे नेमि की ध्यानस्थ मूर्ति प्रतिष्ठित है। समीप ही चार उपासकों की मूर्तियां और दो देवालय भी उत्कीर्ण हैं। ये चित्रण गिरनार पर्वत पर नेमि एवं अम्बिका के मन्दिरो के निर्माण से सम्बन्धित है।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के पांचवें वितान पर नेमि के जीवनदृश्य है[1] (चित्र २२ वामार्ध)। दक्षिणी छोर पर नेमि के पूर्वभव (शंख) का अंकन है। इसमें शख के पिता श्रीषेण और शख की मूर्तियां उत्कीर्ण है। दक्षिणी-पश्चिमी छोरों पर कई विश्रामरत मूर्तियां है। नीचे 'अपराजित विमान देव' लिखा है। ज्ञातव्य है कि शंख का जीव अपराजित विमान से ही शिवा के गर्भ मे आया था। उत्तर की ओर समुद्रविजय एवं हरिवंश (या यदुवंश) के शासकों की कई मूर्तियां है। अन्तिम आकृति के नीचे 'समुद्रविजय' उत्कीर्ण है। पश्चिम की ओर नेमि की माता की शय्या पर लेटी आकृति एवं १४ शुभ स्वप्न चित्रित हैं। उत्तर की ओर शिवा देवी शिशु के साथ लेटी है। नीचे 'श्रीशिवादेवी रानी प्रसूतिगृह—नेमिनाथ जन्म' अभिलिखित है। आगे नेमि के जन्म-अभिषेक का दृश्य है। पूर्व की ओर नेमि को दो स्त्रियां स्नान करा रही है।

आगे कृष्ण की आयुधशाला चित्रित है जिसमे कृष्ण के शंख, गदा, चक्र, खड्ग जैसे आयुध प्रदर्शित है। समीप ही नेमि कृष्ण का पांचजन्य शंख बजा रहे है। आकृति के नीचे 'श्रीनेमि' लिखा है। जैन ग्रन्थों मे उल्लेख है कि एक बार नेमि घूमते हुए कृष्ण की आयुधशाला पहुंच गए, जहां उन्होने कृष्ण के आयुधो को देखा। कौतुकवश नेमि ने शंख की ओर हाथ बढ़ाया पर आयुधशाला के रक्षक ने नेमि को ऐसा करने से रोका और कहा कि शंख का बजाना तो दूर वे उसे उठा भी नही सकेंगे। इस पर नेमि ने शंख को बजा दिया। जब इसकी सूचना कृष्ण को मिली तो वे नेमि की इस अपार शक्ति से सशंकित हो उठे और उन्होंने नेमि से शक्ति परीक्षण की इच्छा व्यक्त की। नेमि ने द्वन्द्व युद्ध के स्थान पर एक दूसरे की भुजा को झुकाकर बल परीक्षण करने को कहा। कृष्ण नेमि की भुजा किंचित भी नही झुका सके किन्तु नेमि ने सहजभाव से कृष्ण की भुजा झुका दी। कृष्ण नेमि को इस अपरिमित शक्ति से भयभीत हुए किन्तु बलराम ने कृष्ण को बताया कि चक्रवर्ती और इन्द्र से अधिक शक्तिशाली होने के बाद भी नेमि स्वभाव मे शान्त और राज्यलिप्सा से मुक्त है। इसी समय

---

१ दक्षिणार्ध पर शान्ति के जीवदृश्य है।

आकाशवाणी भी हुई कि नेमि २२वें जिन हैं, जो अविवाहित रहते हुए ब्रह्मचर्य की अवस्था मे ही दीक्षा ग्रहण करेंगे ।[1] महावीर मन्दिर में केवल नेमि के शंख बजाने का दृश्य ही उत्कीर्ण है ।

कृष्ण की आयुधशाला के समीप वार्तालाप की मुद्रा मे वसुदेव-देवकी की मूर्तियां हैं । दक्षिण की ओर नेमि का विवाह-मण्डप है । वेदिका के समीप राजीमती को अपनी एक सखी के साथ वार्तालाप की मुद्रा में दिखाया गया है । आकृतियों के नीचे 'राजीमती' और 'सखी' अभिलिखित हैं । इस दृश्य के ऊपर स्वजनों एव सैनिकों के साथ नेमि के विवाह के लिए प्रस्थान का दृश्य है । समीप ही पिंजरे मे बन्द मृग, शूकर, मेष जैसे पशु उत्कीर्ण है । साथ ही विवाह मण्डप की ओर आते और विवाहमण्डप के विपरीत दिशा मे जाते हुए दो रथ भी बने है, जिनमे नेमि बैठे है । दूसरा रथ नेमि के बिना विवाह किये वापिस लौटने का चित्रण है । उत्तर को ओर नेमि की दीक्षा का दृश्य है । नेमि अपने दाहिने-हाथ से केशो का लुंचन कर रहे हैं । ध्यानमुद्रा में विराजमान नेमि के समीप ही हार, मुकुट एवं अंगूठी उत्कीर्ण है जिसका दीक्षा के पूर्व नेमि ने त्याग किया था । समीप ही इन्द्र खडे है जो नेमि के लुंचित केशों को पात्र मे संचित कर रहे है । बायीं ओर नेमि की कायोत्सर्ग-मुद्रा में तपस्यारत मूर्ति है । समीप ही एक देवालय बना है जिसके नीचे जयन्तनाग (जयन्त नगा) लिखा है । मध्य मे नेमि का समवसरण है । समवसरण के समीप ही नेमि की दो ध्यानस्थ मूर्तियां भी हैं । समीप ही द्विभुजा अम्बिका भी आमूर्तित है ।

विमलवसही की देवकुलिका १० के वितान के दृश्यो में मध्य में कृष्ण एव उनकी रानियो और नेमि को जल-क्रीडा करते हुए दिखाया गया है । जैन परम्परा मे उल्लेख है कि समुद्रविजय के अनुरोध पर कृष्ण नेमि को विवाह के लिए सहमत करने के उद्देश्य से जलक्रीड़ा के लिए ले गए थे ।[2] दूसरे वृत्त में कृष्ण की आयुधशाला एवं कृष्ण और नेमि के शक्ति परीक्षण के दृश्य है । दृश्य में कृष्ण बैठे है और नेमि उनके सामने खडे है । दोनों की भुजाएं अभिवादन की मुद्रा मे उठी हैं । आगे नेमि को कृष्ण की गदा घुमाते और कृष्ण को नेमि की भुजा झुकाने का असफल प्रयास करते हुए दिखाया गया है । नेमि की भुजा तनिक भी नही झुकी है । अगले दृश्य मे नेमि कृष्ण की भुजा केवल एक हाथ से झुका रहे है । कृष्ण की भुजा झुकी हुई है । समीप ही नेमि को पांचजन्य शंख बजाते एवं धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाते हुए मूर्तिया भी उत्कीर्ण है । धनुष दो टुकडो मे खण्डित हो गया है । आगे बलराम एवं कृष्ण की वार्तालाप मे संलग्न मूर्तियां है ।

तीसरे वृत्त में नेमि के विवाह का दृश्याकन है । प्रारम्भ मे एक पुरुष-स्त्री युगल को वार्तालाप की मुद्रा मे दिखाया गया है । आगे विवाह-मण्डप उत्कीर्ण है जिसके समीप पिंजरों मे बन्द मृग, शूकर, सिंह जैसे पशु चित्रित है । आगे नेमि को रथ में बैठकर विवाह-मण्डप की ओर जाते हुए दिखाया गया है । इस रथ के पास ही विवाह-मण्डप से विपरीत दिशा में जाता हुआ एक दूसरा रथ भी उत्कीर्ण है । यह नेमि के विवाह-स्थल पर पहुँचने से पूर्व ही वापिस लौटने का चित्रण है । आगे नेमि की ध्यानमुद्रा मे एक मूर्ति है जिसमें नेमि दाहिने हाथ से अपने केशो का लुंचन कर रहे है । नेमि के बायीं ओर चार आकृतियां है और दाहिनी ओर इन्द्र खडे है । इन्द्र नेमि के लुंचित केशों को पात्र मे संचित कर रहे है । अगले दृश्य में नेमि के कैवल्य प्राप्ति का चित्रण है । नेमि ध्यानमुद्रा मे विराजमान है और उनके दोनो ओर कलशधारी एवं मालाधारी आकृतियां बनी है ।[3]

लूणवसही की देवकुलिका ११ के वितान पर कृष्ण एवं जरासन्ध के युद्ध, नेमि के विवाह एवं दीक्षा के विस्तृत चित्रण हैं ।[4] सम्पूर्ण दृश्यावली सात पंक्तियों मे विभक्त है । चौथी पंक्ति मे विवाह-स्थल की ओर जाता हुआ नेमि का रथ

---

१ त्रि०श०पु०च०, खं० ५, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९६२, पृ० २४८–५०; हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १८५–८६

२ त्रि०श०पु०च०, खं० ५, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९६२, पृ० २५०–५५

३ जयन्त विजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० ६७–६९ ४ वही, पृ० १२२

उत्कीर्ण है। रथ के समीप ही पिंजरे में बन्द शूकर, मृग जैसे पशु चित्रित हैं। विवाह-मण्डप में वेदिका के एक ओर नेमि की और दूसरी ओर खड़ी राजीमती की मूर्ति है। नेमि की हथेली पर राजीमती की हथेली रखी है। विवाह-मण्डप के समीप उग्रसेन का महल है। पांचवीं पंक्ति मे विवाह के बाद बारात के वापिस लौटने का दृश्य है। एक शिबिका में दो आकृतियां बैठी हैं। कही ऐसा तो नही कि शिबिका की दो आकृतियां नेमि के विवाह के बाद राजीमती के साथ वापिस लौटने का चित्रण है? आगे नेमि को गिरनार पर्वत पर कायोत्सर्ग मे तपस्यारत प्रदर्शित किया गया है। छठी पंक्ति मे नेमि के दीक्षा-कल्याणक का दृश्य है। लूणवसही की देवकुलिका ९ के वितान के दृश्यों की भी संभावित पहचान नेमि के जीवनदृश्यों से की गई है।[1]

कल्पसूत्र के चित्रों मे सबसे पहले नेमि के पूर्वभव का अंकन है। आगे नेमि के शंख लांछन के पूजन, नेमि के जन्म एवं जन्म-अभिषेक के दृश्य है। तदुपरान्त नेमि और कृष्ण के शक्ति परीक्षण के चित्र हैं। चित्र में चतुर्भुज कृष्ण को दो भुजाओ से नेमि की भुजा झुकाने का प्रयास करते हुए दिखाया गया है। कृष्ण के समीप ही उनके आयुध—शंख, चक्र, गदा एवं पद्म चित्रित है। अगले चित्रो मे नेमि के विवाह और दीक्षा के दृश्य है। आगे नेमि का समवसरण और ध्यानमुद्रा में विराजमान नेमि के चित्र है।[2]

विश्लेषण

विभिन्न क्षेत्रों की मूर्तियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऋषभ, पार्श्व और महावीर के बाद नेमि ही उत्तर भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय जिन थे। नेमि के जीवनदृश्यों के अंकन अन्य जिनों की तुलना मे अधिक है। कला मे ऋषभ और पार्श्व के बाद नेमि की ही मूर्ति के लक्षण सुनिश्चित हुए। मथुरा में कुषाणकाल मे नेमि के साथ बलराम और कृष्ण का अकन प्रारम्भ हुआ। २४ जिनो मे से नेमि का शंख लांछन सबसे पहले प्रदर्शित हुआ। राजगिर की ल० चौथी शती ई० की मूर्ति इसका प्रमाण है। ल० सातवी शती ई० का भारत कला भवन, वाराणसी (२१२) की मूर्ति मे नेमि के साथ यक्ष-यक्षी भी निरूपित हुए। अधिकांश उदाहरणों मे नेमि के साथ यक्ष-यक्षी के रूप मे सर्वानुभूति (या कुबेर) एवं अम्बिका उत्कीर्ण है। देवगढ एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ की कुछ मूर्तियो मे सामान्य लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी भी निरूपित है। गुजरात एवं राजस्थान की श्वेतांबर मूर्तियों मे लांछन के स्थान पर पीठिका-लेखो मे नेमि के नामोल्लेख की परम्परा ही प्रचलित थी। मथुरा एव देवगढ की कुछ स्वतन्त्र मूर्तियो (१०वी–११वी शती ई०) मे नेमि के साथ बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित है।

(२३) पार्श्वनाथ

जीवनवृत्त

पार्श्वनाथ इस अवसर्पिणी के तेईसवें जिन है। पार्श्व को जैन धर्म का वास्तविक संस्थापक माना गया है। वाराणसी के महाराज अश्वसेन उनके पिता और वामा (या वर्मिला) उनकी माता थीं।[3] जन्म के समय बालक सर्प के चिह्न से चिह्नित था। **आवश्यकचूर्णि** एवं **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** में उल्लेख है कि गर्भकाल मे माता ने एक रात अपने पार्श्व में सर्प को देखा था, इसी कारण बालक का नाम पार्श्वनाथ रखा गया। **उत्तरपुराण** के अनुसार जन्माभिषेक के बाद इन्द्र ने बालक का नाम पार्श्वनाथ रखा। पार्श्व का विवाह कुशस्थल के शासक प्रसेनजित की पुत्री प्रभावती से हुआ। दिगंबर ग्रन्थों में पार्श्व के विवाह-प्रसंग का अनुल्लेख है। श्वेतांबर परम्परा के अनुसार नेमि के भित्ति चित्रों को देखकर, और दिगंबर परम्परा के अनुसार ऋषभ के त्यागमय जीवन की बातों को सुनकर, तीस वर्ष की अवस्था मे

१ जयन्त विजय, मुनिश्री, **पू०नि०**, पृ० १२१

२ ब्राउन, डब्ल्यू० एन०, **पू०नि०**, पृ० ४५–४९, फलक ३०–३४, चित्र १०१–१४

३ **उत्तरपुराण** और **महापुराण** (पुष्पदंतकृत) में पार्श्व के माता-पिता का नाम क्रमश: ब्राह्मी और विश्वसेन बताया गया है।

पार्श्व के मन मे वैराग्य उत्पन्न हुआ। पार्श्व ने आश्रमपद उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे पंचमुष्टि मे केशों का लुंचन कर दीक्षा ली।

पार्श्व वाराणसी से शिवपुरी नगर गये और वहीं कौशाम्बवन मे कायोत्सर्ग में खड़े होकर तपस्या प्रारम्भ की। धरणेन्द्र ने धूप से पार्श्व की रक्षा के लिए उनके मस्तक पर छत्र की छाया की थी। अपने एक भ्रमण मे पार्श्व तापसाश्रम पहुंचे और सन्ध्या हो जाने के कारण वहीं एक वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग में खड़े होकर तपस्या प्रारम्भ की। उसी समय आकाशमार्ग से मेघमाली (या शम्बर) नाम का असुर (कमठ का जीव) जा रहा था। जब उसने तपस्यारत पार्श्व को देखा तो उसे पार्श्व से अपने पूर्वजन्मों के बैर का स्मरण हो आया। मेघमाली ने पार्श्व की तपस्या को भंग करने के लिए तरह-तरह के उपसर्ग उपस्थित किये। पर पार्श्व पूरी तरह अप्रभावित और अविचलित रहे। मेघमाली ने सिंह, गज, वृश्चिक, सर्प और भयंकर बैताल आदि के स्वरूप धारण कर पार्श्व को अनेक प्रकार की यातनाएं दी। उपसर्गों के बाद भी जब पार्श्व विचलित नहीं हुए तो मेघमाली ने माया से भयंकर वृष्टि प्रारम्भ की जिसमे सारा वन प्रदेश जलमग्न हो गया। पार्श्व के चारों ओर वर्षा का जल बढ़ने लगा जो धीरे-धीरे उनके घुटनो, कमर, गर्दन और नासाग्र तक पहुच गया। पर पार्श्व का ध्यान भंग नही हुआ। उसी समय पार्श्व की रक्षा के लिए नागराज धरणेन्द्र पद्मावती एवं वैरोट्या जैसी नाग देवियो के साथ पार्श्व के समीप उपस्थित हुए। धरणेन्द्र ने पार्श्व के चरणो के नीचे दीर्घनालयुक्त पद्म की रचना कर उन्हे ऊपर उठा दिया, उनके सम्पूर्ण शरीर को अपने शरीर से ढंक लिया; साथ ही शीर्ष भाग के ऊपर सहस्रसर्पफणो का छत्र भी प्रसारित किया।[1] **उत्तरपुराण** के अनुसार धरणेन्द्र ने पार्श्व को चारो ओर से घेर कर अपने फणों पर उठा लिया था, और उनकी पत्नी पद्मावती ने शीर्ष भाग में वज्रमय छत्र की छाया की थी।[2] अन्त मे मेघमाली ने अपनी पराजय स्वीकार कर पार्श्व से क्षमायाचना की। इसके बाद धरणेन्द्र भी देवलोक चले गये। उपर्युक्त परम्परा के कारण ही मूर्तियो मे पार्श्व के मस्तक पर सात सर्पफणों के छत्र प्रदर्शन की परम्परा प्रारम्भ हुई। मूर्तियो मे पार्श्व के घुटनों या चरणों तक सर्प की कुण्डलियां का प्रदर्शन भी इसी परम्परा से निर्देशित है। पार्श्व को कभी-कभी तीन और ग्यारह सर्पफणों के छत्र से भी युक्त दिखाया गया है।[3]

पार्श्व को वाराणसी के निकट आश्रमपद उद्यान मे धातकी वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग-मुद्रा मे केवल-ज्ञान और १०० वर्ष की अवस्था में सम्मेद शिखर पर निर्वाण-पद प्राप्त हुआ।[4]

प्रारम्भिक मूर्तियां

पार्श्व का लांछन सर्प है और यक्ष-यक्षी पार्श्व (या वामन) और पद्मावती है। दिगंबर परम्परा में यक्ष का नाम धरण है। पीठिका पर पार्श्व के सर्प लांछन के उत्कीर्णन की परम्परा लोकप्रिय नही थी, पर सिर के ऊपर सात सर्पफणो का छत्र सदैव प्रदर्शित किया गया है। आगे के अध्ययन में शीर्षभाग के सर्पफणो का उल्लेख तभी किया जायगा जब उनकी संख्या सात से कम या अधिक होगी।

पार्श्व की प्राचीनतम मूर्तिया पहली शती ई० पू० की हैं। इनमें पार्श्व सर्पफणो के छत्र से युक्त है। ये मूर्तियां चौसा एवं मथुरा से मिली है। मथुरा की मूर्ति आयागपट पर उत्कीर्ण है। इसमे पार्श्व ध्यानमुद्रा मे विराजमान है।[5] चौसा (भोजपुर, बिहार)[6] एवं प्रिंस ऑव वेल्स संग्रहालय, बम्बई[7] की दो मूर्तियो मे पार्श्व निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग-मुद्रा

१ **त्रि०श०पु०च०**, खं० ५, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज १३९, बड़ौदा, १९६२, पृ० ३९४–९६; **पासनहचरिउ** १४.२६; **पार्श्वनाथचरित्र** ६.१९२–९३

२ **उत्तरपुराण** ७३.१३९–४०

३ भट्टाचार्य, बी०सी०, **पू०नि०**, पृ० ८२

४ हस्तीमल, **पू०नि०**, पृ० २८१–३३२

५ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे २५३

६ शाह, यू०पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, फलक १ बी

७ **स्ट०जै०आ०**, पृ० ८–९, पार्श्व के मस्तक पर पांच सर्पफणों का छत्र है।

में खड़े हैं। कुषाण काल में ऋषभ के बाद पार्श्व की ही सर्वाधिक मूर्तिया उत्कीर्ण हुई। कुषाण कालीन मूर्तियां मथुरा एवं चौसा से मिली है। इनमे सात सर्पफणों के छत्र से शोभित पार्श्व सदैव निर्वस्त्र हैं। चौसा की मूर्ति में पार्श्व (पटना संग्रहालय, ६५३३) कायोत्सर्ग मे खड़े है। मथुरा की अधिकांश मूर्तियों मे सम्प्रति पार्श्व के मस्तक ही सुरक्षित हैं।[1] राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे पार्श्व की तीन ध्यानस्थ मूर्तियां सुरक्षित है (चित्र३०)।[2] स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त जिन-चौमुखी-मूर्तियो मे भी पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तियां उत्कीर्ण है। कुषाणकाल मे पार्श्व के सर्पफणों पर स्वस्तिक, धर्मचक्र, त्रिरत्न, श्रीवत्स, कलश, मत्स्ययुगल और पद्मकलिका जैसे मागलिक चिह्न भी अकित किये गये।[3]

ल० चौथी-पाचवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे १००) मे है। मूलनायक के दक्षिण पार्श्व में एक पुरुष और वाम पार्श्व मे सर्पफण से युक्त एक स्त्री आकृति खड़ी है। स्त्री के दोनो हाथों में एक छत्र है। ल० छठी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पुरातत्व सग्रहालय, मथुरा (१८.१५०५) मे है। इसमे सर्प की कुण्डलियां पार्श्व के चरणों तक प्रसारित है। मूलनायक के दोनो ओर सर्पफण के छत्र से युक्त स्त्री-पुरुष आकृतिया खड़ी है। दक्षिण पार्श्व की पुरुष आकृति के कर में चामर और वाम पार्श्व की स्त्री आकृति के कर मे छत्र प्रदर्शित है। तुलसी संग्रहालय, रामवन (सतना) मे भी ल० पाचवीं-छठी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। पार्श्व नागकुण्डलियों पर आसीन और दो चामरधरों से वेष्टित है।[4]

अकोटा (गुजरात) और रोहतक (दिल्ली) से सातवी शती ई० की क्रमशः आठ और एक श्वेतांबर मूर्तिया मिली है। रोहतक की मूर्ति में पार्श्व कायोत्सर्ग मे खड़े है।[5] अकोटा की केवल एक ही मूर्ति मे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खड़े है। कायोत्सर्ग मूर्ति की पीठिका पर आठ ग्रहों एवं एक सर्पफण के छत्र से युक्त द्विभुज नाग-नागी की मूर्तियां उत्कीर्ण है। नाग-नागी के कटि के नीचे के भाग सर्पाकार और आपस मे गुम्फित है। एक हाथ से अभयमुद्रा व्यक्त है और दूसरे मे सम्भवतः फल है। दो मूर्तियों मे मूलनायक के दोनों ओर दो कायोत्सर्ग जिन आमूर्तित है। पीठिका पर आठग्रहों एवं सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तियां है। अन्य उदाहरणों मे भी यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही है।[6]

विश्लेषण—उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि सातवी शती ई० तक पार्श्व का लांछन नहीं उत्कीर्ण हुआ किन्तु सात सर्पफणों के छत्र का प्रदर्शन पहली शती ई० पू० मे ही प्रारम्भ हो गया। सातवी शती ई० मे पार्श्व की मूर्तियों (अकोटा) मे यक्ष-यक्षी भी निरूपित हुए। यक्ष-यक्षी के रूप मे सर्वानुभूति एव अम्बिका और नाग-नागी निरूपित है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तिया

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से प्रचुर संख्या मे पार्श्व की मूर्तिया मिली है। ल० सातवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति धाक गुफा मे है। पार्श्व निर्वस्त्र है और उनके यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका है।[7] पार्श्व की दो ध्यानस्थ मूर्तियां ओसिया के महावीर मन्दिर के गूढमण्डप मे है। इनमे पार्श्व नाग की कुण्डलियो के आसन पर बैठे है। आठवी शती ई० की दो श्वेतांबर मूर्तिया वसन्तगढ़ (सिरोही) से मिली है। इनमे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खड़े है और यक्ष-यक्षी

१ तीन उदाहरण राज्य सग्रहालय, लखनऊ (जे ९६, जे ११३, जे ११४) एवं दो अन्य क्रमशः भारत कला भवन, वाराणसी (२०७४८) एवं पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (बी ६२) मे है।

२ जे ३९, जे ६९, जे ७७

३ राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ३९, जे ११३) एवं पुरातत्त्व सग्रहालय, मथुरा (बी ६२)

४ जैन, नीरज, 'तुलसी संग्रहालय, रामवन का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त**, वर्ष १६, अं० ६, पृ० २७९

५ भट्टाचार्य, बी० सी०, **पूoनिo**, फलक ६; **स्ट०जै०आ०**, पृ० १७

६ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० ३३, ३५-३७, ३९, ४२, ४४

७ संकलिया, एच० डी०, **दि आर्किअलाजी ऑव गुजरात**, बम्बई, १९४१, पृ० १६७; **स्ट०जै०आ०**, पृ० १७

सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। पीठिका पर आठ ग्रहों की भी मूर्तियां हैं।[1] अकोटा से भी आठवीं शती ई० की दो श्वेतांबर मूर्तियां मिली हैं।[2] एक उदाहरण में पार्श्व कायोत्सर्ग मे निरूपित हैं और उनकी पीठिका पर नमस्कार-मुद्रा में सर्पफण के छत्र से युक्त नाग-नागी चित्रित हैं। दूसरी मूर्ति मे पीठिका पर आठ ग्रहो एवं सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तियां है।

अकोटा से नवी-दसवी शती ई० की भी पांच मूर्तियां मिली है।[3] दो मूर्तियों मे ध्यानमुद्रा में विराजमान पार्श्व के दोनों ओर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। पार्श्ववर्ती जिनों के समीप अप्रतिचक्रा एवं वैरोट्या महाविद्याओं की भी मूर्तियां हैं। सभी उदाहरणों में पीठिका पर ग्रहों एवं सर्वानुभूति और अम्बिका को मूर्तियां उत्कीर्ण है।[4] एक उदाहरण मे सर्वानुभूति एवं अम्बिका सर्पफण के छत्र से युक्त हैं। एक उदाहरण के अतिरिक्त पार्श्ववर्ती कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां सभी मे उत्कीर्ण है। अकोटा को दसवी-ग्यारहवी शती ई० की एक अन्य मूर्ति के परिकर मे सात जिनो और पीठिका पर ग्रहों एवं सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तियां है।[5]

९८८ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति भडौच से मिली है।[6] मूलनायक के पार्श्वों में दो कायोत्सर्ग जिनो और परिकर मे अप्रतिचक्रा एवं वैरोट्या महाविद्याओ की मूर्तियां है। पीठिका पर नवग्रहों एवं यक्ष-यक्षी की मूर्तियां है। यक्ष की मूर्ति खण्डित हो गई है, पर यक्षी अम्बिका ही है। १०३१ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति वसन्तगढ से मिली है।[7] मूर्ति के परिकर मे पांच जिनो एवं चार द्विभुज देवियों की मूर्तिया उत्कीर्ण है। पीठिका पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका और ब्रह्म-शान्ति यक्ष की मूर्तियां है।

ओसिया की देवकुलिका १ पर ग्यारहवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही है। १०१९ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति ओसिया के बलानक में सुरक्षित है। सिंहासन के छोरों पर सर्पफणों की छत्रावली वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हे। दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति भरतपुर से मिली है और सम्प्रति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (१७) मे सुरक्षित है। यहा पार्श्व के आसन के नीचे और पृष्ठ भाग मे सर्प की कुण्डलियां प्रदर्शित हैं। मूलनायक के दोनों ओर तीन सर्पफणो के छत्रों वाले चामरधर सेवक आमूर्तित है। चामरधरों के ऊपर तीन सर्पफणों के छत्रो वाली पार्श्व की चार अन्य छोटी मूर्तियां भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। दो ध्यानस्थ मूर्तियां राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में है।[8] एक मूर्ति नवी शती ई० की है और दूसरी १०६९ ई० की है। इनमें यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही है। साथ ही दो पार्श्ववर्ती जिनों, नाग-नागी एवं नवग्रहों की भी मूर्तियां उत्कीर्ण है।[9] लिल्वादेवा (गुजरात) से नवी से बारहवी शती ई० के मध्य की कई मूर्तियां मिली है। ये मूर्तिया सम्प्रति बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित है।[10] इनमे पार्श्व के साथ चामरधर सेवकों, आठ या नौ ग्रहो एव सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तियां उत्कीर्ण है। एक मूर्ति (१०३६ ई०) में मूलनायक के दोनों ओर दो जिन भी आमूर्तित हे।[11]

कुम्भारिया के जैन मन्दिरो में भी कई मूर्तियां है। महावीर मन्दिर की देवकुलिका १५ की मूर्ति (११ वी शती ई०) मे सिंहासन के दोनों ओर दो जिनों एवं मध्य में शान्तिदेवी की मूर्तियां है। परिकर मे दो अन्य जिन मूर्तियां

१ शाह, यू० पी०, 'ब्रोन्ज होर्ड फ्राम वसन्तगढ़', **ललितकला**, अं० १–२, पृ० ६०
२ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० ४४,४९
३ **वही**, पृ० ५२–५७
४ एक मूर्ति मे यक्ष-यक्षी की पहचान सम्भव नही है।
५ शाह, यू०पी०, **पूर्व०नि०**, पृ० ६०
६ **वही**, चित्र ५६ ए
७ **वही**, चित्र ६३ ए
८ क्रमांक ६८.८९, ६६.३७
९ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, 'अन्पब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि नेशनल म्यूजियम', **ज०ओ०इं०**, खं०१९, अं०३, पृ०२७५-७७
१० शाह, यू०पी०, 'सेवेन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वादेवा', **बु०ब०म्यू०**, खं० ९, भाग १–२, पृ० ४४–४५
११ **वही**, पृ० ४९–५०

भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर की पूर्वी दीवार की एक रथिका में ११०४ ई० की एक मूर्ति का सिंहासन सुरक्षित है। लेख में पार्श्वनाथ का नाम उत्कीर्ण है। पीठिका पर शान्तिदेवी एवं सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तियां है। पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २३ मे ११७९ ई० की एक मूर्ति है। लेख में पार्श्वनाथ का नाम दिया है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढमण्डप में बारहवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है। यहा यक्ष-यक्षी रूप मे सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। पार्श्व से सम्बद्ध करने के लिए यक्ष-यक्षी के मस्तकों पर सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित है। चामरधरों के ऊपर दो ध्यानस्थ जिन आकृतिया भी बनी है। ११५७ ई० की एक खड्गासन मूर्ति कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर के गूढमण्डप में है। सिंहासन-छोरों पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। परिकर में १९ उड्डीयमान आकृतिया एवं १४ चतुर्भुजी देवियां चित्रित हैं। देवियों में अधिकांश महाविद्याएं है जिनमें केवल अप्रतिचक्रा, वज्रशृंखला, सर्वास्त्र-महाज्वाला, रोहिणी एवं वैरोट्या की पहचान सम्भव है।

विमलवसही की देवकुलिका ४ मे ११८८ ई० की एक मूर्ति है जिसके शीर्ष भाग मे सात सर्पफणो के छत्र और लेख मे पार्श्वनाथ के नाम उत्कीर्ण है। ओसिया की मूर्ति के बाद यह दूसरी मूर्ति है जिसमे पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी निरूपित है। मूलनायक के दोनों ओर दो कायोत्सर्ग और दो ध्यानस्थ जिन मूर्तिया है। ललितमुद्रा मे विराजमान यक्ष पार्श्व एवं यक्षी पद्मावती तीन सर्पफणों की छत्रावलियो से युक्त है। विमलवसही की देवकु लिका२५ में भी पार्श्व की एक मूर्ति है। पर यहां यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। विमलवसही की देवकुलिका ५३ मे भी एक मूर्ति (११६५ ई०) है।

ग्यारहवीं-बारहवी शती ई० की एक दिगंबर मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली (३९.२०२) मे है (चित्र ३३)।[1] पार्श्व कायोत्सर्ग मे खड़े हैं और सर्प की कुण्डलिया उनके चरणों तक प्रसारित है। परिकर मे नाग और नागी की वीणा और वेणु बजाती और नृत्य करती हुई ६ मूर्तिया हैं। मूलनायक के प्रत्येक पार्श्व मे एक स्त्री-पुरुष युगल आमूर्तित है जिनके हाथो मे चामर एवं पद्म है। इस मूर्ति मे यक्ष-यक्षी नही उत्कीर्ण हैं।

कोटा क्षेत्र में रामगढ़ एवं अटरू से नवी-दसवी शती ई० की चार मूर्तिया मिली है। ये सभी मूर्तिया कोटा संग्रहालय मे सुरक्षित है।[2] तीन उदाहरणो मे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खड़े हैं। सभी मे चामरधर सेवक और नाग-नागी की आकृतियां उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी केवल एक ही उदाहरण (३२२) मे प्रदर्शित है। नवी से बारहवीं शती ई० के मध्य की सात मूर्तियां गंगा गोल्डेन जुबिली सग्रहालय, बीकानेर मे हैं।[3] सभी उदाहरणो मे पार्श्ववर्ती जिनों एवं आठ या नौ ग्रहों की मूर्तिया चित्रित हैं। तीन उदाहरणो मे सर्वानुभूति एवं अम्बिका भी निरूपित है। लूणवसही की देवकुलिका १० और ३३ मे भी दो मूर्तिया (१२३६ ई०) हैं। इनमे भी यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एव अम्बिका ही है।

विश्लेषण—गुजरात एवं राजस्थान की मूर्तियो के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र मे सात सर्पफणो के छत्र के साथ ही लेखों मे पार्श्वनाथ के नामोल्लेख की परम्परा भी लोकप्रिय था। पर लांछन एवं पारम्परिक यक्ष-यक्षी का निरूपण दुर्लभ है। केवल ओसिया (बलानक) एवं विमलवसही (देवकुलिका ४) की ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की दो मूर्तियो में ही यक्ष-यक्षी पारम्परिक है। अन्य उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। कुछ उदाहरणो मे पार्श्व से सम्बन्धित करने के उद्देश्य से यक्ष-यक्षी के सिरों पर सर्पफणों के छत्र भी प्रदर्शित किये गये हैं। पार्श्व के दोनो ओर दो कायोत्सर्ग जिनो एवं परिकर मे महाविद्याओ, ग्रहो, शान्तिदेवी आदि के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—राज्य सग्रहालय, लखनऊ मे आठवी से दसवी शती ई० के मध्य की दस मूर्तियां हैं।[4] पांच उदाहरणों मे पार्श्व ध्यानमुद्रा मे आसीन है। यक्ष-यक्षी चार ही उदाहरणो मे निरूपित है। परम्परिक यक्ष-यक्षी

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र सग्रह ए २.२८

२ क्रमाक ३१९, ३२०, ३२१, ३२२

३ श्रीवास्तव, वी० एस०, पूर्वनि०, पृ० १८–१९

४ क्रमांक जे ७९४, जे ८८२, जे ८५९, जे ८४६, ४८.१८२, जी ३१०, ४०.१२१, जी २२३

केवल बटेश्वर (आगरा) की ग्यारहवी शती ई० की एक खड्गासन मूर्ति (जे ७९४) मे ही उत्कीर्ण हैं। इसमें यक्ष-यक्षी पांच सर्पफणो की छत्रावली से युक्त है। पद्मावती सिंहासन के मध्य में और धरणेन्द्र बायें छोर पर उत्कीर्ण हैं। यक्ष के ऊपर पद्म और वरद-(या अभय-) मुद्रा प्रदर्शित करनेवाली दो देव आकृतियां भी चित्रित हैं। अन्य तीन उदाहरणों मे यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले है। ९७९ ई० की एक मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी मे प्रातिहार्यों एवं सहायक देवों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

राजघाट (वाराणसी) की आठवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (४८.१८२) के परिकर में दो छोटी जिन मूर्तिया और मूलनायक के पार्श्वों मे सर्पफणो की छत्रावली वाले पुरुष-स्त्री सेवक उत्कीर्ण हैं। वाम पार्श्व की स्त्री आकृति की दाहिनी भुजा मे लम्बे दण्डवाला छत्र है। छत्र मूलनायक के मस्तक के ऊपर प्रदर्शित है। फलतः त्रिछत्र नही प्रदर्शित है। उन सभी मूर्तियो मे जिनमे पार्श्व के सिर के ऊपर छत्र सेविका द्वारा धारित है, त्रिछत्र नही प्रदर्शित है। ल० नवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जी ३१०) में मूलनायक के पार्श्वों मे तीन सर्पफणो के छत्रो वाली पुरुष-स्त्री सेवक आकृतियां निरूपित है। सहेठ-महेठ की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे८५९, ११वी शतीई०) मे पार्श्व के शरीर के दोनो ओर सर्प की कुण्डलिया और परिकर मे चार जिन मूर्तिया बनी है। महोबा (हमीरपुर) की कायोत्सर्ग मूर्ति (जे ८४६, १२वी शती ई०) मे सामान्य चामरधरों के अतिरिक्त दाहिनी ओर एक और चामरधर की मूर्ति है, जो आकार मे पार्श्वनाथ की मूर्ति के समान है। यह धरणेन्द्र यक्ष की मूर्ति है जिसे पार्श्व के चामरधर के रूप मे निरूपित कर यहा विशेष प्रतिष्ठा दी गई है। ११९६ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (जी २२३) मे पीठिका पर सर्प लांछन उत्कीर्ण है। इसमें पार्श्व के स्कन्धों पर जटाए भी प्रदर्शित है।

देवगढ मे नवी से ग्यारहवी शती ई० के मध्य की ३० मूर्तियां है। २३ उदाहरणो मे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खडे है। नवी-दसवी शती ई० की कई विशाल मूर्तियो मे पार्श्व साधारण पीठिका पर खडे है। ऐसी अधिकांश मूर्तियां मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर है। इन मूर्तियों मे मूलनायक के दोनो ओर सर्पफणों की छत्रावली वाली या बिना सर्पफणों वाली स्त्री-पुरुष चामरधर मूर्तिया उत्कीर्ण है। कुछ उदाहरणो मे पुरुष की भुजा मे चामर और स्त्री की भुजा में लम्बा छत्र प्रदर्शित है। इन विशाल मूर्तियो मे भामण्डल एवं उड्डायमान मालाधरों के अतिरिक्त अन्य कोई प्रातिहार्य या सहायक आकृति नही उत्कीर्ण है।

देवगढ की सभी मूर्तियो मे सर्प की कुण्डलिया पार्श्व के घुटनो या चरणो तक प्रसारित है। कुछ उदाहरणो मे पार्श्व सर्प की कुण्डलियों पर ही विराजमान भी है। पार्श्व के साथ लांछन केवल एक मूर्ति (मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी, ११वी शती ई०) मे उत्कीर्ण है। कायोत्सर्ग मे खडे पार्श्व की पीठिका पर लाछन के रूप मे कुक्कुट-सर्प बना है (चित्र ३१)। मन्दिर ६ की दसवी शती ई० की एक खड्गासन मूर्ति मे पार्श्व के दोनो ओर तीन सर्पफणों वाली दो नाग आकृतियां बनी है (चित्र ३२)। मन्दिर ६ और ९ की दो मूर्तियो मे पार्श्व के कन्धो पर जटाएं भी प्रदर्शित है। दसवी-ग्यारहवी शती ई० की छह मूर्तियों में सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। तीन उदाहरणो मे इनके शीर्ष भाग मे सर्पफणो के छत्र भी प्रदर्शित है।[1] पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल एक ही मूर्ति (११वी शती ई०) मे निरूपित है। यह मूर्ति मन्दिर १२ के समीप अरक्षित अवस्था मे पड़ी है। चतुर्भुज यक्ष-यक्षी सर्पफणो के छत्रो से युक्त है। पार्श्व के कन्धो पर जटाएं प्रदर्शित है।

मन्दिर १२ के सभामण्डप एव पश्चिमी चहारदीवारी की दसवी-ग्यारहवी शती ई० की दो खड्गासन मूर्तियो मे पार्श्व के साथ यक्षी रूप में अम्बिका आमूर्तित है। इनमे यक्ष नही उत्कीर्ण है। मन्दिर १२ के प्रदक्षिणापथ की दसवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति मे मूलनायक के दाहिने और बायें पार्श्वों मे एक सर्पफण की छत्रावली से युक्त क्रमशः चामरधर पुरुष एवं छत्रधारिणी स्त्री आकृतियां उत्कीर्ण है। पाच अन्य मूर्तियों मे भी ऐसी ही आकृतियां बनी है।[2]

---

१ मन्दिर ९ की एक एव मन्दिर १२ की दो मूर्तियां

२ मन्दिर ८ एवं १२

मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की एक ध्यानस्थ मूर्ति (ल० ११वीं शती ई०) में पुरुष के हाथ में छत्र प्रदर्शित है। मन्दिर ४ की कायोत्सर्ग मूर्ति (११वी शती ई०) में चामरधर सेवक तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त हैं। मन्दिर १२ के सभामण्डप की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वी शती ई०) में नवग्रहों की मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। दक्षिण पार्श्व में चामरधर के समीप दो स्त्री आकृतिया खड़ी है। वामपार्श्व मे द्विभुज अम्बिका है। मन्दिर ९, साहू जैन संग्रहालय, देवगढ, एवं मन्दिर ४ की मूर्तियों के परिकर मे चार एवं मन्दिर ३ एवं मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की मूर्तियो मे दो छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण है।

ल० नवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति रीवा (म० प्र०) के समीप गुर्गी नामक स्थान से मिली है और इलाहाबाद संग्रहालय (ए० एम० ४९९) मे सुरक्षित है।[1] इसमें सर्प की कुण्डलियां चरणो तक बनी है। दोनों पार्श्वों में क्रमश: एक सर्पफण से युक्त चामरधर सेवक और छत्रधारिणी सेविका आमूर्तित है। कगरोल (मथुरा) से मिली १०३४ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (२८७४) मे है। यहां सिंहासन के छोरों पर सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित है।

खजुराहो में दसवीं से बारहवी शती ई० के मध्य की ग्यारह मूर्तियां है। छह उदाहरणो मे पार्श्व कायोत्सर्ग मे खडे हैं। सात उदाहरणो मे सर्प की कुण्डलिया चरणो तक प्रसारित हैं। पाच उदाहरणो में पार्श्व सर्प की कुण्डलियों पर ही विराजमान है। यक्ष-यक्षी केवल चार ही उदाहरणों में निरूपित है। दो कायोत्सर्ग मूर्तियो (मन्दिर २८ एवं ५) मे मूलनायक के पार्श्वों में तीन सर्पफणों वाले स्त्री-पुरुष चामरधर उत्कीर्ण है। दो ध्यानस्थ मूर्तियां (११ वी शती ई०) मे सर्पफणों के छत्रों से युक्त चामरधर सेवक और छत्रधारिणी सेविका है।[2] मन्दिर ५ की बारहवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति में सामान्य चामरधरो के समीप दो अन्य स्त्री-पुरुष चामरधर चित्रित हैं जिनके शीर्षभाग में सात सर्पफणो के छत्र है। ये धरणेन्द्र और पद्मावती की मूर्तियां है। मूर्ति के परिकर मे एक छोटी जिन, बायें छोर पर द्विभुज देवी और पीठिका के मध्य मे चतुर्भुज सरस्वती (या शान्तिदेवी) की मूर्तियां हैं। स्थानीय संग्रहालय की बारहवी शती ई० की एक मूर्ति (के ९) में पीठिका पर चार ग्रहों एवं परिकर में ४६ जिनों की मूर्तियां उत्कीर्ण है।

स्थानीय संग्रहालय की ग्यारहवी शती ई० को एक कायोत्सर्ग मूर्ति (के ५) मे चतुर्भुज यक्ष और द्विभुज यक्षी निरूपित है। यक्षी तीन सर्पफणो की छत्रावली से युक्त है। परिकर मे छह छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो की बारहवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (१६१८) मे द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्पफणों से शोभित है। परिकर में चार छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण है। स्थानीय संग्रहालय की ग्यारहवी शती ई० की दो अन्य मूर्तियों (के ६८, १००) में भी यक्ष-यक्षी सर्पफणों की छत्रावलियों से युक्त है। एक उदाहरण (के ६८) मे चतुर्भुज यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र एवं पद्मावती है। इस मूर्ति के परिकर में २० जिन मूर्तिया भी उत्कीर्ण है। मन्दिर १ और जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो (१६६८) की दो ध्यानस्थ मूर्तियों के परिकर मे भी क्रमशः १८ और ६ जिन मूर्तियां है। धुबेला संग्रहालय की एक ध्यानस्थ मूर्ति (४९, ११ वी–१२ वी शती ई०) मे चतुर्भुज नागी एव द्विभुज नाग की मूर्तियां उत्कीर्ण है।[3]

विश्लेषण—उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश की मूर्तियों के विस्तृत अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र मे पार्श्व के साथ सात सर्पफणों के छत्र का प्रदर्शन नियमित था और अधिकांशतः इसी के आधार पर पार्श्व की पहचान भी की गई है। पार्श्व के साथ लांछन केवल दो ही मूर्तियो (११वी–१२वी शती ई०) में उत्कीर्ण है। ये मूर्तियां राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जी २२३) एव देवगढ़ के मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर है। पार्श्व के साथ यक्ष-यक्षी युगल का निरूपण विशेष लोकप्रिय नही था। पारम्परिक यक्ष-यक्षी, धरणेन्द्र-पद्मावती, केवल देवगढ़, खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ

१ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० ११५
२ मन्दिर १ एवं जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो, १६६८
३ दीक्षित, एस०के०, **ए गाइड टू दि स्टेट म्यूजियम, धुबेला (नवगांव), विन्ध्यप्रदेश**, नवगाव, १९५७, पृ० १४–१५

की ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की ही कुछ मूर्तियों में निरूपित है। अधिकांशतः पार्श्व के साथ सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित है जिनके सिरों पर कभी-कभी सर्पफणों के छत्र भी प्रदर्शित है। सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी का अंकन ल० दसवी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया। कुछ उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका भी है। सर्पफणो के छत्रो से युक्त या बिना सर्पफणो वाले स्त्री-पुरुष चामरधरो या चामरधर पुरुष और छत्रधारिणी स्त्री के अंकन आठवी से बारहवी शती ई० के मध्य विशेष लोकप्रिय थे। कुछ मूर्तियो मे लटकती जटाएं, नाग-नागी एवं सरस्वती भी अंकित है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—बंगाल और उड़ीसा में अन्य किसी भी जिन की तुलना मे पार्श्व की मूर्तियां अधिक हैं। ल० नवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति उदयगिरि पहाड़ी (बिहार) के आधुनिक मन्दिर मे प्रतिष्ठित है।[1] बांकुड़ा से प्राप्त और भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में सुरक्षित ल० दसवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति में पीठिका पर सर्प लांछन उत्कीर्ण है। चौबोस परगना (बंगाल) में कान्तावेनिआ से प्राप्त ग्यारहवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति के परिकर में २३ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। समान विवरणों वाली दसवी-ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तिया बहुलारा के सिद्धेश्वर मन्दिर एवं पारसनाथ (अम्बिकानगर) में है।[2] पारसनाथ से प्राप्त मूर्ति मे नाग-नागी भी उत्कीर्ण है।[3] अम्बिकानगर के समीप केंदुआग्राम से भी एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है।[4] मूलनायक के पार्श्वो मे तीन सर्पफणों की छत्रावली वाली दो नागी मूर्तियां उत्कीर्ण है।

ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की दो खड्गासन और दो ध्यानस्थ मूर्तियां[5] अलुआरा से मिली है। ये मूर्तियां सम्प्रति पटना संग्रहालय मे सुरक्षित है।[6] एक मूर्ति मे नवग्रहों एवं एक अन्य में दो नागो की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां पोट्टासिंगीदी (क्योंझर) से मिली है।[7] भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता की एक मूर्ति मे पार्श्व के समीप छत्र धारण करनेवाली नागी की मूर्ति है।[8] परिकर मे कुछ मानव, असुर एवं पशुमुख आकृतियां उत्कीर्ण है। ये आकृतिया पत्थर एवं खड्ग से पार्श्व पर आक्रमण की मुद्रा में प्रदर्शित हैं। यह सम्भवतः मेघमाली के उपसर्गों का चित्रण है।

उड़ीसा की नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं मे ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की कई मूर्तिया है। बारभुजी गुफा की ध्यानस्थ मूर्ति के आसन पर त्रिफण नाग लाछन उत्कीर्ण है (चित्र ५९)। मूर्ति के नीचे पद्मावती यक्षी निरूपित है।[9] नवमुनि गुफा की मूर्ति मे ध्यानस्थ पार्श्व जटामुकुट से शोभित है और उनकी पीठिका पर दो नाग आकृतिया उत्कीर्ण है।[10] नवमुनि गुफा को दूसरी ध्यानस्थ मूर्ति में भी आसन पर तीन सर्पफणों वाली दो नाग मूर्तियां है। नीचे पद्मावती यक्षी की मूर्ति है।[11]

विश्लेषण—उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में सर्प लांछन तुलनात्मक दृष्टि से अधिक उदाहरणो मे उत्कीर्ण है। पार्श्व के यक्ष-यक्षी की मूर्तियां इस क्षेत्र मे नही उत्कीर्ण हुईं। केवल बारभुजी एवं नवमुनि गुफाओ की मूर्तियों मे ही नीचे पद्मावती की मूर्तियां है।

---

१ आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, फलक ६०, चित्र ई, पृ० ११५
२ बनर्जी, जे० एन०, 'जैन इमेजेज', **दि हिस्ट्री ऑव बंगाल**, खं० १, ढाका, १९४३, पृ० ४६५
३ मित्रा, देबला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज़ फ्राम बांकुड़ा, वेस्ट बंगाल', **ज०ए०सो०बं०**, खं०२४, अं०२, पृ० १३३–३४
४ **वही**, पृ० १३४
५ पटना संग्रहालय ६५३१, ६५३३, १०६७८, १०६७९
६ प्रसाद, एच० के०, **पू०नि०**, पृ० २८१, २८८
७ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट आन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', **उ०हि०रि०ज०**, अं० १०, अं० ४, पृ० ३१–३२
८ एण्डरसन, जे०, **पू०नि०**, पृ० २१३–१४
९ मित्रा, देबला, '**शासन देवीज इन दि खण्डगिरि केव्स**', **ज०ए०सो०**, खं० १, अं० २, पृ० १३३
१० **वही**, पृ० १२९
११ **वही**, पृ० १२९

जीवनदृश्य

पार्श्व के जीवनदृश्य कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों और आबू के लूणवसही के वितानों पर उत्कीर्ण हैं। ओसिया की पूर्वी देवकुलिका के वेदिकाबंध की दृश्यावली भी सम्भवतः पार्श्व से सम्बन्धित है (चित्र ३७)। लूणवसही (१२३० ई०) के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरण ग्यारहवीं शती ई० के हैं। कल्पसूत्र के चित्रों में भी पार्श्व के जीवनदृश्य अंकित हैं। पार्श्व के जीवनदृश्यों में पंचकल्याणकों और पूर्वजन्मों एवं उपसर्गों की कथाएं विस्तार से अंकित हैं।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के छठें वितान (उत्तर से) पर पार्श्व के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। इनमें पार्श्व के पूर्वभवों के दृश्यों, विशेषकर मरुभूति (पार्श्व) और कमठ (मेघमाली) के जीवों के विभिन्न भवों के संघर्ष का विस्तार से दरशाया गया है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में उल्लेख है कि जम्बूद्वीप स्थित भारत में पोतनपुर नाम का एक राज्य था। यहां का शासक अरविन्द था, जिसने जीवन के अन्तिम वर्षों में मुनिधर्म की दीक्षा ली थी। अरविन्द के राज्य में विश्वभूति नाम का एक ब्राह्मण पुरोहित रहता था जिसके कमठ और मरुभूति नाम के दो पुत्र थे। ज्ञातव्य है कि मरुभूति का जीव दसवें जन्म में तीर्थंकर पार्श्व और कमठ का जीव मेघमाली हुआ। मरुभूति का मन सांसारिक वस्तुओं में नहीं लगता था, जब कि कमठ उन्हीं में लिप्त रहता था। कमठ का मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा से अनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। जब मरुभूति ने राजा अरविन्द से इसकी शिकायत की तो राजा ने कमठ को दण्डित किया। इस घटना के बाद लज्जावश कमठ जंगलों में जाकर साधु हो गया। कुछ समय बाद जब मरुभूति कमठ के पास क्षमायाचना के लिए पहुंचा तो कमठ ने क्षमा करने के स्थान पर सक्रोध उसके मस्तक पर एक विशाल पत्थर से प्रहार किया। इस सांघातिक प्रहार से मरुभूति की मृत्यु हो गई। अपने इस दुष्कृत्य के कारण कमठ सदैव के लिए नरक का अधिकारी बन गया।[1]

महावीर मन्दिर की दृश्यावली दो आयतों में विभक्त है। दक्षिण की ओर मध्य में वार्तालाप की मुद्रा में अरविन्द की मूर्ति उत्कीर्ण है। अरविन्द के समक्ष दो आकृतियां बैठी हैं। एक आकृति नमस्कार-मुद्रा में है और दूसरी की एक भुजा ऊपर उठी है। ये निश्चित ही मरुभूति और कमठ की मूर्तियां हैं। आगे साधु के रूप में कमठ की एक मूर्ति उत्कीर्ण है। श्मश्रुयुक्त कमठ की दोनों भुजाओं में एक शिलाखण्ड है। कमठ के समक्ष नमस्कार-मुद्रा में मरुभूति की आकृति उत्कीर्ण है, जिस पर कमठ शिलाखण्ड से प्रहार करने को उद्यत है। आगे मुखपट्टिका से युक्त दो जैन मुनि निरूपित हैं। मूर्तियों के नीचे 'अरविन्द मुनि' उत्कीर्ण है।

जैन परम्परा के अनुसार दूसरे जन्म में मरुभूति का जीव गज और कमठ का जीव कुक्कुट-सर्प हुआ। गज के प्रबोधन का समय निकट जानकर मुनि अरविन्द अष्टापद पर्वत पर कायोत्सर्ग में खड़े हो गये। गज क्रोध में ऋषि की ओर दौड़ा पर समीप पहुंचने पर मुनि की तपस्या के प्रभाव से शान्त हो गया। मुनि के उपदेशों के प्रभाव से गज यति हो गया और उसने अपना समय व्रत और साधना में व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन जब कुक्कुट-सर्प ने गज को देखा तो उसे पूर्वजन्म के वैमनस्य का स्मरण हो आया और उसने गज को डस लिया। दंश के बाद गज ने अन्न-जल त्याग दिया और तपस्या करते हुए अपने प्राण त्याग दिये।[2] दृश्य में एक वृक्ष के समीप अरविन्द ऋषि और गज आकृति चित्रित हैं। नीचे 'मरुभूति जीव' लिखा है। समीप ही दूसरी गज आकृति भी उत्कीर्ण है जिसकी पीठ पर कुक्कुट-सर्प को दंश करते हुए दिखाया गया है। अगले दृश्य में एक वृक्ष के समीप दो आकृतियां खड़ी हैं और उनके मध्य में एक आकृति बैठी है। मध्य की आकृति के मस्तक पर पार्श्ववर्ती आकृतियां किसी तेज धार की वस्तु से प्रहार कर रही हैं। यह कमठ के जीव की नरक यातना का दृश्य है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि कमठ का जीव तीसरे भव में नरकवासी हुआ था और वहां उसे तरह-तरह की यातनाएं दी गई थीं। मरुभूति तीसरे भव में देवता हुए।

---

१ त्रि०श०पु०च०, खं० ५, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज १३९, बड़ौदा, १९६२, पृ० ३५६–५९
२ वही, पृ० ३५९–६३

चौथे भव मे मरुभूति का जीव किरणवेग के रूप मे उत्पन्न हुआ। तिलका के शासक विद्युत्गति उनके पिता और कनकतिलका उनकी माता थी। किरणवेग ने निश्चित समय पर अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाकर स्वयं दीक्षा ग्रहण की और हेमपर्वत पर कायोत्सर्ग मे तपस्यारत हो गये। चौथे भव में कमठ का जीव विकराल सर्प हुआ। इस सर्प ने जब किरणवेग को तपस्यारत देखा तो उनके शरीर के चारो ओर लिपट गया और कई स्थानों पर डंश कर उनके प्राण ले लिये।[1] वितान पर वार्तालाप की मुद्रा मे किरणवेग की मूर्ति उत्कीर्ण है। समीप ही दो अन्य आकृतियां बैठी है। नीचे 'किरणवेग राजा' लिखा है। आगे किरणवेग की कायोत्सर्ग मे तपस्या करती मूर्ति है जिसके शरीर मे एक सर्प लिपटा है। पांचवे भव में मरुभूति का जीव जम्बूद्रुमावर्त में देवता हुआ और कमठ का जीव धूमप्रभा के रूप में नरक मे उत्पन्न हुआ। छठें भव मे मरुभूति शुभकर नगर के राजा के पुत्र (वज्रनाभ) हुए।[2] वज्रनाभ ने उपयुक्त समय पर अपने पुत्र को राज्य प्रदान कर दीक्षा ली। कमठ का जीव छठें भव मे भिल्ल कुरंगक हुआ। मुनि वज्रनाभ की मृत्यु पूर्व जन्मा के वैरी कुरंगक के तीर से हुई थी। वितान पर पूर्व की ओर वज्रनाभ की आकृति बैठी है। नीचे 'वज्रनाभ' लिखा है। वज्रनाभ के समीप नमस्कार-मुद्रा मे दो आकृतियां उत्कीर्ण है। आगे मुनि वज्रनाभ खड़े है, जिनके समीप शरसंधान की मुद्रा मे कुरंगक की मूर्ति है। आगे वज्रनाभ का मृत शरीर दिखाया गया है।

सातवें भव मे मरुभूति ललिताग देव हुए और कमठ रौरव नरक में उत्पन्न हुआ। आठवें भव मे मरुभूति पुराणपुर के राजा कुलिशबाहु के पुत्र (सुवर्णबाहु) हुए। निश्चित समय पर दीक्षा ग्रहण कर सुवर्णबाहु ने कठिन तपस्या की। कमठ का जीव इस भव में क्षीर पर्वत पर सिंह हुआ। एक बार सुवर्णबाहु क्षीर पर्वत के समीप के क्षीर वन मे कायोत्सर्ग में तपस्या कर रहे थे। सिंह (कमठ का जीव) ने उसी समय सुवर्णबाहु पर आक्रमण कर उन्हे मार डाला। नवें भव मे मरुभूति महाप्रभ स्वर्ग में देवता हुए और कमठ नरक एव विभिन्न पशु योनियों में उत्पन्न हुआ।[3] दसवें भव में मरुभूति का जीव पार्श्व जिन और कमठ का जीव कठ साधु हुआ। वितान पर उत्तर की ओर श्मश्रुयुक्त दो आकृतिया बैठी है। समीप ही सुवर्णबाहु मुनि की कायोत्सर्ग मूर्ति उत्कीर्ण है। मुनि के समीप आक्रमण की मुद्रा मे एक सिंह बना है। आकृतियों के नीचे 'कनकप्रभ मुनि' एवं 'सिंह' अभिलिखित है। नवें भव मे मरुभूति का देवता के रूप में और कमठ के जीव को प्राप्त होने वाली नरक की यातनाओं के चित्रण हैं। दो आकृतियां कमठ के सिर पर परशु से प्रहार कर रही है।

पूर्वभवों के चित्रण के बाद वार्तालाप की मुद्रा मे पार्श्व के माता-पिता की मूर्तियां उत्कीर्ण है। नीचे 'अश्वसेन राजा' और 'वामादेवी' लिखा है। आगे सेविकाओं से वेष्टित वामादेवी एक शय्या पर लेटी है। समीप ही १४ मांगलिक स्वप्नों और शिशु के साथ लेटी वामादेवी के अंकन है। आगे पार्श्व के जन्माभिषेक का दृश्य है, जिसमे इन्द्र की गोद मे एक शिशु (पार्श्व) बैठा है।

पश्चिम की ओर एक गज पर तीन आकृतियां बैठी है। नीचे 'पार्श्वनाथ' उत्कीर्ण है। आगे कठ साधु के पंचाग्नि तप का चित्रण है। कठ साधु के दोनों ओर दो घट उत्कीर्ण है। कठ के समक्ष गज पर आरूढ पार्श्व की एक मूर्ति है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि जब कठ साधु पंचाग्नि तप कर रहा था, उसी समय कुमार पार्श्व उस स्थल से गुजरे। पार्श्व को यह ज्ञात हो गया कि अग्निकुण्ड में डाले गये लकड़ी के ढेर में एक जीवित सर्प है। पार्श्व के आदेश पर एक सेवक ने लकड़ी के ढेर से सर्प को निकाला। पर काफी जल जाने के कारण सर्प की मृत्यु हो गई।[4] यही सर्प अगले जन्म मे नागराज धरण हुआ जिसने मेघमाली के उपसर्गों के समय पार्श्व की रक्षा की थी।

दृश्य मे एक आकृति को परशु से लकड़ी चीरते हुए दिखाया गया है। समीप ही लकडी से निकला सर्प प्रदर्शित है। स्मरणीय है कि यही कठ साधु अगले जन्म में मेघमाली असुर हुआ। आगे पार्श्व कायोत्सर्ग में खड़े है और दाहिने

---

१ वही, पृ० ३६४–६६ २ वही, पृ० ३६५–६९ ३ वही, पृ० ३६९–७७ ४ वही, पृ० ३९१–९२

हाथ से केशों का लुंचन कर रहे हैं। उल्लेखनीय है कि अन्यत्र जिनों को ध्यानमुद्रा में बैठकर केशों का लुंचन करते हुए दिखाया गया है। पार्श्व के समीप ही हार, मुकुट, अंगूठी जैसे आभूषण चित्रित हैं, जिनका दीक्षा के पूर्व पार्श्व ने परित्याग किया था। समीप ही इन्द्र को एक पात्र में पार्श्व के लुंचित केशों को संचित करते हुए दिखाया गया है। दक्षिण की ओर पार्श्व की तपस्या का चित्रण है। पार्श्व कायोत्सर्ग में खड़े हैं। पार्श्व के शीर्ष भाग में सर्पफणों का छत्र भी प्रदर्शित है। समीप ही नमस्कार-मुद्रा में जटाजूट से शोभित एक आकृति उत्कीर्ण है, जो सम्भवतः अपने कार्यों के लिए पार्श्व से क्षमा-याचना करती हुई मेघमाली की आकृति है। पार्श्व के बांयी ओर एक सर्पफण के छत्र से युक्त धरणेन्द्र की आकृति है। धरणेन्द्र सर्प की कुण्डलियों पर दोनों हाथ जोड़कर बैठे है। आकृति के नीचे 'धरणेन्द्र' लिखा है। धरणेन्द्र के समीप ही नमस्कार-मुद्रा में एक दूसरी आकृति भी बैठी है, जिसे लेख में 'कंकाल' कहा गया है। आगे एक सर्पफण की छत्रावली वाली वैरोट्या (धरणेन्द्र की पत्नी) भी निरूपित है। समीप ही सप्त सर्पफणों के शिरस्त्राण से सुशोभित पार्श्व की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। आगे पार्श्व का समवसरण बना है।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पूर्वी भ्रमिका के वितान पर भी पार्श्व के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। शान्तिनाथ मन्दिर के जीवनदृश्य विवरण की दृष्टि से पूरी तरह महावीर मन्दिर के जीवनदृश्यों के समान हैं। अतः उनका वर्णन यहां अपेक्षित नहीं है।

ओसिया की पूर्वी देवकुलिका की दृश्यावली की सम्भावित पहचान दो कारणों से पार्श्व से की गई है। पहला यह कि ललाट-बिम्ब पर पार्श्वनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है।[1] अतः यह सम्भावना है कि देवकुलिका पार्श्वनाथ को समर्पित थी। दूसरा यह कि ललाट-बिम्ब की पार्श्व मूर्ति के नीचे दो उड्डीयमान आकृतियों द्वारा धारित एक मुकुट चित्रित है। वेदिकाबन्ध की दृश्यावली में भी ठीक इसी प्रकार से एक मुकुट उत्कीर्ण है।

उत्तर की ओर १४ मांगलिक स्वप्न और जिन की माता की शिशु के साथ लेटी हुई मूर्ति उत्कीर्ण है। आगे पार्श्व के जन्म-अभिषेक का दृश्य है जिसमें पार्श्व इन्द्र की गोद में बैठे हैं। आगे खड्ग, खेटक, चाप, शर आदि शस्त्रास्त्र एवं पार्श्व के राज्यारोहण और युद्ध के दृश्य हैं। युद्ध-दृश्य में सम्भवतः पार्श्व और यवनराज की सेनाएं प्रदर्शित हैं। दृश्य में दोनों पक्षों की सेनाओं के युद्ध का चित्रण नहीं किया गया है। जैन परम्परा में भी यही उल्लेख मिलता है कि युद्ध के पूर्व ही यवनराज ने आत्मसमर्पण कर दिया था। दक्षिण की ओर एक रथ पर दो आकृतियां बैठी हैं। आगे स्थानक-मुद्रा में एक चतुर्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है। किरीटमुकुट एवं वनमाला से शोभित आकृति के दो सुरक्षित हाथों में गदा एवं चक्र है।[2] आगे जिन की दीक्षा और तपस्या के दृश्य हैं। कायोत्सर्ग में खड़ी जिन-मूर्ति के पास एक देवालय उत्कीर्ण है जिसमें ध्यानस्थ जिन-मूर्ति प्रतिष्ठित है।

लूणवसही की देवकुलिका १६ के वितान के दृश्य में हस्तिकलिकुण्डतीर्थ या अहिच्छत्रा नगर की उत्पत्ति की कथा विस्तार से चित्रित है।[3] **विविधतीर्थकल्प** में उल्लेख है कि पार्श्व के उपर्युक्त स्थल की यात्रा के बाद वहां जैन तीर्थ की स्थापना हुई।[4] **कल्पसूत्र** के चित्रों में पार्श्व के पूर्वभव, च्यवन, जन्म, जन्म-अभिषेक, दीक्षा, कैवल्य-प्राप्ति एवं समवसरण के चित्रांकन हैं।[5] पूर्वभवों के चित्रण में कठ के पंचाग्नितप के दृश्य भी हैं।

दक्षिण भारत—उत्तर भारत के समान ही दक्षिण भारत से भी विपुल संख्या में पार्श्व की मूर्तियां मिली हैं। शीर्ष भाग में सात सर्पफणों के छत्र सभी उदाहरणों में प्रदर्शित हैं। सर्प लांछन किसी उदाहरण में नहीं है। इस

१ गर्भगृह की जिन प्रतिमा गायब है।

२ इस आकृति के उत्कीर्णन का सन्दर्भ स्पष्ट नहीं है। पर यदि यह आकृति कृष्ण की है तो सम्पूर्ण दृश्यावली नेमि से भी सम्बन्धित हो सकती है।

३ जयन्त विजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० १२३–२५

४ **विविधतीर्थकल्प**, पृ० १४, २६

५ ब्राउन, डब्ल्यू० एन०, पू०नि०, पृ० ४१–६४

क्षेत्र की नीचे विवेचित सभी मूर्तियों में पार्श्व निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग में खड़े हैं। केवल कर्नाटक से मिली और ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन में सुरक्षित एक मूर्ति में ही पार्श्व ध्यानमुद्रा मे विराजमान है। मूलनायक के दोनो ओर सेवकों के रूप में धरणेन्द्र एवं पद्मावती का निरूपण विशेष लोकप्रिय था। एलोरा और बादामी की जैन गुफाओं में पार्श्व की कई मूर्तियां है। बादामी की गुफा ४ के मुखमण्डप की पश्चिमी दीवार की मूर्ति (७वी शती ई०) में पार्श्व के शीर्षभाग में सम्भवतः मेघमाली की मूर्ति उत्कीर्ण है।[1] दाहिनी ओर एक सर्पफण के छत्र से शोभित पद्मावती खड़ी है जिसके हाथ में एक लम्बा छत्र है। बायी ओर धरणेन्द्र की आकृति है जिसका एक हाथ अभयमुद्रा में है। मूर्ति मे एक भी प्रातिहार्य नही उत्कीर्ण है। समान विवरणों वाली सातवी शती ई० की एक अन्य मूर्ति एहोल (बीजापुर) की जैन गुफा के मुखमण्डप की पश्चिमी दीवार पर उत्कीर्ण है।[2] एलोरा की गुफा ३३ की मूर्ति (११वी शती ई०) मे बायी ओर मेघमाली के उपसर्ग भी चित्रित है।[3] दाहिने पार्श्व में छत्रधारिणी पद्मावती है। कन्नड शोध संस्थान संग्रहालय की एक मूर्ति (५३) मे पार्श्व के दोनो ओर धरणेन्द्र एव पद्मावती की चतुर्भुज मूर्तियां है।[4] हैदराबाद संग्रहालय की एक मूर्ति (१२वी शती ई०) मे भी चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित है।[5] परिकर मे २२ छोटी जिन आकृतियां, चामरधर, त्रिछत्र और दुन्दुभिवादक भी उत्कीर्ण हैं। ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन की मूर्ति (१२वी शती ई०) मे सात सर्पफणों के छत्र से शोभित पार्श्व के समीप दो चामरधर सेवक और पीठिका-छोरों पर गजारूढ़ धरणेन्द्र यक्ष और सर्पवाहना पद्मावती यक्षी निरूपित है।[6]

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत में ऋषभ के बाद जिनो मे पार्श्व ही सर्वाधिक लोकप्रिय थे। उड़ीसा की उदयगिरि-खण्डगिरि गुफाओं मे तो पार्श्व की ऋषभ से भी अधिक मूर्तियां है। ल० पहली शती ई० पू० में मथुरा में पार्श्व के मस्तक पर सात सर्पफणा के छत्र का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। यहां उल्लेखनीय है कि पार्श्व के सात सर्पफणों का निर्धारण ऋषभ की जटाओ से कुछ पूर्व ही हो गया था। ऋषभ के साथ जटाएं पहली शती ई० म प्रदर्शित हुईं। पार्श्व के साथ सर्प लांछन का चित्रण केवल कुछ ही उदाहरणों में हुआ है। दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की ये मूर्तियां उत्तर प्रदेश, बंगाल एवं उड़ीसा के विभिन्न स्थलों से मिली है। पार्श्व के शीर्ष भाग मे प्रदर्शित सर्प की कुण्डलियां सामान्यतः पार्श्व के चरणों या घुटनों तक प्रसारित है। कभी-कभी पार्श्व सर्प की कुण्डलियों के ही आसन पर बैठे भी निरूपित हैं। शीर्ष भाग मे प्रदर्शित सर्पफणों के छत्र के कारण पार्श्व की मूर्तियो मे भामण्डल नही उत्कीर्ण है। जिन मूर्तियों मे पार्श्व की सेविका की भुजा मे लम्बा छत्र प्रदर्शित है, उनमें शीर्षभाग मे त्रिछत्र नही उत्कीर्ण हैं।

श्वेतांबर मूर्तियों में मूलनायक के दोनों ओर सामान्य चामरधर आमूर्तित है। पर दिगंबर स्थलों की मूर्तियों में अधिकांशतः मूलनायक के दाहिने और बायें पार्श्वों मे सर्पफणों की छत्रावलियों वाली पुरुष-स्त्री सेवक आकृतियां निरूपित हैं। इनका अंकन पांचवी-छठीं शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। पुरुष आकृति या तो नमस्कार-मुद्रा में है, या फिर उसके एक हाथ में चामर है। स्त्री की भुजा मे एक लम्बे दण्ड वाला छत्र है जिसका छत्र भाग पार्श्व के सर्पफणों के ऊपर प्रदर्शित है। ये धरणेन्द्र एवं पद्मावती की उस समय की मूर्तियां है जब मेघमाली के उपसर्गों से पार्श्व की रक्षा करने के लिए वे देवलोक से आये थे। पार्श्व की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का चित्रण बहुत नियमित नही था। ल० सातवी शती ई० मे यक्ष-यक्षी का चित्रण प्रारम्भ हुआ। यक्ष-यक्षी सामान्यतः सर्वानुभूति एवं अम्बिका या फिर सामान्य लक्षणों वाले है।

---

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ए २१-५९

२ वही, ए २१-२४ : पार्श्व यहां पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं।

३ आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली, चित्र संग्रह ९९६.५५

४ अन्निगेरी, ए० एम०, पू०नि०, पृ० १९

५ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह १६६.६७

६ जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५५७

पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल ओसिया, देवगढ़, आबू (विमलवसही की देवकुलिका ४), खजुराहो एवं बटेश्वर की ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की कुछ ही मूर्तियों में निरूपित हैं।

(२४) महावीर

जीवनवृत्त

महावीर इस अवसर्पिणी के अन्तिम जिन हैं। ज्ञातृवंश के शासक सिद्धार्थ उनके पिता और त्रिशला उनकी माता थीं। महावीर का जन्म पटना के समीप कुण्डग्राम (या क्षत्रियकुण्ड) में ल० ५९९ ई० पू० में हुआ था।[1] श्वेतांबर ग्रन्थों में महावीर के जन्म के सम्बन्ध में एक कथा प्राप्त होती है, जिसके अनुसार महावीर का जीव पहले ब्राह्मण ऋषभदत्त की भार्या देवानन्दा की कुक्षि में आया[2] और देवानन्दा ने गर्भधारण की रात्रि में १४ शुभ स्वप्नों का दर्शन किया। पर जब इन्द्र को इसकी सूचना मिली तो उसने विचार किया कि कभी कोई जिन ब्राह्मण कुल में नहीं उत्पन्न हुए, अतः महावीर का ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होना अनुचित और परम्परा विरुद्ध होगा। इन्द्र ने अपने सेनापति हरिनैगमेषी को महावीर के भ्रूण को देवानन्दा के गर्भ से क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ में स्थानान्तरित करने का आदेश दिया। हरिनैगमेषी ने महावीर के भ्रूण को स्थानान्तरित कर दिया। गर्भ परिवर्तन की रात्रि में त्रिशला ने भी १४ शुभ स्वप्नों को देखा। महावीर के गर्भ में आने के बाद से राज्य के धन, धान्य, कोष आदि में अभूतपूर्व वृद्धि हुई, इसी कारण बालक का नाम वर्धमान रखा गया। बाल्यावस्था के वीरोचित और अद्भुत कार्यों के कारण देवताओं ने बालक का नाम 'महावीर' रखा।[3]

महावीर का विवाह वसंतपुर के महासामन्त समरवीर की पुत्री यशोदा से हुआ। दिगंबर ग्रन्थों में महावीर के विवाह का अनुल्लेख है। २८ वर्ष की अवस्था में महावीर ने अपने अग्रज नन्दिवर्धन से प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति मांगी। तथापि स्वजनों के अनुरोध पर विरक्त भाव से दो वर्ष तक महल में ही रुके रहे। इस अवधि में महावीर ने महल में ही रह कर जैन धर्म के नियमों का पालन किया और कायोत्सर्ग में तपस्या भी करते रहे। महावीर के इस रूप में उनकी जीवन्तस्वामी मूर्तियां भी उत्कीर्ण हुई हैं। इनमें महावीर वस्त्राभूषणों से सज्जित प्रदर्शित किये गये। ३० वर्ष की अवस्था में महावीर ने आभरणों का त्याग कर पंचमुष्टिक में केशों का लुंचन किया और प्रव्रज्या ग्रहण की। साढ़े बारह वर्षों की कठिन साधना के बाद महावीर को जृम्भक ग्राम में ऋजुपालिका नदी के किनारे शाल वृक्ष के नीचे कैवल्य-ज्ञान प्राप्त हुआ। कैवल्य प्राप्ति के बाद देवताओं ने महावीर के समवसरण की रचना की। अगले ३० वर्षों तक महावीर विभिन्न स्थलों पर भ्रमण कर धर्मोपदेश देते रहे। ल० ५२७ ई० पू० में ७२ वर्ष की अवस्था में राजगिर के निकट (?) पावापुरी में महावीर को निर्वाण-पद प्राप्त हुआ।[4]

प्रारम्भिक मूर्तियां

महावीर का लांछन सिंह है और यक्ष-यक्षी मातंग एवं सिद्धायिका (या पद्मा) हैं। महावीर की प्राचीनतम मूर्तियां कुषाण काल की हैं। ये मूर्तियां मथुरा से मिली हैं। ल० पहली से तीसरी शती ई० के मध्य की सात मूर्तियां राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सगृहीत हैं (चित्र ३४)।[5] सभी उदाहरणों में महावीर की पहचान पीठिका-लेख में उत्कीर्ण नाम के आधार पर की गई है। छह उदाहरणों में लेखों में 'वर्धमान' और एक में (जे २) 'महावीर' उत्कीर्ण है। तीन उदाहरणों में संप्रति केवल पीठिकाएं ही सुरक्षित हैं।[6] अन्य चार उदाहरणों में महावीर ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर विराजमान हैं।[7] सिंहासन के मध्य में उपासकों एवं श्रावक-श्राविकाओं से वेष्टित धर्मचक्र उत्कीर्ण है।

---

१ महावीर की तिथि निर्धारण के प्रश्न पर विस्तार के लिए द्रष्टव्य, जैन, के०सी०, **लार्ड महावीर ऐण्ड हिज टाइम्स**, दिल्ली, १९७४, पृ० ७२–८८

२ कल्पसूत्र २०–२८, त्रि०श०पु०च० १०.२.१–२८

३ त्रि०श०पु०च० १०.२.८८–१२४

४ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ३३२–५५४

५ क्रमांक जे० २, १४, १६, २२, ३१, ५३, ६६

६ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे २, १४, २२

७ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे १६, ३१, ५३, ६६

गुप्तकाल की महावीर की केवल एक मूर्ति ज्ञात है। ल० छठी शती ई० की यह मूर्ति वाराणसी से मिली है और भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) मे संगृहीत है (चित्र ३५)।[1] महावीर एक ऊंची पीठिका पर ध्यानमुद्रा में विराजमान है और उनके आसन के समक्ष विश्वपद्म उत्कीर्ण है। महावीर चामरधर सेवकों, उड्डीयमान आकृतियों एवं कांतिमण्डल से युक्त है। पीठिका के मध्य मे धर्मचक्र और उसके दोनों ओर महावीर के सिंह लांछन उत्कीर्ण हैं। पीठिका के छोरों पर दो ध्यानस्थ जिन मूर्तियां बनी है। गुप्त युग में महावीर की दो जीवन्तस्वामी मूर्तियां भी उत्कीर्ण हुई। ये मूर्तियां अकोटा से मिली है।[2] इन श्वेतांबर मूर्तियो मे महावीर कायोत्सर्ग मे खड़े है और मुकुट, हार आदि आभूषणों से अलंकृत हैं (चित्र ३६)। ल० सातवीं शती ई० की दो दिगंबर मूर्तियां धांक (गुजरात) की गुफा में उत्कीर्ण हैं।[3] इनमे महावीर कायोत्सर्ग में खड़े हैं और उनका सिंह लाछन सिंहासन पर बना है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तियां

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से तीन मूर्तिया मिली है। दो मूर्तियो में लाछन भी उत्कीर्ण है। दो उदाहरणो मे यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। एक उदाहरण मे यक्ष-यक्षी स्वतन्त्र लक्षणो वाले हैं।[4] १००४ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कटरा (भरतपुर) से मिली है और सम्प्रति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९) मे सुरक्षित है। सिंह-लांछन-युक्त इस महावीर मूर्ति के सिंहासन के छोरो पर स्वतन्त्र लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित है। चामरधरों के समीप कायोत्सर्ग-मुद्रा मे दो निर्वस्त्र जिन आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। ११८६ ई० की एक मूर्ति कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भित्ति पर है। यहां महावीर ध्यानमुद्रा मे सिंहासन पर विराजमान है। सिंह लांछन के साथ ही लेख में महावीर का नाम भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। पार्श्ववर्ती चामरधरो के ऊपर दो छोटी जिन आकृतिया उत्कीर्ण है। एक मूर्ति सुपार्श्व की है। ११७९ई० की एक मूर्ति कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २४ मे है। लेख मे महावीर का नाम उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी अनुपस्थित है।

इस क्षेत्र मे जीवन्तस्वामी महावीर की भी कई मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। राजस्थान के सेवडी एवं ओसिया (चित्र ३७) से दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की जीवन्तस्वामी मूर्तियां मिली है। बारहवीं शती ई० की एक मूर्ति सरदार संग्रहालय, जोधपुर मे है। सभी उदाहरणो में वस्त्राभूषणों से सज्जित जीवन्तस्वामी महावीर कायोत्सर्ग में खड़े है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—राज्य संग्रहालय, लखनऊ में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की पांच महावीर मूर्तियां हैं। तीन उदाहरणों में महावीर ध्यानमुद्रा में विराजमान है। सिंह लांछन सभी में उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी केवल एक ही उदाहरण (जे ८०८) मे निरूपित है। दसवीं शती ई० की इस कायोत्सर्ग मूर्ति में द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले है। १०७७ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ८८०) में लांछन के साथ ही पीठिका-लेख मे भी 'वीरनाथ' उत्कीर्ण है। मूलनायक के पार्श्वों मे चामरधरो के स्थान पर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां बनी है जिनके ऊपर पुनः दो ध्यानस्थ जिन आमूर्तित हैं।

अशवखेरा (इटावा) की ११६६ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ७८२) में सिंहासन नहीं उत्कीर्ण है। पीठिका के मध्य मे धर्मचक्र के स्थान पर एक द्विभुजी देवी हाथो में अभयमुद्रा और कलश के साथ आमूर्तित है। मूर्ति के दाहिने छोर पर गदा और शृंखला से युक्त द्विभुज क्षेत्रपाल की नग्न आकृति खड़ी है। समीप ही वाहन श्वान् भी उत्कीर्ण है। क्षेत्रपाल

१ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अन्पब्लिश्ड जिन इमेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', **वि०इं०ज०**, खं० १३, अं० १–२, पृ० ३७३–७५

२ शाह, यू०पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० २६–२८

३ संकलिया, एच०डी०, 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़', **ज०रा०ए०सो०**, जुलाई १९३८, पृ० ४२९

४ राजपूताना संग्रहालय, अजमेर २७९

की आकृति के ऊपर द्विभुज गोमुख यक्ष की मूर्ति है, जिसके ऊपर तीन सर्पफणों के छत्रवाली पद्मावती यक्षी आमूर्तित है। मूर्ति के बायें छोर पर गरुडवाहना चक्रेश्वरी एवं अम्बिका की मूर्तियां हैं। पारम्परिक यक्ष-यक्षी के स्थान पर गोमुख यक्ष एवं चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती यक्षियों और क्षेत्रपाल के चित्रण इस मूर्ति की दुर्लभ विशेषताएं हैं। ल० दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (१२.२५९) में है।

देवगढ़ में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की नौ मूर्तियां हैं। पांच उदाहरणों में महावीर ध्यानमुद्रा में विराजमान है। सिंह लांछन सभी में उत्कीर्ण हैं पर यक्ष-यक्षी केवल आठ ही उदाहरणों में निरूपित हैं।[1] छह उदाहरणों में यक्ष-यक्षी द्विभुज और सामान्य लक्षणों वाले हैं। मन्दिर १ की दसवीं शती ई० की ध्यानस्थ मूर्ति में यक्ष द्विभुज है और यक्षी चतुर्भुजा है। मन्दिर ११ की १०४८ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति में यक्ष चतुर्भुज और यक्षी द्विभुजा है। तीन सर्पफणों की छत्रावली से युक्त यक्षी के हाथों में फल एवं बालक है। इस मूर्ति में अम्बिका एवं पद्मावती यक्षियों की विशेषताएं संयुक्त रूप से प्रदर्शित हैं। परिकर में १४ जिन मूर्तियां और मूलनायक के कन्धों पर जटाएं प्रदर्शित हैं। मन्दिर ३ और मन्दिर २० की दो अन्य मूर्तियों में भी जटाएं प्रदर्शित हैं। मन्दिर १ की मूर्ति के परिकर में १०, मन्दिर ४ की मूर्ति में ४, मन्दिर ३ की मूर्ति में ८, मन्दिर २ की मूर्ति में २, मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की मूर्ति में १५ और मन्दिर २० की मूर्ति में २ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १२ के समीप भी यक्ष-यक्षी से युक्त महावीर की एक ध्यानस्थ मूर्ति (११ वीं शती ई०) है (चित्र ३८)। ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति पर दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। सिंहासन के मध्य में लांछन और छोरों पर द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।

खजुराहो में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की नौ महावीर मूर्तियां हैं। आठ उदाहरणों में महावीर ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। लांछन सभी में उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी केवल छह उदाहरणों में निरूपित हैं।[2] महावीर के यक्ष-यक्षी के निरूपण में सर्वानुभूति एवं अम्बिका का प्रभाव परिलक्षित होता है। यक्ष और यक्षी दोनों के साथ वाहन सिंह है, जो महावीर के सिंह लांछन से प्रभावित है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति की मूर्ति में द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। चामरधरों के समीप दो जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर २ की १०९२ ई० की एक मूर्ति में सिंहासन के मध्य में चतुर्भुज सरस्वती (या शान्तिदेवी)[3] एवं छोरों पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। मन्दिर २१ की मूर्ति (के २८।१, ११ वीं शती ई०) में यक्षी चतुर्भुजा है। स्थानीय संग्रहालय (के १७) की ग्यारहवीं शती ई० की मूर्ति में सिंहासन के छोरों पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (१७३१) की एक मूर्ति (१२ वीं शती ई०) में द्विभुज यक्ष-यक्षी के ऊपर दो खड़ी स्त्रियां बनी हैं जिनकी एक भुजा में सनालपद्म है। स्थानीय संग्रहालय की दो मूर्तियों (के १७ एवं ३८) के परिकर में क्रमशः १४ और २, मन्दिर २ की मूर्ति में २, मन्दिर २१ की मूर्ति (के २८।१) में ४, पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो की मूर्ति (१७३१) में ८, शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्ति में २ और मन्दिर ३१ की मूर्ति में १ छोटी जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में सिंह लांछन के साथ ही यक्ष-यक्षी का भी निरूपण लोकप्रिय था। यक्ष-यक्षी का अंकन दसवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। अधिकांश उदाहरणों में यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—ल० आठवीं शती ई० की दो ध्यानस्थ मूर्तियां सोनभण्डार की पूर्वी गुफा में उत्कीर्ण हैं।[4] इन मूर्तियों में धर्मचक्र के दोनों ओर सिंह लांछन और पीठिका के छोरों पर दो ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

---

१ मन्दिर २१ की मूर्ति में यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं।

२ मन्दिर १ की दो और मन्दिर ३१ की एक मूर्तियों में यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं।

३ देवी की भुजाओं में वरदमुद्रा, पद्म, पुस्तक एवं कमण्डलु प्रदर्शित है।

४ कुरैशी, मुहम्मद हमीद, **राजगिर**, दिल्ली, १९७०, फलक ७ ख

विष्णुपुर (बाकुड़ा) के धरपत मन्दिर से ल० दसवी शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है।[1] मूर्ति के परिकर में २४ छोटी जिन मूर्तियां बनी है। दसवी-ग्यारहवी शती ई० की पांच महावीर मूर्तियां अलुआरा से मिली हैं और पटना संग्रहालय मे सुरक्षित (१०६७०-७३, १०६७७) हैं।[2] सभी उदाहरणो में महावीर निर्वस्त्र है और कायोत्सर्ग में खड़े है। एक उदाहरण मे नवग्रहो की भी मूर्तियां उत्कीर्ण है।

चरंपा (उड़ीसा) से मिली ल० दसवी-ग्यारहवी शती ई० की एक निर्वस्त्र मूर्ति उड़ीसा राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर मे है।[3] महावीर कायोत्सर्ग में खड़े हैं और उनका लांछन पीठिका पर उत्कीर्ण है। एक ध्यानस्थ मूर्ति बारभुजी गुफा में है (चित्र ५९)।[4] मूर्ति के नीचे विंशतिभुज यक्षी निरूपित है। एक कायोत्सर्ग मूर्ति त्रिशूल गुफा मे है।[5] बारहवी शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति वैभारगिरि के जैन मन्दिर म है।[6] इस प्रकार इस क्षेत्र में सिंह लाछन का चित्रण नियमित था पर यक्ष-यक्षी का अंकन दुर्लभ था।

जीवनदृश्य

मथुरा के कंकाली टीले मे प्राप्त फलक और कुम्भारिया के महावीर एवं शान्तिनाथ मन्दिरो के वितानों पर महावीर के जीवनदृश्य उत्कीर्ण है। मथुरा से प्राप्त फलक पहली शती ई० का है। कुम्भारिया के मन्दिरो के दृश्य ग्यारहवी शती ई० के है। कल्पसूत्र के चित्रो मे भी महावीर के जीवनदृश्य है। महावीर के जीवनदृश्यों में पूर्वजन्मो, पंच-कल्याणकों, विवाह, चन्दनबाला को कथा एवं महावीर के उपसर्गों के विस्तृत अंकन है।

मथुरा से प्राप्त फलक राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ६२६) मे सुरक्षित है (चित्र ३९)। फलक पर महावीर के गर्भापहरण का दृश्य अंकित है।[7] फलक पर इन्द्र के प्रधान सेनापति हरिनैगमषी (अजमुख) को ललितमुद्रा मे एक ऊंचे आसन पर बैठे दिखाया गया है। आकृति के नीचे 'नेमेसो' उत्कीर्ण है। नैगमेषी सम्भवत: महावीर के गर्भ परिवर्तन का कार्य पूरा कर इन्द्र की सभा मे बैठे है। नैगमेषी के समीप एक निर्वस्त्र बालक आकृति खड़ी है। बालक की पहचान महावीर से की गई है। बालक के समीप ही दो स्त्रिया खड़ी है। फलक के दूसरे ओर एक स्त्री की गोद मे एक बालक बैठा है। ये सम्भवत त्रिशला और महावीर की आकृतियां हैं।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के वितान (उत्तर से दूसरा) पर महावीर के जीवनदृश्य हैं (चित्र ४०)। सम्पूर्ण दृश्यावली तीन आयतो मे विभक्त है। प्रारम्भ मे महावीर के पूर्वभवों के अंकन है। जैन परम्परा के अनुसार महावीर के जीव ने नयसार के भव मे सत्कर्म का बीज डालकर क्रमशः उसका सिंचन किया और २७ वें भव मे तीर्थंकर-पद प्राप्त किया। राजा के आदेश पर नयसार एक बार वन मे लकड़िया काटने गया। वन में नयसार की भेंट कुछ भूखे मुनियो से हुई, जिन्हे उसने भक्तिपूर्वक भोजन कराया। मुनियो ने नयसार को आत्मकल्याण का मार्ग बतलाया। १८ वें भव मे नयसार का जीव त्रिपृष्ठ वासुदेव हुआ। त्रिपृष्ठ ने शालिक्षेत्र के एक उपद्रवी सिंह को बिना रथ और शस्त्र के मार डाला था। एक दिन त्रिपृष्ठ के राजमहल में कुछ संगीतज्ञ आये। सोने के पूर्व त्रिपृष्ठ ने अपने शय्यापालको को यह आदेश दिया कि जब मुझे निद्रा आ जाय तो संगीत का कार्यक्रम बन्द करा दिया जाय, किन्तु शय्यापालक संगीत मे इतने रम गये कि वे त्रिपृष्ठ के आदेश का पालन करना भूल गये। निद्रा समाप्त होने पर जब त्रिपृष्ठ ने देखा कि संगीत का कार्यक्रम पूर्ववत् चल रहा है तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने आज्ञाभंग करने के अपराध मे शय्यापालक के कानों

---

१ चौधरी, रवीन्द्रनाथ, 'धरपत टेम्पल्', **माडर्न रिव्यू**, खं० ८८, अं० ४, पृ० २९७

२ प्रसाद, एच० के०, **पू०नि०**, पृ० २८८

३ दश, एम० पी, **पू०नि०**, पृ० ५२

४ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३३

५ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, **ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्रॉविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा**, पृ० २८२

६ चन्दा, आर० पी०, **पू०नि०**, फलक ५७ बी

७ **एपि०इण्डि०**, खं० २, पृ० ३१४, फलक २

में गरम शीशा डलवाकर उसे दण्डित किया। अपने इसी अमानवीय कृत्य के कारण १९ वें भव में त्रिपृष्ठ नरक में उत्पन्न हुआ। बाईसवें भव में नयसार का जीव प्रियमित्र चक्रवर्ती हुआ। २६ वें भव मे नयसार का जीव ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ में उत्पन्न हुआ। देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ मे स्थानान्तरण को नयसार का २७ वां भव माना गया।[1]

दूसरे आयत में उत्तर की ओर नयसार और तीन जैन मुनियों की आकृतियां खड़ी हैं। मुनियों के एक हाथ में मुखपट्टिका है और दूसरे से अभयमुद्रा प्रदर्शित है। समीप ही मुनि द्वारा नयसार को उपदेश दिये जाने का दृश्य है। आगे नयसार के जीव को दूसरे भव मे स्वर्ग में और तीसरे भव मे मारीचि के रूप मे दिखाया गया है। समीप ही विश्वभूति की मूर्ति (१६ वां भव) है। विश्वभूति एक वृक्ष पर प्रहार कर रहे है। नीचे 'विश्वभूति केवली' उत्कीर्ण है। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि किसी बात पर अप्रसन्न होकर विश्वभूति न सेव के एक वृक्ष पर मुष्टिका से प्रहार किया था जिसके फलस्वरूप वृक्ष के सभी सेव नीचे गिर पड़े थे। दक्षिण की ओर त्रिपृष्ठ को एक सिंह से युद्धरत दिखाया गया है। नीचे 'त्रिपृष्ठ वासुदेव' उत्कीर्ण है। आगे त्रिपृष्ठ के जीव को नरक मे विभिन्न प्रकार की यातनाएं सहते हुए दिखाया गया है। नीचे 'त्रिपृष्ठ नरकवास' उत्कीर्ण है। समीप ही एक सिंह (२० वा भव) एव नरक की यातना (२१ वा भव) के दृश्य है। नीचे 'अग्नि नरकवास' उत्कीर्ण है। आगे एक श्मश्रुयुक्त आकृति बनी है, जिसके समीप सर्प, मृग एव शूकर आदि पशु चित्रित हैं। मध्य क आयत मे (उत्तर की ओर) प्रियमित्र चक्रवर्ती (२२ वा भव), नन्दन (२४ वा भव) एवं देवता (२५ वां भव) की मूर्तिया है।

बाहरी आयत मे (पश्चिम की ओर) महावीर के जन्म का दृश्य उत्कीर्ण है। दाहिने छोर पर त्रिशला एक शय्या पर लेटी है। समीप ही वार्तालाप की मुद्रा मे सिद्धार्थ एवं त्रिशला की आकृतिया है। दक्षिण की ओर त्रिशला की शय्या पर लेटी एक अन्य आकृति एवं १४ मागलिक स्वप्न हैं। आगे दो सेविकाओं से सेवित त्रिशला नवजात शिशु के साथ लेटी है। त्रिशला के समीप नमस्कार-मुद्रा म नैगमेषी की मूर्ति खड़ी है। आगे वार्तालाप की मुद्रा मे सिद्धार्थ एवं त्रिशला की आकृतिया हैं। समीप ही सात अन्य आकृतियां उत्कीर्ण हैं जो सम्भवतः सिद्धार्थ की अधीनता स्वीकार करनेवाले शासकों की मूर्तियां है। पूर्व की ओर (मध्य मे) नैगमेषी द्वारा शिशु (महावीर) को अभिषेक के लिए मेरु पर्वत पर इन्द्र के पास ले जाने का दृश्य अंकित है। उत्तर की ओर महावीर के जन्माभिषेक का दृश्य है। आगे महावीर के विवाह का दृश्य है। विवाह-वेदिका के दोनों ओर महावीर और यशोदा की स्थानक मूर्तिया है। विवाह-वेदिका पर स्वय ब्रह्मा उपस्थित है। समीप ही महावीर एक साधु को कुछ भिक्षा दे रहे है। पश्चिम की ओर महावीर और तीन मुनियों की मूर्तियां उत्कीर्ण है।

दूसरे आयत मे (पश्चिम की ओर) महावीर की दीक्षा का दृश्य है। महावीर अपने बायें हाथ से केशों का लुंचन कर रहे है। समीप ही खड्ग, मुकुट, हार, कर्णफूल आदि चित्रित है जिनका महावीर ने परित्याग किया था। अगले दृश्य मे महावीर मुखपट्टिका से युक्त एक वृद्ध का दान दे रहे है। नीचे 'महावीर' और 'देवदूष्य ब्राह्मण' लिखा है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि दीक्षा के बाद मार्ग मे महावीर को एक वृद्ध ब्राह्मण मिला जो महावीर से कुछ दान प्राप्त करना चाहता था। दीक्षा के पूर्व महावीर द्वारा मुक्त हस्त से दिये गये दान के समय यह ब्राह्मण उपस्थित नहीं हो सका था। महावीर ने वृद्ध ब्राह्मण को निराश नहीं किया और कन्धे पर रखे वस्त्र का आधा भाग फाडकर दे दिया।[2]

आगे विभिन्न स्थानो पर महावीर की तपस्या और तपस्या मे उपस्थित किये गये उपसर्गों के चित्रण है। दृश्य मे महावीर शूलपाणि यक्ष के आयतन मे बैठे है। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि महावीर सन्ध्या समय अस्थिग्राम पहुंचे और नगर के बाहर शूलपाणि यक्ष के आयतन मे ही रुक गये। लोगों ने महावीर को वहा न रुकने की सलाह दी पर महावीर ने परीषह सहने और यक्ष को प्रतिबोधित करने का निश्चय कर लिया था। रात्रि मे यक्ष ने प्रकट होकर ध्यानस्थ

१ त्रि०श०पु०च० १०.१.१–२८४; हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ३३६–३९
२ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ३६२

महावीर के समक्ष भयंकर अट्टहास किया। किन्तु महावीर तनिक भी विचलित नही हुए। तब यक्ष ने हाथी का रूप धारण कर महावीर को दांतों और पैरो से पीड़ा पहुंचाई। पर महावीर फिर भी अविचलित रहे। तब उसने पिशाच का रूप धारण कर तीक्ष्ण नखों एवं दांतो से महावीर के शरीर को नोचा, सर्प बनकर उनका दंश किया और उनके शरीर से लिपट गया। इतना कुछ होने पर भी महावीर का ध्यान नही टूटा। शूलपाणि ने महावीर के शरीर में सात स्थानों (नेत्रो, कानो, नासिका, सिर, दांतो, नखो एवं पीठ) पर भयंकर पीड़ा पहुंचाई। पर महावीर शान्तभाव से सब सहते रहे। अन्त में यक्ष ने अपनी पराजय स्वीकार की और महावीर के चरणो पर गिर पडा। बाद मे उसने वह स्थान भी छोड दिया।[1]

तपःसाधना के दूसरे वर्ष में महावीर को चण्डकौशिक नाम का दृष्टि-विष वाला भयंकर सर्प मिला जिसने ध्यानस्थ महावीर के पैर और शरीर पर जहरीला दृष्टाघात किया। पर महावीर उससे प्रभावित नही हुए।[2] साधना के पाचवें वर्ष मे महावीर लाढ देश में आये, जो अनार्य क्षेत्र था। यहां के लोगो ने महावीर की तपस्या में भयंकर उपसर्ग उपस्थित किये। श्वान् दूर से ही महावीर को काटने दौड़ते थे। अनार्य लोगो ने महावीर पर दण्ड, मुष्टि, पत्थर एवं शूल आदि से प्रहार किये।[3] साधना के ११वें वर्ष मे इन्द्र ने महावीर की कठिन साधना की प्रशंसा की। पर इन्द्र की बातों पर अविश्वास करते हुए संगम देव ने महावीर की स्वयं परीक्षा लेने का निश्चय किया। संगम देव ने ध्यान निमग्न महावीर को विभिन्न उपसर्गो द्वारा विचलित करने का प्रयास किया।[4] उसने एक ही रात में २० उपसर्ग उपस्थित किये। उसने प्रलयकारी धूल की वर्षा, वृश्चिक, नकुल, सर्प, चीटियो, मूषक, गज, पिशाच, सिंह और चाण्डाल आदि के उपसर्गों द्वारा महावीर को तरह-तरह की वेदना पहुंचाई। संगमदेव ने महावीर पर कालचक्र भी चलाया, जिसके प्रभाव से महावीर के शरीर का आधा निचला भाग भूमि में धंस गया। उसने एक अप्सरा को महावीर के समक्ष प्रस्तुत किया और स्वयं सिद्धार्थ एवं त्रिशला का रूप धारण कर करुण विलाप भी किया। पर महावीर इन उपसर्गों से तनिक भी विचलित नही हुए। अन्त मे सगम देव ने अपनी पराजय स्वीकार करते हुए महावीर से क्षमा मांगी।[5]

दक्षिण की ओर शूलपाणि यक्ष की मूर्ति है, जिसकी दोनो भुजाएं ऊपर उठी है। शूलपाणि के वक्षःस्थल की सभी हड्डियां दीख रही है। समीप ही वृश्चिक, सर्प, कपि, नकुल, गज और सिंह की आकृतिया उत्कीर्ण हैं। आगे महावीर की कायोत्सर्ग मूर्ति है। नीचे 'महावीर उपसर्ग' लिखा है। यह शूलपाणि यक्ष के उपसर्गों का चित्रण है। महावीर-मूर्ति के नीचे भी वृषभ, गज और सिंह की मूर्तिया है। साथ ही बाण और चक्र जैसे शस्त्र भी अंकित है। नीचे 'महावीर उपसर्ग' उत्कीर्ण है। महावीर के दाहिने पार्श्व मे एक सर्प को दंश करते हुए दिखाया गया है। ऊपर आक्रमण की मुद्रा में एक आकृति चित्रित है। समीप ही सर्प और खड्ग से युक्त एक आकृति को कायोत्सर्ग मे खड़े महावीर पर प्रहार की मुद्रा मे दिखाया गया है। आगे महावीर की एक दूसरी कायोत्सर्ग मूर्ति उत्कीर्ण है। एक वृषभ महावीर पर आक्रमण की मुद्रा में दिखाया गया है। ये सभी संगमदेव के उपसर्ग है।

उपसर्गों के बाद महावीर के चन्दनबाला से भिक्षाग्रहण करने का दृश्य है। ज्ञातव्य है कि चन्दनबाला महावीर की प्रथम शिष्या एवं श्रमणी-संघ की प्रवर्तिनी थी। चन्दनबाला चम्पा नगरी के शासक दधिवाहन की पुत्री थी और उसका प्रारम्भिक नाम वसुमति था। एक बार कोशाम्बी के राजा ने दधिवाहन पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया और उसकी पुत्री वसुमती को कौशाम्बी ले आया, जहां उसने वसुमती को धनावह श्रेष्ठी के हाथों बेच दिया। धनावह और उसकी पत्नी मूला वसुमती को अपनी पुत्री के समान मानते थे। दोनों ने वसुमती का नया नाम चन्दना रखा। चन्दना का सौन्दर्य अनुपम था। उसकी अपार रूपराशि को देखकर मूला के हृदय का स्त्री दौर्बल्य जाग उठा और उसने यह सोचना

---

१ त्रि०श०पु०च० १०.३.१११–४६ २ त्रि०श०पु०च० १०.३.२२५–८०

३ त्रि०श०पु०च० १०.३.५५४–६६ ४ त्रि०श०पु०च० १०.४.१८४–२८१

५ चतुर्विंशति जिनचरित्र, जिनचरित्र परिशिष्ट, २२२–३७

प्रारम्भ कर दिया कि कहीं धनावह चन्दना से विवाह न कर ले । मूला अब चन्दना को हटाने का उपाय सोचने लगी । एक दिन अपराह्न मे धनावह जब बाजार से घर लौटा तो सेवकों के उपस्थित न होने कारण चन्दना ही धनावह का पैर धोने लगी । नीचे झुकने के कारण चन्दना का जूड़ा खुल गया और उसकी केशराशि बिखर गई । चन्दना के केश कहीं कीचड़ मे न सन जायें, इस दृष्टि से सहज वात्सल्य से प्रेरित होकर धनावह ने चन्दना की केशराशि को अपनी यष्टि से ऊपर उठा कर जूड़ा बांध दिया । संयोगवश मूला यह सब देख रही थी । उसने अपने सन्देह को वास्तविकता का रूप दे डाला और चन्दना का सर्वनाश करने पर तुल गई । एक बार जब धनावह कार्यवश किसी दूसरे गांव चला गया था, तब मूला ने चन्दना के बालों को मुड़वा कर उसे शारीरिक यातनाएं दी और उसे एक कमरे में बन्द कर दिया । तीन दिनों तक चन्दना भूखी-प्यासी उसी कमरे में बन्द रही । वापिस लौटने पर जब धनावह को यह ज्ञात हुआ तो वह रो पड़ा । रसोईघर मे जाने पर उसे सूप मे कुछ उड़द के बाकलो के अतिरिक्त कुछ नही मिला । उसने चन्दना से उन्ही को ग्रहण करने को कहा । उसी समय एक मुनि आया जिसे चन्दना ने उन उड़द के बाकलो की भिक्षा दी । मुनि और कोई नही बल्कि स्वयं महावीर थे । उसी क्षण आकाश में महादान-महादान की देववाणी हुई । चन्दना के मुण्डित मस्तक पर लम्बी केशराशि उत्पन्न हो गई और इन्द्र ने महावीर की वन्दना के बाद चन्दना का भी अभिवादन किया । जब महावीर को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ तो चन्दनबाला ने महावीर से दीक्षा ग्रहण की और श्रमणी संघ का संचालन करते हुए निर्वाण प्राप्त किया ।[1]

दक्षिण की ओर चन्दनबाला को धनावह का पैर धोते हुए दिखाया गया है । नीचे 'चन्दनबाला' अभिलिखित है । धनावह एक यष्टि की सहायता से चन्दना की बिखरी केशराशि को उठा रहा है । अगले दृश्य मे चन्दनबाला एक कमरे मे बन्द है और उसके समीप मुनि की एक आकृति खड़ी है । मुनि स्वयं महावीर है । मुनि के एक हाथ मे मुखपट्टिका है और दूसरा व्याख्यान-मुद्रा मे है । चन्दनबाला मुनि को भिक्षा देने की मुद्रा मे निरूपित है । दोनो आकृतियो के नीचे क्रमशः 'चन्दनबाला' और 'महावीर' अभिलिखित है । आगे नमस्कार-मुद्रा मे इन्द्र की एक मूर्ति है । पूर्व की ओर महावीर की एक मूर्ति है । महावीर दो वृक्षो के मध्य ध्यानमुद्रा मे विराजमान है । नीचे 'समवसरण श्रीमहावीर' अभिलिखित है । आगे महावीर की एक कायोत्सर्ग मूर्ति भी उत्कीर्ण है ।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के वितान के दृश्य कुछ नवीनताओं के अतिरिक्त महावीर मन्दिर के दृश्यांकन के समान है (चित्र ४१) । सम्पूर्ण दृश्यांकन चार आयतो मे विभक्त हैं । बाहर से प्रथम आयत मे पूर्व, पश्चिम और दक्षिण की ओर महावीर के पूर्वभवों के विस्तृत अकन है । पूर्व मे भरत चक्रवर्ती और उनके पुत्र मारीचि (तीसराभव) की आकृतिया है । मारीचि की साधु के रूप मे भी एक आकृति है । दक्षिण की ओर विश्वभूति (१६वां भव) के जीवन की एक घटना चित्रित है । जैन परम्परा में उल्लेख है कि जैन श्रावक के रूप मे विचरण करते हुए विश्वभूति किसी समय मथुरा पहुचे और वहा एक गाय के धक्के से गिर पड़े । इस पर उनके भाई विशाखनन्दिन ने विश्वभूति की शक्ति का परिहास किया । इस बात से विश्वभूति क्रोधित हुए और उन्होंने उस गाय को केवल शृंग से पकड़कर नियंत्रण में कर लिया ।[2] दृश्य मे विश्वभूति एक गाय का शृंग पकड़े हुए है । नीचे 'विश्वभूति' उत्कीर्ण है । समीप ही एक अन्य गाय और पुरुष आकृतिया बनी है । आगे नयसार के जीव को देवता के रूप मे प्रदर्शित किया गया है । देवता के समक्ष हल और मुसल से युक्त एक आकृति खड़ी है ।

पश्चिम की ओर त्रिपृष्ठ की कथा चित्रित है । एक कायोत्सर्ग आकृति के समीप सिंह और त्रिपृष्ठ की आकृतियां उत्कीर्ण हैं । यह सिंह और त्रिपृष्ठ के युद्ध का चित्रण है । आगे त्रिपृष्ठ और शय्यापालक की मूर्तिया है । शय्यापालक नमस्कार-मुद्रा में खड़ा है और त्रिपृष्ठ उसके मस्तक पर प्रहार कर रहे है । यह शय्यापालक को दण्डित करने का दृश्य है । समीप ही एक नर्तकी और वाद्यवादन करती दो आकृतिया भी निरूपित है । आगे प्रियमित्र चक्रवर्ती (२२वां भव) की आकृति है ।

---

१ त्रि०श०पु०च० १०.४.५१६–६००

२ त्रि०श०पु०च० १०.१.८६–१०७

उत्तर की ओर सिद्धार्थ और त्रिशला की वार्तालाप करती, त्रिशला की शय्या पर अकेली और शिशु के साथ लेटी, महावीर के जन्म-अभिषेक एवं बाल्यकाल की घटनाओं से सम्बन्धित मूर्तियां है। बाल्यकाल की घटनाओं के चित्रण में सबसे पहले महावीर को एक पुरुष आकृति की पीठ पर बैठे हुए दिखाया गया है। महावीर की एक भुजा में सम्भवतः चाबुक है। आकृति के नीचे 'वीर' उत्कीर्ण है। जैन परम्परा मे उल्लेख है कि एक बार इन्द्र देवताओं से कुमार महावीर की निर्भयता की प्रशंसा कर रहे थे। इस पर एक देवता ने महावीर की शक्ति-परीक्षा लेने का निश्चय किया। देवता महावीर के क्रीडा-स्थल पर आया। उस समय महावीर संकुली और तिन्दुसक खेल खेल रहे थे। संकुली खेल में किसी वृक्ष विशेष को लक्षित कर बालक उस ओर दौड़ते है और जो बालक सबसे पहले उस वृक्ष पर चढ़कर नीचे उतर आता है वह विजयी माना जाता है, और विजेता पराजित बालक के कन्धो पर चढ़कर उस स्थान तक जाता है, जहां से दौड प्रारम्भ हुई होती है। देवता विषधर सर्प का स्वरूप धारण कर वृक्ष के तने पर लिपट गया। सभी बालक सर्प से डर गये पर महावीर ने निःशंक भाव से उस सर्प को पकड़कर रज्जु की तरह एक ओर फेंक दिया। देवता ने बालक का रूप धारण कर दौड़ के खेल मे भी भाग लिया, पर महावीर से पराजित हुआ। महावीर नियमानुसार उस देवता पर आरूढ होकर वृक्ष से खेल के मूल स्थान तक आये।[1] दृश्य मे एक बालक की पीठ पर महावीर बैठे है। समीप ही एक वृक्ष उत्कीर्ण है जिसके पास महावीर खड़े है और एक सर्प को फेंक रहे है। नीचे 'वीर' उत्कीर्ण है।

आगे वार्तालाप की मुद्रा मे कुमार महावीर और सिद्धार्थ की मूर्तिया है। समीप ही महावीर की दीक्षा का दृश्य उत्कीर्ण है। दीक्षा के पूर्व महावीर को दान देते हुए और एक शिविका मे बैठकर दीक्षा-स्थल को ओर जाते हुए दिखाया गया है। तीसरे आयत मे (पूर्व की ओर) महावीर को ध्यानमुद्रा मे बैठे और दाहिनी भुजा से केशों का लुचन करते हुए दिखाया गया है। दाहिने पार्श्व की इन्द्र की आकृति एक पात्र मे लुंचित केशों को सचित कर रही है। आगे महावीर की चार कायोत्सर्ग मूर्तियां है जो महावीर की तपस्या का चित्रण है। समीप ही कायोत्सर्ग मे खडी महावीर-मूर्ति के शीर्ष भाग मे एक चक्र उत्कीर्ण है और उनके जानु के नीचे का भाग नही प्रदर्शित है। बायी ओर दो स्त्री-पुरुष आकृतियां खड़ी है। यह संगम देव द्वारा महावीर पर कालचक्र (१८ वां उपसर्ग) चलाये जाने का मूर्त अंकन है। स्मरणीय है कि कालचक्र के प्रभाव से महावीर के घुटनो तक का भाग भूमि मे प्रविष्ट हो गया था[2]; इसी कारण मूर्ति मे भी महावीर के जानु के नीचे का भाग नही उत्कीर्ण किया गया है। बायें कोने पर क्षमायाचना की मुद्रा मे संगम देव की मूर्ति है।

दक्षिण की ओर (दाहिने) चन्दनबाला की कथा उत्कीर्ण है। एक मण्डप मे चतुर्भुज इन्द्र आसीन है। समीप ही महावीर की कायोत्सर्ग मे तपस्यारत एवं मुनिरूप में दण्ड से युक्त मूर्तिया है। आगे चन्दनबाला धनावह का पैर धो रही है। धनावह एक यष्टि से चन्दनबाला की बिखरी केशराशि को उठाये है। आकृतियो के नीचे 'श्रेष्ठी' और 'चन्दनबाला' उत्कीर्ण है। चन्दनबाला के समीप श्रेष्ठी-पत्नी मूला आश्चर्य से यह दृश्य देख रहा है। आगे चन्दनबाला को एक कमरे मे बन्द और महावीर को भिक्षा देते हुए निरूपित किया गया है। आकृतियों के नीचे 'चन्दनबाला' और 'वीर' लिखा है। समीप ही इस महादान पर प्रसन्नता व्यक्त करती हुई आकृतिया अंकित है। वितान पर महावीर का समवसरण नही उत्कीर्ण है।

कल्पसूत्र के चित्रों मे महावीर के पूर्वभवों, पंचकल्याणको, उपसर्गों एवं देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में स्थानांतरण के विस्तृत अंकन है।[3] एक चित्र में महावीर सिद्धरूप में प्रदर्शित है। सिद्धरूप में महावीर ध्यानमुद्रा में विराजमान और विभिन्न अलंकरणों से युक्त हैं। अगले चित्रों में महावीर के प्रमुख गणधर इन्द्रभूति गौतम और महावीर के निर्वाण के बाद दीपावली का उत्सव मनाने के अंकन हैं।

---

१ त्रि०श०पु०च० १०. २. ८८-१२४ २ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ३८९

३ ब्राउन, डब्ल्यू०एन०, पू०नि०, पृ० ११-४४

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत से पर्याप्त संख्या में महावीर की मूर्तियां मिली हैं। इनमें अधिकांशतः महावीर ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। महावीर के सिंह लांछन और यक्ष-यक्षी के नियमित चित्रण प्राप्त होते हैं। बादामी की गुफा ४ में महावीर की सातवीं शती ई० की कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं।[१] इनमें चतुर्भुज यक्ष-यक्षी और परिकर में २४ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। महावीर के कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं। एलोरा की जैन गुफाओं (३०, ३१, ३२, ३३, ३४) में भी महावीर की कई मूर्तियां (९वीं-११वीं शती ई०) हैं।[२] इनमें महावीर ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और उनके यक्ष-यक्षी के रूप में गजारूढ़ सर्वानुभूति एवं सिंहवाहना अम्बिका निरूपित हैं। समान विवरणों वाली एक मूर्ति बम्बई के हरीदास स्वाली संग्रह में है।[३] दो कायोत्सर्ग मूर्तियां हैदराबाद संग्रहालय में हैं।[४] इन मूर्तियों के परिकर में २३ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। तीन मूर्तियां मद्रास गवर्नमेन्ट म्यूजियम में हैं।[५] दो उदाहरणों में यक्ष-यक्षी और एक उदाहरण में २३ छोटी जिन आकृतियां बनी हैं। दक्षिण भारत से मिली ल० नवीं-दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पेरिस संग्रहालय (म्यूजे गीमे) में है।[६] मूर्ति की पीठिका पर सिंह लांछन और परिकर में सात सर्पफणों वाले पार्श्वनाथ और बाहुबली की कायोत्सर्ग मूर्तियां अंकित हैं।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत में ऋषभ और पार्श्व के बाद महावीर ही सर्वाधिक लोकप्रिय थे। गुप्त युग में महावीर के सिंह लांछन का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। भारत कला भवन, वाराणसी की ल० छठीं शती ई० की मूर्ति (१६१) इसका प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है। महावीर की मूर्तियों में ल० दसवीं शती ई० में यक्ष-यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ। यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त दसवीं शती ई० की सभी महावीर मूर्तियां उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश में देवगढ़, ग्यारसपुर, खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ८०८) में हैं। मूर्त अंकनों में महावीर के यक्ष-यक्षी का पारम्परिक या कोई स्वतन्त्र स्वरूप कभी भी स्थिर नहीं हो सका। केवल देवगढ़, खजुराहो, ग्यारसपुर एवं राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९) की ही कुछ महावीर मूर्तियों में स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। बिहार, उड़ीसा और बंगाल की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण ही नहीं हैं। गुजरात एवं राजस्थान की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।[७] अष्ट-प्रातिहार्यों, नवग्रहों एवं लघु जिन आकृतियों के चित्रण सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय थे। महावीर की जीवन्तस्वामी मूर्तियों और उनके जीवनदृश्यों के अंकन केवल गुजरात और राजस्थान के श्वेतांबर स्थलों से ही मिले हैं।[८]

द्वितीर्थी-जिन-मूर्तियां

द्वितीर्थी जिन मूर्तियों से आशय उन मूर्तियों से है जिनमें दो जिन-मूर्तियां साथ-साथ उत्कीर्ण हैं। ऐसी जिन मूर्तियों का निर्माण परम्परा-सम्मत नहीं है, क्योंकि जैन ग्रन्थों में हमें द्वितीर्थी जिन मूर्तियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार के उल्लेख नहीं मिलते। इन मूर्तियों का निर्माण नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य हुआ है। इनके उदाहरण केवल दिगंबर स्थलों से ही मिले हैं। सर्वाधिक मूर्तियां खजुराहो और देवगढ़ में हैं। लाक्षणिक विशेषताओं के आधार पर द्वितीर्थी जिन मूर्तियों

---

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ए २१–६०, ६१

२ गुप्ते, आर०एस० तथा महाजन, बी०डी०, **अजन्ता, एलोरा ऐण्ड औरंगाबाद केव्स**, बम्बई, १९६२, पृ०१२९-२२३

३ शाह, यू०पी०, 'जैन ब्रोन्जेज इन हरीदास स्वालीज कलेक्शन', **बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०**, अं० ९, पृ० ४७–४९

४ राव, एस०एच०, 'जैनिज्म इन दि डकन', **ज०इं०हि०**, खं० २६, भाग १–३, पृ० ४५–४९

५ रामचन्द्रन, टी०एन०, **जैन माान्युमेन्ट्स ऐण्ड प्लेसेज ऑव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स**, कलकत्ता, १९४४, पृ० ६४-६६

६ **जै०क०स्था०**, खं० ३, पृ० ५६३

७ राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९) की महावीर मूर्ति इसका अपवाद है।

८ मथुरा का कुषाणकालीन फलक (राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे ६२६) इसका अपवाद है।

को तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग की मूर्तियों में एक ही जिन की दो आकृतियां उत्कीर्ण हैं। इस वर्ग मे केवल ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व की ही मूर्तिया हैं। दूसरे वर्ग मे लांछन विहीन जिनो की दो मूर्तियां बनी है। इस प्रकार पहले और दूसरे वर्गों की द्वितीर्थी मूर्तियो का उद्देश्य एक ही जिन की दो आकृतियो का उत्कोर्णन था। तीसरे वर्ग मे भिन्न लाछनो वाली दो जिन मूर्तियां निरूपित हैं। इस वर्ग की मूर्तियो का उद्देश्य सम्भवतः दो भिन्न जिनो को एक स्थान पर साथ-साथ प्रतिष्ठित करना था।

सभी वर्गों की मूर्तियो मे दोनों जिन आकृतियां कायोत्सर्ग-मुद्रा में निर्वस्त्र खड़ी है। जिन मूर्तियां धर्मचक्र से युक्त सिंहासन या साधारण पीठिका पर उत्कीर्ण है। प्रत्येक जिन दो पार्श्ववर्ती चामरधरों, उपासको, उड्डीयमान मालाधरों, गजों एवं त्रिछत्र, अशोकवृक्ष, भामण्डल और दुन्दुभिवादक की आकृतियो से युक्त है। कुछ उदाहरणों में चार के स्थान पर केवल तीन ही चामरधरो एवं उड्डीयमान मालाधरो की आकृतियां उत्कीर्णित है।[१] दसवीं शती ई० मे जिनो के लाछन एवं ग्यारहवीं शती ई० में यक्ष-यक्षी युगलो के उत्कीर्णन प्रारम्भ हुए।

दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति खण्डगिरि की गुफा से मिली है और सम्प्रति ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन (९९) मे सुरक्षित है (चित्र ६०)।[२] जिनों की पीठिकाओं पर वृषभ और सिंह लाछन उत्कीर्ण है। इस प्रकार यह ऋषभ और महावीर की द्वितीर्थी मूर्ति है। ऋषभ जटामुकुट से शोभित है पर महावीर की केशरचना गुच्छको के रूप मे प्रदर्शित है। अलुआरा (मानभूम) मे प्राप्त ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति पटना संग्रहालय (१०६८२) मे है।[३] लांछनों के आधार पर जिनों की पहचान ऋषभ और महावीर मे सम्भव है।

खजुराहो से दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की नौ मूर्तिया मिली है (चित्र ६१, ६३)।[४] सभी मे अष्ट-प्रातिहार्य प्रदर्शित है। खजुराहो की द्वितीर्थी-जिन-मूर्तियों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वे लाछनो से रहित है। केवल शान्तिनाथ मन्दिर के आहात की एक मूर्ति मे ही लांछन प्रदर्शित है।[५] इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि दसवीं शती ई० तक खजुराहो के कलाकार सभी जिनो के लाछनो से परिचित हो चुके थे, और इस परिप्रेक्ष्य मे द्वितीर्थी मूर्तियों मे लाछनो का अभाव आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। आठ उदाहरणो मे प्रत्येक जिन मूर्ति के सिंहासन-छोरो पर द्विभुज या चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित है।[६] द्विभुज यक्ष-यक्षी के करों मे अभयमुद्रा (या पद्म) और जलपात्र (या फल) प्रदर्शित है। पांच उदाहरणों मे यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं। चतुर्भुज यक्ष यक्षी की भुजाओं मे सामान्यतः अभयमुद्रा, पद्म (या शक्ति), पद्म (या पद्म से लिपटी पुस्तिका) एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित है। द्वितीर्थी मूर्तियो के परिकर मे छोटी जिन आकृतियां भी उत्कीर्ण है।

देवगढ मे नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ५० से अधिक द्वितीर्थी मूर्तिया है। सामान्यतः प्रातिहार्यों से युक्त जिन आकृतिया साधारण पीठिका या सिंहासन पर खड़ी है। अधिकांश उदाहरणों में जिनो के लांछन एवं परिकर मे छोटी जिन मूर्तिया उत्कीर्ण है। देवगढ मे केवल पहले और तीसरे वर्ग की ही द्वितीर्थी मूर्तिया है। पहले वर्ग की मूर्तियो मे लटकती जटाओं[७] या पांच[८] और सात[९] सर्पफणों के छत्रों से शोभित ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व की मूर्तिया है।

---

१ दो आकृतियां मूर्ति के छोरों पर और एक दोनों जिनो के मध्य मे उत्कीर्ण हैं।

२ चन्दा, आर० पी०, **मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम**, वाराणसी, १९७२ (पु०मु०), पृ० ७१

३ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८६

४ ६ मूर्तियां शान्तिनाथ संग्रहालय (के २५, २६, २८, २९, ३०, ३१) में है, और शेष तीन क्रमशः शान्तिनाथ मन्दिर, मन्दिर ३ और पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (१६५३) में है।

५ एक जिन के आसन पर गज-लांछन (अजितनाथ) उत्कीर्ण है पर दूसरे जिन का लांछन स्पष्ट नही है।

६ केवल शान्तिनाथ मन्दिर की ११वी शती ई० की मूर्ति में यक्ष-यक्षी अनुपस्थित है।

७ चार उदाहरण

८ दो उदाहरण : मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी एवं मन्दिर १७

९ दस उदाहरण

तीसरे वर्ग की मूर्तियों में दो भिन्न लाछनों वाली मूर्तियां हैं। इस वर्ग की अधिकांश मूर्तियां ग्यारहवीं शती ई० की है। इस वर्ग की मूर्तियों में ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, शीतल, विमल, शान्ति, कुंथु, नेमि, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियां है। मन्दिर १ की मूर्ति मे विमल और कुंथु के शूकर और अज लाछन (चित्र ६२), मन्दिर ३ की मूर्ति मे अजित और सम्भव के गज और अश्व लांछन, मन्दिर ४ की मूर्ति में अभिनन्दन और सुमति के कपि और क्रौंच लाछन, और मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की मूर्ति मे शान्ति और सुपार्श्व[1] के मृग और स्वस्तिक लांछन अंकित हैं। मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी पर ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की कई मूर्तियां है। इनमे ऋषभ, महावीर, पद्मप्रभ और नमि की मूर्तियां है। मन्दिर ८ की मूर्ति मे सुपार्श्व और पार्श्व की स्वस्तिक और सर्प लाछन से युक्त मूर्तिया है। सुपार्श्व और पार्श्व के मस्तकों पर सर्पफणों के छत्र नही प्रदर्शित है।

यक्ष-यक्षी युगल केवल दो ही उदाहरणों (मन्दिर १९, ल० ११वीं शती ई०) मे निरूपित है। एक मूर्ति मे यक्ष यक्षी द्विभुज है और उनके करों मे अभयमुद्रा (गदा) एवं फल प्रदर्शित है। दूसरा द्वितीर्थी मूर्ति ऋषभ और अजित की है। अजित के साथ परम्पराविरुद्ध गोमुख और चक्रेश्वरी निरूपित है। द्विभुज गोमुख की भुजाओं मे परशु और फल है। गरुडवाहना चक्रेश्वरी चतुर्भुजा है और उसके करो मे अभयमुद्रा, गदा, चक्र एवं शंख प्रदर्शित है। ऋषभ के द्विभुज यक्ष के हाथो मे अभयमुद्रा और पद्म है। ऋषभ की चतुर्भुजा यक्षी के अवशिष्ट हाथो मे अभयमुद्रा और पद्म है। इस मूर्ति के परिकर मे पार्श्वनाथ की लघु आकृति उत्कीर्ण है। मन्दिर १९ की इन दोनों ही मूर्तिया मे केवल एक ही त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक एवं उड्डीयमान मालाधर बने है। तीन उदाहरणों[2] मे पंक्तिबद्ध ग्रहों की द्विभुज मूर्तियां भी बनी है।[3] मन्दिर १२ के प्रदक्षिणा-पथ की मूर्ति मे सूर्य उत्कुटिकासन मे विराजमान है और उनके दानो करो मे सनाल पद्म है। अन्य छह ग्रह ललितमुद्रा मे आसीन है और उनके करों मे अभयमुद्रा और कलश प्रदर्शित है। ऊर्ध्वकाय राहु के समीप सर्पफण से शोभित केतु की आकृति उत्कीर्ण है।

पार्श्व की द्वितीर्थी मूर्तियों[4] मे मूर्ति के छोरो पर एक सर्पफण के छत्र से युक्त दो छत्रधारिणी सेविकाएं निरूपित है। छत्र के शीर्ष भाग दोनों जिनों के सर्पफणों के ऊपर प्रदर्शित है।[5] इन मूर्तिया मे त्रिछत्र नहीं प्रदर्शित है। पार्श्व की कुछ द्वितीर्थी मूर्तियों (मन्दिर ८) मे एक सर्पफण के छत्र से युक्त तीन चामरधर सेवक भी आमूर्तित है। मन्दिर १७ और १८ की पार्श्व की दो द्वितीर्थी मूर्तियो (१०वीं शती ई०) मे प्रत्येक जिन के पार्श्वों मे तीन सर्पफणों के छत्रों से युक्त स्त्री-पुरुष सेवक आमूर्तित है। बायीं ओर की सेविका के हाथों मे लम्बा छत्र है पर पुरुष के हाथो मे अभयमुद्रा और चामर है।

त्रितीर्थी-जिन-मूर्तियां

द्वितीर्थी जिन मूर्तियो की शैली पर ही त्रितीर्थी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हुई, जिनमे दो के स्थान पर तीन जिनों की मूर्तियां है। सभी जिन कायोत्सर्ग-मुद्रा मे निर्वस्त्र खड़े है। इनमें अष्ट-प्रातिहार्य भी उत्कीर्ण है। जैन ग्रन्थो मे त्रितीर्थी जिन मूर्तियों के सम्बन्ध मे भी कोई उल्लेख नही प्राप्त होता। त्रितीर्थी मूर्तिया दसवी से बारहवीं शती ई० के मध्य उत्कीर्ण हुई। इनके उदाहरण केवल दिगंबर स्थलों (देवगढ़ एवं खजुराहो) से ही मिले है। त्रितीर्थी मूर्तियों मे सर्वदा तीन अलग-अलग जिनो की ही मूर्तियां उत्कीर्ण है।

---

१ सुपार्श्व के मस्तक पर सर्पफणो का छत्र नहीं है।

२ मन्दिर (१२ प्रदक्षिणापथ), मन्दिर १६, मन्दिर १२ (चहारदीवारी)

३ मन्दिर १२ की दक्षिणी चहारदीवारी और मन्दिर १६ की द्वितीर्थी मूर्तियों में सूर्य, राहु, केतु एवं एक अन्य ग्रहों की मूर्तियां नहीं उत्कीर्ण है। मन्दिर १६ की मूर्ति मे राहु उपस्थित है।

४ मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी और मन्दिर ८ की १०वीं-११वीं शती ई० की मूर्तियां

५ कुछ उदाहरणों (मन्दिर १२ एवं १७) मे सेविकाओं की भुजाओं मे छत्र के स्थान पर केवल दण्ड प्रदर्शित हैं।

खजुराहो में केवल एक त्रितीर्थी मूर्ति (मन्दिर ८) है। ग्यारहवीं शती ई० की इस मूर्ति में नेमि, पार्श्व और महावीर की मूर्तियां निरूपित हैं। देवगढ़ में २० से अधिक त्रितीर्थी मूर्तियां हैं। देवगढ़ की त्रितीर्थी जिन मूर्तियों को लाक्षणिक विशेषताओं के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें तीन जिनों को कायोत्सर्ग-मुद्रा में निरूपित किया गया है। दूसरे वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें मध्यवर्ती जिन ध्यानमुद्रा में आसीन हैं, पर पार्श्ववर्ती जिन आकृतियां कायोत्सर्ग में खड़ी हैं। तीसरे वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें कायोत्सर्ग में खड़ी दो जिन मूर्तियों के साथ तीसरी आकृति सरस्वती या भरत चक्रवर्ती की है। इनमें जिन की तीसरी आकृति मूर्ति के किसी अन्य छोर पर उत्कीर्ण है। जिनों के साथ सरस्वती एवं भरत के निरूपण सम्भवतः उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि और उन्हें जिनों से समकक्ष प्रतिष्ठित करने के प्रयास के सूचक हैं। पहले वर्ग की दसवीं शतीई० की एक मूर्ति मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी पर है। इस मूर्ति में शंख, सर्प एवं सिंह लांछनों से युक्त नेमि, पार्श्व एवं महावीर निरूपित हैं। पार्श्व के साथ सात सर्प-फणों का छत्र और नेमि तथा महावीर के नीचे उनके नाम भी उत्कीर्ण हैं।[1] मन्दिर ३ में कपि, पुष्प एवं पद्म लांछनों से युक्त अभिनन्दन, पद्मप्रभ और नमि की एक त्रितीर्थी मूर्ति (११वीं शतीई०) है। मन्दिर १ की भित्ति पर ग्यारहवीं शतीई० की आठ त्रितीर्थी मूर्तियां हैं। एक में लांछन कपि (अभिनन्दन), गज (अजित) और अश्व (सम्भव) हैं। दूसरी में एक जिन के मस्तक पर पांच सर्पफणों का छत्र (सुपार्श्व) है और दूसरे जिन का लांछन शंख (नेमि) है, पर तीसरे जिन का लांछन स्पष्ट नहीं है। तीसरी मूर्ति में दो जिनों के लांछन मृग (शान्ति) एवं बकरा (कुंथु) हैं, पर तीसरे जिन का लांछन स्पष्ट नहीं है। चौथी मूर्ति में लांछन सर्प (पार्श्व), स्वस्तिक (सुपार्श्व) और कोई पशु (?) है। सुपार्श्व और पार्श्व क्रमशः पांच और सात सर्पफणों के छत्र से भी युक्त हैं। पांचवीं मूर्ति में केवल एक ही जिन का लांछन स्पष्ट है, जो अर्धचन्द्र (चन्द्रप्रभ) है। छठी मूर्ति में लांछन स्वस्तिक (सुपार्श्व), पुष्प (पुष्पदन्त) और अज (? कुंथु) हैं। सुपार्श्व के मस्तक पर सर्पफणों का छत्र नहीं है। इस मूर्ति के बायें छोर पर जैन आचार्यों की तीन मूर्तियां हैं। समान विवरणों वाली सातवीं मूर्ति में भी बायीं ओर जैन आचार्यों की तीन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इस उदाहरण में जिनों के लांछन स्पष्ट नहीं हैं। आठवीं मूर्ति में भी जिनों के लांछन स्पष्ट नहीं हैं। केवल सात सर्पफणों के शिरस्त्राण से युक्त एक जिन की पहचान पार्श्व से सम्भव है। इस मूर्ति के दाहिने छोर पर यक्ष यक्षी और लांछन से युक्त महावीर की एक मूर्ति है।

दूसरे वर्ग की दसवीं शती ई० की एक मूर्ति मन्दिर २१ के शिखर पर है (चित्र ६४)। सभी जिनों के साथ द्विभुज यक्ष यक्षी निरूपित हैं। मध्य की ध्यानस्थ मूर्ति के साथ लांछन नहीं उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं, जिनके आधार पर जिन की पहचान नेमि से की जा सकती है। नेमि के दक्षिण एवं वाम पार्श्वों में क्रमशः पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं। ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति मन्दिर १ की भित्ति पर है। मध्य में यक्ष-यक्षी से वेष्टित चन्द्रप्रभ की ध्यानस्थ मूर्ति है। चन्द्रप्रभ के दोनों ओर सुपार्श्व और पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं।

तीसरे वर्ग की केवल दो ही मूर्तियां (११वीं शती ई०) हैं। मन्दिर २ की पहली मूर्ति में बायें छोर पर बाहुबली की कायोत्सर्ग मूर्ति है (चित्र ७५)। एक ओर भरत की भी कायोत्सर्ग मूर्ति बनी है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि ऋषभ-पुत्र भरत ने जीवन के अन्तिम दिनों में दीक्षा ग्रहण कर तपस्या की थी। भरत-मूर्ति की पीठिका पर गज, अश्व, चक्र, घट, खड्ग एवं वज्र उत्कीर्ण हैं, जो चक्रवर्ती के लक्षण हैं। मूर्ति की जिन आकृतियों की पहचान लांछनों के अभाव में सम्भव नहीं है। मन्दिर १ की दूसरी मूर्ति में अजित और सम्भव के साथ वाग्देवी सरस्वती की चतुर्भुजी मूर्ति उत्कीर्ण है (चित्र ६५)।[2] मयूरवाहना सरस्वती के करों में वरदमुद्रा, अक्षमाला, पद्म और पुस्तक हैं। तीसरी जिन आकृति की पहचान सम्भव नहीं है।

१ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अन्पब्लिश्ड त्रितीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ़', **जैन जर्नल**, खं० ११, अं० २, अक्तूबर ७६, पृ० ७३–७४

२ तिवारी, एम० एन० पी०, 'यू यूनिक त्रितीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ़', **ललितकला**, अं० १७, पृ० ४१–४२

सर्वतोभद्रिका जिन मूर्तियां या जिन चौमुखी

प्रतिमा सर्वतोभद्रिका या सर्वतोभद्र प्रतिमा का अर्थ है वह प्रतिमा जो सभी ओर से शुभ या मंगलकारी है, अर्थात् ऐसा शिल्पकार्य जिसमे एक ही शिलाखण्ड मे चारों ओर चार प्रतिमाएं निरूपित हो ।[१] पहली शती ई० मे मथुरा मे इनका निर्माण प्रारम्भ हुआ । इन मूर्तियों मे चारो दिशाओ मे चार जिन मूर्तियां उत्कीर्ण है । ये मूर्तियां या तो एक ही जिन की या अलग-अलग जिनो की होती है । ऐसी मूर्तियो को चतुर्बिम्ब, जिन चौमुखी और चतुर्मुख भी कहा गया है ।[२] ऐसी प्रतिमाएं दिगंबर स्थलो पर विशेष लोकप्रिय थी ।

जिन चौमुखी की धारणा को विद्वानो ने जिन समवसरण की प्रारम्भिक कल्पना पर आधारित और उसमे हुए विकास का सूचक माना है[३] पर इस प्रभाव को स्वीकार करने मे कई कठिनाईयां हैं । समवसरण वह देवनिर्मित सभा है, जहां प्रत्येक जिन कैवल्य प्राप्ति के बाद अपना प्रथम उपदेश देते है । समवसरण तीन प्राचीरों वाला भवन है जिसके ऊपरी भाग मे अष्ट-प्रातिहार्यों से युक्त जिन ध्यानमुद्रा मे (पूर्वाभिमुख) विराजमान होते है । सभी दिशाओ के श्रोता जिन का दर्शन कर सकें, इस उद्देश्य से व्यंतर देवो ने अन्य तीन दिशाओं मे भी उसी जिन की प्रतिमाएं स्थापित की ।[४] यह उल्लेख सर्वप्रथम आठवीं-नवीं शती ई० के जैन ग्रन्थो मे प्राप्त होता है । प्रारम्भिक जैन ग्रन्थो मे चार दिशाओ मे चार जिन मूर्तियो के निरूपण का उल्लेख नहीं प्राप्त होता । ऐसी स्थिति मे कुषाणकालीन जिन चौमुखी मे चार अलग-अलग जिनों के उत्कीर्णन को समवसरण की धारणा से प्रभावित और उसमे हुए किसी विकास का सूचक नहीं माना जा सकता । आठवी-नवी शती ई० के ग्रन्थों मे भी समवसरण मे किसी एक ही जिन की चार मूर्तियों के निरूपण का उल्लेख है, जब कि कुषाणकालीन चौमुखी मे चार अलग-अलग जिनों को चित्रित किया गया है ।[५] समवसरण मे जिन सदैव ध्यानमुद्रा मे आसीन होते है, जब कि कुषाणकालीन चौमुखी जिन मूर्तियां कायोत्सर्ग मे खड़ी है । जहां हमें समकालीन जैन ग्रन्थो मे जिन चौमुखी मूर्ति की कल्पना का निश्चित आधार नहीं प्राप्त होता है, वहीं तत्कालीन और पूर्ववर्ती शिल्प मे ऐसे एकमुख और बहुमुख शिवलिंग[६] एवं यक्ष मूर्तियां[७] प्राप्त होती है जिनसे जिन चौमुखी की धारणा के प्रभावित होने की सम्भावना हो सकती है ।

---

१ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, **एपि०इण्डि०**, ख० २, पृ० २०२–०३, २१०, भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० ४८; अग्रवाल, वी० एस०, **पू०नि०**, पृ० २७, दे, सुधीन, 'चौमुख ए सिम्बालिक जैन आर्ट', **जैन जर्नल**, ख० ६, अ० १, पृ० २७, पाण्डेय, दीनबन्धु, 'प्रतिमा सर्वतोभद्रिका', राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे २८ और २९ जनवरी १९७२ को जैन कला पर हुए सगोष्ठी मे पढ़ा लेख, तिवारी, एम०एन०पी०, 'सर्वतोभद्रिका जिन मूर्तियां या जिन-चौमुखी', **संबोधि**, ख० ८, अं० १–४, अप्रैल ७९–जनवरी ८०, पृ० १–७

२ एपि०इण्डि०, ख० २, पृ० २११, लेख ४१

३ **स्ट०जै०आ०**, पृ० ९४–९५, दे, सुधीन, **पू०नि०**, पृ० २७; श्रीवास्तव, वी० एन०, **पू०नि०**, पृ० ४५

४ **त्रि०श०पु०च०** १.३.४२१–६८६, भण्डारकर, डी० आर०, 'जैन आइकानोग्राफी-समवसरण', **इण्डि०एण्टि०**, ख ४०, पृ० १२५–३०

५ मथुरा की १०२३ ई० की एक चौमुखी मूर्ति मे ही सर्वप्रथम समवसरण की धारणा को अभिव्यक्ति मिली । पीठिका-लेख में उल्लेख है कि यह महावीर की जिन चौमुखी है (वर्धमानश्चतुर्बिम्बः)-द्रष्टव्य, **एपि०इण्डि०**, ख० २, पृ० २११, लेख ४१

६ मथुरा से कुषाणकालीन एकमुख और पंचमुख शिवलिंगो के उदाहरण मिले है । गुडीमल्लम (दक्षिण भारत) के पहली शती ई० पू० के शिवलिंग मे लिंगम के समक्ष स्थानक-मुद्रा मे शिव की मानवाकृति उत्कीर्ण है—द्रष्टव्य, बनर्जी, जे० एन०, **दि डीवलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, पृ० ४६१, भट्टाचार्य, बी०सी०, **पू०नि०**, पृ० ४८; शुक्ल, डी० एन०, **प्रतिमाविज्ञान**, लखनऊ, १९५६, पृ० ३१५

७ राजघाट (वाराणसी) से मिली परवर्ती शुंगकालीन एक त्रिमुख यक्ष मूर्ति मे तीन दिशाओं में यक्ष आकृतियां उत्कीर्ण है—द्रष्टव्य, अग्रवाल, पी० के०, 'दि ट्रिपल यक्ष स्टेचू फ्राम राजघाट', **छवि**, वाराणसी, १९७१, पृ० ३४०–४२

जिन चौमुखी पर स्वस्तिक[1] तथा मौर्य शासक अशोक के सिंह एवं वृषभ स्तम्भ शीर्षों का भी कुछ प्रभाव असम्भव नहीं है। अशोक का सारनाथ-सिंह-शीर्ष-स्तम्भ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

जिन चौमुखी प्रतिमाओं को मुख्यतः दो वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें एक ही जिन की चार मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। दूसरे वर्ग की मूर्तियों में चार अलग-अलग जिनों की मूर्तियां हैं। पहले वर्ग की मूर्तियों का उत्कीर्णन ल० सातवीं-आठवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। किन्तु दूसरे वर्ग की मूर्तियां पहली शती ई० से ही बनने लगी थीं। मथुरा की कुषाणकालीन चौमुखी मूर्तियां इसी दूसरे वर्ग की हैं। तुलनात्मक दृष्टि से पहले वर्ग की मूर्तियां संख्या में बहुत कम हैं। पहले वर्ग की मूर्तियों में जिनों के लांछन सामान्यतः नहीं प्रदर्शित हैं।

प्रारम्भिक मूर्तियां

प्राचीनतम जिन चौमुखी मूर्तियां कुषाणकाल की हैं। मथुरा से इन मूर्तियों के १५ उदाहरण मिले हैं (चित्र ६६)। सभी में चार जिन आकृतियां साधारण पीठिका पर कायोत्सर्ग में खड़ी हैं।[2] श्रीवत्स से युक्त सभी जिन निर्वस्त्र हैं (चित्र ७३)। चार में से केवल दो ही जिनों की पहचान जटाओं और सात सर्पफणों की छत्रावली के आधार पर क्रमशः ऋषभ और पार्श्व से सम्भव है। कुषाणकालीन जिन चौमुखी मूर्तियों में उपासकों एवं भामण्डल के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रातिहार्य नहीं उत्कीर्ण है। गुप्तकाल में जिन चौमुखी का उत्कीर्णन लोकप्रिय नहीं प्रतीत होता। हमें इस काल की केवल एक मूर्ति मथुरा से ज्ञात है जो पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (बी ६८) में सुरक्षित है। कुषाणकालीन मूर्तियों के समान ही इसमें भी केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तियां

जिनों के स्वतन्त्र लांछनों के निर्धारण के साथ ही ल० आठवीं शती ई० से जिन चौमुखी मूर्तियों में सभी जिनों के साथ लांछनों के उत्कीर्णन की परम्परा प्रारम्भ हुई। ऐसी एक प्रारम्भिक मूर्ति राजगिर के सोनभण्डार गुफा में है। बिहार और बंगाल की चौमुखी मूर्तियों में सभी जिनों के साथ स्वतन्त्र लांछनों का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय था। अन्य क्षेत्रों में सामान्यतः कुषाणकालीन चौमुखी मूर्तियों के समान केवल दो ही जिनों (ऋषभ एवं पार्श्व) की पहचान सम्भव है। चौमुखी मूर्तियों में ऋषभ और पार्श्व के अतिरिक्त अजित, सम्भव, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, नेमि, शान्ति और महावीर की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ल० आठवीं-नवीं शती ई० में जिन चौमुखी मूर्तियों में कुछ अन्य विशेषताएं भी प्रदर्शित हुई। चौमुखी मूर्तियों में चार प्रमुख जिनों के साथ ही लघु जिन मूर्तियों का उत्कीर्णन भी प्रारम्भ हुआ। लघु जिन मूर्तियों की संख्या सदैव घटती-बढ़ती रही है। इनमें कभी-कभी २० या ४८ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं, जो चार मुख्य जिनों के साथ मिलकर क्रमशः जिन चौबीसी और नन्दीश्वर द्वीप के भाव को व्यक्त करती हैं।

चारों प्रमुख जिन मूर्तियों के साथ सामान्य प्रातिहार्यों एवं कभी-कभी यक्ष-यक्षी युगलों और नवग्रहों को भी प्रदर्शित किया जाने लगा। साथ ही चौमुखी मूर्तियों के शीर्षभाग छोटे जिनालयों के रूप में निर्मित होने लगे, जिनमें आमलक और कलश भी उत्कीर्ण हुए। कुछ क्षेत्रों में चतुर्मुख जिनालयों का भी निर्माण हुआ। चतुर्मुख जिनालय का एक प्रारम्भिक उदाहरण (ल० ९वीं शती ई०) पहाड़पुर (बंगाल) से मिला है।[3] यह चौमुख मन्दिर चार प्रवेश-द्वारों से युक्त है और इसके मध्य में चार जिन प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। ल० ग्यारहवीं शती ई० का एक विशाल चौमुख जिनालय इन्दौर (गुना, म० प्र०) में है (चित्र ६९)।[4] चारों जिन आकृतियां ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और सामान्य प्रातिहार्यों एवं

१ अग्रवाल, वी० एस०, **इण्डियन आर्ट**, वाराणसी, १९६५, पृ० ४९–५०, २३२

२ उल्लेखनीय है कि चौमुखी मूर्तियों में जिन अधिकांशतः कायोत्सर्ग में ही निरूपित हैं।

३ दे, सुधीन, पू०नि०, पृ० २७

४ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ८२.३९, ८२.४०

यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त है। मूलनायको के परिकर में जिनों, स्थापना-युक्त जैन आचार्यों एवं गोद मे बालक लिये स्त्री-पुरुष युगलों की कई आकृतिया उत्कीर्ण है। ल० ग्यारहवी-बारहवी शती ई० मे स्तम्भो के शीर्ष भाग मे भी जिन चौमुखी का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। ऐसे दो उदाहरण पुरातात्विक संग्रहालय, ग्वालियर[1] एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ (०·७३) में हैं।

गुजरात-राजस्थान—गुजरात और राजस्थान मे श्वेतांबर स्थलों पर जिन चौमुखी का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय नही था। इस क्षेत्र से दोनों वर्गों की चौमुखी मूर्तिया मिली है। दूसरे वर्ग की मूर्तियो मे मथुरा की कुषाणकालीन चौमुखी मूर्तियो के समान केवल ऋषभ और पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। जघीना (भरतपुर) से प्राप्त नवी शती ई० की एक दिगंबर मूर्ति भरतपुर राज्य संग्रहालय (३) मे है।[2] इसमें जटाओं से शोभित ऋषभ की चार कायोत्सर्ग मूर्तियां उत्कीर्ण है। ल० ग्यारहवी शती ई० की दो मूर्तिया बीकानेर संग्रहालय (१६७२) एवं राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (४९३) मे हैं।[3] इनमे ध्यानमुद्रा म विराजमान जिनो के साथ लाछन नहीं उत्कीर्ण है।

अकोटा से दूसरे वर्ग की दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की तीन श्वेताबर मूर्तियां मिली है।[4] मूर्तियो के ऊपरी भाग शिखर के रूप मे निर्मित है। सभी उदाहरणों मे जिन आकृतिया ध्यानमुद्रा मे बैठी है। इनमे केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। बारहवी शती ई० की एक मूर्ति विमलवसही की देवकुलिका १७ मे सुरक्षित है।[5] यहां जिनो के लाछन नहीं उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी निरूपित है। यक्ष-यक्षी के आधार पर केवल दो ही जिनो, ऋषभ एव नेमि, की पहचान सम्भव है। जिनो के सिंहासनो पर चतुर्भुज शान्तिदेवी और तोरणो पर प्रज्ञप्ति, वज्रांकुशी, अच्छुप्ता एवं महामानसी महाविद्याओ की मूर्तिया है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र म दोनों वर्गों को चौमुखी मूर्तिया निर्मित हुई। पर दूसरे वर्ग की मूर्तिया की संख्या अधिक है। प्रथम वर्ग की ल० आठवी शती ई० की एक मूर्ति भारत कला भवन, वाराणसी (७७) मे है। इसमे सभी जिन निर्वस्त्र है और कायोत्सर्ग मे साधारण पीठिका पर खडे है। जिनो के लांछन नहीं उत्कीर्ण है। प्रत्येक जिन की पीठिका पर दो छोटी ध्यानस्थ जिन मूर्तिया उत्कीर्ण है। कोशाम्बी से मिली एक मूर्ति (१० वी शती ई०) इलाहाबाद संग्रहालय (ए० एम० ९४३) मे है।[6] लाछन विहीन चारों जिन मूर्तिया कायोत्सर्ग म खडी है। समान विवरणो वाली दो अन्य मूर्तिया क्रमशः ग्वालियर एव मथुरा (१५२९) संग्रहालयो मे सुरक्षित है।[7] कंकाली टीला, मथुरा से मिली और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे २३६) मे सुरक्षित १०२३ ई० की एक मूर्ति मे ध्यानमुद्रा म चार जिन मूर्तिया उत्कीर्ण हैं। जिनो के लाछन नही प्रदर्शित है। पर पीठिका लेख मे इसे वर्धमान (महावीर) का चतुर्बिम्ब बताया गया है। मूर्ति का शीर्ष भाग मन्दिर के शिखर के रूप मे निर्मित है। प्रत्येक जिन सिंहासन, धर्मचक्र, त्रिछत्र एव वृक्ष को पत्तियों से युक्त है। बटेश्वर (आगरा) से मिली एक मूर्ति (११ वी शती ई०) राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे है। लाछन रहित जिन ध्यानमुद्रा में विराजमान है। प्रत्येक जिन के साथ सिंहासन, भामण्डल, त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक, उड्डीयमान मालाधर एवं उपासक आमूर्तित हैं। देवगढ़ से इस वर्ग की पाच मूर्तिया मिली है।[8] सभी उदाहरणों मे लाछन विहीन जिन मूर्तियां कायोत्सर्ग मे उत्कीर्ण है।

---

१ जैन, नीरज, 'पुरातात्विक संग्रहालय, ग्वालियर को जैन मूर्तिया', **अनेकान्त**, वर्ष १६, अं० ५, पृ० २१४

२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्रसंग्रह १५६.७१, १५६.६८

३ श्रीवास्तव, वी० एस०, **केटलाग ऐण्ड गाइड टू गंगा गोल्डेन जुबिली वाल्यूम, बीकानेर**, बम्बई, १९६१, पृ० १९

४ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० ६०–६१, फलक ७० ए, ७० बी, ७१ ए

५ मूलनायक की मूर्तियां सम्प्रति सुरक्षित नही हैं।

६ चन्द्र, प्रमोद, **पू०नि०**, पृ० १४४

७ ठाकुर, एस० आर०, **केटलाग ऑव स्कल्पचर्स इन दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम, ग्वालियर**, लश्कर, पृ० २०; अग्रवाल, वी० एस०, **पू०नि०**, पृ० ३०

८ ये मूर्तियां मन्दिर १२ की चहारदीवारी एवं मन्दिर १५ से मिली हैं।

दूसरे वर्ग की ल० आठवीं शती ई० की एक मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (बी ६५) में है। चारो जिन ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। लटकती जटाओं, सप्तसर्पफणों की छत्रावली एवं सर्वानुभूति-अम्बिका की आकृतियों के आधार पर तीन जिनों की पहचान क्रमशः ऋषभ, पार्श्व एवं नेमि से सम्भव है। दूसरे वर्ग की सर्वाधिक मूर्तियां (१०वीं–१२ वीं शती ई०) देवगढ में हैं।[१] अधिकांश मूर्तियों में जिन कायोत्सर्ग में खड़े हैं। मूर्तियों के ऊपरी भाग सामान्यतः शिखर के रूप में निर्मित हैं। जिनों के साथ सिंहासन, चामरधर, त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक, उड्डीयमान मालाधर, गज एवं अशोक वृक्ष की पत्तियां भी उत्कीर्ण हैं। ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तियों में चारो जिनों के साथ यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। दोनों मूर्तियां मन्दिर १२ की चहारदीवारी के मुख्य प्रवेश-द्वार के समीप हैं। इनमें केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान स्पष्ट है। देवगढ़ की अधिकांश मूर्तियों में केवल ऋषभ एवं पार्श्व (या सुपार्श्व)[२] की पहचान सम्भव है। सभी जिनों के साथ लांछन केवल कुछ ही उदाहरणों में उत्कीर्ण हैं। मन्दिर २६ के समीप की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) में ध्यानमुद्रा में विराजमान जिन वृषभ, कपि, शशि एवं मृग लांछनों से युक्त हैं। इस प्रकार यह ऋषभ, अभिनन्दन, चन्द्रप्रभ एवं शान्ति की चौमुखी है।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सरायघाट (अलीगढ) और बटेश्वर (आगरा) से मिली दसवीं शती ई० की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां (जे ८१३, जी १४१) सुरक्षित हैं। इनमें केवल ऋषभ और पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। एक मूर्ति में नवग्रहों की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[३] ऐसी ही एक मूर्ति शहडोल (म० प्र०) से भी मिली है।[४] इसमें जिन आकृतियां ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। एक मूर्ति अहाड़ (टीकमगढ़, म० प्र०, ११ वीं शती ई०) से मिली है (चित्र ६७)। खजुराहो में केवल एक ही मूर्ति (११ वीं शती ई०) मिली है। यह मूर्ति पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (१५८८) में है। इसमें सभी जिन ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। जिनों में केवल ऋषभ एवं पार्श्व को ही पहचान सम्भव है। प्रत्येक जिन मूर्ति के परिकर में १२ लघु जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार मुख्य जिनों सहित इस चौमुखी में कुल ५२ जिन आकृतियां हैं।[५]

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—बिहार और बंगाल से केवल दूसरे वर्ग की ही मूर्तियां मिली हैं।[६] उड़ीसा से मिली किसी मूर्ति की जानकारी हमें नहीं है। बंगाल में जिन चौमुखी मूर्तियों (१० वीं–१२ वीं शती ई०) का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय था। इस क्षेत्र की सभी मूर्तियों में जिन निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं। इस क्षेत्र की चौमुखी मूर्तियों में केवल ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, चन्द्रप्रभ, शान्ति, कुंथु, पार्श्व एवं महावीर की ही मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। राजगिर के सोनभण्डार गुफा की ल० आठवीं शती ई० की एक मूर्ति में जिनों के लांछन पीठिका के धर्मचक्र के दोनों ओर उत्कीर्ण हैं। इस मूर्ति में वर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम चार जिन, ऋषभ, अजित, सम्भव एवं अभिनन्दन, आमूर्तित हैं।[७] दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की सतदेउलिया (वर्दवान) से मिली एक मूर्ति आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता में सुरक्षित है।[८] मूर्ति का ऊपरी भाग शिखर के रूप में बना है। चारो दिशाओं में ऋषभ, चन्द्रप्रभ, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। बंगाल के विभिन्न स्थलों से प्राप्त दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की कई मूर्तियां स्टेट

१ देवगढ़ में २५ से अधिक मूर्तियां हैं। अधिकांश मूर्तियां मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर हैं।

२ मन्दिर १२ की एक मूर्ति में ऋषभ एवं शान्ति की पहचान सम्भव है।

३ मथुरा संग्रहालय की एक मूर्ति (बी ६६) में भी नवग्रहों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

४ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह १०१.७१, १०१.७३

५ दिगंबर परम्परा के नन्दीश्वर द्वीप पट्ट पर ५२ जिन आकृतियां उत्कीर्ण होती हैं–द्रष्टव्य, स्ट०जै०आ०, पृ०१२०

६ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, जै०क०स्था०, खं० २, पृ० २६७–७५

७ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, **राजगिर**, पृ० २८, आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली, चित्रसंग्रह १४३०.५५

८ सरकार, शिवशंकर, 'आन सम जैन इमेजेज फ्राम बंगाल', **माडर्न रिव्यू**, खं० १०६, अं० २, पृ० १३१

आर्किअलाजी गैलरी, बंगाल में हैं।[1] पक्बीरा ग्राम (पुरुलिया) की दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति मे ऋषभ, कुंथु, शान्ति एवं महावीर की मूर्तियां उत्कीर्ण है (चित्र ६८)।[2] अम्बिकानगर (बांकुडा) से प्राप्त एक मूर्ति में केवल ऋषभ, चन्द्रप्रभ एवं शान्ति की पहचान सम्भव है।[3]

चतुर्विंशति-जिन-पट्ट

चतुर्विंशति-जिन-पट्टों के उदाहरण ल० दसवीं शती ई० मे प्राप्त होते है। इन पट्टो की २४ जिन मूर्तिया सामान्यतः प्रातिहार्यों, लांछनों एव कभी-कभी यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त है। देवगढ मे इस प्रकार का ग्यारहवीं शती ई० का एक जिन-पट्ट है जो स्थानीय साहू जैन संग्रहालय मे सुरक्षित है। पट्ट दो भागों मे विभक्त है। पट्ट की सभी जिन आकृतियां लाछनो, प्रातिहार्यों एव यक्ष-यक्षी युगलो से युक्त है।[4] जिन मूर्तियों के उत्कीर्णन मे दोनों मुद्राएं—ध्यान और कायोत्सर्ग—प्रयुक्त हुई है। लाछनो के स्पष्ट न होने के कारण शीतल, वासुपूज्य, अनन्त, धर्मनाथ, शान्ति एवं अर की पहचान सम्भव नही है। सुपार्श्व के मस्तक पर सर्पफणो का छत्र नही प्रदर्शित है और लाछन भी स्वस्तिक के स्थान पर सर्प है। सभी जिनों के साथ सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित है। इनकी भुजाओं मे अभय-(या वरद-) मुद्रा एव फल (या पद्म या कलश) है। मूर्तियो के निरूपण मे जिनों के पारम्परिक क्रम का ध्यान नहीं रखा गया है। कोशाम्बी से प्राप्त एक पट्ट इलाहाबाद संग्रहालय (५०६) मे है।[5] पट्ट पर पाच पंक्तियो मे २४ जिनो की ध्यानस्थ मूर्तियां उत्कीर्ण है।

जिन-समवसरण

समवसरण वह देवनिर्मित सभा है, जहा देवता, मनुष्य एव पशु जिनो के उपदेशों का श्रवण करते है। कैवल्य प्राप्ति के बाद प्रत्येक जिन अपना पहला उपदेश समवसरण मे ही देते है।[6] **महापुराण** के अनुसार समवसरणो का निर्माण इन्द्र ने किया। सातवीं शती ई० के बाद के जैन ग्रन्थों में जिन समवसरणो के विस्तृत उल्लेख है।[7] पर समवसरणों के उदाहरण केवल श्वेतांबर स्थलों में ही मिले है। समवसरणो का उत्कीर्णन ल० ग्यारहवीं शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। समवसरणो के स्वतन्त्र उदाहरणो के अतिरिक्त कुम्भारिया के महावीर एव शान्तिनाथ मन्दिरो और दिलवाड़ा के विमल-वसही एव लूणवसही मे जिनो के कैवल्य प्राप्ति के दृश्य को समवसरणो के माध्यम से ही व्यक्त किया गया है।

जैन ग्रन्थो के अनुसार समवसरण तीन प्राचीरो वाला भवन है। इसके ऊपर (मध्य मे) ध्यानमुद्रा मे एक जिन आकृति (पूर्वाभिमुख) बैठी होती है।[8] सभी दिशाओं के श्रोता जिन का दर्शन कर सकें, इस उद्देश्य से व्यन्तर देवो ने अन्य तीन दिशाओं मे भी जिन की रत्नमय प्रतिमाएं स्थापित की थी।[9] समवसरण के प्रत्येक प्राचीर मे चार प्रवेश-द्वारो तथा

---

१ दे, सुधीन पू०नि०, पृ० २७–३०

२ बनर्जी, ए०, 'ट्रेसेज ऑव जैनिजम इन बंगाल', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २३, भाग १–२, पृ० १६८

३ मित्रा, देबला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बांकुडा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०, ख० २४, अं० २, पृ० १३३

४ लांछन एवं यक्ष-यक्षी युगलो के आयुध अधिकांशतः स्पष्ट नही है।

५ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १४७

६ कुछ अन्य अवसरो पर भी देवताओ द्वारा समवसरणो का निर्माण किया गया। **पद्मचरित** (२.१०२) और **आवश्यक निर्युक्ति** (गाथा ५४०–४४) मे उल्लेख है कि महावीर के विपुलगिरि (राजगृह) आगमन पर एक समवसरण का निर्माण किया गया था।

७ स्ट०जै०आ०, पृ० ८५–९५

८ त्रि०श०पु०च० १.३.४२१–७७; भण्डारकर, डी०आर०, पू०नि०, पृ० १२५–३०; स्ट०जै०आ०, पृ० ८६–८९

९ आदिपुराण २३.९२

उनके समीप विभिन्न आयुधों से युक्त द्वारपाल मूर्तियों के उत्कीर्णन का विधान है। मध्य के प्राचीर में अभयमुद्रा, पाश, अंकुश और मुद्गर धारण करनेवाली जया, विजया, अजिता और अपराजिता नाम की देवियां रहती हैं। तीसरे (निचले) प्राचीर में खट्वांग एवं गले मे कपाल की माला धारण किये हुए द्वारपाल (तुम्बरुदेव), साथ ही पशु, मानव एवं देव आकृतियां उत्कीर्ण होती है। पहले (ऊपरी) प्राचीर के द्वारो एवं भित्तियो पर वैमानिक, व्यंतर, ज्योतिष्क एवं भवनपति देवों और साधु-साध्वियो की आकृतियां उत्कीर्ण होनी चाहिए। जैन परम्परा के अनुसार जिनों के समवसरणों में सभी को प्रवेश का अधिकार प्राप्त है और इस अवसर पर समवसरण में उपस्थित होने वाले मनुष्यों और पशुओं में आपस में किसी प्रकार का द्वेष या वैमनस्य नही रह जाता। इसी भाव को प्रदर्शित करने के लिए मूर्त अंकनों में सिंह-मृग, सिंह-गज, सर्प-नकुल एवं मयूर-सर्प जैसे परस्पर शत्रुभाव वाले जीवो को साथ-साथ, आमने-सामने, दिखाया गया है। समवसरण में ही इन्द्र ने जिनों के शासनदेवताओं (यक्ष-यक्षी) को भी नियुक्त किया था।

समवसरणों के चित्रण में उपर्युक्त विशेषताएं ही प्रदर्शित हैं। सभी समवसरण तीन वृत्ताकार प्राचीरो वाले भवन के रूप में निर्मित हैं। इनके ऊपरी भाग अधिकांशतः मन्दिर के शिखर के रूप मे प्रदर्शित हैं। समवसरणो मे पद्मासन में बैठी जिनों की चार मूर्तियां भी उत्कीर्ण रहती है। लांछनों के अभाव में समवसरणों की जिन मूर्तियों की पहचान सम्भव नही है। सामान्य प्रातिहार्यों से युक्त जिन मूर्तियो मे कभी-कभी यक्ष-यक्षी भी निरूपित रहते है।[1] प्रत्येक प्राचीर में चार प्रवेश-द्वार और द्वारपालों की मूर्तियां होती हैं। भित्तियों पर देवताओ, साधुओं, मनुष्यों एवं पशुओ की आकृतियां बनी रहती है। दूसरे और तीसरे प्राचीरो की भित्तियो पर सिंह-गज, सिंह-मृग, सिंह-वृषभ, मयूर-सर्प और नकुल-सर्प जैसे परस्पर शत्रुभाव वाले पशुओ के जोडे अंकित होते हैं।

ग्यारहवी शती ई० का एक खण्डित समवसरण कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की देवकुलिका मे है। इस समवसरण के प्रत्येक प्राचीर के प्रवेश-द्वारों पर दण्ड और फल से युक्त द्विभुज द्वारपालों की मूर्तियां है। ग्यारहवी शती ई० का एक उदाहरण मारवाड़ के जैन मन्दिर से मिला है और सम्प्रति सूरत के जैन देवालय में प्रतिष्ठित है।[2] विमलवसही की देवकुलिका २० में ल० बारहवी शती ई० का एक समवसरण है। इसमें ऊपर की ओर चार ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। सभी जिनो के साथ चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। बारहवीं शती ई० का एक अन्य समवसरण कैम्बे से मिला है।[3] कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की एक देवकुलिका में १२०९ ई० का एक समवसरण है। चार ध्यानस्थ जिन मूर्तियो के अतिरिक्त इसमें २४ छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण है।[4]

• • •

१ विमलवसही की देवकुलिका २० के समवसरण मे यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्णित हैं।

२ स्ट०जै०आ०, पृ० ९४

३ शाह, यू०पी०, 'जैन ब्रोन्जेज फ्राम कैम्बे', ललितकला, अं० १३, पृ० ३१–३२

४ पांच और सात सर्पफणो के छत्रों से युक्त दो जिन मूर्तियां सुपार्श्व और पार्श्व की है।

षष्ठ अध्याय

यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान

सामान्य विकास

यक्ष एवं यक्षियां जिन-प्रतिमाओं के साथ संयुक्त रूप से अंकित किये जानेवाले देवों मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत अध्याय में यक्ष एव यक्षियो के प्रतिमाविज्ञान के विकास का अध्ययन किया जायगा। प्रारम्भ में यक्ष और यक्षियों के प्रतिमाविज्ञान के सामान्य विकास की संक्षिप्त रूपरेखा दी गई है। तत्पश्चात् जिनो के क्रम से प्रत्येक यक्ष-यक्षी युगल की मूर्तियों का प्रतिमाविज्ञानपरक अध्ययन किया गया है। यह विकास पहले साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर और बाद मे पुरातात्विक साक्ष्य के आधार पर निरूपित है। अन्त मे दोनो का तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक अध्ययन है। संक्षेप में दक्षिण भारत के जैन यक्ष एवं यक्षियों से इनके तुलनात्मक अध्ययन का भी प्रयास किया गया है।

साहित्यिक साक्ष्य

जैन ग्रन्थो मे यक्ष एवं यक्षियों का उल्लेख जिनो के शासन और उपासक देवो के रूप मे हुआ है।[1] प्रत्येक जिन के यक्ष-यक्षी युगल उनके चतुर्विध संघ के शासक एवं रक्षक देव है।[2] जैन ग्रन्थों के अनुसार समवसरण मे जिनों के धर्मोपदेश के बाद इन्द्र ने प्रत्येक जिन के साथ सेवक-देवों के रूप मे एक यक्ष और एक यक्षी को नियुक्त किया।[3] शासन-देवताओं के रूप में सर्वदा जिनों के समीप रहने के कारण ही जैन देवकुल मे यक्ष और यक्षियो को जिनो के बाद सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली।[4] **हरिवंशपुराण** में उल्लेख है कि जिन-शासन के भक्त-देवो (शासनदेवताओं) के प्रभाव से हित-(शुभ-) कार्यों की विघ्नकारी शक्तियां (ग्रह, नाग, भूत, पिशाच और राक्षस) शान्त हो जाती है।[5]

जैन परम्परा के अनुसार यक्ष एवं यक्षी जिन मूर्तियो के सिंहासन या सामान्य पीठिका के क्रमशः दाहिने और बायें छोरों पर अंकित होने चाहिये।[6] सामान्यतः ये ललितमुद्रा में निरूपित है, पर कभी-कभी इन्हे ध्यानमुद्रा मे आसीन या

१ प्रशासनाः शासनदेवताश्च या जिनाश्चतुर्विंशतिमाश्रिता सदा।
हिताः सतामप्रतिचक्रयान्विताः प्रयाचिताः सन्निहिता भवन्तु ताः॥ **हरिवंशपुराण** ६६.४३–४४
यक्षाभक्तिदः स्तीर्थंकृतामिमे। **प्रवचनसारोद्धार** (भट्टाचार्य, बी०सी०, **दि जैन आइकानोग्राफी**, लाहोर, १९३९, पृ० ९२)

२ ओं नमो गोमुखयक्षाय श्री युगादि जिनशासनरक्षाकार काय।
आचारदिनकर
या पाति शासनं जैन सद्यः प्रत्यूहनाशिनी। साभिप्रेतसमृद्ध्यर्थं भूयात् शासनदेवता।
प्रतिष्ठाकल्प, पृ० १३ (भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०,** पृ० ९२–९३)

३ भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०,** पृ० ९३

४ **हरिवंशपुराण** ६६.४३–४४, **तिलोयपण्णत्ति** ४.९३४–३९

५ **हरिवंशपुराण** ६६.४५

६ यक्षं च दक्षिणेपार्श्वे वामे शासनदेवता। **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.१२
प्रतिष्ठासारोद्धार १.७७। परम्परा के विपरीत कभी-कभी पीठिका के मध्य के धर्मचक्र के दोनों ओर या जिनों के चरणो के समीप भी यक्ष और यक्षियों की मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। कुछ उदाहरणो में यक्ष बायी ओर और यक्षी दाहिनी ओर भी निरूपित है। ऐसी मूर्तिया मुख्यतः दिगंबर स्थलो (देवगढ, राज्य संग्रहालय, लखनऊ) से मिली है।

स्थानक-मुद्रा में खड़ा भी दिखाया गया है। ल० छठीं शती ई० में जिन-मूर्तियों में[1] और ल० नवीं शती ई० में स्वतन्त्र मूर्तियों के रूप में[2] यक्ष-यक्षियों का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। स्वतन्त्र मूर्तियों में यक्ष और यक्षियों के मस्तकों पर छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण रहती है, जो उन्हे जिनो और साथ ही जैन देवकुल से सम्बन्धित करती है। लांछन युक्त छोटी जिन मूर्तियां भी उनके पहचान मे सहायक हुई है। दिगंबर परम्परा की अधिकांश यक्षियो के नाम एवं कुछ सीमा तक लाक्षणिक विशेषताएं श्वेतांबर परम्परा की पूर्ववर्ती महाविद्याओ से ग्रहण की गई। इसी कारण यक्षियों के नामों एवं लाक्षणिक विशेषताओं के सन्दर्भ में श्वेतांबर और दिगंबर परम्पराओं में पूर्ण भिन्नता दृष्टिगत होती है। पर यक्षों के सन्दर्भ में ऐसी भिन्नता नही प्राप्त होती।

२४ यक्षों एवं २४ यक्षियों की सूची में अधिकांश के नाम एवं उनकी लाक्षणिक विशेषताएं हिन्दू और कुछ उदाहरणों में बौद्ध देवकुल के देवों से प्रभावित है। जैन धर्म मे हिन्दू देवकुल के विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, स्कन्द कार्त्तिकेय, काली, गौरी, सरस्वती, चामुण्डा और बौद्ध देवकुल की तारा, वज्रश्रृंखला, वज्रतारा एवं वज्रांकुशी के नामों और लाक्षणिक विशेषताओ को ग्रहण किया गया।[3] जैन देवकुल पर ब्राह्मण और बौद्ध धर्मों के देवों का प्रभाव दो प्रकार का है। प्रथम, जैनो ने इतर धर्मों के देवो के केवल नाम ग्रहण किये और स्वयं उनकी स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं निर्धारित की। गरुड, वरुण, कुमार यक्षो और गौरी, काली, महाकाली, अम्बिका एवं पद्मावती यक्षियों के सन्दर्भ मे प्राप्त होनेवाला प्रभाव इसी कोटि का है। द्वितीय, जैनो ने देवताओं के एक वर्ग की लाक्षणिक विशेषताएं इतर धर्मों के देवों से ग्रहण की। कभी-कभी लाक्षणिक विशेषताओं के साथ ही साथ उन देवों के नाम भी हिन्दू और बौद्ध देवों से प्रभावित हैं। इस वर्ग में आनेवाले यक्ष-यक्षियां मे ब्रह्मा, ईश्वर, गोमुख, भृकुटि, षण्मुख, यक्षेन्द्र, पाताल, धरणेन्द्र एवं कुबेर यक्ष और चक्रेश्वरी, विजया, निर्वाणी, तारा एवं वज्रश्रृंखला यक्षिया प्रमुख हैं।

हिन्दू देवकुल से प्रभावित यक्ष-यक्षी युगल तीन भागों मे विभाज्य है। पहली कोटि मे ऐसे यक्ष-यक्षी युगल आते है जिनके मूल-देवता हिन्दू देवकुल मे आपस मे किसी प्रकार सम्बन्धित नही है। जैन यक्ष-यक्षी युगलो में अधिकांश इसी वर्ग के हैं। दूसरी कोटि मे ऐसे यक्ष-यक्षी युगल है जो पूर्वरूप में हिन्दू देवकुल मे भी परस्पर सम्बन्धित है, जैसे श्रेयांशनाथ के यक्ष-यक्षी ईश्वर एवं गौरी। तीसरी कोटि मे ऐसे युगल है जिनमें यक्ष एक और यक्षी दूसरे स्वतन्त्र सम्प्रदाय के देवता से प्रभावित है। ऋषभनाथ के गोमुख यक्ष एवं चक्रेश्वरी यक्षी इसी कोटि के है जो क्रमशः शैव एवं वैष्णव धर्मों के प्रतिनिधि देव है।

आगम साहित्य, **कल्पसूत्र** एवं **पउमचरिय** जैसे प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में २४ यक्ष-यक्षियों मे से किसी का उल्लेख नही है। छठी-सातवी शती ई० के टीका, निर्युक्ति एवं चूर्णि ग्रन्थो मे भी इनका अनुल्लेख है। जैन देवकुल का प्रारम्भिकतम यक्ष-यक्षी युगल सर्वानुभूति (यक्षेश्वर)[4] एवं अम्बिका है, जिसे छठी-सातवी शती ई० मे निरूपित किया गया।[5] सर्वानुभूति

---

१ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, बम्बई, १९५९, पृ० २८–२९

२ छठी-सातवी शती ई० की एक स्वतन्त्र अम्बिका मूर्ति अकोटा (गुजरात) से मिली है–शाह, यू० पी०, **पू०नि०**, पृ० ३०–३१, फलक १४

३ शाह, यू० पी०, 'इण्ट्रोडक्शन आंव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', **प्रो० ट्रां० ओ० कां०**, २०वा अधिवेशन, भुवनेश्वर, अक्तूबर १९५९, पृ०१५१–५२; भट्टाचार्य, बेनायतोश, **दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी**, कलकत्ता, १९६८, पृ० ५६, २३५, २४०, २४२, २९७; बनर्जी, जे० एन०, **दि डीवलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, कलकत्ता, १९५६, पृ० ५६१–६३

४ प्रारम्भ मे यक्ष का नाम पूरी तरह निश्चित न हो पाने के कारण सर्वानुभूति को मातंग और गोमेध भी कहा गया।

५ शाह, यू०पी०, **पू०नि०**, पृ० १४५–४६; शाह, यू०पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', **ज०ओ०इं०**, खं० ३, अं० १, पृ० ७१, शाह, यू०पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० २८–३१

यक्ष एवं अम्बिका यक्षी की धारणा जैन आगम एवं टीका ग्रन्थों के माणिभद्र-पूर्णभद्र यक्ष और बहुपुत्रिका यक्षी की प्रारम्भिक धारणा से प्रभावित है।[१] ल० छठी से नवीं शती ई० के मध्य की जिन मूर्तियों में सभी जिनो के साथ[२] यही यक्ष-यक्षी युगल आमूर्तित है। इसका कारण यह था कि दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के पूर्व सर्वानुभूति एवं अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्ष-यक्षी युगल की लाक्षणिक विशेषताएं निर्धारित नहीं हो पायी थी। अकोटा की ऋषभ (ल० छठी शती ई०)[३], भारत कला भवन वाराणसी (२१२) की नेमि (ल० ७ वीं शती ई०), पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा की शान्ति एवं नेमि (बी ७५, बी ६५, ८ वीं-९ वी शती ई०), धांक की पार्श्व (ल० ७ वी शती ई०)[४], ओसिया के महावीर मन्दिर की ऋषभ (ल० ९ वी शती ई०), तथा अकोटा की अन्य कई ऋषभ एवं पार्श्व (७ वी-९ वी शती ई०)[५] मूर्तियों मे यही यक्ष-यक्षी युगल निरूपित है (चित्र २६)। इनमें यक्ष के हाथों मे सामान्यतः फल एवं धन का थैला[६], और यक्षी के हाथों में आम्र-लुम्बि एवं बालक[७] प्रदर्शित हैं।

अकोटा से ल० छठी-सातवी शती ई० की एक स्वतन्त्र अम्बिका मूर्ति भी मिली है।[८] द्विभुजा सिंहवाहिनी अम्बिका के करों मे आम्रलुम्बि एवं फल है। एक बालक देवी की गोद मे और दूसरा समीप ही खड़ा है। अम्बिका के शीर्ष भाग मे सात सर्पफणों वाली पार्श्वनाथ की एक छोटी मूर्ति है, जो यहां अम्बिका के पार्श्व की यक्षी के रूप में निरूपण की सूचक है।[९] यक्षराज (सर्वानुभूति) एवं अम्बिका की लाक्षणिक विशेषताओं का सर्वप्रथम निरूपण बप्पभट्टिसूरि (७४३-८३८ ई०) की चतुर्विंशतिका में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में यक्षों से सेव्यमान और गजारूढ़ यक्षराज की आराधना समृद्धि एवं धन के देवता के रूप मे की गयी है। यद्यपि यक्षराज के हाथ में धन के थैले का उल्लेख नहीं है,[१०] पर सम्भवतः समृद्धि के देवता के रूप में उल्लेख के कारण ही मूर्तियों में सर्वानुभूति के साथ ल० छठी-सातवी शती ई० में धन का थैला प्रदर्शित किया गया। यहा यक्षराज पार्श्व से सम्बद्ध है। अम्बा देवी का ध्यान नेमि एवं महावीर दोनो के साथ किया गया है। शीर्ष भाग में आम्रफल के गुच्छकों से शोभित और सिंह पर आरूढ़ अम्बा बालकों से युक्त है।[११] अम्बा के कर मे आम्रलुम्बि का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः इसी कारण प्रारम्भिक मूर्तियों मे अम्बिका के साथ आम्रलुम्बि का प्रदर्शन नियमित नहीं था। धरणपट्ट (पद्मावती) का धरणेन्द्र की पत्नी के रूप मे उल्लेख है, जो सर्प से युक्त है।[१२] इसका उल्लेख अजितनाथ के साथ किया गया है। हरिवंशपुराण (७८३ ई०) मे सिंहवाहिनी अम्बिका और चक्रधारण करनेवाली अप्रतिचक्रा यक्षियों के उल्लेख है।[१३] महापुराण (पुष्पदन्तकृत, ल० ९६० ई०) मे चक्रेश्वरी, अम्बिका, सिद्धायिका, गौरी और गान्धारी देवियों की आराधना की गई है।[१४]

---

१ शाह, यू०पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इं०, खं० ३, अं० १, पृ० ६२

२ ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व।

३ शाह, यू०पी, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० २८-२९

४ स्ट०जै०आ०, पृ० १७

५ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ३५-३९

६ भारत कला भवन, वाराणसी की मूर्ति में यक्ष के हाथों में अभयमुद्रा-पद्म एवं पात्र हैं। मथुरा संग्रहालय की मूर्ति (बी ६५) मे फल के स्थान पर प्याला है।

७ भारत कला भवन, वाराणसी एवं मथुरा संग्रहालय (बी ६५) की मूर्तियों में आम्रलुम्बि के स्थान पर पुष्प प्रदर्शित है।

८ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ३०-३१

९ ल० १० वीं शती ई० में सर्वानुभूति (या कुबेर या गोमेध) और अम्बिका को नेमिनाथ से सम्बद्ध किया गया।

१० चतुर्विंशतिका २३.९२, पृ० १५३

११ चतुर्विंशतिका २२.८८, पृ० १४३, २४.९६, पृ० १६२

१२ वही, २.८, पृ० १८

१३ हरिवंशपुराण ६६.४४

१४ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, खं० २०, अं० ३, पृ० ३०४-०५

ल० आठवीं-नवीं शती ई० में २४ यक्ष-यक्षी युगलों की सूची तैयार हुई। प्रारम्भिकतम सूचियां **कहावली** (श्वेतांबर),[1] **तिलोयपण्णत्ति** (दिगंबर)[2] एवं **प्रवचनसारोद्धार** (श्वेतांबर)[3] में मिलती हैं। २४ यक्ष-यक्षी युगलों की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में निर्धारित हुईं। ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की २४ यक्ष-यक्षी युगलों की सूची प्रारम्भिक सूची से, यक्ष-यक्षियों के नामों के सन्दर्भ मे, कुछ भिन्न हैं। **तिलोयपण्णत्ति** के ब्रह्मेश्वर एवं किंपुरुष यक्षों और वज्रांकुशा, जया एवं सोलसा यक्षियों के नाम परवर्ती सूची में नहीं प्राप्त होते। चक्रेश्वरी एवं अप्रति-चक्रेश्वरी नाम से एक ही यक्षी का **तिलोयपण्णत्ति** मे दो बार क्रमशः पहली और छठी यक्षियों के रूप में उल्लेख है।[4] **प्रवचनसारोद्धार** की सूची मे मनुज एवं सुरकुमार यक्षों और ज्वाला, श्रीवत्सा, प्रवरा एवं अच्छुप्ता यक्षियां के नाम ऐसे हैं जो परवर्ती ग्रन्थो मे नहीं मिलते। परवर्ती ग्रन्थों मे उनके स्थान पर यक्षेश्वर, कुमार, भृकुटि, मानवी, चण्डा एवं नरदत्ता के नामोल्लेख हैं। **प्रवचनसारोद्धार** में छठी यक्षी का नाम अच्युता और बीसवी यक्षी का अच्छुप्ता दिया है। परवर्ती ग्रन्थों में छठी यक्षी का नाम तो अच्युता ही है, पर बीसवी यक्षी का नाम नरदत्ता है।

सर्वप्रथम **निर्वाणकलिका** (११ वी-१२ वी शती ई०) मे २४ यक्ष-यक्षी युगलों की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं विवेचित हुईं। बारहवी शती ई० के **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** (श्वेतांबर), **प्रवचनसारोद्धार** पर सिद्धसेनसूरि की टीका (श्वेतांबर) एवं **प्रतिष्ठासारसंग्रह** (दिगंबर) मे भी २४ यक्ष-यक्षियों की लाक्षणिक विशेषताएं निरूपित हैं। बारहवी शतीई० के बाद अन्य कई ग्रन्थो मे भी २४ यक्ष-यक्षी युगलों के प्रतिमानिरूपण से सम्बन्धित उल्लेख है। इनमें **पद्मानन्दमहाकाव्य** (या **चतुर्विंशति जिनचरित्र**-श्वेताबर, १२४१ ई०), **मन्त्राधिराजकल्प** (श्वेतांबर, १२ वी-१३ वी शती ई०), **आचार-दिनकर** (श्वेतांबर, १४११ ई०), **प्रतिष्ठासारोद्धार** (दिगंबर, १२२८ ई०) एवं **प्रतिष्ठातिलकम्** (**नेमिचन्द्र संहिता** या **अर्हत् प्रतिष्ठासारसंग्रह**-दिगंबर, १५४३ ई०) प्रमुख है। कुछ जैनेतर ग्रन्थों में भी २४ यक्ष एवं यक्षियों की लाक्षणिक विशेषताएं निरूपित है। इनमे **अपराजितपृच्छा** (दिगंबर परम्परा पर आधारित, ल० १३ वीं शती ई०) एवं **रूपमण्डन** और **देवतामूर्तिप्रकरण** (श्वेतांबर परम्परा पर आधारित, ल० १५ वी शती ई०) प्रमुख हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थों के आधार पर २४ यक्ष एवं यक्षियों की सूचियां निम्नलिखित हैं :

२४-यक्ष—गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर (या ईश्वर),[5] तुम्बरु (या तुम्बर), कुसुम (या पुष्प), मातंग (या वरनन्दि), विजय (श्याम-दिगंबर), अजित, ब्रह्म, ईश्वर, कुमार, षण्मुख (चतुर्मुख-दिगंबर), पाताल, किन्नर, गरुड, गन्धर्व, यक्षेन्द्र (खेन्द्र-दिगबर), कुबेर (या यक्षेश), वरुण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व[6] (धरण-दिगंबर) एवं मातंग २४ यक्ष है।[7]

---

१ शाह, यू० पी०, 'इन्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वर्शिप', **प्रो०ट्रां०ओ०कां०**, २० वां अधिवेशन, भुवनेश्वर, १९५९, पृ० १४७

२ **तिलोयपण्णत्ति** ४.९३४-३९　　३ **प्रवचनसारोद्धार** ३७५-७८

४ यह मूल यक्षियों की सूची में दूसरी से सातवीं यक्षियों के नामोल्लेख में महाविद्याओं के नामों के क्रम के अनुकरण के कारण हुई है।

५ श्वेतांबर परम्परा में ईश्वर और यक्षेश्वर, तथा दिगंबर परम्परा में केवल यक्षेश्वर नाम से उल्लेख है।

६ **प्रवचनसारोद्धार** में यक्ष का नाम वामन है।

७ २४ यक्षों की उपर्युक्त सूची को ध्यान से देखने पर एक बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है कि २४ यक्षों मे से कई को दो बार एक ही नाम या कुछ भिन्न नामों के साथ निरूपित किया गया। इनमें मातंग, ईश्वर, कुमार (या षण्मुख) एवं यक्षेश्वर (या यक्षेन्द्र या यक्षेश) मुख्य हैं। भृकुटि नाम से यक्ष और यक्षी दोनों के उल्लेख हैं।

२४-यक्षियां—**चक्रेश्वरी** (या अप्रतिचक्रा),[१] अजिता[२] (रोहिणी-दिगंबर), दुरितारी (प्रज्ञप्ति-दिगंबर), कालिका[३] (वज्रशृंखला-दिगंबर), महाकाली[४] (पुरुषदत्ता-दिगंबर),[५] अच्युता[६] (मनोवेगा-दिगंबर), शान्ता (काली-दिगंबर), भृकुटि (ज्वालामालिनी-दिगंबर), सुतारा[७] (महाकाली-दिगंबर), अशोका[८] (मानवी-दिगंबर), मानवी (गौरी-दिगंबर), चण्डा[९] (गान्धारी-दिगंबर), विदिता[१०] (वैरोटी-दिगंबर), अंकुशा[११] (अनन्तमती-दिगंबर), कन्दर्पा[१२] (मानसी), निर्वाणी (महामानसी-दिगंबर), बला[१३] (जया-दिगंबर), धारणी[१४] (तारावती[१५]-दिगंबर), वैरोट्या[१६] (अपराजिता-दिगंबर), नरदत्ता[१७] (बहुरूपिणी-दिगंबर), गान्धारी[१८] (चामुण्डा[१९]-दिगंबर), अम्बिका (या आम्रा या कुष्माण्डिनी), पद्मावती एवं सिद्धायिका (या सिद्धायिनी) २४ यक्षियां हैं।[२०]

प्रतिमा-निरूपण सम्बन्धी ग्रन्थों में अधिकांश यक्ष एवं यक्षी चार भुजाओं वाले हैं। दिगंबर परम्परा में अम्बिका एवं सिद्धायिका यक्षियों को द्विभुज बताया गया है। चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, मानसी एवं पद्मावती यक्षियां छह या अधिक भुजाओं वाली हैं। यक्षियों की तुलना में यक्ष अधिक उदाहरणों में बहुभुज (६ से १२ भुजाओं वाले) हैं। बहुभुज यक्षों में महायक्ष, त्रिमुख, ब्रह्म, कुमार, चतुर्मुख, षण्मुख, पाताल, किन्नर, यक्षेन्द्र, कुबेर, वरुण, भृकुटि एवं गोमेध मुख्य है। केवल मातंग यक्ष द्विभुज है। अधिकांश यक्ष और यक्षियों की दो भुजाओं में अभय-(या वरद-) मुद्रा एवं फल[२१] (या अक्षमाला या जलपात्र) प्रदर्शित हैं।

टी० एन० रामचन्द्रन ने अपनी पुस्तक में दक्षिण भारत के तीन ग्रन्थों के आधार पर यक्ष-यक्षी युगलों का प्रतिमा-निरूपण किया है।[२२] एक ग्रन्थ दिगंबर परम्परा का है और दो अन्य श्वेतांबर परम्परा के हैं। श्वेतांबर परम्परा के एक ग्रन्थ का नाम **यक्ष-यक्षी-लक्षण** है।

मूर्तिगत साक्ष्य

ग्रन्थों में २४ यक्ष और यक्षियों की लाक्षणिक विशेषताएं ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में निर्धारित हुईं। पर शिल्प में ल० दसवीं शती ई० में ही ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका के स्थान

१ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में अप्रतिचक्रा नाम से उल्लेख है।

२ **मन्त्राधिराजकल्प** में यक्षी का नाम विजया है। ३ श्वेतांबर ग्रन्थों में इसे काला भी कहा गया है।

४ **मन्त्राधिराजकल्प** में यक्षी का नाम सम्मोहिनी है। ५ दिगंबर परम्परा में नरदत्ता भी कहा गया है।

६ **आचारदिनकर** में श्यामा और **मन्त्राधिराजकल्प** में मानसी नामों से उल्लेख है।

७ **मन्त्राधिराजकल्प** में चाण्डालिका नाम है। ८ **मन्त्राधिराजकल्प** में गोमेधिका नाम से उल्लेख है।

९ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में प्रचण्डा एवं अजिता नामों से भी उल्लेख है।

१० **आचारदिनकर** में विजया नाम है। ११ **मन्त्राधिराजकल्प** में वरभृत नाम है।

१२ **प्रवचनसारोद्धार** में पन्नगा नाम है।

१३ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में अच्युता एवं गान्धारिणी नामों से उल्लेख है।

१४ श्वेतांबर ग्रन्थों में इसे काली भी कहा गया है। १५ दिगंबर ग्रन्थों में विजया भी कहा गया है।

१६ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में वनजात देवी और धरणप्रिया नामों से भी उल्लेख है।

१७ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में वरदत्ता, अच्छुप्ता एवं सुगन्धि नाम दिये हैं।

१८ **मन्त्राधिराजकल्प** में मालिनी नाम है। १९ दिगंबर ग्रन्थों में कुसुममालिनी भी कहा गया है।

२० दिगंबर ग्रन्थों की सूचियों में यक्षियों के नामों में एकरूपता और श्वेतांबर ग्रन्थों की सूचियों में यक्षियों के नामों में भिन्नता दृष्टिगत होती है।

२१ यक्ष और यक्षियों के एक हाथ में फल (या मातुलिंग) का प्रदर्शन विशेष लोकप्रिय था।

२२ रामचन्द्रन, टी० एन०, **तिरुप्परुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स**, बु०म०ग०म्यू०न्यू०सि०, खं० १, भाग ३, मद्रास, १९३४

पर पारम्परिक और स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी युगलों का निरूपण प्रारम्भ हो गया, जिसके उदाहरण मुख्यतः उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में देवगढ़, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, ग्यारसपुर, खजुराहो एवं कुछ अन्य स्थलों पर हैं। इन स्थलों को दसवीं शती ई० की मूर्तियों में ऋषभ एवं नेमि के साथ क्रमशः गोमुख-चक्रेश्वरी एवं सर्वानुभूति-अम्बिका उत्कीर्णित हैं (चित्र ७, २७)। पर शान्ति एवं महावीर के स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी पारम्परिक नहीं हैं। ओसिया के महावीर और ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिरों पर धरणेन्द्र एवं पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

छठी शती ई० से आठवीं-नवीं शती ई० तक की जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी के चित्रण बहुत नियमित नहीं थे। पर नवीं शती ई० के बाद बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों की जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी युगलों के नियमित अंकन हुए हैं। यह भी ज्ञातव्य है कि स्वतन्त्र अंकनों में यक्ष की तुलना में यक्षियों के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे। २४ यक्षियों के सामूहिक अंकन के हमें तीन उदाहरण मिले हैं।[१] पर २४ यक्षों के सामूहिक निरूपण का सम्भवतः कोई प्रयास नहीं किया गया। यक्ष एवं यक्षियों के उत्कीर्णन की दृष्टि से उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग स्थिति रही है, जिसका अतिसंक्षेप में उल्लेख यहां अपेक्षित है।

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र में श्वेतांबर स्थलों पर महाविद्याओं की विशेष लोकप्रियता के कारण यक्ष एवं यक्षियों की मूर्तियां तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम हैं। इस क्षेत्र में अम्बिका की सर्वाधिक मूर्तियां हैं। वस्तुतः अम्बिका की मूर्तियां (५वीं-६ठी शती ई०) सबसे पहले इसी क्षेत्र में उत्कीर्ण हुईं। अम्बिका के बाद चक्रेश्वरी, पद्मावती (कुम्भारिया, विमलवसही) एवं सिद्धायिका की मूर्तियां हैं। यक्षों में केवल वरुण (?), सर्वानुभूति, गोमुख[२] एवं पार्श्व की ही मूर्तियां मिली हैं। स्मरणीय है कि सर्वानुभूति एवं अम्बिका इस क्षेत्र के सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी युगल थे, जिन्हें सभी जिनों के साथ निरूपित किया गया।[३] केवल कुछ ही उदाहरणों में ऋषभ (गोमुख-चक्रेश्वरी),[४] पार्श्व (धरणेन्द्र-पद्मावती)[५] एवं महावीर (मातंग-सिद्धायिका)[६] के साथ पारम्परिक और स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। दिगंबर जिन मूर्तियों में स्वतन्त्र लक्षणों वाले पारम्परिक यक्ष और यक्षियों के चित्रण अधिक लोकप्रिय थे।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—यक्ष एवं यक्षियों के मूर्तिविज्ञानपरक विकास के अध्ययन की दृष्टि से यह क्षेत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में ल० सातवीं-आठवीं शती ई० में जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी के चित्रण प्रारम्भ हुए। इस क्षेत्र की दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की जिन मूर्तियों में अधिकांशतः पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी ही निरूपित हैं। ऋषभ, नेमि एवं पार्श्व के साथ अधिकांशतः पारम्परिक यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, शान्ति एवं महावीर के साथ भी कभी-कभी स्वतन्त्र लक्षणों वाले, किन्तु अपारम्परिक यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। अन्य जिनों के साथ अधिकांशतः सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी के हाथों में अभय-(या वरद-)मुद्रा और कलश (या फल या पुष्प) प्रदर्शित हैं। इस क्षेत्र में चक्रेश्वरी एवं अम्बिका की सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तियां

१ ये उदाहरण क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२), पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति) और बारभुजी गुफा से मिले हैं।

२ राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७०), घाणेराव (महावीर मन्दिर) एवं तारंगा (अजितनाथ मन्दिर)

३ गजारूढ़ सर्वानुभूति कभी द्विभुज और कभी चतुर्भुज है। द्विभुज होने पर उसकी दोनों भुजाओं में या तो धन का थैला प्रदर्शित है, या फिर एक में फल (या वरद या-अभय-मुद्रा) और दूसरे में धन का थैला है। चतुर्भुज सर्वानुभूति के हाथों में सामान्यतः वरद-(या अभय-) मुद्रा, अंकुश, पाश और धन का थैला (या फल) प्रदर्शित है। सिंहवाहिनी अम्बिका सामान्यतः द्विभुजा है और उसके हाथों में आम्रलुम्बि (या फल) एवं बालक स्थित है। चतुर्भुज अम्बिका की तीन भुजाओं में आम्रलुम्बि एवं चौथे में बालक प्रदर्शित हैं।

४ कुम्भारिया (शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिर के वितान), चन्द्रावती एवं विमलवसही (गर्भगृह एवं देवकुलिका २५) की मूर्तियां

५ ओसिया के महावीर मन्दिर के बलानक एवं विमलवसही (देवकुलिका ४) की मूर्तियां

६ कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के वितान की मूर्ति

हैं (चित्र ४४-४६, ५०, ५१, ५३)। साथ ही रोहिणी[१], पद्मावती[२] एवं सिद्धायिका[३] की भी कुछ मूर्तियां प्राप्त हुई हैं (चित्र ४७, ५५, ५७)। चक्रेश्वरी एवं पद्मावती की मूर्तियों मे सर्वाधिक विकास इङ्गित होता है। अम्बिका का स्वरूप अन्य क्षेत्रों के समान इस क्षेत्र में भी स्थिर रहा। यक्षों में केवल सर्वानुभूति एवं धरणेन्द्र की ही कुछ स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं (चित्र ४९)।[४] इस क्षेत्र मे २४ यक्षियों के सामूहिक चित्रण के भी दो उदाहरण क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२) एवं पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति) से मिले हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र की जिन मूर्तियो में यक्ष यक्षी युगलो के चित्रण की परम्परा लोकप्रिय नही थी। केवल दो उदाहरणो में यक्ष-यक्षी निरूपित है।[५] उड़ीसा मे नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं (११वीं-१२वीं शती ई०) की क्रमशः सात और चौबीस जिन मूर्तियो में जिनो के नीचे उनकी यक्षियां निरूपित है (चित्र ५९)। चक्रेश्वरी एवं अम्बिका की कुछ स्वतन्त्र मूर्तियां भी मिली है।

सामूहिक अंकन—जैन ग्रन्थो मे नवी शती ई० तक यक्ष एवं यक्षियों की केवल सूची ही तैयार थी। तथापि सूची के आधार पर ही नवी शती ई० मे शिल्प में २४ यक्षियो को मूर्त अभिव्यक्ति प्रदान की गई। २४ यक्षियो के सामूहिक अंकनो के हमें तीन उदाहरण क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२, उ० प्र०), पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति, म० प्र०) एवं बारभुजी गुफा (उड़ीसा) से मिले हैं। ये तीनो ही दिगंबर स्थल है। यक्षों के सामूहिक चित्रण का सम्भवतः कोई प्रयास नही किया गया। यहां यक्षियों के सामूहिक अंकनों की सामान्य विशेषताओ का संक्षेप में उल्लेख किया जायगा।

देवगढ़ के मन्दिर १२ (शान्तिनाथ मन्दिर, ८६२ई०)[६] की भित्ति पर का २४ यक्षियो का सामूहिक चित्रण इस प्रकार का प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है (चित्र ४८)।[७] सभी यक्षियां त्रिभंग में खड़ी है और उनके शीर्ष भाग मे सम्बन्धित जिनों की छोटी मूर्तियां उत्कीर्ण है।[८] सभी उदाहरणों में जिनों एवं यक्षियो के नाम उनकी आकृतियो के नीचे अभिलिखित हैं। अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्षी के निरूपण मे जैन ग्रन्थो के निर्देशों का पालन नही किया गया है। देवगढ़ के मन्दिर १२ की यक्षी मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि देवगढ मे नवी शतीई० तक केवल अम्बिका का ही स्वरूप नियत हो सका था। सात यक्षियो के निरूपण मे पूर्व परम्परा मे प्रचलित अप्रतिचक्रा, वज्रशृंखला, नरदत्ता, महाकाली, वैरोट्या, अच्छुप्ता एवं महामानसी महाविद्याओं की लाक्षणिक विशेषताओ के पूर्ण या आंशिक अनुकरण है, पर उनके नाम परिवर्तित कर दिये गये है। यक्षियो पर महाविद्याओ के प्रभाव का निर्धारण बप्पभट्टि की चतुर्विंशतिका के विवरणो एवं ओसिया के महावीर मन्दिर की महाविद्या मूर्तियो के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर किया गया है। देवगढ़ समूह की अन्य यक्षियां विशिष्टतारहित एवं सामान्य लक्षणों वाली है। इन द्विभुज यक्षियो की एक भुजा में चामर, पुष्प एवं कलश मे से कोई एक सामग्री प्रदर्शित है और दूसरी भुजा या तो नीचे लटकती या फिर जानु पर स्थित है। समान विवरणों वाली दो चतुर्भुज मूर्तियो मे यक्षी की दो भुजाओ मे कलश प्रदर्शित हैं और अन्य मे या तो पुष्प हैं या फिर एक म पुष्प है और दूसरा जानु पर स्थित है। सुपार्श्व के साथ काली के स्थान पर 'मयूरवाहि' नाम की चतुर्भुजा यक्षी उत्कीर्ण है। मयूर-वाहिनी यक्षी की भुजा में पुस्तक प्रदर्शित है जो स्पष्टतः सरस्वती के स्वरूप का अनुकरण है।

---

१ देवगढ एवं ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर)
२ खजुराहो, देवगढ़, मथुरा एवं शहडोल
३ खजुराहो एवं देवगढ़
४ खजुराहो, देवगढ़ एवं ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर)
५ एक मूर्ति बंगाल और दूसरी बिहार से मिली हैं।
६ मन्दिर १२ शान्तिनाथ को समर्पित है।
७ मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के एक स्तम्भ पर संवत् ९१९ (८६२ ई०) का एक लेख है। पर अर्धमण्डप निश्चित ही मूल मन्दिर के कुछ बाद का निर्माण है, अतः मूल मन्दिर (मन्दिर १२) को ८६२ ई० के कुछ पहले (ल० ८४३ ई०) का निर्माण स्वीकार किया जा सकता है—द्रष्टव्य, जि०इ०दे०, पृ० ३६
८ जि०इ०दे०, पृ० ९८–११२

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि देवगढ़ में प्रत्येक जिन के साथ एक यक्षी की कल्पना तो की गई, परन्तु उनकी प्रतिमा लाक्षणिक विशेषताओं के उस समय (९वीं शती ई०) तक निश्चित न हो पाने के कारण अम्बिका के अतिरिक्त अन्य यक्षियों के निरूपण में महाविद्याओं एवं सरस्वती के लाक्षणिक स्वरूपों के अनुकरण किये गये और कुछ में सामान्य लक्षणों वाली यक्षियों को आमूर्तित किया गया। उपर्युक्त धारणा की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि देवगढ़ की ही स्वतन्त्र जिन मूर्तियों में अम्बिका के अतिरिक्त मन्दिर १२ की अन्य किसी भी यक्षी को नहीं उत्कीर्ण किया गया है।

नामों के आधार पर देवगढ़ के मन्दिर १२ की यक्षियों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में वे पांच यक्षियां है जिन्हें पारम्परिक जिनों के साथ प्रदर्शित किया गया है। इनमें ऋषभ, अनन्त, अर, अरिष्टनेमि एवं पार्श्व की चक्रेश्वरी, अनन्तवीर्या,[1] तारादेवी,[2] अम्बायिका एवं पद्मावती यक्षियां हैं। दूसरे वर्ग में ऐसी चार यक्षियां है जिन्हें अपने पारम्परिक जिनों के साथ नहीं प्रदर्शित किया गया है। इनमें जालामालिनी,[3] अपराजिता (वर्धमान), सिधइ (मुनिसुव्रत) एवं बहुरूपी (पुष्पदन्त) यक्षिया है। जैन परम्परा के अनुसार ज्वालामालिनी चन्द्रप्रभ की, अपराजिता मल्लि की, सिधइ (या सिद्धायिका) महावीर की एवं बहुरूपी (बहुरूपिणी) मुनिसुव्रत की यक्षियां है। तीसरे वर्ग में ऐसी यक्षियां हैं जिनके नाम किसी जैन ग्रन्थ में नहीं प्राप्त होते। ये भगवती सरस्वती (अभिनन्दन), मयूरवाहि (सुपार्श्व), हिमादेवी (मल्लि), श्रीयादेवी (शान्ति), सुरक्षिता (धर्म), सुलक्षणा (विमल), अभोगरतिण[4] (वासुपूज्य), वहनि (श्रेयांश), श्रीयादेवी (शीतल), सुमालिनी (चन्द्रप्रभ) एवं सुलोचना (पद्मप्रभ) यक्षियां हैं।

पतियानदाई मन्दिर (सतना, म० प्र०) से ग्यारहवीं शती ई० की एक अम्बिका मूर्ति मिली है, जिसके परिकर में अम्बिका के अतिरिक्त अन्य २३ यक्षियों की चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण है। यह मूर्ति सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय (२९३) में है (चित्र ५३)।[5] अम्बिका एवं परिकर की सभी २३ यक्षिया त्रिभंग में खड़ी है। आकृतियों के नीचे उनके नाम अभिलिखित है। परिकर में दिगंबर जिन मूर्तियां भी बनी है। सिंहवाहना अम्बिका की चारों भुजाएं खण्डित है। देवी के बायें और दाहिने पार्श्वों की यक्षियों के नीचे क्रमशः प्रजापती और वज्रसंकला उत्कीर्ण है। समीप ही दो अन्य यक्षिया निरूपित है जिनके नाम स्पष्ट नहीं हैं। पर एक यक्षी के हाथ में चक्र एवं दूसरी के साथ गजवाहन बने है। ये निश्चित ही चक्रेश्वरी और रोहिणी की मूर्तियां है। बायी ओर (ऊपर से नीचे) की यक्षियों की आकृतियों के नीचे क्रमशः जया, अनन्तमती, वैरोटा, गौरी, महाकाली, काली और पुषदधी नाम उत्कीर्ण है। दाहिनी ओर (ऊपर से नीचे) अपराजिता, महामुनुसि, अनन्तमती, गान्धारी, मनुसी, जालमालिना और मनुजा नाम की यक्षियां है। मूर्ति के ऊपरी भाग में (बायें से दाहिने) क्रमशः बहुरूपिणी, चामुण्डा, सरसती, पदुमावती और विजया नाम की यक्षिया आमूर्तित है। यक्षियों के नाम सामान्यतः **तिलोयपण्णत्ति** की सूची से मेल खाते हैं। परिकर की २३ यक्षिया पारम्परिक क्रम में नहीं निरूपित है। उनकी लाक्षणिक विशेषताएं भी बहुत स्पष्ट नहीं है। अनन्तनाथ की यक्षी अनन्तमती का नाम दो बार उत्कीर्ण है। इसके अतिरिक्त प्रजापति, जया, पुषदधी, मनुजा एवं सरस्वती नाम ऐसे है जिनका उल्लेख कही भी यक्षियों के रूप में नहीं प्राप्त होता। इसके अतिरिक्त २४ यक्षियों की पारम्परिक सूची में से प्रज्ञप्ति, मनोवेगा, मानवी एवं सिद्धायिका के नाम इस मूर्ति में नहीं प्राप्त होते।

---

१ दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम अनन्तमती है।

२ दिगंबर ग्रन्थ में अर की यक्षी का नाम तारावती है।

३ जिन का नाम स्पष्ट नहीं है। दिगंबर परम्परा में ज्वालामालिनी चन्द्रप्रभ की यक्षी है। देवगढ़ समूह में चन्द्रप्रभ के साथ सुमालिनी उत्कीर्ण है।

४ साहनी ने इसे अभोगरोहिणी पढा है–जि०इ०दे०, पृ० १०३

५ कनिंघम, ए०, **आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया रिपोर्ट**, वर्ष १८७३–७५, खं० ९, पृ० ३१-३३; चन्द्र, प्रमोद, **स्टोन स्कल्पचर इन दि एलाहाबाद म्यूजियम**, बम्बई, १९७०, पृ० १६२

बारभुजी गुफा (खण्डगिरि, उड़ीसा) की २४ यक्षियों की मूर्तियां ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की हैं।[१] देवगढ के समान यहां भी यक्षियों की मूर्तियां सम्बन्धित जिनों की मूर्तियों के नीचे उत्कीर्ण हैं (चित्र ५९)। जिन मूर्तियां लांछनों से युक्त है। द्विभुज से विंशतिभुज यक्षियां ललितमुद्रा या ध्यानमुद्रा में आसीन है।[२] २४ यक्षियों में केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती के निरूपण में ही परम्परा का कुछ पालन किया गया है। कुछ यक्षियों के निरूपण में ब्राह्मण एवं बौद्ध देवकुलो की देवियों के लक्षणों का अनुकरण किया गया है। शान्ति, अर एवं नमि की यक्षियों के निरूपण मे क्रमशः गजलक्ष्मी (महालक्ष्मी), तारा (बौद्धदेवी) एवं ब्रह्माणी (त्रिमुख एव हंसवाहना) के प्रभाव स्पष्ट है। अन्य यक्षियां स्थानीय कलाकारो की कल्पना की देन प्रतीत होती है। यहा यह उल्लेखनीय है कि देवगढ़ समूह की २४ यक्षियों के विपरीत बारभुजी गुफा की यक्षिया स्वतन्त्र लक्षणो वाली है।

अब प्रत्येक जिन के यक्ष-यक्षी युगल के प्रतिमाविज्ञान का अलग-अलग अध्ययन किया जायगा।

(१) गोमुख यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गोमुख जिन ऋषभनाथ का यक्ष है। श्वेताबर एव दिगंबर दोनो ही परम्परा के ग्रन्थो मे गोमुख को चतुर्भुज कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका के अनुसार गो के मुख वाले गोमुख यक्ष का वाहन गज तथा आयुध दाहिने हाथों मे वरदमुद्रा एव अक्षमाला और बायें मे मातुलिंग (फल) एवं पाश है।[३] अन्य ग्रन्थों में भी यही लक्षण प्राप्त होते हैं।[४] केवल **आचारदिनकर** मे वाहन वृषभ है और दोनो पार्श्वों मे गज एव वृषभ के उत्कीर्णन का निर्देश है।[५] **रूपमण्डन** में गोमुख को गजानन कहा गया है।[६]

दिगंबर परम्परा—दिगंबर परम्परा मे गोमुख का शीर्षभाग धर्मचक्र चिह्न से लांछित, वाहन वृषभ और करों के आयुध परशु, फल, अक्षमाला एवं वरदमुद्रा है।[७] स्पष्टतः परशु के अतिरिक्त शेष आयुध श्वेतांबर परम्परा के समान है।[८]

इस प्रकार श्वेतांबर एवं दिगंबर ग्रन्थो मे केवल वाहन (गज या वृषभ) एवं आयुधो (पाश या परशु) के प्रदर्शन के सन्दर्भ मे ही भिन्नता दृष्टिगत होती है। **आचारदिनकर** मे गोमुख के पार्श्वों मे गज एव वृषभ के चित्रण का निर्देश सम्भवतः वाहनो के सन्दर्भ मे दोनो परम्पराओ के समन्वय का प्रयास है।

---

१ मित्रा, देबला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, पृ० १३०–३३

२ मुनिसुव्रत की यक्षी को लेटी हुई मुद्रा मे प्रदर्शित किया गया है।

३ तथा तत्तीर्थोत्पन्नगोमुखयक्षं हेमवर्णंगजवाहनं चतुर्भुज वरदाक्षसूत्रयुतदक्षिणपाणि मातुलिंगपाशान्वितवामपाणि चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१

४ त्रि०श०पु०च० १.३.६८०–८१, **पद्मानन्दमहाकाव्य** १४.२८०–८१; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.२६

५ स्वर्णाभो वृषवाहनो द्विरदगोयुक्तश्चतुर्बाहुभि····**आचारदिनकर**, प्रतिष्ठाधिकारः ३४.१

६ रिषभो (ऋषभे) गोमुखो यक्षो हेमवर्णो गजानना (हेमवर्णो गजाननः)। **रूपमण्डन** ६.१७। ज्ञातव्य है कि **रूपमण्डन** मे गोमुख के वाहन (गज) का उल्लेख नही है।

७ चतुर्भुजः सुवर्णाभो गोमुखो वृषवाहनः।
हस्तेन परशुं धत्ते बीजपूराक्षसूत्रकं॥
वरदान परं सम्यक् धर्मचक्रं च मस्तके। **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.१३–१४
प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१२९; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१

८ **अपराजितपृच्छा** मे पाश ही प्रदर्शित है (२२१.४३)।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारत के दोनों परम्परा के ग्रन्थों मे गो के मुख वाले, चतुर्भुज एवं वृषभ पर ललितमुद्रा मे आसीन गोमुख के हाथो मे अभय-(या वरद-) मुद्रा, अक्षमाला, परशु एवं मातुलिंग के प्रदर्शन का निर्देश है।[१] श्वेतांबर परम्परा मे यक्ष के शीर्ष भाग में धर्मचक्र के उत्कीर्णन का भी विधान है। स्पष्ट है कि दक्षिण भारत की श्वेतांबर एवं दिगम्बर परम्पराएं गोमुख के निरूपण में उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से सहमत है।

मूर्ति-परम्परा

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र में गोमुख की केवल तीन स्वतन्त्र मूर्तिया मिली हैं। इनमें यक्ष वृषानन एवं चतुर्भुज है। दसवीं शती ई० की एक मूर्ति घाणेराव (पाली, राजस्थान) के महावीर मन्दिर के पश्चिमी अधिष्ठान पर उत्कीर्ण है। इसमें ललितमुद्रा में आसीन गोमुख के करो मे कमण्डलु, सनालपद्म, सनालपद्म एवं वरदमुद्रा प्रदर्शित है। ल० दसवी शती ई० की दूसरी मूर्ति हथमा (बाड़मेर, राजस्थान) से मिली है और सम्प्रति राजपूताना संग्रहालय अजमेर (२७०) मे है (चित्र ४३)। ललितमुद्रा मे बैठे गोमुख के हाथों मे अभयमुद्रा, परशु, सर्प एवं मातुलिंग है। यज्ञोपवीत से शोभित यक्ष के मस्तक पर धर्मचक्र भी उत्कीर्ण है।[२] उपर्युक्त दोनो मूर्तियो मे वाहन अनुपस्थित है। बारहवीं शती ई० की एक मूर्ति तारंगा के अजितनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप की दक्षिणी भित्ति पर है। यहां गोमुख त्रिभंग मे खड़े है और उनके समीप ही गजवाहन भी उत्कीर्ण है। यक्ष की एक अवशिष्ट भुजा मे सम्भवतः अंकुश है।

(ख) **जिन-संयुक्त मूर्तियां**—इस क्षेत्र की केवल कुछ ही ऋषभ मूर्तियो में गोमुख निरूपित हैं। राजस्थान की एक ऋषभ मूर्ति (१० वी शती ई०) मे चतुर्भुज गोमुख की तीन भुजाओ मे अभयमुद्रा, परशु एवं जलपात्र है।[३] बयाना (भरतपुर) की ऋषभमूर्ति (१० वी शती ई०) में चतुर्भुज गोमुख की दो भुजाओं मे गदा एवं फल है।[४] कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरो (११ वी शती ई०) के वितानो पर उत्कीर्ण ऋषभ के जीवनदृश्यो मे भी गोमुख की ललितमुद्रा मे दो चतुर्भुज मूर्तियां है। शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्ति मे गजारूढ़ गोमुख की भुजाओं मे वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं धन का थैला प्रदर्शित है (चित्र १४)। महावीर मन्दिर की मूर्ति मे दो अवशिष्ट दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा एवं अंकुश है। विमलवसही के गर्भगृह की ऋषभ मूर्ति (१२ वी शती ई०) मे गजारूढ गोमुख के करों में फल, अकुश, पाश एवं धन का थैला है। विमलवसही की देवकुलिका २५ की एक अन्य मूर्ति मे गजारूढ गोमुख की भुजाओ मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पाश एवं फल है। यह अकेली मूर्ति है जिसके निरूपण मे श्वेताबर ग्रन्थो के निर्देशो का पालन किया गया है।[५]

उपर्युक्त मूर्तियों से स्पष्ट है कि ल० दसवी शती ई० मे गुजरात एव राजस्थान मे गोमुख की स्वतन्त्र एवं जिन-संयुक्त मूर्तिया उत्कीर्ण हुई। श्वेतांबर स्थलो की मूर्तियो मे परम्परा के अनुरूप गजवाहन एवं पाश प्रदर्शित है।[६] श्वेतांबर स्थलो की ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की मूर्तियो मे अंकुश एवं धन के थैले का प्रदर्शन भी लोकप्रिय था, जो सम्भवतः सर्वानुभूति यक्ष का प्रभाव है। इस क्षेत्र की दिगबर परम्परा की मूर्तियो मे वाहन नही उत्कीर्ण है, पर परशु एवं एक उदाहरण मे शीर्ष भाग मे धर्मचक्र के उत्कीर्णन मे परम्परा का पालन किया गया है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र से गोमुख की स्वतन्त्र मूर्तिया नही मिली है। पर जिन-सयुक्त मूर्तियो में ऋषभ के साथ गोमुख का चित्रण दसवी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया था। वाहन का अंकन लोकप्रिय नही था।

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० १९७

२ भट्टाचार्य, यू० सी०, 'गोमुख यक्ष', ज०यू०पी०हि०सो०, ख० ५, भाग २ (न्यू सिरीज), पृ० ८–९

३ यह मूर्ति बोस्टन संग्रहालय (६४.४८७) में है।

४ यह मूर्ति भरतपुर राज्य संग्रहालय (६७) मे है–द्रष्टव्य, अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्रसंग्रह १५७.१२

५ केवल अक्षमाला के स्थान पर अभयमुद्रा प्रदर्शित है।

६ घाणेराव के महावीर मन्दिर की मूर्ति में ये विशेषताएं नही प्रदर्शित है।

केवल देवगढ़ के मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के उत्तरंग (१० वीं शती ई०) पर ही चतुर्भुज गोमुख की एक छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। ललितमुद्रा में आसीन यक्ष के करों में कलश, पद्मकलिका, पद्मकलिका एवं फल प्रदर्शित हैं। यक्ष के करों की सामग्रियां घाणेराव के महावीर मन्दिर (श्वेतांबर) की गोमुख मूर्ति के समान हैं। बजरामठ (ग्यारसपुर, विदिशा) की ऋषभ मूर्ति (१० वीं शती ई०) में चतुर्भुज गोमुख की भुजाओं में अभयमुद्रा, परशु, गदा एवं जलपात्र हैं।

खजुराहो की ऋषभ मूर्तियों (१०वीं-१२वीं शती ई०) में गोमुख की द्विभुज और चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। चतुर्भुज मूर्तियां संख्या में अधिक हैं। गोमुख के साथ वृषभवाहन केवल एक ही उदाहरण (स्थानीय संग्रहालय, के ८) में है। चतुर्भुज गोमुख के तीन सुरक्षित करों में पद्म, गदा (?) एवं धन का थैला है। कुछ मूर्तियों में यक्ष वृषानन भी नहीं है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति (१०वीं शती ई०) में चतुर्भुज गोमुख के तीन हाथों में परशु, गदा एवं मातुलिंग हैं। चतुर्भुज गोमुख की ऊपरी भुजाओं में अधिकांशतः परशु एवं पुस्तक प्रदर्शित हैं। पर निचली भुजाओं में वरदमुद्रा एवं धन का थैला,[1] या अभयमुद्रा एवं फल (या जलपात्र)[2] है। जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो की एक मूर्ति में यक्ष की भुजाओं में वरदमुद्रा, परशु, शृंखला एवं जलपात्र है। स्थानीय संग्रहालय की एक मूर्ति (के ६) में यक्ष के तीन हाथों में सर्प, पद्म एवं धन का थैला हैं। छह उदाहरणों में द्विभुज गोमुख की भुजाओं में फल एवं धन का थैला है।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि खजुराहो में गोमुख के करों में परशु, पुस्तक एवं धन के थैले का प्रदर्शन लोकप्रिय था। केवल परशु के प्रदर्शन में ही दिगंबर परम्परा का पालन किया गया है। गोमुख के साथ पुस्तक का प्रदर्शन खजुराहो के बाहर दुर्लभ है।[4] धन के थैले का प्रदर्शन अन्य स्थलों पर भी प्राप्त होता है, जो सर्वानुभूति यक्ष का प्रभाव है।

देवगढ़ की दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ऋषभ मूर्तियों में गोमुख की द्विभुज[5] एवं चतुर्भुज[6] मूर्तियां निरूपित हैं। इनमें यक्ष सदैव वृषानन है पर वाहन किसी उदाहरण में नहीं उत्कीर्ण है। करों में परशु एवं गदा का प्रदर्शन लोकप्रिय था। द्विभुज गोमुख के हाथों में परशु (या अभयमुद्रा या गदा) एवं फल (या धन का थैला या कलश) है। चतुर्भुज गोमुख की निचली भुजाओं में सर्वदा अभयमुद्रा एवं कलश (या फल) प्रदर्शित है। पर ऊपरी भुजाओं के आयुधों में काफी भिन्नता प्राप्त होती है। अधिकांश उदाहरणों[7] में ऊपरी हाथों में परशु एवं गदा है। चार मूर्तियों[8] (११वीं-१२वीं शती ई०) में ऊपरी हाथों में छत्र-पद्म (या पद्म) प्रदर्शित है। खजुराहो, देवगढ़ एवं घाणेराव (महावीर मन्दिर) की गोमुख मूर्तियों में पद्म का प्रदर्शन परम्परासम्मत न होते हुए भी श्वेतांबर (घाणेराव का महावीर मन्दिर) एवं दिगंबर दोनों ही स्थलों पर लोकप्रिय था। मन्दिर ५ की मूर्ति में गोमुख के हाथों में पुष्प एवं मुद्गर, मन्दिर १ की मूर्ति में दोनों करों में धन का थैला (चित्र ८), मन्दिर २० की मूर्ति में गदा एवं पुस्तक और मन्दिर १२ की चहारदीवारी की मूर्ति में गदा (?) एवं पद्म प्रदर्शित है। मन्दिर ९ की एक मूर्ति (१०वीं शती ई०) में गोमुख के हाथों में वरदमुद्रा, परशु, व्याख्यानमुद्रा-अक्षमाला एवं फल प्रदर्शित हैं। देवगढ़ की यह अकेली मूर्ति है जिसके निरूपण में अक्षरशः दिगंबर परम्परा का पालन किया गया है। मन्दिर १९ की एक मूर्ति (११वीं शती ई०) में गोमुख फल, अभयमुद्रा, पद्म एवं धन का थैला से युक्त है। मन्दिर १२ की एक मूर्ति (११वीं शती ई०) में गोमुख के करों में अभयाक्ष, स्रुक, पुस्तक एवं कलश प्रदर्शित हैं।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ की केवल दो ही ऋषभ मूर्तियों (११वीं शती ई०) में यक्ष वृषानन है। पहली मूर्ति (जे ७८९) में चतुर्भुज गोमुख की तीन अवशिष्ट भुजाओं में अभयमुद्रा, पद्म एवं कलश प्रदर्शित हैं। दूसरी मूर्ति में द्विभुज

---

१ स्थानीय संग्रहालय, के ४०, के ६९

२ स्थानीय संग्रहालय, के ८, १६५१

३ मन्दिर १७, जार्डिन संग्रहालय (१६७४, १६०७, १७२५), स्थानीय संग्रहालय (के ७), पार्श्वनाथ मन्दिर के पश्चिमी भाग का जिनालय

४ देवगढ़ की भी दो मूर्तियों में गोमुख के हाथ में पुस्तक है।

५ दस उदाहरण : मन्दिर ११, १६, १९, २४, २५

६ बीस उदाहरण

७ नौ उदाहरण

८ मन्दिर २, १२, २०, २४

गोमुख अभयमुद्रा एवं कलश से युक्त है। संग्रहालय की चार अन्य ऋषभ मूर्तियों में यक्ष वृषानन नहीं है और उसकी एक भुजा में सामान्यतः धन का थैला है।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत मे ऋषभ के यक्ष को वृषानन नही निरूपित किया गया है। वह सदैव चतुर्भुज है। यक्ष के साथ वाहन का चित्रण लोकप्रिय नही था। कन्नड़ शोध संस्थान संग्रहालय की एक ऋषभ मूर्ति में चतुर्भुज यक्ष के करो मे अभयमुद्रा, अक्षमाला, परशु एवं फल हैं।[1] अयहोल (कर्नाटक) के जैन मन्दिर (८वी-९वी शती ई०) की चतुर्भुज मूर्ति में ललितमुद्रा में विराजमान यक्ष के हाथो में पद्मकलिका, परशु, पाश एवं वरदमुद्रा हैं।[2] कर्नाटक के शान्तिनाथ बस्ती की एक मूर्ति में वृषभारूढ यक्ष के करो मे पद्म, परशु, अक्षमाला एवं फल प्रदर्शित है।[3] उपर्युक्त मूर्तियों से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत मे मुख्य आयुधों (परशु, अक्षमाला एवं फल) के प्रदर्शन मे परम्परा का निर्वाह किया गया है। यक्ष की भुजाओं में पद्म और पाश का प्रदर्शन उत्तर भारतीय परम्परा से प्रभावित प्रतीत होता है।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उत्तर भारत मे दसवीं शती ई० मे गोमुख यक्ष की स्वतन्त्र एवं जिन-संयुक्त मूर्तियो का निर्माण प्रारम्भ हुआ। बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल से यक्ष की एक भी मूर्ति नही मिली है। सर्वाधिक मूर्तियां उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में उत्कीर्ण हुई। पर स्वतन्त्र मूर्तियां केवल गुजरात एवं राजस्थान से ही मिली है। ग्रन्थों के समान शिल्प में भी गोमुख का चतुर्भुज स्वरूप ही लोकप्रिय था।[4] श्वेतांबर मूर्तियों मे गज-वाहन का चित्रण नियमित था, पर दिगंबर स्थलो पर वाहन (वृषभ) का चित्रण केवल एक ही उदाहरण[5] मे मिलता है। दिगंबर स्थलो की मूर्तियों में केवल परशु के प्रदर्शन में ही दिगंबर परम्परा का पालन किया गया है। दिगंबर स्थलों पर गोमुख के हाथों मे पुस्तक, गदा, पद्म एव धन का थैला मे से कोई एक या दो आयुध प्रदर्शित हैं। इन आयुधों का प्रदर्शन कलाकारो की कल्पना या किसी ऐसी परम्परा की देन है जो सम्प्रति उपलब्ध नही है। श्वेतांबर स्थलों की मूर्तियों मे भी गोमुख के साथ केवल गज-वाहन एवं पाश के प्रदर्शन मे ही परम्परा का निर्वाह किया गया है। इस क्षेत्र मे गोमुख की दो भुजाओं मे अधिकांशतः अंकुश एवं धन का थैला प्रदर्शित हैं जो सर्वानुभूति यक्ष का प्रभाव है। दिगंबर स्थलों की तुलना मे श्वेतांबर स्थलो पर गोमुख की लाक्षणिक विशेषताए अधिक स्थिर रही।

गोमुख की धारणा निश्चित ही शिव से प्रभावित है। यक्ष का गोमुख होना, उसका वृषभ वाहन और हाथों मे परशु एवं पाश जैसे आयुधो का प्रदर्शन शिव के ही प्रभाव का संकेत देता है। राजपूताना संग्रहालय, अजमेर की मूर्ति (२७०) मे गोमुख के एक कर में सर्प भी प्रदर्शित है। डा० बनर्जी ने गोमुख यक्ष को शिव का पशु एवं मानव रूप मे संयुक्त अंकन माना है।[6] गोमुख प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ (ऋषभनाथ) का यक्ष है। ऋषभनाथ को जैन धर्म का सम्स्थापक एवं महादेव बताया गया है।[7] गोमुख के शीर्ष भाग के धर्मचक्र को इस आधार पर आदिनाथ के धर्मोपदेश का प्रतीकात्मक अंकन माना जा सकता है।

---

१ अन्निगेरी, ए० एम०, **ए गाइड टू दि कन्नड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूजियम**, धारवाड, १९५८, पृ० २७
२ संकलिया, एच० डी०, 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', **बु०ड०का०रि०इं०**, ख० १, अं० २-४, पृ० १६०
३ **आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव मैसूर, ऐनुअल रिपोर्ट**, १९३९, भाग ३, पृ० ४८
४ दिगम्बर स्थलों की कुछ मूर्तियो मे गोमुख द्विभुज है।
५ स्थानीय संग्रहालय, खजुराहो के ८
६ बनर्जी, जे० एन०, **पू०नि०**, पृ० ५६२
७ भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० ९६

(१) चक्रेश्वरी यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

चक्रेश्वरी (या अप्रतिचक्रा)[१] जिन ऋषभनाथ की यक्षी है। दोनों परम्परा के ग्रन्थों मे चक्रेश्वरी का वाहन गरुड है और उसकी भुजाओ मे चक्र के प्रदर्शन का निर्देश है। श्वेतांबर परम्परा में चक्रेश्वरी का अष्टभुज एवं द्वादशभुज और दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुज एव द्वादशभुज स्वरूपो मे निरूपण किया गया है। द्वादशभुज स्वरूप में दोनों परम्पराओं में चक्रेश्वरी के हाथो में जिन आयुधों के प्रदर्शन के निर्देश है, वे समान है।[२]

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका के अनुसार अष्टभुज अप्रतिचक्रा का वाहन गरुड है और उसके दाहिने हाथों मे वरदमुद्रा, बाण, चक्र एवं पाश और बांये हाथों मे धनुष, वज्र, चक्र एवं अंकुश होने चाहिए।[३] परवर्ती ग्रन्थों मे भी सामान्यतः इन्ही आयुधों के उल्लेख है। **आचारदिनकर** मे दो वाम भुजाओं में धनुष के प्रदर्शन का उल्लेख है।[४] फलतः एक भुजा में चक्र नही प्रदर्शित है। **रूपमण्डन** एव **देवतामूर्तिप्रकरण** मे चक्रेश्वरी का द्वादशभुज स्वरूप वर्णित है जिसमे आठ भुजाओं मे चक्र, दो मे वज्र और शेष दो मे मातुलिंग एव अभयमुद्रा का उल्लेख है।[५]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे चक्रेश्वरी का चतुर्भुज एवं द्वादशभुज स्वरूपो में ध्यान किया गया है।[६] इनमे चतुर्भुज यक्षी के दो करो मे चक्र और शेष दो मे मातुलिंग एव वरदमुद्रा, तथा द्वादशभुज यक्षी के आठ हाथों में चक्र, दो मे वज्र और शेष दो में मातुलिंग एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है। **प्रतिष्ठासारोद्धार** एवं **प्रतिष्ठातिलकम्** मे भी समान लक्षणो वाली चतुर्भुज एवं द्वादशभुज चक्रेश्वरी का वर्णन है।[७] **अपराजितपृच्छा** मे द्वादशभुज चक्रेश्वरी के हाथो में वरदमुद्रा के स्थान पर अभयमुद्रा का उल्लेख है।[८]

---

१ **निर्वाणकलिका, त्रि०श०पु०च०** एवं **पद्मानन्दमहाकाव्य** मे यक्षी का अप्रतिचक्रा नाम से उल्लेख है।

२ श्वेतांबर ग्रन्थो मे देवी की एक भुजा से अभयमुद्रा पर दिगंबर ग्रन्थो मे वरदमुद्रा व्यक्त है।

३ अप्रतिचक्राभिधाना यक्षिणी हेमवर्णां गरुडवाहनामष्टभुजां।
वरदबाणचक्रपाशयुक्तदक्षिणकरां धनुर्वज्रचक्रांकुशवामहस्तां चेति ॥ **निर्वाणकलिका** १८.१
त्रि०श०पु०च० १.३, ६८२–८३, **पद्मानन्दमहाकाव्य** १४.२८२–८३, **मंत्राधिराजकल्प** ३.५१

४ स्वर्णाभा गरुडासनाष्टभुजयुग्वामे च हस्तोच्चये वज्रं चापमथांकुशं गुरुधनुः सौम्यादाया बिभ्रती। **आचारदिनकर** ३४.१

५ द्वादशभुजाष्टचक्राणि वज्रयोर्द्वयमेव च।
मातुलिंगाभये चैव पद्मस्था गरुडोपरि ॥ **रूपमण्डन** ६.२४
देवतामूर्तिप्रकरण ७.६६। श्वेतांबर परम्परा की द्वादशभुज यक्षी का विवरण दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

६ वामे चक्रेश्वरीदेवी स्थाप्यद्वादशसद्भुजा।
धत्ते हस्तद्वयेवज्रे चक्राणी च तथाष्टसु ॥
एकेन बीजपूरं तु वरदा कमलासना।
चतुर्भुजाथवाचक्रं द्वयोर्गरुड वाहनं ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.१५–१६

७ भर्माभाद्य करद्वयालकुलिशा चक्रांकहस्ताष्टका
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्तिरास्तेम्बुजे।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भिः करैः
पंचेष्वास शतोन्नतप्रभुनतां चक्रेश्वरी तां यजे ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१५६; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१

८ षट्पादा द्वादशभुजा चक्राण्यष्टौ द्विवज्रकम्।
मातुलिंगाभये चैव तथा पद्मासनाऽपि च ॥
गरुडोपरिसंस्था च चक्रेशी हेमवर्णिका। **अपराजितपृच्छा** २२१.१५–१६

तान्त्रिक ग्रन्थ **चक्रेश्वरी-अष्टकम्** में चक्रेश्वरी के भयावह स्वरूप का ध्यान है जिसमें देवी के हाथों की संख्या का उल्लेख किये विना ही उनमें चक्रो, पद्म, फल एवं वज्र के धारण करने का उल्लेख है ।[१] तीन नेत्रो एवं भयंकर दर्शन वाली देवी की आराधना डाकिनियो एवं गुह्यको से रक्षा एवं अन्य बाधाओ को दूर करने तथा समृद्धि के लिए की गई है ।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारत मे गरुडवाहना चक्रेश्वरी का द्वादशभुज एवं षोडशभुज स्वरूपों मे ध्यान किया गया है । दिगबर ग्रन्थ मे षोडशभुज चक्रेश्वरी के बारह हाथों में युद्ध के आयुध[२], दो के गोद में तथा शेष दो के अभयमुद्रा और कटकमुद्रा मे होने का उल्लेख है । श्वेतांबर ग्रन्थ (अज्ञात-नाम) मे द्वादशभुज यक्षी को त्रिनेत्र बताया गया है । यक्षी के आठ करों मे चक्र और शेष चार मे शक्ति, वज्र, वरदमुद्रा एवं पद्म प्रदर्शित है । **यक्ष-यक्षी लक्षण** मे द्वादश-भुज चक्रेश्वरी के आठ हाथों में चक्र, दो में वज्र एवं शेष दो मे मातुलिंग एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का विधान है ।[३] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय श्वेतांबर परम्परा पूरी तरह उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित है ।

मूर्त्ति परम्परा

नवी शती ई० मे चक्रेश्वरी का मूर्त चित्रण प्रारम्भ हुआ । इनमे देवी अधिकांशतः मानव रूप मे निरूपित गरुड वाहन तथा चक्र, शंख एवं गदा से युक्त है ।

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—ल० दसवी शती ई० की एक अष्टभुज मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली (६७ १५२) में सुरक्षित है । इसमें गरुडवाहना यक्षी की ऊपरी छह भुजाओ में चक्र और नीचे की दो भुजाओं मे वरदमुद्रा एव फल प्रदर्शित है ।[४] सेवड़ी (पाली, राजस्थान) के महावीर मन्दिर (११वी शती ई०) से मिली द्विभुज चक्रेश्वरी की एक मूर्ति के चरणो के समीप गरुड तथा अवशिष्ट एक दाहिने हाथ में चक्र उत्कीर्ण है ।[५]

यहां उल्लेखनीय है कि जैन देवकुल में अप्रतिचक्रा नामवाली देवी का महाविद्या के रूप मे भी उल्लेख है । जैन ग्रन्थो में चतुर्भुजा अप्रतिचक्रा के चारों हाथों में चक्र के प्रदर्शन का निर्देश है पर शिल्प मे इसका पूरी तरह पालन न किये जाने के कारण गुजरात एवं राजस्थान मे चक्रेश्वरी यक्षी एवं अप्रतिचक्रा महाविद्या के मध्य स्वरूपगत भेद स्थापित कर पाना अत्यन्त कठिन है । तथापि इन स्थलो पर महाविद्याओ की विशेष लोकप्रियता, देवी के चक्र, गदा एवं शंख आयुधों तथा उसके साथ रोहिणी, वैरोट्या, महामानसी एव अच्छुप्ता महाविद्याओं की विद्यमानता के आधार पर उसकी पहचान महाविद्या से ही की गयी है ।[६] लूणवसही की देवकुलिका १० के वितान पर चक्रेश्वरी की एक अष्टभुजी मूर्ति (१२३० ई०) है । देवी के आसन के समक्ष पक्षीरूप में गरुड बना है । देवी के करो मे वरदमुद्रा, चक्र, व्याख्यान-मुद्रा, छल्ला, छल्ला, पद्मकलिका, चक्र एवं फल है ।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—इस क्षेत्र की छठी से नवी शती ई० तक की ऋषभ मूर्तियों में यक्षी के रूप मे अम्बिका ही निरूपित है । नवी शती ई० के बाद की श्वेतांबर मूर्तियो मे भी यक्षी अधिकांशतः अम्बिका ही है । केवल कुछ ही श्वेतांबर मूर्तियों (१०वी–१२वी शती ई०) मे चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है । ऐसी मूर्तियां चन्द्रावती, विमलवसही (गर्भगृह एवं

---

१ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी', **ज०ओ०इं०**, खं० २०, अं० ३, पृ० २९७, ३०६

२ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० १९७–९८

३ **वही**, पृ० १९८

४ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, 'अन्पब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि नेशनल म्यूजियम', **ज०ओ०इं०**, खं० १९, अं० ३, पृ० २७६

५ ढाकी, एम०ए०, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बम्बई, १९६८, पृ० ३३७–३८

६ कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के वितान के १६ महाविद्याओ के सामूहिक चित्रण में अप्रतिचक्रा की भुजाओं में वरदमुद्रा, चक्र, चक्र और शंख प्रदर्शित हैं । विमलवसही के रंगमण्डप के १६ महाविद्याओं के सामूहिक अंकन में अप्रतिचक्रा की तीन सुरक्षित भुजाओं में चक्र, चक्र एवं फल है ।

देवकुलिका २५), प्रभास-पाटण एवं कैम्बे[1] से मिली है। इनमें गरुडवाहना यक्षी के दो हाथों में चक्र एवं शेष दो में शंख (या वज्र) एवं वरद-(या अभय-)मुद्रा प्रदर्शित है।[2] कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों (११वीं शती ई०) के वितानों के ऋषभ के जीवनदृश्यों में भी चतुर्भुजा चक्रेश्वरी की ललितमुद्रा में दो मूर्तियां हैं। गरुडवाहन केवल शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्ति में ही उत्कीर्ण है, जहां यक्षी के हाथों में वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एवं शंख प्रदर्शित है (चित्र १४)। महावीर मन्दिर की मूर्ति में यक्षी वरदमुद्रा, गदा, सनालपद्म एवं शंख (?) से युक्त है (चित्र १३)। लेख में यक्षी को 'वैष्णवी देवी' कहा गया है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि गुजरात एवं राजस्थान में ल० दसवीं शती ई० में चक्रेश्वरी की मूर्तियों का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। इनमें चक्रेश्वरी अधिकांशतः चतुर्भुजा है।[3] चक्रेश्वरी के साथ गरुडवाहन और चक्र एवं शंख का प्रदर्शन नियमित था।

उत्तरप्रदेश–मध्यप्रदेश (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—चक्रेश्वरी की प्राचीनतम स्वतन्त्र मूर्ति इसी क्षेत्र से मिली है। त्रिभंग में खड़ी यह चतुर्भुज मूर्ति देवगढ़ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) की भित्ति पर है। लेख में देवी को 'चक्रेश्वरी' कहा गया है। यक्षी के चारों हाथों में चक्र है। देवी का गरुडवाहन दाहिने पार्श्व में नमस्कार-मुद्रा में खड़ा है।[4] ल० दसवीं शती ई० की एक चतुर्भुज मूर्ति धुबेला राज्य संग्रहालय, नवगांव में भी सुरक्षित है। गरुडवाहना यक्षी के करों में वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एवं शंख प्रदर्शित है। किरीटमुकुट से शोभित यक्षी के शीर्षभाग में एक लघु जिन आकृति उत्कीर्ण है।[5] समान विवरणों वाली दसवीं शती ई० की एक अन्य चतुर्भुज मूर्ति बिल्हारी (जबलपुर) से मिली है।[6]

दसवीं शती ई० में ही चक्रेश्वरी की चार से अधिक भुजाओं वाली मूर्तियां भी उत्कीर्ण हुई। दो अष्टभुज मूर्तियां (१०वीं शती ई०) ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के शिखर पर उत्कीर्ण हैं। दोनों उदाहरणों में गरुडवाहना यक्षी ललित-मुद्रा में विराजमान है। दक्षिण शिखर की मूर्ति में यक्षी के सुरक्षित हाथों में छल्ला, वज्र, चक्र, चक्र, चक्र और शंख प्रदर्शित है। उत्तरी शिखर की दूसरी मूर्ति में यक्षी के अवशिष्ट करों में खड्ग, आम्रलुम्बि (?), चक्र, खेटक, शंख और गदा हैं। दसवीं शती ई० की एक दशभुजा मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (डी ६) में है (चित्र ४४)। समभंग में खड़ी चक्रेश्वरी का गरुडवाहन पक्षी रूप में आसन के नीचे उत्कीर्ण है। यक्षी के नौ सुरक्षित करों में चक्र है। शीर्ष भाग में एक लघु जिन आकृति एवं पार्श्वों में दो स्त्री सेविकाएं आमूर्तित हैं। राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सिरोनी खुर्द (ललितपुर) से मिली दसवीं शती ई० की एक दशभुजा मूर्ति (जे ८८३) है। किरीटमुकुट से शोभित गरुडवाहना चक्रेश्वरी के नौ सुरक्षित हाथों में व्याख्यान-मुद्रा, पद्म, खड्ग, तूणीर, चक्र, घण्टा, चक्र, पद्म एवं चाप प्रदर्शित हैं। ऊपरी भाग में उड्डीयमान आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो से चक्रेश्वरी की ग्यारहवीं शती ई० की चार स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। किरीटमुकुट से शोभित गरुड-वाहना यक्षी एक उदाहरण में षड्भुज और शेष तीन में चतुर्भुज है। मन्दिर २७ (के २७.५०) की षड्भुज मूर्ति में यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा, गदा, छल्ला, चक्र, पद्म एवं शंख प्रदर्शित हैं। दो चतुर्भुज मूर्तियों में चक्रेश्वरी अभयमुद्रा, गदा,

---

१ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० २८०–८१

२ विमलवसही के गर्भगृह की मूर्ति में वरदमुद्रा के स्थान पर वरदाक्ष प्रदर्शित है।

३ सेवड़ी के महावीर मन्दिर की मूर्ति में यक्षी द्विभुजा और राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली (६७.१५२) एवं लूणवसही की मूर्तियां में चतुर्भुजा है।

४ स्मरणीय है कि यक्षी की चारों भुजाओं में चक्र का प्रदर्शन देवी पर महाविद्या अप्रतिचक्रा का स्पष्ट प्रभाव दरशाता है।

५ दीक्षित, एस०के०, **ए गाईड टू दि स्टेट म्यूजियम धुबेला (नवगांव), विन्ध्यप्रदेश**, नवगांव, १९५७, पृ० १६–१७

६ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्रसंग्रह १०४.२

चक्र एवं शंख (या फल) से युक्त है।[1] शान्तिनाथ मन्दिर की उत्तरी भित्ति की मूर्ति मे यक्षी वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एवं शंख के साथ निरूपित है।

चार स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य के नौ उत्तरंगों पर भी चक्रेश्वरी की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। उत्तरंगों की मूर्तियो मे किरीटमुकुट से सज्जित गरुडवाहना यक्षी चार से दस भुजाओं वाली है। तीन उत्तरंग क्रमशः पार्श्वनाथ, घण्टई एव आदिनाथ मन्दिरों मे है। खजुराहो में दसवी शती ई० में ही चक्रेश्वरी की आठ और दस भुजाओ वाली मूर्तिया भी उत्कीर्ण हुई। घण्टई मन्दिर (१० वी शती ई०) के उत्तरंग की मूर्ति मे अष्टभुजा यक्षी की भुजाओं मे फल (?), घण्टा, चक्र, चक्र, चक्र, चक्र, धनुष (?) एवं कलश प्रदर्शित है। पार्श्वनाथ मन्दिर (१० वी शती ई०) के उत्तरंग की मूर्ति मे दशभुजा चक्रेश्वरी के करो में वरदमुद्रा, खड्ग, गदा, चक्र, पद्म (?), चक्र, कार्मुक, फलक, गदा और शंख निरूपित हैं। मन्दिर ११ के उत्तरंग की षड्भुज मूर्ति (११ वी शती ई०) मे चक्रेश्वरी के हाथों मे वरदमुद्रा, चक्र, चक्र, चक्र, चक्र एवं शंख हैं। दसवी-ग्यारहवी शती ई० के छह अन्य उदाहरणो मे यक्षी चतुर्भुजा है (चित्र ५७)। इनमे यक्षी के ऊपरी करो में गदा और चक्र तथा नीचे के करों मे अभय-(या वरद-) मुद्रा और शंख प्रदर्शित है।[2]

इन मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट है कि खजुराहो मे चक्रेश्वरी की चार से दस भुजाओं वाली मूर्तियां उत्कीर्ण हुई, किन्तु यक्षी का चतुर्भुज स्वरूप ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। गरुडवाहना यक्षी के साथ चक्र, शंख और गदा का अंकन नियमित था। बहुभुजी मूर्तियों मे चक्रेश्वरी के अतिरिक्त करो मे सामान्यतः खड्ग, खेटक, धनुष और पद्म प्रदर्शित है।

उत्तर भारत मे चक्रेश्वरी की सर्वाधिक मूर्तियां देवगढ़ में उत्कीर्ण हुई, और चक्रेश्वरी को प्राचीनतम ज्ञात मूर्ति भी यही से मिली है। नवी-दसवी शती ई० मे चक्रेश्वरी की केवल चतुर्भुज मूर्तियां ही बनी। ग्यारहवी शती ई० मे चक्रेश्वरी का चतुर्भुज के साथ ही षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज एवं विंशतिभुज स्वरूपो मे भी निरूपण हुआ। इस प्रकार चक्रेश्वरी की मूर्तियों के मूर्तिविज्ञानपरक विकास के अध्ययन की दृष्टि से भी देवगढ की मूर्तिया बड़े महत्व की हैं। खजुराहो के समान ही यहां भी चक्रेश्वरी की चतुर्भुज मूर्तियां ही सर्वाधिक संख्या मे बनी। किरीटमुकुट से अलंकृत गरुडवाहना यक्षी के करो मे चक्र, शंख एवं गदा का नियमित अंकन हुआ है। बहुभुजी मूर्तियो मे अतिरिक्त करों मे सामान्यतः खड्ग, खेटक, परशु एव वज्र प्रदर्शित है।

मन्दिर १२, ५ एव ११ के उत्तरंगो पर चतुर्भुज चक्रेश्वरी की तीन मूर्तियां (१० वी-११ वी शती ई०) उत्कीर्ण है। इनमे यक्षी अभय-(या वरद-) मुद्रा, गदा, चक्र एव शंख से युक्त है। मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के स्तम्भ की एक चतुर्भुज मूर्ति (१०वी शती ई०) में यक्षी स्थानक-मुद्रा मे आमूर्तित है और उसकी भुजाओं मे वरदमुद्रा, गदा, चक्र एव शंख हैं। मन्दिर १, ४, १२ एव २६ के आगे के स्तम्भो (११वी-१२वी शती ई०) पर भी चतुर्भुजा यक्षी की सात मूर्तियां है। इनमे भी यक्षी के करो मे ऊपर वर्णित आयुध ही प्रदर्शित है। मन्दिर ४ की मूर्ति (११५० ई०) मे यक्षी की अक्षमाला धारण किये एक भुजा से व्याख्यान-मुद्रा प्रदर्शित है। मन्दिर १ के बारहवी शती ई० के स्तम्भो की दो मूर्तियो मे यक्षी के तीन हाथो मे चक्र और एक मे शंख (या वरदमुद्रा) है। मन्दिर ९ के उत्तरंग की मूर्ति (११वी शती ई०) मे यक्षी के करो मे वरदमुद्रा, गदा, चक्र एव छल्ला है।

देवगढ़ मे षड्भुज चक्रेश्वरी की केवल एक ही मूर्ति (११वी शती ई०) है। यह मूर्ति मन्दिर १२ की दक्षिणी चहारदीवारी पर उत्कीर्ण है। गरुडवाहना यक्षी की भुजाओं मे वरदमुद्रा, खड्ग, चक्र, चक्र, गदा एवं शंख प्रदर्शित हैं। अष्टभुजा चक्रेश्वरी की तीन मूर्तियां मिली हैं। एक मूर्ति (११वी शती ई०) मन्दिर १ के पश्चिमी मानस्तम्भ पर उत्कीर्ण

---

१ एक मूर्ति आदिनाथ मन्दिर के उत्तरी अधिष्ठान पर है।

२ मन्दिर २२ की मूर्ति मे निचली दाहिनी भुजा मे मुद्रा के स्थान पर पद्म, आदिनाथ मन्दिर के उत्तरंग की मूर्ति मे चक्र के स्थान पर पद्म एवं जैन धर्मशाला के समीप की मूर्ति में ऊपर की दोनों भुजाओं में दो चक्र प्रदर्शित हैं।

है। चक्रेश्वरी के हाथों में वरदमुद्रा, गदा, बाण, छल्ला, छल्ला, वज्र, चाप एवं शंख हैं। बारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां क्रमशः मन्दिर १२ एवं १४ के समक्ष के मानस्तम्भो पर हैं। दोनों मे स्थानक-मुद्रा में खड़ी यक्षी के समीप ही गरुड की मूर्तियां बनी हैं। मन्दिर १२ की मूर्ति मे यक्षी ने खड्ग, अभयमुद्रा, चक्र, चक्र, खेटक, परशु एवं शंख धारण किया है। मन्दिर १४ की मूर्ति मे चक्रेश्वरी दण्ड, खड्ग, अभयमुद्रा, चक्र, चक्र, चक्र, परशु एवं शंख से युक्त है। दशभुजा चक्रेश्वरी की भी केवल एक ही मूर्ति (मन्दिर ११–मानस्तम्भ, १०५९ ई०) है (चित्र ४५)। गरुड-वाहना यक्षी के करो मे वरदमुद्रा, बाण, गदा, खड्ग, चक्र, चक्र, खेटक, वज्र, धनुष एवं शंख प्रदर्शित हैं।

देवगढ मे विंशतिभुजा चक्रेश्वरी की तीन मूर्तियां (११वीं शती ई०) हैं। दो मूर्तियां स्थानीय साहू जैन संग्रहालय मे सुरक्षित है और एक मूर्ति मन्दिर २ के समीप अरक्षित अवस्था मे पड़ी है। मन्दिर २ के विरूपित उदाहरण मे यक्षी की एकमात्र अवशिष्ट भुजा मे चक्र प्रदर्शित है। साहू जैन संग्रहालय की एक मूर्ति मे केवल सात भुजाएं ही सुरक्षित हैं, जिनमे से चार मे चक्र और शेष तीन मे वरदाक्ष, खेटक और शंख प्रदर्शित है। एक खण्डित भुजा के ऊपर गदा का भाग अवशिष्ट है। यक्षी के समीप दो उपासकों, चार चामरधारिणी सेविकाओं एव पद्म धारण करनेवाले पुरुषों की मूर्तियां हैं। शीर्षभाग मे एक ध्यानस्थ जिन मूर्ति उत्कीर्ण है जो दो खड्गासन जिन आकृतियो से वेष्टित है। परिकर मे दो उड्डीयमान मालाधर युगलों एवं दो चतुर्भुज देवियों की मूर्तियां है। दाहिने पार्श्व की तीन सर्पफणो वाली देवी पद्मावती है। पद्मावती की भुजाओं मे वरदमुद्रा, सनालपद्म, सनालपद्म एवं जलपात्र प्रदर्शित है। वाम पार्श्व मे जटामुकुट से शोभित सरस्वती निरूपित है। सरस्वती की निचली भुजाओं मे वीणा और ऊपरी मे सनालपद्म एवं पुस्तक है। साहू जैन संग्रहालय की दूसरी मूर्ति मे चक्रेश्वरी की सभी भुजाएं सुरक्षित है (चित्र ४६)। इस मूर्ति मे गरुडवाहन (मानव) चतुर्भुज है। गरुड के नीचे के हाथ नमस्कार-मुद्रा मे हैं और ऊपरी चक्रेश्वरी का भार वाहन कर रहे हैं। धम्मिल्ल से शोभित चक्रेश्वरी के ऊपर उठे हुए ऊपरी दो हाथों मे एक चक्र तथा शेष मे चक्र, खड्ग, तूणीर (?), मुद्गर, चक्र, गदा, अक्षमाला, परशु, वज्र, शृंखलाबद्ध-घण्टा, खेटक, पताकायुक्त दण्ड, शंख, धनुष, चक्र, सर्प, शूल एव चक्र प्रदर्शित है। अक्षमाला धारण करने वाला हाथ व्याख्यान-मुद्रा मे है। चक्रेश्वरी के पार्श्वों में दो चामरधारिणी सेविकाएं और शीर्षभाग मे उड्डीयमान मालाधरो एवं तीन जिनो की मूर्तियां उत्कीर्ण है। एक खण्डित विंशतिभुज मूर्ति गंधावल (देवास, म० प्र०) से भी मिली है[1] जिसके एक हाथ मे चक्र एवं परिकर मे पांच छोटी जिन मूर्तिया सुरक्षित है।

उपर्युक्त मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि देवगढ़ मे चक्रेश्वरी को विशेष प्रतिष्ठा दी गई थी। इसी कारण चक्रेश्वरी के साथ मे चामरधारिणी सेविकाओ, उड्डीयमान मालाधरो, गजो एवं एक उदाहरण मे पद्मावती और सरस्वती को भी निरूपित किया गया। किन्तु दिगंबर परम्परा के अनुसार चक्रेश्वरी की द्वादशभुज मूर्ति देवगढ मे नही उत्कीर्ण हुई।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—जिन-संयुक्त मूर्तियो मे गरुडवाहना यक्षी अधिकाशतः चतुर्भुजा और चक्र, शंख, गदा एवं अभय-(या वरद-) मुद्रा से युक्त है। बजरामठ (ग्यारसपुर, म० प्र०) की ऋषभ मूर्ति (१० वीं शती ई०) मे गरुड-वाहना यक्षी के करो मे यही उपादान प्रदर्शित है। खजुराहो की दसवीं से बारहवी शती ई० की ३२ ऋषभ मूर्तियो मे चक्रेश्वरी आमूर्तित है। ज्ञातव्य है कि इन सभी उदाहरणो मे यक्ष वृषानन नही हैं, किन्तु यक्षी सर्वदा चक्रेश्वरी ही है। यक्षी का वाहन गरुड सभी उदाहरणो मे उत्कीर्ण है।[2] दो उदाहरणों (११ वी शती ई०) मे यक्षी द्विभुजा है और उसके हाथों मे अभयमुद्रा एवं चक्र प्रदर्शित है।[3] अन्य उदाहरणो मे यक्षी चतुर्भुजा है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति मे यक्षी अभयमुद्रा, गदा, चक्र एव शंख से युक्त है। दो उदाहरणों में गदा के स्थान पर पद्म प्रदर्शित है।[4] दस उदाहरणो मे

---

१ गुप्ता, एस० पी० तथा शर्मा, बी० एन०, 'गंधावल और जैन मूर्तियां', **अनेकान्त**, खं० १९, अं० १–२, पृ० १३०

२ शान्तिनाथ संग्रहालय की एक मूर्ति (के ६२) में गरुड नही उत्कीर्ण है।

३ के ४४ एवं जार्डिन संग्रहालय

४ शान्तिनाथ संग्रहालय, के ४०, पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो, १६६७

चक्रेश्वरी के ऊपरी दोनो हाथो मे एक-एक चक्र है, और छह उदाहरणों में क्रमशः गदा एव चक्र है। नीचे के हाथों में अभय-(या वरद-) मुद्रा एवं शंख (या फल या जलपात्र) प्रदर्शित है।[1] स्थानीय संग्रहालय की ग्यारहवी शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति की पीठिका पर मूलनायक के आकार की द्वादशभुजा चक्रेश्वरी आमूर्तित है। यक्षी की सभी भुजाएं भग्न हैं।

देवगढ़ की दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की कम से कम २० ऋषभ मूर्तियों में यक्षी चक्रेश्वरी है।[2] गरुडवाहना यक्षी अधिकांशतः किरीटमुकुट से शोभित है। दसवी शती ई० की केवल दो ही ऋषभ मूर्तियो[3] में चक्रेश्वरी द्विभुजा है। इनमे यक्षी चक्र एवं शंख से युक्त है। अन्य मूर्तियों मे चक्रेश्वरी चतुर्भुजा है। केवल मन्दिर ४ की मूर्ति (११वीं शती ई०) मे चक्रेश्वरी षड्भुजा है और उसके सुरक्षित करों में वरदमुद्रा, गदा, चक्र, चक्र एवं शंख प्रदर्शित हैं। चतुर्भुजा यक्षी की भुजाओं में अभय-(या वरद-) मुद्रा, गदा या (या पद्म), चक्र एवं शख (या कलश) है।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ की २२ ऋषभ मूर्तियों मे से केवल १० उदाहरणो (१० वी-१२ वी शती ई०) मे गरुडवाहना चक्रेश्वरी आमूर्तित है। चक्रेश्वरी केवल एक मूर्ति (जे ८५६, ११ वी शती ई०) मे द्विभुजा है और उसकी भुजाओ मे चक्र एवं शंख प्रदर्शित हैं। अधिकांश मूर्तियो मे यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों मे अभयमुद्रा, गदा (या चक्र), चक्र एवं शंख हैं।[4] एक मूर्ति (जी ३२२) मे यक्षी की चारों भुजाओं मे चक्र है। उरई की एक मूर्ति (१६.०.१७८, ११ वीं शती ई०) मे चक्रेश्वरी अष्टभुजा है (चित्र ७)। जटामुकुट से शोभित चक्रेश्वरी की सुरक्षित भुजाओं मे गदा, अभय-मुद्रा, वज्र, चक्र, सर्प (?) एवं धनुष (?) प्रदर्शित है। पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा की ल० दसवी शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति (बी २१) मे गरुडवाहना चक्रेश्वरी चतुर्भुजा है और उसकी भुजाओं मे अभयमुद्रा, चक्र, चक्र एवं शंख है।

उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश की दिगंबर परम्परा की चक्रेश्वरी मूर्तियो के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र मे चक्रेश्वरी की दो[5] से बीस भुजाओ वाली मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। ये मूर्तिया नवी से बारहवी शती ई० के मध्य की हैं। स्वतन्त्र एवं जिन-संश्लिष्ट मूर्तियो मे चक्रेश्वरी का चतुर्भुज स्वरूप ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। द्विभुज, षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज एवं विंशतिभुज रूपों मे भी पर्याप्त मूर्तिया बनीं जिनका दिगंबर ग्रन्थों मे अनुल्लेख है। चक्रेश्वरी की सर्वाधिक स्वतन्त्र एवं जिन-संश्लिष्ट मूर्तियां इसी क्षेत्र मे उत्कीर्ण हुईं। चक्रेश्वरी के साथ गरुडवाहन एवं चक्र, शंख, गदा और अभय-(या वरद-) मुद्रा का प्रदर्शन दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की मूर्तियो मे नियमित था। दिगंबर ग्रन्थो के निर्देशों का पालन केवल गरुडवाहन एवं चक्र और वरदमुद्रा के प्रदर्शन मे ही किया गया है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र मे केवल उड़ीसा से चक्रेश्वरी की मूर्तिया (११वी-१२वी शती ई०) मिली हैं जो नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओ मे उत्कीर्ण है। इनमें गरुडवाहना यक्षी दस और बारह भुजाओं वाली है। नवमुनि गुफा की मूर्ति में दशभुजा यक्षी योगासन-मुद्रा मे बैठी और जटामुकुट से शोभित है। यक्षी के सात हाथों मे चक्र तथा दो में खेटक और अक्षमाला है। एक भुजा योगमुद्रा में गोद मे स्थित है।[6] बारभुजी गुफा की द्वादशभुज मूर्ति मे यक्षी के छह दाहिने हाथों मे वरदमुद्रा, वज्र, चक्र, चक्र, अक्षमाला एवं खड्ग और तीन अवशिष्ट बाम भुजाओ मे खेटक, चक्र तथा

---

१ दो उदाहरणों मे चक्र (के ७९) एवं छल्ला (पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो १६६७) भी प्रदर्शित है।

२ खजुराहो के विपरीत देवगढ की ऋषभ मूर्तियो मे चार उदाहरणों में अम्बिका एवं पन्द्रह उदाहरणों मे सामान्य लक्षणों वाली यक्षी भी आमूर्तित है।

३ मन्दिर २ और १९। मन्दिर १६ के मानस्तम्भ (१२ वीं शती ई०) की मूर्ति मे भी यक्षी द्विभुजा है और उसकी दोनो भुजाओ मे चक्र स्थित हैं।

४ जे ८४७, जे ७८९, ६६.५९, १२.०.७५

५ द्विभुजा चक्रेश्वरी का निरूपण मुख्यतः देवगढ, खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ की जिन-संयुक्त मूर्तियों में ही हुआ है। छह से बीस भुजाओं वाली मूर्तियां भी मुख्यतः इन्ही स्थलों से मिली है।

६ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२८

सनाल पद्म प्रदर्शित हैं।[1] बारभुजी गुफा की दूसरी द्वादशभुज मूर्ति में चक्रेश्वरी के तीन दक्षिण करों में वरदमुद्रा, खड्ग और चक्र तथा तीन वाम करो मे खेटक, घण्टा (?) एवं चक्र प्रदर्शित है। चौथी बायी भुजा वक्षःस्थल के समक्ष है। शेष भुजाएं खण्डित है।[2] उपर्युक्त मूर्तियो मे अन्यत्र विशेष लोकप्रिय गदा एव शंख का प्रदर्शन नही प्राप्त होता है। गदा एवं शंख के स्थान पर खड्ग और खेटक का प्रदर्शन हुआ है।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत की मूर्तियो मे चक्रेश्वरी का गरुडवाहन कभी-कभी नही प्रदर्शित है, पर चक्र का प्रदर्शन नियमित था। यक्षी की चतुर्भुज, षड्भुज और द्वादशभुज मूर्तिया मिली है। पुडुकोट्टा की दसवी शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति मे चतुर्भुज यक्षी के हाथो मे फल, चक्र, शख एव अभयमुद्रा प्रदर्शित है।[3] चतुर्भुजा चक्रेश्वरी की एक स्वतन्त्र मूर्ति (११वी-१२वी शती ई०) कम्बड पहाडो (कर्नाटक) के शान्तिनाथ बस्ती के नवरंग से मिली है।[4] गरुडवाहना यक्षी के करो मे अभयमुद्रा, चक्र, चक्र एव पद्म (या फल) प्रदर्शित है। एक चतुर्भुज मूर्ति जिननाथपुर (कर्नाटक) के जैन मन्दिर की दक्षिणी भित्ति पर है। गरुडवाहना चक्रेश्वरी की ऊपरी भुजाओ मे चक्र और निचली मे पद्म एवं वरदमुद्रा प्रदर्शित है। इसी स्थल की एक अन्य मूर्ति मे गरुडवाहना चक्रेश्वरी षड्भुज है। यक्षी की भुजाओं में वरदमुद्रा, वज्र, चक्र, चक्र, वज्र एवं पद्म प्रदर्शित है। समान विवरणो वाली एक अन्य षड्भुज मूर्ति श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) के मण्डोर बस्ती की ऋषभ मूर्ति मे उत्कीर्ण है।[5]

बम्बई के सेण्ट जेवियर कालेज के इण्डियन हिस्टारिकल रिसर्च इन्स्टिट्यूट संग्रहालय की एक ऋषभ मूर्ति मे द्वादशभुज चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है। त्रिभग मे खडी यक्षी के आठ हाथो मे चक्र, दो मे वज्र एव एक मे पद्म प्रदर्शित है। एक भुजा भग्न है। द्वादशभुज यक्षी की समान विवरणो वाली तीन अन्य मूर्तिया कर्नाटक के विभिन्न स्थलों से मिली हैं।[6] द्वादशभुज चक्रेश्वरी की एक मूर्ति एलोरा (महाराष्ट्र) की गुफा ३० मे है। गरुडवाहना चक्रेश्वरी की पाच अवशिष्ट दाहिनी भुजाओं मे पद्म, चक्र, शख, चक्र एव गदा है। यक्षी की केवल एक वाम भुजा सुरक्षित है, जिसमे खड्ग है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत म चक्रेश्वरी के साथ शख एव गदा के स्थान पर वज्र एवं पद्म का प्रदर्शन लोकप्रिय था। द्वादशभुजा चक्रेश्वरी के निरूपण मे सामान्यत. दक्षिण भारत के **यक्ष-यक्षी-लक्षण** के निर्देशो का निर्वाह किया गया है।[7]

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे चक्रेश्वरी विशेष लोकप्रिय थी। अम्बिका के बाद चक्रेश्वरी की ही सर्वाधिक मूर्तिया मिली है। चक्रेश्वरी की गणना जैन देवकुल की चार प्रमुख यक्षियो में की गई है। अन्य प्रमुख यक्षिया अम्बिका, पद्मावती एव सिद्धायिका है जो क्रमशः नेमि, पार्श्व एवं महावीर की यक्षियां हैं। चक्रेश्वरी का उत्कीर्णन नवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। देवगढ के मन्दिर १२ की मूर्ति (८६२ ई०) चक्रेश्वरी की प्राचीनतम मूर्ति है। पर अन्य स्थलो पर चक्रेश्वरी की मूर्तियां दसवी शती ई० मे उत्कीर्ण हुई। चक्रेश्वरी की सर्वाधिक मूर्तिया दसवी-ग्यारहवीं शती ई० में बनी। इसी समय चक्रेश्वरी के स्वरूप मे सर्वाधिक मूर्तिविज्ञानपरक विकास हुआ और उसकी द्विभुज से विंशतिभुज मूर्तिया उत्कीर्ण हुई। श्वेतांबर स्थलो पर चक्रेश्वरी का शास्त्र-परम्परा से अलग चतुर्भुज स्वरूप में निरूपण ही लोकप्रिय था। स्मरणीय है कि श्वेतांबर ग्रन्थो मे चक्रेश्वरी के अष्टभुज एवं द्वादशभुज स्वरूपो का ही उल्लेख है। दिगंबर स्थलों पर

१ **वही**, पृ० १३०
२ **वही**, पृ० १३३
३ बाल सुब्रह्मण्यम, एस० आर० तथा राजू, वी० वी०, 'जैन वेस्टिजेज इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', **क्वा०ज०मै०स्टे०**, खं० २४, अं० ३, पृ० २१३–१४
४ शाह, यू०पी०, **यू०नि०**, पृ० २९१
५ **वही**, पृ० २९२
६ **वही**, पृ० २९७–९८
७ मूर्तियों मे मातुलिंग के स्थान पर पद्म प्रदर्शित है।

चक्रेश्वरी की द्विभुज से विंशतिभुज मूर्तियां बनी।[1] पर सर्वाधिक मूर्तियों मे चक्रेश्वरी चतुर्भुजा ही है। चक्रेश्वरी के निरूपण मे सर्वाधिक स्वरूपगत विविधता दिगंबर स्थलो पर ही दृष्टिगत होती है। सभी क्षेत्रों की मूर्तियों मे गरुडवाहन (मानवरूप मे) एवं चक्र का नियमित प्रदर्शन हुआ है जो जैन ग्रन्थो के निर्देशों का पालन है। ग्रन्थों के निर्देशो के विपरीत उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश मे गदा और शंख, गुजरात एवं राजस्थान मे एक भुजा मे शंख और दो भुजाओं में चक्र तथा उड़ीसा में खड्ग और खेटक का प्रदर्शन लोकप्रिय था।

(२) महायक्ष

शास्त्रीय परम्परा

महायक्ष जिन अजितनाथ का यक्ष है। दोनो परम्परा के ग्रन्थो मे महायक्ष को गजारूढ, चतुर्मुख एव अष्टभुज कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे गजारूढ़ महायक्ष की दाहिनी भुजाओं मे वरदमुद्रा, मुद्गर, अक्षमाला, पाश और बायी मे मातुलिंग अभयमुद्रा, अकुश एवं शक्ति का उल्लेख है।[2] अन्य श्वेताबर ग्रन्थों में भी इन्ही आयुधों के नाम है।[3]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में गजारूढ़ महायक्ष के आयुधों का उल्लेख नही है।[4] **प्रतिष्ठासारोद्धार** के अनुसार महायक्ष के दाहिने हाथों मे खड्ग (निस्त्रिंश), दण्ड, परशु एवं वरदमुद्रा और बायें मे चक्र, त्रिशूल, पद्म और अकुश होने चाहिए।[5] **अपराजितपृच्छा** में गजारूढ़ महायक्ष की आठ भुजाओ में श्वेताबर परम्परा के अनुरूप वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, मुद्गर, अक्षमाला, पाश, अकुश, शक्ति एवं मातुलिंग के प्रदर्शन का विधान है।[6]

महायक्ष के साथ गजवाहन और अंकुश का प्रदर्शन हिन्दू देव इन्द्र का,[7] यक्ष का चतुर्मुख होना ब्रह्मा का तथा परशु और त्रिशूल धारण करना शिव का प्रभाव हो सकता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगबर परम्परा मे सर्प पर आसीन और गज लाछन से युक्त अष्टभुज महायक्ष के करो मे खड्ग, दण्ड, अकुश, परशु, त्रिशूल, चक्र, पद्म एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है। श्वेताबर परम्परा के दोनों ग्रन्थों मे भी अष्टभुज एवं चतुर्भुज महायक्ष के करो में उपर्युक्त आयुधों का ही उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे महायक्ष का

---

१ दिगंबर स्थलो से चक्रेश्वरी की द्विभुज, चतुर्भुज, षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज, द्वादशभुज एवं विंशतिभुज मूर्तियां मिली हैं।

२ महायक्षाभिधानं यक्षेश्वरं चतुर्मुखं श्यामवर्णं मातंगवाहनमष्टपाणिं वरदमुद्गराक्षसूत्रपाशान्वितदक्षिणपाणिं बीजपूरकाभयाकुशशक्तियुक्तवामपाणिपल्लवं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.२
त्रि०श०पु०च० २.३.८४२–४४, **पद्मानन्दमहाकाव्यः** परिशिष्ट–**अजितस्वामीचरित्र** १९–२०; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.२७; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७३

३ **देवतामूर्तिप्रकरण** में महायक्ष का वाहन हंस है और एक भुजा मे अक्षमाला के स्थान पर वज्र प्रदर्शित है। **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.२०

४ अजितस्य महायक्षो हेमवर्णश्चतुर्मुखः।
गजेन्द्रवाहनारूढः स्वोचिताष्टभुजायुधः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.१७

५ चक्रत्रिशूलकमलांकुशवामहस्तो निस्त्रिंशदण्डपरशूद्यवरान्यपाणिः। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१३०

६ श्यामोऽष्टबाहुर्हस्तिस्थो वरदाभयमुद्गराः।
अक्षपाशाङ्कुशाः शक्तिर्मातुलिंगं तथैव च॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.४४

७ स्मरणीय है कि अजितनाथ का लांछन भी गज ही है।

वाहन गज और अज्ञातनाम दूसरे ग्रन्थ में सर्प कहा गया है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा महायक्ष के निरूपण में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से सहमत है। महायक्ष के साथ सर्पवाहन का उल्लेख दक्षिण भारतीय परम्परा की नवीनता है।

मूर्ति-परम्परा

महायक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। केवल देवगढ एवं खजुराहो की जिन-संश्लिष्ट मूर्तियो (११वीं-१२वीं शती ई०) में ही अजितनाथ के साथ यक्ष का अंकन प्राप्त होता है (चित्र १५)। पर किसी भी उदाहरण में यक्ष परम्परा विहित लक्षणों से युक्त नहीं है। सभी मूर्तियों मे द्विभुज यक्ष सामान्य लक्षणों वाला है जिसके हाथों मे अभयमुद्रा एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित है।

(२) अजिता (या रोहिणी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

जिन अजितनाथ की यक्षी को श्वेतांबर परम्परा मे अजिता (या अजितबला या विजया)[2] और दिगंबर परम्परा में रोहिणी नाम दिया गया है। दोनों परम्पराओं में चतुर्भुजा यक्षी को लोहासन पर विराजमान बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे लोहासन पर विराजमान चतुर्भुजा अजिता के दाहिने हाथों मे वरदमुद्रा एवं पाश और बायें हाथों में अंकुश एवं फल के प्रदर्शन का विधान है।[3] अन्य ग्रन्थों मे भी उपर्युक्त लक्षणो के ही उल्लेख हैं।[4] **आचारदिनकर** एवं **देवतामूर्तिप्रकरण** में यक्षी के वाहन के रूप में लोहासन के स्थान पर क्रमशः गाय और गोधा का उल्लेख है।[5]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे लोहासन पर विराजमान चतुर्भुजा रोहिणी के हाथो मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शंख एव चक्र के अंकन का निर्देश है।[6] अन्य ग्रन्थो मे भी यही विवरण प्राप्त होता है।[7]

इस प्रकार दोनों परम्पराओं मे केवल यक्षी के नामों एव आयुधों के सन्दर्भ मे ही भिन्नता प्राप्त होती है। श्वेतांबर परम्परा मे अजिता के मुख्य आयुध पाश एव अंकुश, और दिगंबर परम्परा में रोहिणी के मुख्य आयुध चक्र एवं शंख है। यक्षी का अजिता नाम सम्भवतः उसके जिन (अजितनाथ) से तथा रोहिणी नाम प्रथम महाविद्या रोहिणी से ग्रहण किया गया है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा के अनुसार चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथो मे चक्र और नीचे के हाथों में अभयमुद्रा और कटकमुद्रा होने चाहिए। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मकरवाहना चतुर्भुजा यक्षी के करो में वज्र, अंकुश, कटार (संकु) एव पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे धातु निर्मित आसन पर विराजमान यक्षी के

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९८

२ **मन्त्राधिराजकल्प**

३ ···समुत्पन्नामजिताभिधाना यक्षिणी गौरवर्णां लोहासनाधिरूढां चतुर्भुजां वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणकरां बीजपुरकांकुश-युक्तवामकरां चेति ॥ **निर्वाणकलिका** १८.२

४ **त्रि०श०पु०च०** २.३.८४५-४६, **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट-**अजितस्वामीचरित्र** २१-२२; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.५२

५ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७६, **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.२१

६ देवी लोहासना रोहिण्याख्या चतुर्भुजा।
वरदाभयहस्तासौ शंखचक्रोज्वलायुधा ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.१८

७ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१५७, **प्रतिष्ठातिलकम** ७.२, पृ० ३४१; **अपराजितपृच्छा** २२१.१६

८ महाविद्या रोहिणी की एक भुजा में शंख भी प्रदर्शित है।

हाथों में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शंख एवं चक्र का उल्लेख है।[1] इस प्रकार उत्तर और दक्षिण भारत के ग्रन्थो मे चक्र, शंख, अंकुश एवं अभय-(या वरद-) मुद्रा के प्रदर्शन में समानता प्राप्त होती है। यक्ष-यक्षी-लक्षण का विवरण पूरी तरह प्रतिष्ठासारसंग्रह के समान है।

मूर्ति-परम्परा

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र की अजितनाथ मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का चित्रण नहीं प्राप्त होता है। पर आबू, कुम्भारिया, तारंगा, सादरी, घाणेराव जैसे श्वेतांबर स्थलो पर दो ऊर्ध्व करो में अंकुश एवं पाश धारण करने वाली चतुर्भुजा देवी का निरूपण विशेष लोकप्रिय था। देवी के निचले करो मे वरद-(या अभय-) मुद्रा एवं मातुलिंग (या जलपात्र) प्रदर्शित है। देवी का वाहन कभी गज और कभी सिंह है। देवी की सम्भावित पहचान अजिता से की जा सकती है।[2]

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, विदिशा) एवं देवगढ़ से रोहिणी की दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की तीन मूर्तियां मिली हैं। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति (१० वीं शती ई०) उत्तरी मण्डप के अधिष्ठान पर उत्कीर्ण है। इसमें द्वादशभुजा रोहिणी ललितमुद्रा मे लोहासन पर विराजमान है। लोहासन के नीचे एक अस्पष्ट सी पशु आकृति (सम्भवतः गज-मस्तक) उत्कीर्ण है। यक्षी के छह अवशिष्ट हाथों मे पद्म, वज्र, चक्र, शंख, पुष्प और पद्म प्रदर्शित है। देवगढ़ मे रोहिणी की दो मूर्तिया है। एक मूर्ति (१०५९ ई०) मन्दिर ११ के सामने के स्तम्भ पर है (चित्र ४७)। इसमें अष्टभुजा रोहिणी ललितमुद्रा मे भद्रासन पर विराजमान है। आसन के नीचे गोवाहन उत्कीर्ण है। रोहिणी वरदमुद्रा, अंकुश, बाण, चक्र, पाश, धनुष, शूल एवं फल से युक्त है। दूसरी मूर्ति (११वीं शती ई०) मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के समीप के स्तम्भ पर है। इसमे गोवाहना रोहिणी चतुर्भुजा है और उसकी भुजाओं मे वरदमुद्रा, बाण, धनुष एवं जलपात्र है।[3]

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—जिन-संयुक्त मूर्तियो में यक्षी का अपने विशिष्ट स्वतन्त्र स्वरूप में निरूपण नहीं प्राप्त होता। देवगढ़ एवं खजुराहो की अजितनाथ की मूर्तियों में सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा (या खड्ग) एवं फल (या जलपात्र) से युक्त है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र में केवल उड़ीसा की नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओ से ही रोहिणी की मूर्तिया (११वीं-१२वीं शती ई०) मिली है। नवमुनि गुफा की मूर्ति मे अजित की यक्षी चतुर्भुजा है और उसका वाहन गज है। यक्षी के हाथों मे अभयमुद्रा, वज्र, अंकुश और तीन काटे वाली कोई वस्तु प्रदर्शित है। किरीटमुकुट से शोभित यक्षी के ललाट पर तीसरा नेत्र उत्कीर्ण है। यक्षी के निरूपण में गजवाहन एवं वज्र और अंकुश का प्रदर्शन हिन्दू इन्द्राणी (मातृका) का प्रभाव है।[4] बारभुजी गुफा मे अजित के साथ द्वादशभुजा रोहिणी आमूर्तित है। वृषभवाहना रोहिणी की अवशिष्ट दाहिनी भुजाओ मे वरदमुद्रा, शूल, बाण एव खड्ग और बायी मे पाश (?), धनुष, हल, खेटक, सनाल पद्म एवं घण्टा (?) प्रदर्शित है। यक्षी की एक बायी भुजा वक्षःस्थल के समक्ष स्थित है।[5] यक्षी के साथ वृषभवाहन एवं धनुष और बाण का प्रदर्शन रोहिणी महाविद्या का प्रभाव है। बारभुजी गुफा की एक दूसरी मूर्ति मे रोहिणी अष्टभुजा है। वृषभवाहना यक्षी के शीर्ष भाग मे गज-लांछन-युक्त अजितनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है। रोहिणी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, पताका,

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पूर्वनि०, पृ० १९८

२ श्वेतांबर स्थलों पर महाविद्याओं की विशेष लोकप्रियता, यक्षियों की स्वतन्त्र मूर्तियों की अल्पता एवं अजितनाथ की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का न उत्कीर्ण किया जाना, इस पहचान मे बाधक है।

३ देवगढ़ की मूर्तियों पर श्वेतांबर परम्परा की महाविद्या रोहिणी का प्रभाव है। गोवाहना रोहिणी महाविद्या की भुजाओं में बाण, अक्षमाला, धनुष एवं शंख प्रदर्शित हैं।

४ मित्रा, देबला, पूर्वनि०, पृ० १२८

५ वही, पृ० १३०

अंकुश और चक्र एवं वाम करों में शंख (?), जलपात्र, वृक्ष की टहनी और चक्र हैं।[1] नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं की मूर्तियों के विवरणो से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र मे रोहिणी की लाक्षणिक विशेषताएं स्थिर नहीं हो पायी थी।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि ल० दसवी शती ई० मे यक्षी की स्वतन्त्र मूर्तियो का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ, जिनके उदाहरण ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर), देवगढ़ एवं उड़ीसा मे नवमुनि और बारभुजी गुफाओं से मिले है। दिगंबर स्थलो की इन मूर्तियों मे रोहिणी के निरूपण मे अधिकाशतः श्वेतांबर महाविद्या रोहिणी की विशेषताएं ग्रहण की गयी। केवल मालादेवी मन्दिर की मूर्ति में ही वाहन और आयुधों के सन्दर्भ मे दिगंबर परम्परा का निर्वाह किया गया है।

(३) त्रिमुख यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

त्रिमुख जिन सम्भवनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं मे उसे तीन मुखो, तीन नेत्रो और छह भुजाओ वाला तथा मयूरवाहन से युक्त बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में त्रिमुख यक्ष के दाहिने हाथो मे नकुल, गदा एवं अभयमुद्रा और बायें मे फल, सर्प एवं अक्षमाला का उल्लेख है।[2] अन्य ग्रन्थों में भी इन्ही आयुधो की चर्चा है।[3] **मन्त्राधिराजकल्प** मे त्रिमुख यक्ष का वाहन मयूर के स्थान पर सर्प है।[4] **आचारदिनकर** के अनुसार यक्ष नौ नेत्रो वाला (नवाक्ष) है।[5]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे आयुधों का अनुल्लेख है।[6] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे त्रिमुख यक्ष के दाहिने हाथो मे दण्ड, त्रिशूल एवं कटार (शितकर्तृका), और बायें मे चक्र, खड्ग एव अंकुश दिये गये है।[7] **अपराजितपृच्छा** यक्ष के करो मे परशु, अक्षमाला, गदा, चक्र, शंख और वरदमुद्रा का उल्लेख करता है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा के अनुसार मयूर पर आरूढ़ त्रिमुख यक्ष षड्भुज है और उसकी दाहिनी भुजाओं मे त्रिशूल, पाश (या वज्र) एवं अभयमुद्रा, और बायी मे खड्ग, अंकुश एवं पुस्तक (? या खुली हुई हथेली) रहते है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ के अनुसार वीरमर्कट पर आरूढ़ यक्ष के करो मे खड्ग, खेटक, कटार (कट्टि), चक्र, त्रिशूल एवं दण्ड होने चाहिये। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे तीन मुखो एव नेत्रा वाले यक्ष का वाहन मयूर है और उसके

१ **वही**, पृ० १३३

२ ....त्रिमुखयक्षेश्वरं त्रिमुख त्रिनेत्रं श्यामवर्ण मयूरवाहनं षड्भुजं नकुलगदाभययुक्तदक्षिणपाणि मातुलिंगनागाक्षसूत्रान्वितवामहस्त चेति। **निर्वाणकलिका** १८.३

३ **त्रि०श०पु०च०** ३.१.३८५-८६; **पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट-सम्भवनाथचरित्र** १७–१८

४ सर्पासनस्थितिरयं त्रिमुखो मदीयम्। **मन्त्राधिराजकल्प** ३.२८

५ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७३

६ षड्भुजस्त्रिमुखोयक्षस्त्रिनेत्र सिखिवाहनः।
श्यामलागो विनीतात्मा सम्भवं जिनमाश्रितः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.१९

७ चक्रासिशृण्युपगसव्यसयोन्यहस्तैर्दंडत्रिशूलमुपयन् शितकर्तृकाञ्च।
वाजिध्वजप्रभुनतः शिखिगोजनाभस्त्रयक्षः प्रतिक्षतु बलि त्रिमुखाख्ययक्षः॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१३१
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.३, पृ० ३३२

८ मयूरस्थस्त्रिनेत्रश्च त्रिवक्त्रः श्यामवर्णकः।
परश्वक्षगदाचक्र शंखा वरश्च षड्भुजः॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.४५

हाथों में चक्र, खड्ग, दण्ड, त्रिशूल, अंकुश एवं सत्कीर्तिक (शस्त्र) के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारत के श्वेतांबर एवं दिगंबर ग्रन्थों के विवरणों में एकरूपता है। साथ ही उन पर उत्तर भारत के दिगंबर ग्रन्थों का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है।

मूर्ति-परम्परा

त्रिमुख यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। सम्भवनाथ की मूर्तियों में भी पारम्परिक यक्ष का उत्कीर्णन नहीं हुआ है। यक्ष का कोई स्वतन्त्र स्वरूप भी नियत नहीं हो सका था। सामान्य लक्षणों वाला यक्ष समान्यतः द्विभुज है।[2] देवगढ की छह मूर्तियों (१०वीं-१२वीं शती ई०) में द्विभुज यक्ष अभयमुद्रा[3] एवं फल (या कलश) के साथ तथा मन्दिर १५ और ३० की दो चतुर्भुज मूर्तियों (११वीं-१२वी शती ई०) मे वरद-(या अभय-) मुद्रा, गदा, पुस्तक (या पद्म) और फल (या कलश) के साथ निरूपित है। खजुराहो की दो मूर्तियों[4] (११ वीं-१२ वीं शती ई०) में द्विभुज यक्ष के हाथों में पात्र और धन का थैला (या मातुलिंग) है।

(३) दुरितारी (या प्रज्ञप्ति) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

दुरितारी (या प्रज्ञप्ति) जिन सम्भवनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में इसे दुरितारी और दिगंबर परम्परा में प्रज्ञप्ति नामों से सम्बोधित किया गया है। श्वेतांबर परम्परा में यक्षी चतुर्भुजा और दिगंबर परम्परा में षड्भुजा है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में मेषवाहना दुरितारी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा और अक्षमाला तथा बायें में फल और अभयमुद्रा हैं।[5] **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**[6] तथा **पद्मानन्दमहाकाव्य**[7] मे फल के स्थान पर सर्प का उल्लेख है। परवर्ती ग्रन्थों में यक्षी के वाहन के सन्दर्भ में पर्याप्त भिन्नता प्राप्त होती है। **पद्मानन्दमहाकाव्य** में वाहन के रूप में छाग (अज), **मन्त्राधिराजकल्प** मे मयूर[8] और **देवतामूर्तिप्रकरण** मे महिष[9] का उल्लेख है।

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में षड्भुजा यक्षी का वाहन पक्षी है। ग्रन्थ मे प्रज्ञप्ति की केवल चार ही भुजाओं के आयुधों—अर्द्धेन्दु, परशु, फल एवं वरदमुद्रा—का उल्लेख है।[10] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे पक्षीवाहना प्रज्ञप्ति के करों

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० १९८

२ केवल देवगढ़ की दो मूर्तियो में यक्ष चतुर्भुज और स्वतन्त्र लक्षणों वाला है।

३ मन्दिर १७ और १९ की दो मूर्तियो (११ वीं शती ई०) में यक्ष की दाहिनी भुजा मे अभयमुद्रा के स्थान पर गदा प्रदर्शित है।

४ पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (१७१५) एवं मन्दिर १६

५ ....दुरितारिदेवी गौरवर्णां मेषवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां फलाभयान्वितवामकरां चेति ॥ **निर्वाणकलिका** १८.३
अचारदिनकर में अक्षमाला के स्थान पर मुक्तामाला का उल्लेख है (३४, पृ० १७६)।

६ दक्षिणाभ्याभुजाभ्या तु वरदेनाऽक्षसूत्रिणा।
वामाभ्यां शोभमाना॰तु फणिनाऽभयदेन च ॥ **त्रि०श०पु०च०** ३.१.३८८

७ **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—**सम्भवनाथचरित्र** १९–२०

८ देवी तुषारगिरिसोदरदेहकान्तिर्दद्यात् सुखं शिखिगतिः सततं परीताः। **मंत्राधिराजकल्प** ३.५३

९ दुरितारिगौरवर्णा यक्षिणी महिषासना। **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.२३

१० प्रज्ञप्तिर्देवता श्वेता षड्भुजापक्षिवाहना।
अर्द्धेन्दुपरशुं धत्ते फलाश्रीष्टावरप्रदा ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.२०

में अर्द्धेन्दु, परशु, फल, खड्ग, इढ़ी एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] **प्रतिष्ठातिलकम्** में इढ़ी के स्थान पर पिंडी का उल्लेख है।[2] **अपराजितपृच्छा** में षड्भुजा यक्षी के दो हाथों में खड्ग और इढ़ी के स्थान पर क्रमशः अभयमुद्रा एवं पद्म दिये गये हैं।[3]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा में हंसवाहना यक्षी षड्भुजा है और उसकी दक्षिण भुजाओं में परशु, खड्ग एवं अभयमुद्रा और वाम में पाश, चक्र एवं कटकमुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में अश्व-वाहना यक्षी द्विभुजा है जिसकी भुजाओं में वरदमुद्रा एवं पद्म दिये गये हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में पक्षीवाहना यक्षी षड्भुजा है तथा **प्रतिष्ठासारसंग्रह** के समान, उसकी केवल चार भुजाओं के आयुध—अर्धचन्द्र, परशु, फल एवं वरदमुद्रा-वर्णित है।[4]

मूर्ति-परम्परा

(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—यक्षी की केवल दो मूर्तियां (११वीं-१२वीं शती ई०) मिली हैं। ये मूर्तियां उड़ीसा के नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं में हैं। इनमें पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। नवमुनि गुफा की मूर्ति में पद्मासन पर ललितमुद्रा में विराजमान द्विभुजा यक्षी जटामुकुट और हाथों में अभयमुद्रा एवं सनाल पद्म से युक्त है।[5] बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी चतुर्भुजा है। उसका वाहन (कोई पशु) आसन के नीचे उत्कीर्ण है। यक्षी के दो अवशिष्ट हाथों में वरदमुद्रा और अक्षमाला है।[6]

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—देवगढ़ एवं खजुराहो की सम्भवनाथ की मूर्तियों (११वीं-१२वीं शती ई०) में यक्षी आमूर्तित है। इनमें यक्षी द्विभुजा और सामान्य लक्षणों वाली है। द्विभुजा यक्षी के करों में अभयमुद्रा एवं फल (या पद्म, या खड्ग या कलश) प्रदर्शित हैं। देवगढ़ की एक मूर्ति में यक्षी चतुर्भुजा भी है जिसके तीन सुरक्षित हाथों में वरदमुद्रा, पद्म एवं कलश हैं। सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि मूर्त अंकनों में यक्षी का कोई पारम्परिक या स्वतन्त्र स्वरूप नियत नहीं हो सका था

(४) ईश्वर (या यक्षेश्वर) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

ईश्वर (या यक्षेश्वर) जिन अभिनन्दन का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा में यक्ष को ईश्वर और यक्षेश्वर नामों से, पर दिगंबर परम्परा में केवल यक्षेश्वर नाम से ही सम्बोधित किया गया है। दोनों परम्पराओं में यक्ष चतुर्भुज है और उसका वाहन गज है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में गजारूढ़ ईश्वर के दाहिने हाथों में फल और अक्षमाला तथा बायें में नकुल और अंकुश के प्रदर्शन का निर्देश है।[7] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों के उल्लेख हैं।[8]

---

१ पक्षिस्थार्धेन्दुपरशुफलासीढीवरैः सिता।
चतुश्चापशतोच्चार्हद्भक्ता प्रज्ञप्तिरिच्यते ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१५८

२ ''''कृपाणपिण्डीवरमादधानाम्। **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.३, पृ० ३४१

३ अभयवरदफलचन्द्रां परशुरुत्पलम् ॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.१७

४ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९९

५ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १२८

६ **वही**, पृ० १३०

७ तत्तीर्थोत्पन्नमीश्वरयक्षं श्यामवर्णं गजवाहनं चतुर्भुजं मातुलिंगाक्षसूत्रयुतदक्षिणपाणिं नकुलांकुशान्वितवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.४

८ **त्रि०श०पु०च०** ३.२.१५९-६०; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.२९; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में गजारूढ़ यक्षेश्वर के करो के आयुधों का अनुल्लेख है ।[१] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे यक्षेश्वर की दाहिनी भुजाओं के आयुध संक-पत्र और खड्ग तथा बायी के कार्मुक और खेटक हैं ।[२] **प्रतिष्ठातिलकम्** मे संकपत्र के स्थान पर बाण का उल्लेख है ।[३] **अपराजितपृच्छा** मे यक्ष का चतुरानन नाम से स्मरण है जिसका वाहन हंस तथा भुजाओं के आयुध सर्प, पाश, वज्र और अंकुश है ।[४]

यक्षेश्वर के निरूपण में गजवाहन एवं अंकुश का प्रदर्शन सम्भवतः हिन्दू देव इन्द्र का प्रभाव है । **अपराजितपृच्छा** में अंकुश के साथ ही वज्र के प्रदर्शन का भी निर्देश है । **अपराजितपृच्छा** मे यक्ष के नाम, चतुरानन, और वाहन, हंस, के सन्दर्भ में हिन्दू ब्रह्मा का प्रभाव भी देखा जा सकता है ।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारत में दोनो परम्परा के ग्रन्थो में उत्तर भारत की दिगबर परम्परा के अनुरूप गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसकी भुजाओ के आयुध अभयमुद्रा (या बाण), खड्ग, खेटक एवं धनुष हैं ।[५]

मूर्ति-परम्परा

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है । केवल अभिनन्दन की तीन मूर्तियों (१०वीं-११वी शती ई०) में यक्ष निरूपित है । इनमे से दो खजुराहो (पार्श्वनाथ मन्दिर, मन्दिर २९) तथा तीसरी देवगढ़ (मन्दिर ९) से मिली हैं । इनमें सामान्य लक्षणो वाला द्विभुज यक्ष अभयमुद्रा एवं फल (या कलश) से युक्त है ।

(४) कालिका (या वज्रशृंखला) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

कालिका (या वज्रशृंखला) जिन अभिनन्दन की यक्षी है । श्वेतांबर परम्परा मे यक्षी का कालिका (या काली) और दिगंबर परम्परा म वज्रशृंखला कहा गया है । दोनों परम्पराओ में यक्षी को चतुर्भुजा बताया गया है ।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे पद्मवाहना कालिका के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा और पाश एवं बायें मे सर्प और अंकुश का उल्लेख है ।[६] अन्य ग्रन्थो मे भी यही लाक्षणिक विशेषताएं वर्णित है ।[७]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में वज्रशृंखला के वाहन हंस और भुजाओं मे वरदमुद्रा, नागपाश, अक्षमाला और फल का उल्लेख है ।[८] परवर्ती ग्रन्थो मे भी इन्ही आयुधों का वर्णन है ।[९]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन हंस है और वह भुजाओ मे अक्षमाला, अभयमुद्रा, सर्प एवं कटकमुद्रा धारण किये है । अज्ञातनाम श्वेताबर ग्रन्थ में यक्षी का वाहन कपि और करों में चक्र,

१ अभिनन्दननाथस्य यक्षो यक्षेश्वराभिधः ।
हस्तिवाहनमारूढः श्यामवर्णश्चतुर्भुजः ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.२१

२ प्रेरंवद्धनुः खेटकवामपाणि सकपत्रास्यपसव्यहस्तम् ।
श्यामं करिस्थं कपिकेतुमक्तं यक्षेश्वरं यक्षमिहार्चयामि ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१३२

३ ····वामान्यहस्तोद्धृतबाणखड्ग । **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.४, पृ० ३३२

४ नागपाशवज्राकुशा हंसस्थश्चतुराननः । **अपराजितपृच्छा** २२१.४६

५ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९९

६ ····कालिकादेवी श्यामवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणभुजां नागांकुशान्वितवामकरां चेति । **निर्वाणकलिका** १८.४

७ **त्रि०श०पु०च०** ३.२.१६१–६२; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७६; **मंत्राधिराजकल्प** ३.५४

८ वरदा हंसमारूढा देवता वज्रशृंखला ।
नागपाशाक्षसूत्रोरुफलहस्ता चतुर्भुजा ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.२२–२३

९ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१५९; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.४, पृ० ३४१; **अपराजितपृच्छा** २२१.१८

कमण्डलु, वरदमुद्रा एवं पद्म है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में हंसवाहना यक्षी के करों में वरदमुद्रा, फल, पाश एवं अक्षमाला का वर्णन है।[१] वाहन हंस एवं भुजाओं में पाश, अक्षमाला एवं फल के प्रदर्शन में दक्षिण भारतीय परम्पराएं उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान है।

मूर्ति-परम्परा

(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—वज्रशृंखला की तीन मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां उत्तर प्रदेश में देवगढ़ से (मन्दिर १२) एवं उड़ीसा में उदयगिरि-खण्डगिरि की नवमुनि और बारभुजी गुफाओं से मिली हैं। इनमें यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। देवगढ़ की मूर्ति (८६२ ई०) में जिन अभिनन्दन के साथ आमूर्तित द्विभुजा यक्षी को लेख में 'भगवती सरस्वती' कहा गया है। यक्षी की दाहिनी भुजा में चामर है और बायी जानु पर स्थित है। नवमुनि गुफा की मूर्ति मे यक्षी चतुर्भुजा है तथा उसकी भुजाओं मे अभयमुद्रा, चक्र, शंख और बालक हैं।[२] किरीटमुकुट से शोभित यक्षी का वाहन कपि है। स्पष्ट है कि यक्षी के निरूपण में कलाकार ने संयुक्त रूप से हिन्दू वैष्णवी (चक्र, शंख एवं किरीटमुकुट) एवं जैन यक्षी अम्बिका (बालक)[३] को विशेषताएं प्रदर्शित की है। यक्षी का कपिवाहन अभिनन्दन के लांछन (कपि) से ग्रहण किया गया है। बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी अष्टभुजा और पद्म पर आसीन है। यक्षी के दो हाथों में उपवीणा (हार्प) और दो में वरदमुद्रा एवं वज्र है। शेष हाथ खण्डित है।[४]

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—देवगढ़ एवं खजुराहो की जिन अभिनन्दन की तीन मूर्तियो (१० वीं-११ वीं शती ई०) मे यक्षी सामान्य लक्षणों वाली और द्विभुजा है तथा उसके करों मे अभयमुद्रा एवं फल (या कलश) प्रदर्शित है।

(५) तुम्बरु यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

तुम्बरु (या तुम्बर) जिन सुमतिनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में तुम्बरु को चतुर्भुज और गरुड वाहन-वाला कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे तुम्बरु के दाहिने हाथों मे वरदमुद्रा एवं शक्ति और बायें में नाग एवं पाश के प्रदर्शन का निर्देश है।[५] दो ग्रन्थों मे नाग के स्थान पर गदा का उल्लेख है।[६] अन्य ग्रन्थो मे गदा और नाग-पाश दोनो के उल्लेख है।[७]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे नाग यज्ञोपवीत से सुशोभित चतुर्भुज यक्ष के दो करों में दो सर्प और शेष में वरदमुद्रा एवं फल का वर्णन है।[८] परवर्ती ग्रन्थों मे भी इन्हीं विशेषताओं के उल्लेख है।[९]

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, **पू०नि०**, पृ० १९९

२ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १२८

३ बालक का प्रदर्शन हिन्दू मातृका का भी प्रभाव हो सकता है।

४ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३०

५ ....तुम्बरुयक्षं गरुडवाहनं चतुर्भुजं वरदशक्तियुत-दक्षिणपाणिं नागपाशयुक्तवामहस्तं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.५

६ दक्षिणौ वरदशक्तिधरौ बाहू समुद्वहन्।
वामौ बाहू गदाधारपाशयुक्तौ च धारयन्॥ **त्रि०श०पु०च०** ३.३.२४६–४७
द्रष्टव्य, **पद्मानन्दमहाकाव्य**: परिशिष्ट-**सुमतिनाथ** १८–१९

७ ....वरशक्तियुक्तहस्तौ गदोरगपपाशगवामपाणि:। **मन्त्राधिराजकल्प** ३.३०, द्रष्टव्य, **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

८ सुमतेस्तुम्बरोयक्षः श्यामवर्णश्चतुर्भुजः।
सर्पद्वयफलं धत्ते वरदं परिकीर्तितः।
सर्पयज्ञोपवीतोसौ खगाधिपतिवाहनः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.२३–२४

९ द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१३३; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.५, पृ० ३३२; **अपराजितपृच्छा** २२१.४६

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुज यक्ष का वाहन गरुड है। उसके दो हाथों में सर्प और शेष दो में अभय-और कटक-मुद्राएं प्रदर्शित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में चतुर्भुज यक्ष का वाहन सिंह है और उसके करों में खड्ग, फलक, वज्र एवं फल प्रदर्शित है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में नागयज्ञोपवीत से युक्त यक्ष के दो हाथों में सर्प, और अन्य दो में फल एवं वरदमुद्रा हैं।[1] **यक्ष-यक्षी-लक्षण** एवं दिगंबर ग्रन्थ के विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान हैं।

मूर्ति-परम्परा

तुम्बरु यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। केवल खजुराहो की दो सुमतिनाथ की मूर्तियां (१० वीं–११ वीं शती ई०) में ही यक्ष आमूर्तित है।[2] इनमें द्विभुज यक्ष सामान्य लक्षणों वाला और अभयमुद्रा एवं फल से युक्त है।

(५) महाकाली (या पुरुषदत्ता) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

महाकाली (या पुरुषदत्ता) जिन सुमतिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में यक्षी को महाकाली और दिगंबर परम्परा में पुरुषदत्ता (या नरदत्ता) नाम से सम्बोधित किया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** के अनुसार चतुर्भुजा महाकाली का वाहन पद्म है और उसके दाहिने हाथों के आयुध वरदमुद्रा और पाश तथा बायें के मातुलिंग और अंकुश है।[3] परवर्ती ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[4] केवल **देवतामूर्तिप्रकरण** में पाश के स्थान पर नागपाश का उल्लेख है।[5]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में चतुर्भुजा पुरुषदत्ता का वाहन गज है और उसकी भुजाओं में वरदमुद्रा, चक्र, वज्र एवं फल का वर्णन है।[6] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख है।[7]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में गजारूढ़ यक्षी की ऊपरी भुजाओं में चक्र एवं वज्र और निचली में अभय-एवं कटक-मुद्राएं उल्लिखित है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्विभुजा यक्षी का वाहन श्वान् है तथा हाथों के आयुध अभयमुद्रा और अंकुश हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में गजवाहना यक्षी चक्र, वज्र, फल एवं वरदमुद्रा से युक्त है।[8] चतुर्भुजा यक्षी के ये विवरण उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, **पू०नि०**, पृ० १९९

२ ये मूर्तियां पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की भित्ति एवं मन्दिर ३० में हैं। विमलवसही की देवकुलिका २७ की सुमतिनाथ की मूर्ति में चतुर्भुज यक्ष सर्वानुभूति है।

३ ····महाकालीं देवीं सुवर्णवर्णां पद्मवाहनां चतुर्भुजां वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणकरां मातुलिंगांकुशयुक्तवामभुजां चेति ॥ **निर्वाणकलिका** १८.५

४ द्रष्टव्य, **त्रि०श०पु०च०** ३.३.२४८-४९, **मन्त्राधिराजकल्प** ३.५४, **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—**सुमतिनाथ** १९-२०; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७६

५ वरदं नागपाशं चांकुशं स्याद् बीजपूरकम्। **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.२७

६ देवी पुरुषदत्ता च चतुर्हस्तागजेन्द्रगा।
रथांगवज्रशस्त्रासौ फलहस्ता वरप्रदा ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.२५
गजेन्द्रगावज्रफलोद्यचक्रवरांगहस्ता····। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६०

७ **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.५, पृ० ३४२; **अपराजितपृच्छा** २२१.१९

८ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २००

मूर्ति-परम्परा

पुरुषदत्ता की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तियां मध्य प्रदेश मे ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर तथा उड़ीसा में बारभुजी गुफा से मिली हैं। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति (१०वीं शती ई०) मण्डप की दक्षिणी जंघा पर है जिसमे पुरुषदत्ता पद्मासन पर ललितमुद्रा मे विराजमान है और उसका गजवाहन आसन के नीचे उत्कीर्ण है। चतुर्भुजा यक्षी के करो मे खड्ग, चक्र, खेटक और शख प्रदर्शित हैं। गजवाहन एवं चक्र के आधार पर देवी की पहचान पुरुषदत्ता से की गई है। बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी दशभुजा है और उसका वाहन मकर है। यक्षी के अवशिष्ट दाहिने हाथो में वरदमुद्रा, चक्र, शूल और खड्ग तथा बायें हाथो मे पाश, फलक, हल, मुदगर और पद्म है।[१] खजुराहो की दो सुमतिनाथ की मूर्तियों मे द्विभुजा यक्षी सामान्य लक्षणो वाली है। यक्षी के करो मे अभयमुद्रा (या पुष्प) और फल प्रदर्शित है। विमलवसही की सुमतिनाथ की मूर्ति मे अम्बिका निरूपित है।

(६) कुसुम यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

कुसुम (या पुष्प) जिन पद्मप्रभ का यक्ष है। दोनों परम्पराओ मे चतुर्भुज यक्ष का वाहन मृग बताया गया है। यक्ष के कुसुम और पुष्प नाम निश्चित ही जिन पद्मप्रभ के नाम से प्रभावित है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे मृग पर आरूढ कुसुम यक्ष के दाहिने हाथों मे फल और अभयमुद्रा एवं बायें हाथो मे नकुल और अक्षमाला का उल्लेख है।[२] अन्य ग्रन्थो में भी इन्ही लक्षणों के उल्लेख हैं।[३] केवल **मन्त्राधिराजकल्प** एवं **आचारदिनकर** मे वाहन क्रमशः मयूर और अश्व बताया गया है।[४]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे यक्ष पुष्प मृगवाहन वाला और द्विभुज है।[५] **अपराजितपृच्छा** मे भी यक्ष द्विभुज तथा मृग पर संस्थित है और उसके करो मे गदा और अक्षमाला का उल्लेख है।[६] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे चतुर्भुज यक्ष के ध्यान मे उसकी दाहिनी भुजाओ में शूल (कुन्त) और मुद्रा तथा बायी में खेटक और अभयमुद्रा का वर्णन है।[७] **प्रतिष्ठातिलकम** मे दोनो वाम करो मे खेटक के प्रदर्शन का विधान है।[८]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे वृषभारूढ यक्ष चतुर्भुज है। उसकी ऊपरी भुजाओ मे शूल एवं खेटक और निचली मे अभय-एवं कटक-मुद्राएं है। श्वेतांबर ग्रन्थों में मृगवाहन से युक्त चतुर्भुज यक्ष के करो मे वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शूल एवं फलक का वर्णन है।[९] श्वेतांबर ग्रन्थो के विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

कुसुम यक्ष की एक भी मूर्ति नही मिली है।

---

१ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३०

२ कुसुमंयक्ष नीलवर्णं कुरंगवाहन चतुर्भुज फलाभययुक्तदक्षिणपाणि नकुलकाक्षसूत्रयुक्तवामपाणि चेति। **निर्वाणकलिका** १८.६

३ **त्रि०श०पु०च०** ३.४.१८०-८१; **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट-**पद्मप्रभ** १६-१७

४ रम्भादमामवपुरेपकुमाराख्यानो यक्षः फलाभयपुरोगभुजः पुनातु।
बभ्रवक्षदामयुतवामकरस्तु·········· ॥ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.३१
नीलस्तुरगगमनश्च चतुर्भुजाढ्यः स्फूर्जत्फलाभयमुदक्षिणपाणि युग्मः।
बभ्राक्षसूत्रयुतवामकरद्वयश्च········ ··· ॥ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

५ पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य यक्षो हरिणवाहनः।
द्विभुजः पुष्पनामासौ श्यामवर्णः प्रकीर्तितः ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.२७

६ कुसुमाख्यौ गदाक्षौ च द्विभुजो मृगसंस्थितः। **अपराजितपृच्छा** २२१.४७

७ मृगारूह कुन्तकरापसव्यकर सखेटाभयसव्यहस्तम्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१३४

८ खेटोभयोद्भासितसव्यहस्तं कुन्तेष्टदानस्फुरितान्यपाणिम्। **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.६, पृ० ३३३

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २००

(६) अच्युता (या मनोवेगा) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

अच्युता (या मनोवेगा) जिन पद्मप्रभ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में यक्षी को अच्युता (या श्यामा या मानसी) और दिगंबर परम्परा मे मनोवेगा कहा गया है। दोनों परम्परा के ग्रन्थों मे यक्षी को चतुर्भुजा बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे नरवाहना अच्युता के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा एवं वीणा तथा वाम में धनुष एवं अभयमुद्रा का वर्णन है।[१] अन्य ग्रन्थों मे वीणा के स्थान पर पाश[२] या बाण[३] के उल्लेख हैं। **आचारदिनकर** में यक्षी के दाहिने हाथो में पाश एवं वरदमुद्रा और बायें में मातुलिंग एवं अंकुश का उल्लेख है।[४]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे चतुर्भुजा अश्ववाहना मनोवेगा के केवल तीन करों के आयुधो—वरद-मुद्रा, खेटक एवं खड्ग का उल्लेख है।[५] अन्य ग्रन्थो मे चौथी भुजा मे मातुलिंग वर्णित है।[६] **अपराजितपृच्छा** में अश्ववाहना मनोवेगा के करो मे वज्र, चक्र, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[७]

श्वेताबर परम्परा में यक्षी का नाम १४वीं महाविद्या अच्युता से ग्रहण किया गया। हाथो मे बाण एवं धनुष का प्रदर्शन भी सम्भवतः महाविद्या अच्युता का ही प्रभाव है। यक्षी का नरवाहन सम्भवतः महाविद्या महाकाली से प्रभावित है। दिगंबर परम्परा मे यक्षी का नाम मनोवेगा है, पर उसकी लाक्षणिक विशेषताएं (अश्ववाहन, खड्ग, खेटक) महाविद्या अच्युता से प्रभावित है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में अश्ववाहना यक्षी के ऊपरी हाथों मे खड्ग एवं खेटक और नीचे के हाथों मे अभय–एवं कटक-मुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मृगवाहना यक्षी के करों में खड्ग, खेटक, शर एवं चाप का वर्णन है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में अश्ववाहना यक्षी वरदमुद्रा, खेटक, खड्ग एवं मातुलिंग से युक्त है।[८] दक्षिण भारत के दोनों परम्पराओं के ग्रन्थों में यक्षी के साथ अश्ववाहन एवं खड्ग और खेटक के प्रदर्शन उत्तर भारत के दिगंबर परम्परा से सम्बन्धित हो सकते हैं।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की नवी से बारहवी शती ई० के मध्य की चार स्वतन्त्र मूर्तियां देवगढ़, खजुराहो, ग्यारसपुर एवं बारभुजी गुफा से मिली हैं।[९] देवगढ़ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) की भित्ति पर पद्मप्रभ के साथ 'सुलोचना' नाम की अश्ववाहना यक्षी निरूपित है।[१०] चतुर्भुजा यक्षी के तीन हाथो में धनुष, बाण एवं पद्म हैं तथा चौथा जानु पर स्थित

---

१ अच्युतां देवीं श्यामवर्णां नरवाहनां चतुर्भुजां वरदवीणान्वितदक्षिणकरां कार्मुकाभययुतवामहस्तां ।। **निर्वाणकलिका** १८.६

२ **त्रि०श०पु०च०** ३.४.१८२–८३, **पद्मानन्दमहाकाव्य**–परिशिष्ट ६. १७–१८

३ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.५५, **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.२९

४ श्यामा चतुर्भुजधरा नरवाहनस्था पाशं तथा च वरदं कारयोर्दधाना ।
वामान्ययोस्तदनु सुन्दरबीजपूरं तीक्ष्णांकुशं च परयोः………… ।। **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७६

५ तुरंगवाहना देवी मनोवेगा चतुर्भुजा ।
वरदा कांचना छाया सिद्धासिफलकायुधा ।। **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.२८

६ मनोवेगा सफलकफलखड्गवरार्च्यते । **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६१; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.६, पृ० ३४२

७ चतुर्वर्णा स्वर्णवर्णाऽशनिचक्रफलं वरम् ।
अश्ववाहनसंस्था च मनोवेगा तु कामदा ।। **अपराजितपृच्छा** २२१.२०

८ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २००

९ ये सभी दिगंबर स्थल हैं। १० **जि०इ०दे०**, पृ० १०७

है। यक्षी का निरूपण १४वीं महाविद्या अच्युता से प्रभावित है।[1] ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर की दक्षिणी भित्ति पर एक अष्टभुज मूर्ति (१०वीं शती ई०) है। इसमें ललितमुद्रा में विराजमान यक्षी के आसन के नीचे अश्ववाहन उत्कीर्ण है। यक्षी के अवशिष्ट हाथों में खड्ग, पद्म[2], कलश, घण्टा, फलक, आम्रलुम्बि एवं मातुलिंग प्रदर्शित है। खजुराहो के पुरातात्विक संग्रहालय में भी चतुर्भुजा मनोवेगा की एक मूर्ति (क्रमांक ९४०) है। ग्यारहवीं शती ई० की इस स्थानक मूर्ति में यक्षी का अश्ववाहन पीठिका पर उत्कीर्ण है। यक्षी के एक अवशिष्ट हाथ में सनाल पद्म है। यक्षी के पार्श्वों में दो स्त्री सेविकाओं एवं उपासकों की मूर्तियां है। यक्षी के स्कन्धों के ऊपर चतुर्भुज सरस्वती की दो लघु मूर्तियां बनी हैं।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति में चतुर्भुजा यक्षी हंसवाहना है। यक्षी के हाथों में वरदमुद्रा, वज्र (?), शंख (?) और पताका प्रदर्शित हैं।[4] उपर्युक्त मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि बारभुजी गुफा की मूर्ति के अतिरिक्त अन्य में सामान्यतः अश्ववाहन एवं खड्ग और खेटक के प्रदर्शन में दिगंबर परम्परा का निर्वाह किया गया है।

(७) मातंग यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

मातंग जिन सुपार्श्वनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा में मातंग का वाहन गज और दिगंबर परम्परा में सिंह है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में चतुर्भुज मातंग को गजारूढ़ तथा दाहिने हाथों में बिल्वफल और पाश एवं बायें में नकुल और अंकुश से युक्त कहा गया है।[5] **आचारदिनकर** में पाश एवं नकुल के स्थान पर क्रमशः नागपाश और वज्र का उल्लेख है।[6] अन्य ग्रन्थों में **निर्वाणकलिका** के ही आयुध उल्लिखित है।[7] मातंग के साथ गजवाहन एवं अंकुश और वज्र का प्रदर्शन हिन्दू देव इन्द्र का प्रभाव हो सकता है।

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में द्विभुज यक्ष के करों में वज्र एवं दण्ड के प्रदर्शन का निर्देश है, पर वाहन का अनुल्लेख है।[8] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में मातंग का वाहन सिंह है और उसकी भुजाओं में दण्ड और शूल का वर्णन है।[9] **अपराजितपृच्छा** में मातंग का वाहन मेष है और उसकी भुजाओं में गदा और पाश वर्णित है।[10]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनों परम्पराओं में मातंग (या वरनंदि) का वाहन सिंह है। श्वेतांबर एवं दिगंबर ग्रन्थों में द्विभुज यक्ष के हाथों में त्रिशूल एवं दण्ड का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में चतुर्भुज यक्ष का करों में त्रिशूल,

१ महाविद्या अच्युता का वाहन अश्व है और उसके हाथों में खड्ग, खेटक, शर एवं चाप प्रदर्शित है। ओसिया के महावीर मन्दिर पर समान लक्षणों वाली महाविद्या अच्युता की दो मूर्तियां उत्कीर्ण है।

२ पद्म का निचला भाग शृंखला के रूप में प्रदर्शित है।

३ सरस्वती के करों में अभयमुद्रा, पद्म, पुस्तक एवं जलपात्र है।

४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३०

५ मातंगयक्षं नीलवर्णं गजवाहनं चतुर्भुजं बिल्वपाशयुक्तदक्षिणपाणि नकुलकांकुशान्वितवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.७

६ नीलोगजेन्द्रगमनश्च चतुर्भुजोपि बिल्वाहिपाशयुतदक्षिणपाणियुग्म.।
वज्रांकुशप्रगुणितीकृतवामपाणिर्मातंगराट्.... .... ॥ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

७ **त्रि०श०पु०च०** ३.५.११०-११; **पद्मानन्दमहाकाव्यः** परिशिष्ट-**सुपार्श्वनाथ** १८-१९, **मन्त्राधिराजकल्प** ३.३२

८ सुपार्श्वनाथदेवस्य यक्षो मातंग संज्ञकः।
द्विभुजो वज्रदण्डोसौ कृष्णवर्णः प्रकीर्तितः ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.२९

९ सिंहाधिरोहस्य सदण्डशूलसव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१३५; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.७, पृ० ३३३

१० मातंगः स्याद् गदापाशी द्विभुजो मेषवाहनः। **अपराजितपृच्छा** २२१.४७

दण्ड एवं दो में पद्म के साथ ध्यान किया गया है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि यहां भी दक्षिण भारतीय परम्परा उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

मूर्ति-परम्परा

विमलवसही के रंगमण्डप से सटे उत्तरी छज्जे पर एक देवता की अतिभंग मे खड़ी षड्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है। देवता का वाहन गज है। उसके चार हाथों में वज्र, पाश, अभयमुद्रा एवं जलपात्र है तथा शेष दो मुद्राएं व्यक्त करते है। देवता की सम्भावित पहचान मातंग से की जा सकती है। मातंग की कोई और स्वतन्त्र मूर्ति नहीं प्राप्त होती है।

विभिन्न क्षेत्रों की सुपार्श्वनाथ की मूर्तियों (११वीं-१२वीं शती ई०) में यक्ष का चित्रण प्राप्त होता है। पर इनमें पारम्परिक यक्ष नहीं निरूपित है। सुपार्श्व से सम्बद्ध करने के उद्देश्य से यक्ष को सामान्यतः सर्पफणों के छत्र से युक्त दिखाया गया है। देवगढ़ के मन्दिर ४ की मूर्ति (११वीं शती ई०) मे तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त द्विभुज यक्ष के हाथों मे पुष्प एवं कलश है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ९३५, ११वीं शती ई०) की एक मूर्ति मे तीन सर्पफणों के छत्रवाला यक्ष चतुर्भुज है जिसके हाथों मे अभयमुद्रा, चक्र, चक्र एवं चक्र प्रदर्शित है। कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर के गूढमण्डप की मूर्ति (११५७ ई०) में गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथों में वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं धन का थैला है। विमलवसही की देवकुलिका १९ की मूर्ति में भी गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसके करो में वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं फल प्रदर्शित है।[2]

(७) शान्ता (या काली) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

शान्ता (या काली) जिन सुपार्श्वनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा शान्ता गजवाहना एवं दिगंबर परम्परा म चतुर्भुजा काली वृषभवाहना है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे गजवाहना शान्ता की दक्षिण भुजाओ में वरदमुद्रा और अक्षमाला एवं वाम में शूल और अभयमुद्रा का उल्लेख है।[3] **आचारदिनकर** में अक्षमाला के स्थान पर मुक्तामाला[4] एवं **देवतामूर्तिप्रकरण** में शूल के स्थान पर त्रिशूल[5] के उल्लेख है। **मन्त्राधिराजकल्प** मे यक्षी मालिनी एवं ज्वाला नामों से सम्बोधित है। ग्रन्थ के अनुसार गजवाहना यक्षी भयानक दर्शन वाली है और उसके शरीर से ज्वाला निकलती है। यक्षी के हाथों मे वरदमुद्रा, अक्षमाला, पाश एवं अंकुश का वर्णन है।[6]

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २००

२ कुम्भारिया एवं विमलवसही की उपर्युक्त दोनो ही मूर्तियों की लाक्षणिक विशेषताएं श्वेतांबर ग्रन्थों में वर्णित मातंग की विशेषताओं से मेल खाती हैं। यहां उल्लेखनीय है कि गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर स्थलों पर इन्ही लक्षणों वाले यक्ष को सभी जिनो के साथ निरूपित किया गया है और उसकी पहचान सर्वानुभूति से की गई है। ज्ञातव्य है कि कुम्भारिया की सुपार्श्व-मूर्ति मे यक्षी अम्बिका ही है।

३ शान्तादेवीं सुवर्णवर्णां गजवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां शूलाभययुतवामहस्तां चेति। **निर्वाणकलिका** १८.७, **त्रि०श०पु०च०** ३.५.११२-१३; **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—**सुपार्श्वनाथ** १९-२०

४ ··· लसन्मुक्तामालां वरदमपि सव्यान्यकरयोः। **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७६

५ वरदं चाक्षसूत्रं चाभयं तस्मात्त्रिशूलकम्। **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.३१

६ ज्वालाकरालवदना द्विरदेन्द्रयाना दद्यात् सुखं वरमथो जपमालिकां च।
पाशं शृणिं मम च पाणिचतुष्टयेन ज्वालाभिधा च दधती किल मालिनीव॥ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.५६

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में वृषभारूढ़ा काली के करों में घण्टा, त्रिशूल, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] अन्य ग्रन्थों मे त्रिशूल के स्थान पर शूल मिलता है।[2] **अपराजितपृच्छा** में महिषवाहना काली का अष्टभुज रूप मे ध्यान किया गया है। काली के हाथो में त्रिशूल, पाश, अंकुश, धनुष, बाण, चक्र, अभयमुद्रा एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[3] दिगंबर परम्परा की वृषभवाहना यक्षी काली का स्वरूप हिन्दू काली और शिवा से प्रभावित प्रतीत होता है।[4]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा मे वृषभवाहना यक्षी के करो मे त्रिशूल, घण्टा, अभयमुद्रा एवं कटकमुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन मयूर है। यक्षी की दो भुजाएं अंजलिमुद्रा मे हैं और शेष दो मे वरदमुद्रा एवं अक्षमाला है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे वृषभारूढ़ा यक्षी के हाथो में घण्टा, त्रिशूल एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[5] दक्षिण भारतीय दिगंबर परम्परा एवं **यक्ष-यक्षी-लक्षण** के विवरण उत्तर भारतीय दिगबर परम्परा के समान हैं।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तिया देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनो में उत्कीर्ण हैं। इन मूर्तियो मे यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताएं नही प्रदर्शित है। देवगढ मे सुपार्श्व की चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहि(नी) नामवाली है। मयूरवाहन से युक्त यक्षी के करो मे व्याख्यानमुद्रा, चामर-पद्म, पुस्तक एवं शंख प्रदर्शित है।[6] यक्षी का निरूपण स्पष्टतः सरस्वती से प्रभावित है। बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी अष्टभुजा है और उसका वाहन सम्भवतः मयूर है। यक्षी के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, फलो मे भरा पात्र, शूल (?) एवं खड्ग और वाम मे खेटक, शंख, मुद्गर (?) एवं शूल प्रदर्शित है।[7]

जिन-संयुक्त मूर्तियो मे भी यक्षी का पारम्परिक या कोई स्वतन्त्र स्वरूप नही परिलक्षित होता है। देवगढ़ (मन्दिर ४) एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ९३५) की दो सुपार्श्वनाथ की मूर्तियों मे तीन सर्पफणों के छत्रोंवाली द्विभुज यक्षी के हाथो मे पुष्प (या पद्म) और कलश प्रदर्शित है। कुम्भारिया के महावीर एवं नेमिनाथ मन्दिरो की दो मूर्तियों मे यक्षी अम्बिका है। पर विमलवसही की देवकुलिका १९ की मूर्ति मे सुपार्श्व के साथ यक्षी रूप मे पद्मावती निरूपित है।[8]

(८) विजय (या श्याम) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

विजय (या श्याम) जिन चन्द्रप्रभ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा मे द्विभुज विजय का वाहन हंस है और दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुज श्याम का वाहन कपोत है।

---

१ सितगोवृषभारूढा कालिदेवी चतुर्भुजा।
घण्टात्रिशूलसंयुक्तफलहस्तावरप्रदा ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.३०

२ सिता गोवृषगा घण्टा फलशूलवरावृताम्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६१; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.७ पृ० ३४२

३ कृष्णाऽष्टबाहुस्त्रिशूलपाशांकुशधनुःशरा।
चक्राभयवरदाश्च महिषस्था च कालिका ॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.२१

४ राव, टी० ए० गोपीनाथ, **एलिमेन्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, खं० १, भाग २, वाराणसी, १९७१ (पु०मु०), पृ० ३६६

५ रामचन्द्रन, टी०एन०, **पू०नि०**, पृ० २००

६ **जि०इ०दे०**, पृ० १०५

७ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १२१

८ तीन सर्पफणो के छत्र वाली यक्षी का वाहन सम्भवतः कुक्कुट-सर्प है और उसके करों में वरदमुद्रा, अंकुश, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में द्विभुज विजय त्रिनेत्र है और उसका वाहन हंस है। विजय के दाहिने हाथ मे चक्र और बायें में मुद्गर है।[१] अन्य ग्रन्थों में मी इन्ही लक्षणों के उल्लेख है।[२] **पद्मानन्दमहाकाव्य** में चक्र के स्थान पर खड्ग का उल्लेख है।

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में चतुर्भुज श्याम त्रिनेत्र है और उसकी भुजाओं में फल, अक्षमाला, परशु एवं वरदमुद्रा हैं।[३] ग्रन्थ में वाहन का अनुल्लेख है। **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे यक्ष का वाहन कपोत बताया गया है।[४] **अपराजितपृच्छा** मे यक्ष को विजय नाम से सम्बोधित किया गया है और उसके दो हाथों में फल और अक्षमाला के स्थान पर पाश और अभयमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[५]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा मे हंस पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष की एक भुजा से अभयमुद्रा के प्रदर्शन का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में कपोत वाहन से युक्त चतुर्भुज यक्ष के हाथो मे कशा, पाश, वरदमुद्रा एवं अंकुश वर्णित हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में कपोत पर आरूढ यक्ष त्रिनेत्र है और उसके करों मे फल, अक्षमाला, परशु एव वरदमुद्रा का उल्लेख है।[६] प्रस्तुत विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा का अनुकरण है।

मूर्ति-परम्परा

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। जिन-संयुक्त मूर्तियों (९वीं–१२वी शती ई०) में चन्द्रप्रभ का यक्ष सामान्य लक्षणों वाला है।[७] इनमे द्विभुज यक्ष अभयमुद्रा (या फल) एवं धन के थैले (या फल या कलश या पुष्प) से युक्त है। देवगढ़ के मन्दिर २१ की मूर्ति (११ वी शती ई०) मे यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथो मे अभयमुद्रा, गदा, पद्म एवं फल प्रदर्शित है।

(८) भृकुटि (या ज्वालामालिनी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

भृकुटि (या ज्वालामालिनी) जिन चन्द्रप्रभ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा भृकुटि (या ज्वाला) का वाहन वराल (या मराल) है और दिगंबर परम्परा मे अष्टभुजा ज्वालामालिनी का वाहन महिष है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे चतुर्भुजा भृकुटि का वाहन[८] वराह है और उसकी दाहिनी भुजाओ मे खड्ग एवं मुद्गर और बायी में फलक एवं परशु का वर्णन है।[९] अन्य ग्रन्थ आयुधो के सन्दर्भ में एकमत हैं, पर वाहन के

१ विजययक्षं हरितवर्णं त्रिनेत्रं हंसवाहनं द्विभुजं दक्षिणहस्तेचक्रं वामे मुद्गरमिति। **निर्वाणकलिका** १८.८

२ **त्रि०श०पु०च०** ३.६.१०८, **मन्त्राधिराजकल्प** ३.३३; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४; **पद्मानन्दमहाकाव्य :** परिशिष्ट–**चन्द्रप्रभ** १७; **त्रि०श०पु०च०** एवं **पद्मानन्दमहाकाव्य** में यक्ष के त्रिनेत्र होने का उल्लेख नहीं है।

३ चन्द्रप्रभजिनेन्द्रस्य श्यामो यक्षः त्रिलोचनः।
फलाक्षसूत्रकं धत्ते परशुं च वरप्रदः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.३१

४ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१३६

५ पर्शुपाशाभयवराः कपोते विजयः स्थितः। **अपराजितपृच्छा** २२१.४८

६ रामचन्द्रन, टी०एन०, **पू०नि०**, पृ० २०१

७ जिन-संयुक्त मूर्तिया देवगढ़, खजुराहो, राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे८८१) एवं इलाहाबाद संग्रहालय (२९५) मे है।

८ ग्रन्थ के पाद टिप्पणी मे उसका पाठान्तर विराल दिया है।

९ भृकुटिदेवी पीतवर्णां वराह (बिडाल ?) वाहनां चतुर्भुजां।
खड्गमुद्गरान्वितदक्षिणभुजां फलकपरशुयुतवामहस्तां चेति॥ **निर्वाणकलिका** १८.८

सन्दर्भ में उनमे पर्याप्त भिन्नता प्राप्त होती है। **मन्त्राधिराजकल्प** में यक्षी की भुजा में फलक के स्थान पर मातुलिंग मिलता है।[1] **आचारदिनकर** एवं **प्रवचनसारोद्धार** में यक्षी का वाहन बिडाल या वरालक बताया गया है।[2] **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**[3] एवं **पद्मानन्दमहाकाव्य**[4] मे वाहन हंस है। **देवतामूर्तिप्रकरण** मे वाहन सिंह है।[5]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में अष्टभुजा ज्वालिनी का वाहन महिष है और उसके करों में बाण, चक्र, त्रिशूल और पाश का वर्णन है।[6] अन्य करों के आयुधों का उल्लेख नहीं किया गया है। **प्रतिष्ठासारोद्धार** में अष्टभुजा ज्वालिनी के हाथों में चक्र, धनुष, पाश, चर्म, त्रिशूल, बाण, मत्स्य एवं खड्ग के प्रदर्शन का निर्देश है।[7] **प्रतिष्ठातिलकम्** मे अष्टभुजा यक्षी के करो मे पाश, चर्म एवं त्रिशूल के स्थान पर नागपाश, फलक एवं शूल के प्रदर्शन का उल्लेख है।[8] **अपराजितपृच्छा** मे ज्वालामालिनी चतुर्भुजा है।[9] यक्षी का वाहन वृषभ है और उसके करों मे घण्टा, त्रिशूल, फल एवं वरदमुद्रा प्रदर्शित है। यक्षी का निरूपण ग्यारहवी महाविद्या महाज्वाला (या ज्वालामालिनी) से प्रभावित है।[10]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा मे वृषभवाहना यक्षी अष्टभुजा है। ज्वालामय मुकुट से शोभित यक्षी के दक्षिण करो मे त्रिशूल, शर, सर्प एवं अभयमुद्रा, और वाम मे वज्र, चाप, सर्प एवं कटकमुद्रा का वर्णन है। श्वेतांबर ग्रन्थो में महिषवाहना यक्षी अष्टभुजा है। अज्ञातनाम एक ग्रन्थ में यक्षी के हाथों मे चक्र, मकर, पताका, बाण, धनुष, त्रिशूल, पाश एवं वरदमुद्रा वर्णित है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे बाण, चक्र, त्रिशूल, वरदमुद्रा (या फल), कार्मुक, पाश, झष एवं खेटक धारण करने का उल्लेख है।[11] स्पष्टतः दक्षिण भारत की दोनो परम्पराओ के विवरण उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि पद्मावती के बाद कर्नाटक मे ज्वालामालिनी ही सर्वाधिक लोकप्रिय थी। ज्वालामालिनी के बाद लोकप्रियता के क्रम में अम्बिका का नाम था।[12]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली है। ये मूर्तिया देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणो मे उत्कीर्ण है। देवगढ मे चन्द्रप्रभ के साथ 'सुमालिनी' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है (चित्र ४८)।[13] यक्षी के तीन हाथो में खड्ग, अभयमुद्रा एवं खेटक प्रदर्शित है, चौथी भुजा जानु पर स्थित है। वाम पार्श्व

१ पीता वराहगमना ह्यसिमुद्गराका भयात् कुठारफलभृद् भृकुटिः सुखाय। **मन्त्राधिराजकल्प** ३.५७

२ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७६, **प्रवचनसारोद्धार** ८

३ त्रि०श०पु०च० ३.६.१०९–१०

४ **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—**चन्द्रप्रभ** १८–१९

५ **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.३३

६ ज्वालिनी महिषारूढा देवी श्वेता भुजाष्टका।
काण्डचक्रत्रिशूलं च धत्ते पाशं च मु(क)षं ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५ ३२

७ चन्द्रोज्ज्वला चक्रशरासपाश चर्मत्रिशूलेषुझषासिहस्ताम्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६२

८ चक्रं चापमहीशपाशफलके सव्यैश्चतुर्भिः करैरन्यैः।
शूलमिषुं झषं ज्वलदसि धत्तेऽत्र या दुर्जया ॥ **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.८, पृ० ३४३

९ कृष्णा चतुर्भुजा घण्टा त्रिशूल च फलं वरम्।
पद्मासना वृषारूढा कामदा ज्वालमालिनी ॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.२२

१० जैन परम्परा में महाविद्या महाज्वाला का वाहन महिष, शूकर, हंस एवं बिडाल बताया गया है। दिगंबर ग्रन्थो में महाविद्या के हाथो मे खड्ग, खेटक, बाण और धनुष प्रदर्शित है।

११ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०१

१२ देसाई, पी०बी, **जैनिजम इन साऊथ इण्डिया ऐण्ड सम जैन एपिग्राफ्स**, शोलापुर, १९६३, पृ० १७२

१३ **जि०इ०दे०**, पृ० १०७

मे सिंहवाहन उत्कीर्ण है। सुमालिनी का लाक्षणिक स्वरूप निश्चित ही १६ वी महाविद्या महामानसी से प्रभावित है।[1] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे सिंहवाहना यक्षी द्वादशभुजा है। यक्षी की दाहिनी भुजाओं मे वरदमुद्रा, कृपाण, चक्र, बाण, गदा (?) एवं खड्ग और बायी में वरदमुद्रा, खेटक, धनुष, शंख, पाश एवं घण्ट प्रदर्शित है।[2] सिंहवाहन के अतिरिक्त मूर्ति की अन्य विशेषताएं सामान्यतः दिगंबर ग्रन्थो से मेल खाती है।

जिन-संयुक्त मूर्तियां (९ वी-१२ वी शती ई०) कौशाम्बी, देवगढ़, खजुराहो, एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ में है। इनमें अधिकांशतः द्विभुजा यक्षी सामान्य लक्षणों वाली है। यक्षी के हाथो मे अभयमुद्रा (या पुष्प) और फल (या कलश या पुष्प) प्रदर्शित है। देवगढ (मन्दिर २०, २१) एवं खजुराहो (मन्दिर ३२) को तीन चन्द्रप्रभ मूर्तियो में यक्षी चतुर्भुजा है। यक्षी के दो हाथों में पद्म एवं पुस्तक, और शेष दो में अभयमुद्रा, कलश एवं फल में से कोई दो प्रदर्शित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जिन-संयुक्त मूर्तियों में भी यक्षी को पारम्परिक या स्वतन्त्र स्वरूप में अभिव्यक्ति नही मिली।

(९) अजित यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

अजित जिन सुविधिनाथ (या पुष्पदन्त) का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में चतुर्भुज अजित के दक्षिण करों में मातुलिंग एवं अक्षसूत्र और वाम मे नकुल एवं शूल का वर्णन है।[3] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही आयुधों के उल्लेख है। पर **मन्त्राधिराजकल्प** में अक्षसूत्र के स्थान पर अभयमुद्रा और **आचारदिनकर** मे शूल के स्थान पर अतुल रत्नराशि के प्रदर्शन के निर्देश हैं।[4]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में कूर्म पर आरूढ़ अजित के हाथों में फल, अक्षसूत्र, शक्ति एवं वरदमुद्रा वर्णित है।[5] परवर्ती ग्रन्थो मे भी इन्ही आयुधों के उल्लेख है। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दिगंबर परम्परा श्वेतांबर परम्परा की अनुगामिनी है। नकुल के स्थान पर वरदमुद्रा का उल्लेख दिगंबर परम्परा की नवीनता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनों परम्परा के ग्रन्थो में कूर्म पर आरूढ़ अजित चतुर्भुज है। दिगंबर ग्रन्थ मे यक्ष के दाहिने हाथों मे अक्षमाला एवं अभयमुद्रा और बायें में शूल एवं फल का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे यक्ष के हाथो में कशा, दण्ड, त्रिशूल एवं परशु के प्रदर्शन का विधान है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में फल, अक्षसूत्र, त्रिशूल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[6] दोनों परम्पराओ के विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित प्रतीत होते है।[7]

अजित यक्ष की एक भी स्वतन्त्र या जिन-संयुक्त मूर्ति नही मिली है।

---

१ श्वेतांबर परम्परा मे सिंहवाहना महामानसी के मुख्य आयुध खड्ग एवं खेटक हैं।

२ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

३ अजितयक्षं श्वेतवर्णं कूर्मवाहनं चतुर्भुजं मातुलिंगाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकुन्तान्वितवामपाणिं चेति।
निर्वाणकलिका १८.९, द्रष्टव्य, **त्रि०श०पु०च०** ३.७.१३८–३९

४ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.३३; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

५ अजितः पुष्पदन्तस्य यक्षः श्वेतश्चतुर्भुजः।
फलाक्षसूत्रशक्त्याढ्यंवरदः कूर्मवाहनः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.३३
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठासारोद्धारः** ३.१३७; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.९, पृ० ३३३; **अपराजितपृच्छा** २२१.४८

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०१

७ केवल शक्ति के स्थान पर त्रिशूल का उल्लेख है।

(९) सुतारा (या महाकाली) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

सुतारा (या महाकाली) जिन सुविधिनाथ (या पुष्पदन्त) की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में यक्षी को सुतारा (या चाण्डालिका) और दिगंबर परम्परा में महाकाली कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में वृषभवाहना सुतारा चतुर्भुजा है। यक्षी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं अक्षमाला और बायें में कलश एवं अंकुश वर्णित हैं।[1] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[2]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में कूर्मवाहना महाकाली चतुर्भुजा है। यक्षी तीन भुजाओं में वज्र, मुद्गर और फल लिये है। चौथी भुजा की सामग्री का अनुल्लेख है।[3] अन्य ग्रन्थों में चौथी भुजा में वरदमुद्रा बतायी गयी है।[4] **अपराजितपृच्छा** में मुद्गर और फल के स्थान पर गदा और अभयमुद्रा का उल्लेख है।[5] यक्षी का स्वरूप सम्भवतः ८ वीं महाविद्या महाकाली से प्रभावित है। यक्षी का कूर्मवाहन अजित यक्ष के कूर्मवाहन से सम्बन्धित हो सकता है।[6]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथों में दण्ड एवं फल (या वज्र) और नीचे के हाथों में अभय-एवं कटक-मुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में सिंहवाहना यक्षी के करों में खड्ग, फल, वज्र एवं पद्म वर्णित हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में कूर्मवाहना यक्षी के करों में सर्वज्ञ (? आयुध या ज्ञानमुद्रा), मुद्गर, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

मूर्ति-परम्परा

महाकाली की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) और बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणों में उत्कीर्ण हैं। इनमें देवी के निरूपण में पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। देवगढ़ में पुष्पदन्त के साथ 'बहुरूपी' नाम की सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजी यक्षी आमूर्तित है। यक्षी के दाहिने हाथ में चामर-पद्म है और बायां जानु पर स्थित है।[8] बारभुजी गुफा की मूर्ति में दशभुजा यक्षी वृषभवाहना है। यक्षी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, चक्र (?), पक्षी, फलों से भरा पात्र (?) एवं चक्र (?), और वाम में अर्धचन्द्र, तर्जनीमुद्रा, सर्प, पुष्प (?) एवं मयूरपख (या वृक्ष की डाल) प्रदर्शित है।[9]

(१०) ब्रह्म यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

ब्रह्म जिन शीतलनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में चतुर्मुख एवं अष्टभुज ब्रह्म यक्ष का वाहन पद्म बताया गया है।

---

१ सुतारादेवीं गौरवर्णां वृषवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणभुजां कलशांकुशान्वितवामपाणिं चेति।
निर्वाणकलिका १८.९

२ **त्रि०श०पु०च०** ३.७.१४०–४१, **पद्मानन्दमहाकाव्यः** परिशिष्ट—**सुविधिनाथ** १८–१९; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.५७; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७६

३ देवी तथा महाकाली विनीता कूर्मवाहना।
सवज्रमुद्गरा (कृष्णा) फलहस्ता चतुर्भुजा॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.३४

४ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६३; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.९, पृ० ३४३

५ चतुर्भुजा कृष्णवर्णा वज्र गदावराभयाः। **अपराजितपृच्छा** २२१.२३

६ स्मरणीय है कि सुविधिनाथ (या पुष्पदंत) का लांछन मकर है।

७ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०२

८ जि०इ०दे०, पृ० १०७

९ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे चतुर्मुख और त्रिनेत्र ब्रह्म के दाहिने हाथों में मानुलिंग, मुद्गर, पाश एवं अभयमुद्रा और बायें में नकुल, गदा, अंकुश एवं अक्षसूत्र का वर्णन है।[१] अन्य ग्रन्थो में भी इन्ही आयुधों का उल्लेख है।[२] **मन्त्राधिराजकल्प** में अभयमुद्रा के स्थान पर वरदमुद्रा का उल्लेख है।[३] **आचारदिनकर** मे यक्ष दस भुजाओ और बारह नेत्रों वाला है। उसकी आठ भुजाओं मे **निर्वाणकलिका** के आयुधों का और शेष दो में पाश एवं **पद्म** का उल्लेख है।[४]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में चतुर्मुख ब्रह्म सरोज पर आसीन है। ग्रन्थ में उसके आयुधों का अनुल्लेख है।[५] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे केवल छह हाथों के ही आयुधो का उल्लेख है। दाहिने हाथों मे बाण, खड्ग, वरदमुद्रा और बायें मे धनुष, दण्ड, खेटक वर्णित है।[६] **प्रतिष्ठातिलकम्** में यक्ष की केवल सात भुजाओं के ही आयुध स्पष्ट है। **प्रतिष्ठासारोद्धार** से भिन्न **प्रतिष्ठातिलकम्** मे वज्र और परशु का उल्लेख है, किन्तु बाण का अनुल्लेख है।[७] **अपराजितपृच्छा** में ब्रह्म चतुर्भुज है और उसका वाहन हस है। यक्ष के करो मे पाश, अंकुश, अभयमुद्रा और **वरदमुद्रा** का वर्णन है।[८]

यक्ष का नाम (ब्रह्म), उसका चतुर्मुख होना, **पद्म** और हंसवाहनों के उल्लेख तथा एक हाथ में अक्षमाला का प्रदर्शन—ये सभी बातें ब्रह्मयक्ष के निरूपण मे हिन्दू देव ब्रह्मा-प्रजापति का प्रभाव दरशाती हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे पद्मकालिका पर आसीन अष्टभुज ब्रह्मेश्वर (या ब्रह्म) यक्ष को त्रिनेत्र एवं चतुर्मुख बताया गया है। यक्ष के छह हाथो में गदा, खड्ग, खेटक एवं दण्ड जैसे आयुधों और शेष दो मे अभय-एवं कटक-मुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे सिंह पर आरूढ़ यक्ष अष्टभुज है और उसके हाथो में खड्ग, खेटक, बाण, धनुष, परशु, वज्र, पाश एवं अभय-(या वरद-) मुद्रा का वर्णन है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे पद्म वाहन से युक्त चतुर्मुख एव अष्टभुज यक्ष के करो मे खड्ग, खेटक, वरदमुद्रा, बाण, धनुष, दण्ड, परशु एवं वज्र के प्रदर्शन का निर्देश है।[९] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दोनों परम्पराओं के आयुधों एवं वाहन के सन्दर्भ मे विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

ब्रह्म यक्ष की एक भी स्वतन्त्र या जिन-संयुक्त मूर्ति नही मिली है।

(१०) अशोका (या मानवी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

अशोका (या मानवी) जिन शीतलनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा अशोका (या गोमेधिका) पद्मवाहना है और दिगबर परम्परा मे चतुर्भुजा मानवी शूकरवाहना है।

---

१ ब्रह्मयक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं धवलवर्णं पद्मासनमष्टभुजं मातुलिंगमुद्गरपाशाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलगदांकुशाक्षसूत्रान्वित-वामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१०

२ **त्रि०श०पु०च०** ३.८.१११–१२; **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट–शीतलनाथ १७–१८

३ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.३४

४ वसुमितभुजयुक् चतुर्वक्त्रभाग् द्वादशाक्षो रुचा सरसिजविहितासनो मातुलिंगाभये पाशयुग्मुद्गरं दधदतिगुणमेवहस्तोत्करे दक्षिणे चापि वामे गदां सृणिनकुलसरोद्भवाक्षावलीर्ब्रह्मनामा सुपर्वोत्तमः। **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

५ शीतलस्य जिनेन्द्रस्य ब्रह्मयक्षश्चतुर्मुखः।
अष्टबाहुः सरोजस्थः श्वेतवर्णः प्रकीर्तितः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.३५

६ श्रीवृक्षकेतननतो धनुदण्डखेटवज्रा–(? बज्रा-) ढ्यसव्यसय इन्दुसितोम्बुजस्थः।
ब्रह्मासरश्वधितिखड्गवरप्रदानव्यग्रान्यपाणिरुपयातु चतुर्मुखोर्चाम्॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१३८

७ सचापदण्डोर्जितखेटवज्रसव्योद्धपाणि नुतशीतलेशम्।
सव्यान्यहस्तेषु परश्वसीष्टदानं यजे ब्रह्मसमाख्ययक्षम्॥ **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१०, पृ० ३३४

८ पाशाङ्कुशाभयवरा ब्रह्मा स्याद्धंसवाहनः। **अपराजितपृच्छा** २२१.४९

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०२–२०३

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे पद्मवाहना अशोका के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा एवं पाश और वाम में फल एवं अंकुश वर्णित हैं।[1] अन्य ग्रन्थों में भी यही लक्षण है।[2] **आचारदिनकर** में नृत्यरत अप्सराओ से वेष्टित यक्षी के एक हाथ में फल के स्थान पर वर्म्म का उल्लेख है।[3] **देवतामूर्तिप्रकरण** मे पाश के स्थान पर नागपाश दिया गया है।[4]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे शूकरवाहना मानवी के तीन हाथो मे फल, वरदमुद्रा एवं झष के प्रदर्शन का निर्देश है चौथे हाथ के आयुध का अनुल्लेख है।[5] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे मानवी का वाहन काला नाग है और उसको चौथी भुजा मे पाश का उल्लेख है।[6] **प्रतिष्ठातिलकम्** मे पुन. तीन ही हाथो के आयुधो के उल्लेख के कारण पाश का अनुल्लेख है, और वरदमुद्रा के स्थान पर माला का उल्लेख है।[7] **अपराजितपृच्छा** में शूकरवाहना मानवी के करों में पाश, अंकुश, फल और वरदमुद्रा का वर्णन है।[8] मानवी का स्वरूप दिगंबर परम्परा की १२वी महाविद्या मानवी से प्रभावित है।[9]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथों मे अक्षमाला एवं झष और निचले मे अभय-एवं कटक-मुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे द्विभुजा यक्षी मकरवाहना है एवं उसके आयुध वरदमुद्रा एवं पद्म है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे चतुर्भुजा मानवी का वाहन कृष्ण शूकर है और उसके हाथो मे झष, अक्षसूत्र, हार एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[10] शूकरवाहन एवं झष का प्रदर्शन सम्भवतः उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तिया मिली है। ये मूर्तिया देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अकनों में उत्कीर्ण है। इनमे यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताएं नही प्रदर्शित है। देवगढ मे शीतलनाथ के साथ 'श्रीया देवी' नाम की चतुर्भुजा यक्षी निरूपित है। यक्षी के तीन हाथों मे फल,पद्म, फल (या कलश) प्रदर्शित है और चौथी भुजा जानु पर स्थित है। यक्षी के दोनो पार्श्वों मे वृक्ष के तने उत्कीर्ण है। सम्भव है कि श्रीयादेवी नाम श्रीदेवी का सूचक हो जो लक्ष्मी का ही दूसरा नाम है।[11] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे चतुर्भुजा यक्षी का वाहन कोई पशु है। यक्षी के नीचे के हाथो मे वरदमुद्रा एवं दण्ड और ऊपरी हाथो मे चक्र एवं शंख (या फल) प्रदर्शित है।[12]

---

१ अशोकां देवीं मुद्‌गवर्णां पद्मवाहनां चतुर्भुजां वरदपाशयुक्तदक्षिणकरां फलांकुशयुक्तवामकरां चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१०

२ त्रि०श०पु०च० ३.८.११३–१४, **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—**शीतलनाथ** १९–२०, **मन्त्राधिराजकल्प** ३.५८

३ ....वामं चांकुशवर्म्मणी बहुगुणाऽशोका विशोका जनं कुर्यादप्सरसा गणैः प्रविवृता नृत्यद्भिरानन्दितैः। **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७६

४ वरदं नागपाशं चांकुशं वै बीजपूरकम्। **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.३७

५ मानवी च हरिद्वर्णा झषहस्ताचतुर्भुजा।
कृष्णशूकरयानस्था फलहस्तवरप्रदा॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.३६

६ झषदामरुचकदानोचितहस्तां कृष्णकालगां हरिताम्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६४

७ ऊर्ध्वद्विहस्तोद्धृतमत्स्यमालां अधोद्विहस्ताक्षफलप्रदानाम्। **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१०, पृ० ३४३

८ चतुर्भुजा श्यामवर्णा पाशाङ्कुशफलवरम्।
सूकरोपरिसंस्था च मानवी चार्थदायिनी॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.२४

९ यह प्रभाव यक्षी के नाम, शूकरवाहन एवं भुजा मे झष के प्रदर्शन के सन्दर्भ मे देखा जा सकता है। दिगंबर परम्परा में महाविद्या मानवी का वाहन शूकर है और उसके करों मे झष, त्रिशूल एवं खड्‌ग प्रदर्शित है।

१० रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०३

११ **जि०इ०दे०**, पृ० १०७

१२ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३१

(११) ईश्वर यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

ईश्वर[1] जिन श्रेयांशनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में वृषमारूढ़ ईश्वर त्रिनेत्र एव चतुर्भुज है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे ईश्वर के दक्षिण करो मे मातुलिंग एवं गदा और वाम मे नकुल एवं अक्षसूत्र वर्णित है।[2] अन्य ग्रन्थो मे भी यही लाक्षणिक विशेषताएं प्राप्त होती हे।[3] केवल **देवतामूर्तिप्रकरण** में नकुल और अक्षसूत्र के स्थान पर अंकुश और पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे ईश्वर के तीन हाथो मे फल, अक्षसूत्र एवं त्रिशूल का उल्लेख है, पर चौथे हाथ की सामग्री का अनुल्लेख है।[5] **प्रतिष्ठासारोद्धार**[6] एवं **अपराजितपृच्छा**[7] में चौथे हाथ में क्रमशः दण्ड और वरद-मुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।

दोनों परम्पराओं मे यक्ष का नाम, वाहन (वृषभ) एवं उसका त्रिनेत्र होना शिव से प्रभावित है। दिगंबर परम्परा मे भुजाओं में त्रिशूल एवं दण्ड के उल्लेख इसी प्रभाव के समर्थक है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में नन्दी पर आरूढ एवं अर्धचन्द्र से शोभित चतुर्भुज ईश्वर के वाम-करों मे त्रिशूल एव दण्ड और दक्षिण मे कटक-एवं-अभय-मुद्रा का वर्णन है। श्वेतांबर ग्रन्थो मे वृषभारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है। अज्ञातनाम ग्रन्थ मे ईश्वर के करो में शर, चाप, त्रिशूल एवं दण्ड का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे यक्ष को त्रिनेत्र और फल, अभयमुद्रा, त्रिशूल एवं दण्ड मे युक्त बताया गया है।[8] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दोनो परम्पराओ में ईश्वर का स्वरूप उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

ईश्वर यक्ष की एक भी स्वतन्त्र या जिन-संयुक्त मूर्ति नही मिली है।[9]

---

१ **प्रवचनसारोद्धार** और **आचारदिनकर** मे यक्ष को क्रमशः मनुज और यक्षराज नामो से सम्बोधित किया गया है।

२ ईश्वरयक्षं धवलवर्णं त्रिनेत्रं वृषभवाहनं चतुर्भुजं मातुलिंगगदान्वितदक्षिणपाणिं नकुलकाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.११

३ **त्रि०श०पु०च०** ४.१.७८४-८५; **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट-**श्रेयांशनाथ** १९-२०; **आचारदिनकर** ३४, पृ०१७४; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.५

४ मातुलिंगं गदा चैवांकुशं च कमलं क्रमात्। **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.३८

५ ईश्वरः श्रेयशो यक्षस्त्रिनेत्रो वृषवाहनः।
फलाक्षसूत्रसंयुक्तः सत्रिशूलश्चतुर्भुजः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.३७

६ त्रिशूलदण्डान्वितवामहस्तः करेऽक्षसूत्रं त्वपरे फलं च। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१३९;
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.११, पृ० ३३४

७ त्रिशूलाक्षफलवरा यक्षेट्श्वेतो वृषस्थितः। **अपराजितपृच्छा** २२१.४९

८ रामचन्द्रन, टी०एन०, **पू०नि०**, पृ० २०३

९ खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह एव मण्डप की भित्तियों पर नन्दीवाहन से युक्त कई चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। जटामुकुट से सज्जित देवता के करों में वरदाक्ष (या पद्म), त्रिशूल, सर्प एवं कमण्डलु प्रदर्शित हैं। लक्षणों के आधार पर देवता की सम्भावित पहचान ईश्वर यक्ष से की जा सकती है। पर पार्श्वनाथ मन्दिर की भित्तियों की सम्पूर्ण शिल्प सामग्री के सन्दर्भ में देवता को शिव का अंकन मानना ही अधिक प्रासंगिक एवं उचित होगा।

(११) मानवी (या गौरी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

मानवी (या गौरी) जिन श्रेयांशनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा मानवी (या श्रीवत्सा या विद्युन्नदा) का वाहन सिंह और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा गौरी का वाहन मृग है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में सिंहवाहना मानवी के दाहिने हाथों मे वरदमुद्रा एवं मुद्गर और बायें में कलश एवं अंकुश है।[1] **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** मे कलश के स्थान पर वज्र,[2] **प्रवचनसारोद्धार** में मुद्गर के स्थान पर पाश,[3] **पद्मानन्दमहाकाव्य** मे कलश और अंकुश के स्थान पर नकुल और अक्षसूत्र,[4] **आचारदिनकर** में दो वामकरों में अंकुश[5] और **देवतामूर्तिप्रकरण** मे कलश के स्थान पर नकुल[6] के प्रदर्शन के उल्लेख हैं।

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे मृगवाहना गौरी के केवल दो हाथो के आयुधों का उल्लेख है जो पद्म और वरदमुद्रा है।[7] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में गौरी के करों मे मुद्गर, अब्ज, कलश एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[8] **अपराजितपृच्छा** मे मुद्गर एवं कलश के स्थान पर पाश एवं अंकुश प्रदर्शित है।[9] यक्षी का नाम एवं एक हाथ मे पद्म का प्रदर्शन ९ वी महाविद्या गौरी का प्रभाव है।[10]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे नन्दी पर आरूढ चतुर्भुजा यक्षी अर्धचन्द्र से युक्त है। उसके दक्षिण करों मे जलपात्र एवं अभयमुद्रा और वाम मे वरदमुद्रा एवं दण्ड का उल्लेख है। यक्षी का निरूपण ईश्वर यक्ष से प्रभावित है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे हंसवाहना यक्षी द्विभुजा है और उसके करो में कशा एव अंकुश का वर्णन है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन मृग है और उसके हाथों मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप पद्म, मुद्गर (? मुनिग), कलश एवं वरदमुद्रा वर्णित है।[11]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की तीन स्वतन्त्र मूर्तियां (दिगंबर परम्परा) मिली है। दो मूर्तियां क्रमशः देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अकनों और एक मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) मे उत्कीर्ण है। देवगढ़ में श्रेयांश

१ मानवी देवी गौरवर्णां सिंहवाहना चतुर्भुजां वरदमुद्गरान्वितदक्षिणपाणिं कलशांकुशयुक्तवामकरां चेति।
निर्वाणकलिका १८.११; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.५८

२ ....वामौ च बिभ्रती पाणी कुलिशांकुशधारिणौ। **त्रि०श०पु०च०** ४.१.७८६–८७

३ ...वरदपाशयुक्तदक्षिणकरद्वया कलशांकुशयुक्तवामकरद्वया। **प्रवचनसारोद्धार** ११.३७५, पृ० ९४

४ ... वामौ तु सनकुलाक्षसूत्रौ श्रेयांसशासने। **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट–**श्रेयांशनाथ** २०

५ ...वाम हस्तयुगं तदांकुशयुतं.... । **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७

६ अंकुशं वरदं हस्तं नकुलं मुद्ग(ल ? रं) तथा। **देवतामूर्तिप्रकरण** ७ ३९

७ पद्महस्ता सुवर्णाभा गौरीदेवी चतुर्भुजा।
जिनेन्द्रशासने भक्ता वरदा मृगवाहना॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.३८

८ समुद्गराब्जकलशां वरदां कनकप्रभाम्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६५: द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.११, पृ० ३४४

९ पाशांकुशाब्जवरदा कनकाभा चतुर्भुजा।
सा कृष्णहरिणारूढा कार्या गौरी च शान्तिदा॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.२५

१० ज्ञातव्य है कि हिन्दू गौरी की भी एक भुजा मे पद्म प्रदर्शित है।

११ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०३

के साथ 'वह्नि' नाम की सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी निरूपित है।[१] यक्षी की दाहिनी भुजा में पद्म है और बायी जानु पर स्थित है। मालादेवी मन्दिर के मण्डोवर की दक्षिणी जंघा पर चतुर्भुजा गौरी ललितमुद्रा में पद्मासन पर विराजमान है। यक्षी का वाहन मृग है और उसके करों में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं। बारभुजी गुफा की चतुर्भुज मूर्ति में यक्षी का वाहन खण्डित है और उसके हाथों मे वरदमुद्रा, अक्षमाला, पुस्तक एवं जलपात्र प्रदर्शित है।[२] उपर्युक्त तीन मूर्तियों मे से केवल मालादेवी मन्दिर की मूर्ति म ही पारम्परिक विशेषताएं प्रदर्शित हैं।

(१२) कुमार यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

कुमार जिन वासुपूज्य का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में उसका वाहन हस ह।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे चतुर्भुज कुमार के दक्षिण करों मे बीजपूरक एवं बाण और वाम में नकुल एवं धनुष का उल्लेख है।[३] अन्य ग्रन्थो मे भी यही लक्षण वर्णित हैं।[४] केवल **प्रवचनसारोद्धार** मे बाण के स्थान पर वीणा मिलता है।[५]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे कुमार के त्रिमुख या षण्मुख होने का उल्लेख है। ग्रन्थ मे आयुधों का उल्लेख नही है।[६] अन्य ग्रन्थों में कुमार को त्रिमुख या षण्मुख नही बताया गया है। **प्रतिष्ठासारोद्धार** में चतुर्भुज कुमार के दाहिने हाथों मे वरदमुद्रा एवं गदा और बायें मे धनुष एवं फल वर्णित है।[७] **प्रतिष्ठातिलकम्** मे कुमार षड्भुज है और उसके दाहिने हाथों मे बाण, गदा एवं वरदमुद्रा और बायें हाथों मे धनुष, नकुल एवं मातुलिंग का उल्लेख है।[८] **अपराजितपृच्छा** मे चतुर्भुज कुमार का वाहन मयूर है और उसके करो मे धनुष, बाण, फल एव वरदमुद्रा हैं।[९]

यद्यपि कुमार नाम हिन्दू कुमार (या कार्तिकेय) से ग्रहण किया गया, पर जैन यक्ष के लिए स्वतन्त्र लक्षणो की कल्पना की गई।[१०] जैन देवकुल पर हिन्दू प्रभाव के सन्दर्भ मे एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जैन आचार्यों ने कभी-कभी जानबूझकर हिन्दू प्रभाव को छिपाने का प्रयास किया है। इस प्रकार के प्रयास मे एक जैन देवता के लिए नाम एवं लाक्षणिक विशेषताएं दो अलग-अलग हिन्दू देवो से ग्रहण की गई। उदाहरण के लिए १२ वें यक्ष कुमार का वाहन हंस है, पर १३ वें यक्ष चतुर्मुख का वाहन मयूर है। इसमें स्पष्टतः कुमार के मयूर वाहन को चतुर्मुख (यानी ब्रह्मा) के साथ और चतुर्मुख के हंस वाहन को कुमार के साथ प्रदर्शित किया गया है।

---

१ जि०इ०दे०, पृ० १०७   २ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

३ कुमारयक्षं श्वेतवर्णं हंसवाहनं चतुर्भुज मातुलिंगबाणान्वितदक्षिणपाणिं नकुलकधनुर्युक्तवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१२

४ **त्रि०श०पु०च०** ४.२.२८६–८७; **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—**वासुपूज्य** १७–१८; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.३६; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

५ ....बीजपूरकवीणान्वितदक्षिणपाणिद्वयो—**प्रवचनसारोद्धार** १२.३७३, पृ० ९३

६ वासुपूज्य जिनेन्द्रस्य यक्षो नाम्ना कुमारिकः।
त्रिमुखः षण्मुखः श्वेत गुरूपो हंसवाहनः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.३९

७ शुभ्रो धनुर्बभ्रुफलाढ्यसव्यहस्तोन्यहस्तेषु गदेष्टदानः।
लुलाय लक्ष्मणप्रणतस्त्रिवक्त्रः प्रमोदतां हंसचरः कुमारः॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१४०

८ हस्तैर्धुनुर्बभ्रुफलानि सव्यैरन्यैरिषुं चारुगदां वरं च। **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१२, पृ० ३३४

९ धनुर्बाणफलवराः कुमारः शिखिवाहनः। **अपराजितपृच्छा** २२१.५०

१० पर दिगंबर परम्परा में कभी-कभी कुमार को हिन्दू कुमार के समान ही षण्मुख एवं मयूर वाहन से युक्त भी निरूपित किया गया है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे मयूर पर आरूढ़ त्रिमुख एवं षड्भुज यक्ष के दाहिने हाथों में पाश, शूल, अभयमुद्रा और बायें मे वज्र (?), धनुष, वरदमुद्रा वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे हंस पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के करों में शर, चाप, मातुलिंग एवं दण्ड का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में हंस पर आरूढ़ त्रिमुख एवं षड्भुज यक्ष के आयुधों का अनुल्लेख है।[१]

कुमार यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। विमलवसही की देवकुलिका ४१ की वासुपूज्य की मूर्ति में सर्वानुभूति यक्ष निरूपित है।

(१२) चण्डा (या गांधारी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

चण्डा (या गान्धारी) जिन वासुपूज्य की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में यक्षी को प्रचण्डा, प्रवरा, चन्द्रा और अजिता नामों से भी सम्बोधित किया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे चतुर्भुजा प्रचण्डा का वाहन अश्व है और उसके दाहिने हाथों मे वरद-मुद्रा एवं शक्ति और बायें मे पुष्प एवं गदा है।[२] अन्य ग्रन्थों मे भी इन्ही लक्षणों के उल्लेख है।[३] केवल **मन्त्राधिराजकल्प** मे पुष्प के स्थान पर पाश का उल्लेख है।[४]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे पद्मवाहना गांधारी चतुर्भुजा है। गांधारी के दो हाथो मे मुसल एवं पद्म हैं, शेष दो करो के आयुधो का अनुल्लेख है।[५] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में चतुर्भुजा गांधारी का वाहन मकर (नक्र) है और उसके हाथो मे मुसल एवं पद्म के साथ ही वरदमुद्रा एवं पद्म भी प्रदर्शित है।[६] **अपराजितपृच्छा** मे गांधारी द्विभुजा है और उसके करो मे पद्म एवं फल स्थित है।[७] गांधारी की लाक्षणिक विशेषताएं श्वेतांबर परम्परा की १० वीं महाविद्या गांधारी से प्रभावित है।[८]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे सर्पवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके ऊपरी करों मे दो दर्पण और निचलों में अभयमुद्रा एवं दण्ड का वर्णन है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में हंसवाहना यक्षी द्विभुजा है जिसके दोनों हाथ वरद-एवं-ज्ञानमुद्रा मे हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन मकर है और उसके हाथों मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान वरदमुद्रा, मुसल, पद्म एवं पद्म का उल्लेख है।[९]

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०४

२ प्रचण्डादेवीं श्यामवर्णां अश्वारूढां चतुर्भुजां वरदशक्तियुक्तदक्षिणकरां पुष्पगदायुक्तवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१२

३ त्रि०श०पु०च० ४.२.२८८–८९; **पद्मानन्दमहाकाव्यः** परिशिष्ट—**वासुपूज्य** १८–१९; **आचारदिनकर** ,३४ पृ० १७७

४ कृष्णाजिता तुरगगा वरशक्तिहस्ता मूर्याद्वितीय भुमदामगदे दधाना। **मन्त्राधिराजकल्प** ३.५९

५ गांधारीसंज्ञिका ज्ञेया हरिद्रा सा चतुर्भुजा।
मुशलंपद्मयुक्तं च धत्ते कमलवाहना॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.४०

६ सपद्ममुशलांभोजदाना मकरगा हरित्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६६, द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१२, पृ० ३४४

७ करद्वये पद्मफले नक्रारूढा तथैव च।
श्यामवर्णा प्रकर्तव्या गांधारी नामिकामवेत्॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.२६

८ पद्मवाहना गांधारी महाविद्या वरदमुद्रा, मूसल एवं अभयमुद्रा से युक्त है।

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०४

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की चार स्वतन्त्र मूर्तियां (९वीं-१२वीं शती ई०) मिली हैं।[1] ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के समूहों एवं मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) और नवमुनि गुफा में मिली हैं। देवगढ में वासुपूज्य के साथ 'अभौगरतिण (या अभोगरोहिणी)' नाम की द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[2] यक्षी की दाहिनी भुजा में सर्प और बायीं में लम्बी माला प्रदर्शित हैं। सर्प का प्रदर्शन १३ वीं महाविद्या वैरोट्या का प्रभाव हो सकता है। मालादेवी मन्दिर (१० वीं शती ई०) के मण्डोवर की पश्चिमी जंघा की चतुर्भुजा देवी की सम्भावित पहचान गांधारी से की जा सकती है।[3] देवी ललितमुद्रा में पद्मासन पर विराजमान है और उसके आसन के नीचे मकर-मुख उत्कीर्ण है, जो सम्भवतः वाहन का सूचक है। पीठिका पर एक पंक्ति में नौ घट (नवनिधि के सूचक) भी बने हैं। देवी के तीन अवशिष्ट करों में से दो में पद्म एवं दर्पण है और तीसरा ऊपर उठा है।

नवमुनि गुफा में वासुपूज्य की चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहना है। जटामुकुट से शोभित यक्षी के करों में अभयमुद्रा, मातुलिंग, शक्ति एवं बालक प्रदर्शित है।[4] यक्षी की लाक्षणिक विशेषताएं अपारम्परिक और हिन्दू कौमारी से प्रभावित हैं।[5] बारभुजी गुफा की मूर्ति में अष्टभुजा यक्षी का वाहन पक्षी है। यक्षी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, मातुलिंग (?), अक्षमाला, नीलोत्पल और बायें हाथों में जलपात्र, शंख पुष्प, सनालपद्म प्रदर्शित हैं।[6] यक्षी का निरूपण परम्परा-सम्मत नहीं है।

(१३) षण्मुख (या चतुर्मुख) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

षण्मुख (या चतुर्मुख) जिन विमलनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में इसका वाहन मयूर है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में द्वादशभुज षण्मुख यक्ष का वाहन मयूर है। षण्मुख के दक्षिण करों में फल, चक्र, बाण, खड्ग, पाश एवं अक्षमाला और वाम में नकुल, चक्र, धनुष, फलक, अंकुश एवं अभयमुद्रा का उल्लेख है।[7] अन्य ग्रन्थों में भी यही विशेषताएं वर्णित हैं।[8] पर **मन्त्राधिराजकल्प** में बाण और पाश के स्थान पर शक्ति और नागपाश का उल्लेख है।[9]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में चतुर्मुख यक्ष द्वादशभुज है और उसका वाहन मयूर है। ग्रन्थ में आयुधों का अनुल्लेख है।[10] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में चतुर्मुख के ऊपर के आठ हाथों में परशु और शेष चार में खड्ग (कौक्षेयक),

१ सभी मूर्तियां दिगंबर स्थलों से मिली हैं।

२ **जि०इ०दे०**, पृ० १०३, १०७

३ आसन के नीचे नौ घटों का चित्रण इस पहचान में बाधक है।

४ मिश्रा, देबला, **पू०नि**, पृ० १२८

५ राव, टी० ए० गोपीनाथ, **पू०नि०**, पृ० ३८७–८८

६ मिश्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३१

७ षण्मुखं यक्षं श्वेतवर्णं शिखिवाहनं द्वादशभुजं फलचक्रबाणखड्गपाशाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलचक्रधनुः फलकांकुशाभययुक्तवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१३

८ **त्रि०श०पु०च०** ४.३.१७८–७९; **पद्मानन्दमहाकाव्यः** परिशिष्ट-**विमलस्वामी** १९-२०; **आचारदिनकर** ३४, पृ०१७४

९ चक्राक्षदामफलशक्तिभुजंगपाशखड्गांकदक्षिणभुजः सितरुक् सुकेकी। **मंत्राधिराजकल्प** ३.३७

१० विमलस्य जिनेन्द्रस्य नामार्थाभ्यां चतुर्मुखः।
यक्षोद्वादशदोर्दण्डः सुरूपः शिखिवाहनः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.४१

अक्षसूत्र (अक्षमणि), खेटक एवं दण्डमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] अपराजितपृच्छा में यक्ष को षण्मुख और षड्भुज बताया गया है। यक्ष के चार हाथों में वज्र, धनुष, फल एवं वरदमुद्रा और शेष में बाण का उल्लेख है।[2]

चतुर्मुख नाम हिन्दू ब्रह्मा और षण्मुख नाम हिन्दू कुमार (या कार्तिकेय) से प्रभावित है। साथ ही दोनों परम्पराओं मे वाहन के रूप में मयूर का उल्लेख भी हिन्दूदेव कुमार के ही प्रभाव का सूचक है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे षण्मुख एवं द्वादशभुज यक्ष का वाहन कुक्कुट है। ग्रन्थ मे केवल एक भुजा से अभयमुद्रा के प्रदर्शन का ही उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्वादशभुज यक्ष का वाहन कपि है। यक्ष के आठ हाथो मे वरदमुद्रा और शेष चार मे खड्ग, खेटक, परशु एवं ज्ञानमुद्रा का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे द्वादश-भुज यक्ष का वाहन मयूर है और उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान उसके आठ हाथों मे परशु एवं शेष चार मे फलक, खड्ग, दण्ड एवं अक्षमाला का वर्णन है।[3]

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। पर राज्य संग्रहालय, लखनऊ की एक विमलनाथ की मूर्ति (जे ७९१, १००९ ई०) मे द्विभुज यक्ष आमूर्तित है। यक्ष के अवशिष्ट बायें हाथ मे घट है।

(१३) विदिता (या वैरोटी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

विदिता (या वैरोटी) जिन विमलनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा विदिता[4] का वाहन पद्म और दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुजा वैरोटी का वाहन सर्प है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे पद्मवाहना विदिता के दक्षिण करो मे बाण एवं पाश और वाम मे धनुष एवं सर्प का वर्णन है।[5] अन्य ग्रन्थों मे भी यही लक्षण निर्दिष्ट है।[6]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे सर्पवाहना वैरोट्या के दो करो मे सर्प प्रदर्शित है, शेष दो करो के आयुधो का अनुल्लेख है।[7] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे दो हाथों मे सर्प और शेष दो मे धनुष एवं बाण के प्रदर्शन का निर्देश है।[8] **अपराजितपृच्छा** मे यक्षी षड्भुजा और व्योमयान पर अवस्थित है। उसके दो हाथों मे वरदमुद्रा एवं शेष मे खड्ग, खेटक, कार्मुक और शर है।[9]

---

१ यक्षो हरित्सपरशूपरिमाष्टपाणिः कौक्षेयकक्षमणिखेटकदण्डमुद्राः।
विभ्रच्चतुर्भिरपरैः शिखिगः किराकनम्रः प्रतूत्यतुयथार्थ चतुर्मुखाख्यः ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१४१
प्रतिष्ठातिलकम् ७.१३, पृ० ३३५

२ षण्मुख षड्भुजो वज्रो धनुर्बाणौ फलंवरः। **अपराजितपृच्छा** २२१.५०

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पूर्वनि०, पृ० २०४

४ **प्रवचनसारोद्धार** एवं **आचारदिनकर** मे यक्षी को विजया कहा गया है।

५ विदितां देवी हरितालवर्णां पद्मारूढां चतुर्भुजां बाणपाशयुक्तदक्षिणपाणि धनुर्नागयुक्तवामपाणिं चेति।
निर्वाणकलिका १८.१३

६ **त्रि०श०पु०च०** ४.३.१८०-८१; **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—**विमलस्वामी** २१, **मन्त्राधिराजकल्प** ३.५९; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

७ वैरोटी नामतो देवी हरिद्वर्णा चतुर्भुजः।
हस्तद्वयेन सर्पौ द्वौ धत्ते घोणसवाहना ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.४२

८ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६७; द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१३, पृ० ३४४

९ श्यामवर्णा षड्भुजा द्वौ वरदौ खड्गखेटकौ।
धनुर्बाणौ विराटाख्या व्योमयानगता तथा ॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.२७

विदिता एवं वैरोटी के स्वरूप १३वीं महाविद्या वैरोट्या से प्रभावित हैं। विदिता के सन्दर्भ में यह प्रभाव हाथ में सर्प के प्रदर्शन तक सीमित है, पर वैरोटी के सन्दर्भ में नाम, वाहन एवं दो हाथों में सर्प का प्रदर्शन—ये सभी महाविद्या के प्रभाव प्रतीत होते हैं।[1]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में सर्पवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके दो करों में सर्प एवं शेष दो में अभय-एवं कटक-मुद्रा है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी मृगवाहना (कृष्णसार) है और उसके हाथों में शर, चाप, वरदमुद्रा एवं पद्म का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में सर्पवाहना (गोनस) यक्षी के दो करों में सर्प एवं शेष दो में वाण और धनुष का वर्णन है।[2] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा यक्षी के निरूपण में सामान्यतः उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से सहमत है।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। दोनों मूर्तियां दिगंबर परम्परा की है और क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में विमलनाथ के साथ 'सुलक्षणा' नाम की सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[3] यक्षी का दाहिना हाथ जानु पर है और बायें में चामर प्रदर्शित है। बारभुजी गुफा में विमलनाथ की यक्षी अष्टभुजा है और उसका वाहन सारस है। यक्षी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, वाण, खड्ग एवं परशु और वाम में वज्र, धनुष, शूल एवं खेटक प्रदर्शित हैं।[4] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नहीं है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की जिन-संयुक्त मूर्ति (जे ७९१) में द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा एवं घट से युक्त है।

(१४) पाताल यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

पाताल जिन अनन्तनाथ का यक्ष है। दोनों परम्परा के ग्रन्थों में पाताल को त्रिमुख, षड्भुज और मकर पर आरूढ़ कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में पाताल यक्ष के दाहिने हाथों में पद्म, खड्ग एवं पाश और बायें में नकुल, फलक एवं अक्षसूत्र का उल्लेख है।[5] अन्य ग्रन्थों में भी यही आयुध प्रदर्शित हैं।[6] **मन्त्राधिराजकल्प** में पाताल को त्रिनेत्र कहा गया है। **आचारदिनकर** में अक्षसूत्र के स्थान पर मुक्ताक्षावलि का उल्लेख है।[7]

---

१ श्वेतांबर परम्परा में महाविद्या वैरोट्या का वाहन सर्प है और उसके दो करों में सर्प एवं अन्य में खड्ग और खेटक प्रदर्शित हैं।

२ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०४

३ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०७

४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

५ पातालयक्षं त्रिमुखं रक्तवर्णं मकरवाहनं षड्भुजं पद्मखड्गपाशयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलफलकाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१४

६ **त्रि०श०पु०च०** ४.४.२००–२०१; **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट–अनन्त १८–१९; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.३८

७ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे पाताल यक्ष के आयुधों का अनुल्लेख है।[1] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में पाताल के शीर्षभाग मे तीन सर्पफणो के छत्र, दक्षिण करो में अंकुश, शूल एवं पद्म और वाम मे कषा, हल एवं फल के प्रदर्शन का निर्देश है।[2] **अपराजितपृच्छा** मे पाताल वज्र, अंकुश, धनुष, बाण, फल एव वरदमुद्रा से युक्त है।[3]

यक्ष का नाम (पाताल) और दिगंबर परम्परा मे उसका तीन सर्पफणों की छत्रावली से युक्त होना पाताल (अतल) लोक के अनन्त देव (शेषनाग) का प्रभाव है।[4] दिगंबर परम्परा मे सर्पफणो के साथ ही हल का प्रदर्शन बलराम (हलधर) का प्रभाव हो सकता है, जिन्हे हिन्दू देवकुल मे आदिशेष (नागराज) का अवतार माना गया है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारत की दोनों परम्पराओ के ग्रन्थों मे मकर पर आरूढ पाताल यक्ष त्रिमुख और षड्भुज है। दिगंबर ग्रन्थ मे यक्ष के दक्षिण करो मे दण्ड, शूल एव अभयमुद्रा और वाम मे परशु, पाश एवं अंकुश (या शूल) का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे यक्ष कशा, अंकुश, फल, वरदमुद्रा, त्रिशूल एवं पाश से युक्त है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में यक्ष के करो मे शर, अंकुश, हल, त्रिशूल, मातुलिंग एव पद्म वर्णित है। यक्ष के मस्तक पर सर्पछत्र का भी उल्लेख है।[5] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा यक्ष के निरूपण मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से सहमत है।

पाताल यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। विमलवसही की देवकुलिका ३३ की अनन्तनाथ की मूर्ति मे यक्ष के रूप मे सर्वानुभूति निरूपित है।

(१४) अंकुशा (या अनन्तमती) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

अंकुशा (या अनन्तमती) जिन अनन्तनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा अंकुशा (या वरभृत) पद्मवाहना है और दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुजा अनन्तमती का वाहन हंस है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे पद्मवाहना अंकुशा के दाहिने हाथों मे खड्ग एव पाश और बायें म खेटक एवं अंकुश का वर्णन है।[6] अन्य ग्रन्थों मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख है।[7] पर **पद्मानन्दमहाकाव्य** मे अंकुशा द्विभुजा है और उसके करो मे फलक और अंकुश वर्णित है।[8]

---

१ अनन्तस्य जिनेन्द्रस्य यक्षः पातालनामकः।
त्रिमुख षड्भुजो रक्तः वर्णो मकरवाहनः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.४८

२ पातालकः सशृणिशूलकजापसव्यहस्तः कषाहलफलांकितसव्यपाणिः।
सेधाध्वजंकदारणो मकराधिरूढो रक्तोर्च्यतां त्रिफणनागशिरास्त्रिवक्त्रम्॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१४२
प्रतिष्ठातिलकम् ७.१४, पृ० ३३५

३ पातालश्च वज्राकुशौ धनुर्बाणौ फलवरः। **अपराजितपृच्छा** २२१.५१

४ पाताल एवं अनन्त दोनो नागराज के ही नाम है। स्मरणीय है कि पाताल यक्ष के जिन का **नाम अनन्तनाथ है।**

५ रामचन्द्रन, टी०एन० **पू०नि०**, पृ० २०५

६ अंकुशां देवी गौरवर्णां पद्मवाहनां चतुर्भुजां खड्गपाशयुक्तदक्षिणकरां चर्मफलाकुंशयुतवामहस्तां चेति।
निर्वाणकलिका १८.१४

७ **त्रि०श०पु०च०** ४.४.२०२-२०३, **मन्त्राधिराजकल्प** ३.६०; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७

८ अंकुशा नाम्ना देवी तु गौरांगी **कमलासना**।
दक्षिणे फलकं वामे त्वंकुशं दधती करे॥ **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—**अनन्त** १९-२०

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में हंसवाहना अनन्तमती के हाथों में धनुष, बाण, फल एवं वरदमुद्रा दिये गये हैं।[1] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों का उल्लेख है।[2]

यक्षी के अंकुशा नाम के कारण ही यक्षी के हाथ में अंकुश प्रदर्शित हुआ। ज्ञातव्य है कि जैन परम्परा की चौथी महाविद्या का नाम वज्रांकुशा है और उसके मुख्य आयुध वज्र एवं अंकुश है। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम (अनन्तमती) जिन (अनन्तनाथ) से प्रभावित है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में हंसवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके ऊपरी हाथों में शर एवं चाप और नीचे के हाथों में अभय-एवं कटक-मुद्रा प्रदर्शित है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मयूरवाहना यक्षी द्विभुजा है और वरदमुद्रा एवं पद्म से युक्त है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में हंसवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके हाथों में धनुष, बाण, फल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[3] प्रस्तुत विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं।[4] ये मूर्तियां क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकना में उत्कीर्ण हैं। देवगढ में अनन्तनाथ के साथ 'अनन्तवीर्या' नाम की सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[5] यक्षी की दाहिनी भुजा जानु पर स्थित है और बायीं में चामर प्रदर्शित है। बारभुजी गुफा में अनन्त के साथ अष्टभुजा यक्षी निरूपित है। यक्षी का वाहन सम्भवतः गर्दभ है। यक्षी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, कटार, शूल एवं खड्ग और वाम में दण्ड, वज्र, सनालपद्म, मुद्गर एवं खेटक प्रदर्शित है।[6] यक्षी का चित्रण परम्परासम्मत नहीं है। विमलवसही की अनन्तनाथ की मूर्ति में यक्षी अम्बिका है।

(१५) किन्नर यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

किन्नर जिन धर्मनाथ का यक्ष है। दोनों परम्परा के ग्रन्थों में किन्नर यक्ष को त्रिमुख और षड्भुज बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में किन्नर यक्ष का वाहन कूर्म है और उसके दाहिने हाथों में बीजपूरक, गदा, अभयमुद्रा एवं बायें में नकुल, पद्म, अक्षमाला का उल्लेख है।[7] अन्य ग्रन्थों में भी यही विशेषताएं वर्णित है।[8]

---

१ तथानन्तमती हेमवर्णा चैव चतुर्भुजा।
चापं बाणं फलं धत्ते वरदा हंसवाहना॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.४९

२ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६८; **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१४, पृ० ३४५; **अपराजितपृच्छा** २२१.२८

३ रामचन्द्रन, टी०एन०, **पू०नि०**, पृ० २०५

४ श्वेतांबर स्थलों पर वरदमुद्रा, शूल, अंकुश एवं फल से युक्त एक पद्मवाहना देवी का अंकन विशेष लोकप्रिय था। देवी की सम्भावित पहचान अंकुशा से की जा सकती है। पर इस देवी का महाविद्या समूह में अंकन यक्षी से पहचान में बाधक है।

५ **जि०इ०दे०**, पृ० १०३, १०६

६ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३१—लेखिका ने यक्षी को अष्टभुजा बताया है, पर वाम करों में पांच आयुधों का ही उल्लेख किया है।

७ किन्नरयक्षं त्रिमुखं रक्तवर्णं कूर्मवाहनं षड्भुजं बीजपूरकगदाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलपद्माक्षमालायुक्तवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१५

८ **त्रि०श०पु०च०** ४.५.१९७—९८; **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—**धर्मनाथ** १९—२०; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.३९; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में यक्ष का वाहन मीन (झष) है। ग्रन्थ में आयुधों का अनुल्लेख है।[1] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे यक्ष के दक्षिण करों मे मुद्गर, अक्षमाला, वरदमुद्रा एवं वाम मे चक्र, वज्र, अंकुश का उल्लेख है।[2] **अपराजितपृच्छा** मे यक्ष के करों मे पाश, अंकुश, धनुष, बाण, फल एव वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[3]

किन्नरों[4] की धारणा भारतीय परम्परा में काफी प्राचीन है। जैन परम्परा में किन्नर यक्ष का नाम प्राचीन परम्परा से ग्रहण किया गया पर उसकी लाक्षणिक विशेषताएं स्वतन्त्र हैं। ज्ञातव्य है कि जैन यक्षों की सूची में नाग, किन्नर, गरुड एवं गन्धर्व आदि नामों से प्राचीन भारतीय परम्परा के कई देवों को सम्मिलित किया गया, पर मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से उन सभी के स्वतन्त्र रूप निर्धारित किये गये।[5]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनों परम्परा के ग्रन्थों मे षड्भुज यक्ष का वाहन मीन है। दिगंबर ग्रन्थ में यक्ष त्रिमुख है और उसके दक्षिण करों में अक्षमाला, दण्ड, अभयमुद्रा एवं वाम में शक्ति, शूल, माला (या कटक) का वर्णन है। दोनों श्वेतांबर ग्रन्थों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप यक्ष मुद्गर, चक्र, वज्र, अक्षमाला, वरदमुद्रा एवं अंकुश से युक्त है।[6]

किन्नर यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। विमलवसही की देवकुलिका १ की धर्मनाथ की मूर्ति में यक्ष सर्वानुभूति का अंकन है।

(१५) कन्दर्पा (या मानसी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

कन्दर्पा (या मानसी) जिन धर्मनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे मत्स्यवाहना यक्षी को कन्दर्पा (या पन्नगा) और दिगंबर परम्परा मे व्याघ्रवाहना यक्षी को मानसी नामों से सम्बोधित किया गया है। दोनों परम्परा के ग्रन्थों मे यक्षी के दो हाथों मे अंकुश एवं पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे मत्स्यवाहना कन्दर्पा चतुर्भुजा है जिसके दाहिने हाथों में उत्पल और अंकुश तथा बायें मे पद्म और अभयमुद्रा का उल्लेख है।[7] अन्य ग्रन्थों मे भी यही आयुध वर्णित है।[8] पर **मन्त्राधिराजकल्प** मे तीन करों मे पद्म के प्रदर्शन का उल्लेख है।[9]

---

१ धर्मस्य किन्नरो यक्षस्त्रिमुखो मीनवाहनः।
षड्भुजः पद्मरागाभो जिनधर्मपरायणः ।। **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.५०

२ सचक्रवज्रांकुशवामपाणिः समुद्गराक्षालिवरान्यहस्तः।
प्रवालवर्णस्त्रिमुखो झषस्थो वज्रांकभक्तोऽचतु किन्नरोऽर्चयाम् ।। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१४३
प्रतिष्ठातिलकम् ७.१५, पृ० ३३५

३ किन्नरेशः पाशाङ्कुशौ धनुर्बाणौ फलंवरः। **अपराजितपृच्छा** २२१.५१

४ किन्नर मानव शरीर और अश्वमुख वाले होते हैं।

५ किन्नरों के नेता कुबेर है जिन्हे किंमीश्वर कहा गया है। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० १०९

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०५

७ कन्दर्पा देवी गौरवर्णां मत्स्यवाहनां चतुर्भुजां उत्पलांकुशयुक्त-दक्षिणकरां पद्माभययुक्तवामहस्तां चेति।
निर्वाणकलिका १८.१५

८ **त्रि०श०पु०च०** ४.५.१९९-२००, **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट-**धर्मनाथ** २०-२१; **आचारदिनकर** ३४,पृ०१७७, **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.४५

९ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.६०

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे षड्भुजा मानसी का वाहन व्याघ्र है। ग्रन्थ मे आयुधो का अनुल्लेख है।[1] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में यक्षी के दो हाथो में पद्म और शेष मे धनुष, वरदमुद्रा, अंकुश और बाण का उल्लेख है।[2] **अपराजितपृच्छा** में मानसी के करों में त्रिशूल, पाश, चक्र, डमरू, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[3]

यद्यपि मानसी का नाम १५वी महाविद्या मानसी से ग्रहण किया गया, पर यक्षी की लाक्षणिक विशेषताएं सर्वथा स्वतन्त्र हैं। स्मरणीय है कि किन्नर यक्ष एवं कन्दर्पा यक्षी दोनों ही के वाहन मत्स्य हैं। कन्दर्पा को हिन्दू देव कन्दर्प या काम से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता है।[4]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे सिंहवाहना मानसी चतुर्भुजा है और उसके दाहिने हाथों में अंकुश और शूल (या बाण) तथा बायें में पुष्प (या चक्र) और धनुष का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मृगवाहना (कृष्णसार) यक्षी चतुर्भुजा है और उसकी भुजाओं में शर, चाप, वरदमुद्रा एवं पद्म प्रदर्शित हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में व्याघ्र-वाहना यक्षी षड्भुजा है और उसके करों मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप पद्म, धनुष, वरदमुद्रा, अंकुश, बाण एवं उत्पल का उल्लेख है।[5]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली है। दिगंबर स्थलो से मिलने वाली ये मूर्तिया क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण है। देवगढ़ में धर्मनाथ के साथ 'सुरक्षिता' नाम की सामान्य स्वरूप वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[6] यक्षी के दाहिने हाथ मे पद्म है और बायां जानु पर स्थित है। बारभुजी गुफा मे धर्मनाथ की षड्भुजा यक्षी का वाहन उष्ट्र है। यक्षी के दाहिने हाथो में वरदमुद्रा, पिण्ड (या फल), तीन कांटो वाली वस्तु और बायें मे घण्टा, पताका एवं शंख प्रदर्शित है।[7] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नहीं है। एक मूर्ति ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के मण्डोवर के उत्तरी पार्श्व पर उत्कीर्ण है। चतुर्भुजा देवी का वाहन झष है और उसके करों में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म और फल प्रदर्शित है। झषवाहन और पद्म के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान धर्मनाथ की यक्षी से की जा सकती है।

(१६) गरुड यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गरुड[8] जिन शान्तिनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा में इसे वराहमुख बताया गया है।

---

१ देवता मानसी नाम्ना षड्भुजाविद्रुमप्रभा।
व्याघ्रवाहनमारूढा नित्यं धर्मानुरागिणी॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.५१

२ सांबुजधनुदानांकुशशरोत्पला व्याघ्रगा प्रवालनिभा। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१६९
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१५, पृ० ३४५

३ षड्भुजा रक्तवर्णा च त्रिशूलं पाशचक्रके।
डमरुर्वै फलवरे मानसी व्याघ्रवाहना॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.२९

४ भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० १३५

५ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०५

६ **जि०इ०दे०**, पृ० १०३, १०६

७ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३२

८ **मन्त्राधिराजकल्प** में यक्ष का वराह नाम से उल्लेख है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे चतुर्भुज गरुड वराहमुख है और उसका वाहन भी वराह है। गरुड के हाथों में बीजपूरक, पद्म, नकुल और अक्षसूत्र का वर्णन है।[1] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्ही लक्षणों के उल्लेख हैं।[2] कुछ ग्रन्थों मे गरुड का वाहन गज बताया गया है।[3] **मन्त्राधिराजकल्प** में नकुल के स्थान पर पाश के प्रदर्शन का निर्देश है।[4]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे वराह पर आरूढ चतुर्भुज गरुड के आयुधों का उल्लेख नहीं है।[5] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे चतुर्भुज गरुड का वाहन शुक (किटि) है और उसकी ऊपरी भुजाओं में वज्र एवं चक्र तथा निचली में पद्म एवं फल का वर्णन है।[6] **अपराजितपृच्छा** में शुकवाहन से युक्त गरुड के करो मे पाश, अंकुश, फल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[7]

गरुड यक्ष का नाम हिन्दू गरुड से प्रभावित है, पर उसका मूर्ति-विज्ञान-परक स्वरूप स्वतन्त्र है। दिगंबर परम्परा में चक्र का और **अपराजितपृच्छा** में पाश और अंकुश का उल्लेख सम्भवतः हिन्दू गरुड का प्रभाव है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे वृषभारूढ़ यक्ष को किंपुरुष नाम से सम्बोधित किया गया है। चतुर्भुज यक्ष के ऊपरी करो मे चक्र और शक्ति तथा निचली मे अभय-और-कटक-मुद्राओ का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे गरुड पर आरूढ चतुर्भुज यक्ष के करो मे वज्र, पद्म, चक्र एवं पद्म (या अभय-या-वरदमुद्रा) के प्रदर्शन का निर्देश है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे वराह पर आरूढ़ यक्ष के करो में वज्र, फल, चक्र, एवं पद्म वर्णित है।[9] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत की श्वेतांबर और उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा मे गरुड यक्ष के निरूपण मे पर्याप्त समानता है।

मूर्ति-परम्परा

बी० सी० भट्टाचार्य ने गरुड यक्ष की एक मूर्ति का उल्लेख किया है।[10] यह मूर्ति देवगढ़ दुर्ग के पश्चिमी द्वार के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। शूकर पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के करों मे गदा, अक्षमाला, फल एवं सर्प स्थित है।

शान्तिनाथ की मूर्तियों मे ल० आठवीं शती ई० मे ही यक्ष-यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हो गया। गुजरात एवं राजस्थान की शान्तिनाथ की मूर्तियों में यक्ष सदैव सर्वानुभूति है। पर उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश की मूर्तियों (१० वीं-

---

१ गरुडयक्षं वराहवाहनं क्रोडवदनं श्यामवर्णं चतुर्भुजं बीजपूरकपद्मयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकाक्षसूत्रवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१६

२ **त्रि०श०पु०च०** ५ ५.३७३–७४, **पद्मानन्दमहाकाव्यः** परिशिष्टः–**शान्तिनाथ** ४५९–६०; **शान्तिनाथमहाकाव्य** (मुनिभद्रकृत) १५.१३१; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७४; **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.४६

३ **त्रि०श०पु०च०**, **पद्मानन्दमहाकाव्य** एवं **शान्तिनाथमहाकाव्य**।

४ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.४०

५ गरुडो (नाम) तो यक्षः शान्तिनाथस्य कीर्तितः।
वराहवाहनः श्यामो चक्रवज्रश्चतुर्भुज ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५ ५२

६ वक्रानघोऽधस्तनहस्तपद्म फलान्यहस्तार्पितवज्रचक्रः।
मृगध्वजर्हित्प्रणतः सपर्यां श्याम. किटिस्थो गरुडोभ्युपैतु ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१४४
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१६, पृ० ३३६

७ पाशाङ्कुशलफलवरो गरुडः स्याच्छुकासनः। **अपराजितपृच्छा** २२१.५२

८ हिन्दू शिल्पशास्त्रों मे गरुड के करो में चक्र, खड्ग, मुसल, अंकुश, शंख, शारंग, गदा एवं पाश आदि के प्रदर्शन का उल्लेख है। द्रष्टव्य, बनर्जी, जे०एन०, **पू०नि०**, पृ० ५३२–३३

९ रामचन्द्रन, टी०एन०, **पू०नि०**, पृ० २०५–२०६

१० भट्टाचार्य, बी०सी, **पू०नि०**, पृ० ११०

१२ वी शती ई०) मे शान्तिनाथ के साथ कभी-कभी स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष का भी निरूपण हुआ है।[1] जिन-संयुक्त मूर्तियों मे यक्ष का पारम्परिक स्वरूप में अंकन नही मिलता है। यक्ष का कोई स्वतन्त्र स्वरूप भी स्थिर नही हो सका। दिगंबर स्थलों पर यक्ष के करों में पद्म के अतिरिक्त परशु, गदा, दण्ड एवं धन के थैले का प्रदर्शन हुआ है।

पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा की ल० आठवी शती ई० की एक मूर्ति (बी ७५) में द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति (१० वी शती ई०) में चतुर्भुज यक्ष के करों में फल, पद्म, परशु एवं धन का थैला प्रदर्शित हैं। देवगढ़ की दसवी-ग्यारहवी शती ई० की पांच मूर्तियों मे सामान्य लक्षणो वाला द्विभुज यक्ष आमूर्तित है। इनमे यक्ष के हाथों मे गदा एवं फल (या धन का थैला) हैं। दो उदाहरणों मे यक्ष चतुर्भुज है।[2] एक में यक्ष के करो में गदा, परशु, पद्म एवं फल है, और दूसरे मे अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र। खजुराहो के मन्दिर १ की शान्तिनाथ की मूर्ति (१०२८ ई०) में यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथो मे दण्ड, पद्म, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं। खजुराहो एवं इलाहाबाद संग्रहालय (क्रमांक ५३३) की तीन मूर्तियो में द्विभुज यक्ष फल (या प्याला) और धन के थैले से युक्त है (चित्र १९)।

(१६) निर्वाणी (या महामानसी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

निर्वाणी (या महामानसी) जिन शान्तिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा निर्वाणी पद्मवाहना और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा महामानसी मयूर-(या गरुड-) वाहना है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे पद्मवाहना निर्वाणी के दाहिने हाथो मे पुस्तक एवं उत्पल और बायें मे कमण्डलु एव पद्म वर्णित है।[3] अन्य ग्रन्थों मे भी इन्ही लक्षणों के उल्लेख हैं।[4] पर **मन्त्राधिराजकल्प** मे पद्म के स्थान पर वरदमुद्रा[5] और **आचारदिनकर** मे पुस्तक के स्थान पर कल्हार (?)[6] के उल्लेख हे।

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे मयूरवाहना महामानसी के हाथो मे फल, सर्प, चक्र एवं वरदमुद्रा उल्लिखित है।[7] समान लक्षणों का उल्लेख करने वाले अन्य ग्रन्थो मे सर्प के स्थान पर इंढ़ (या ढडी-खड्ग ?) का वर्णन है।[8] **अपराजितपृच्छा** मे महामानसी का वाहन गरुड है और उसके करों मे बाण, धनुष, वज्र एवं चक्र वर्णित है।[9]

निर्वाणी के साथ पद्मवाहन एवं करो मे पद्म, पुस्तक और कमण्डलु का प्रदर्शन निश्चित ही सरस्वती का प्रभाव है। दिगंबर परम्परा मे यक्षी के साथ मयूरवाहन का निरूपण भी सरस्वती का ही प्रभाव है।[10] दिगंबर परम्परा मे

१ कुछ उदाहरणों मे यक्ष के रूप में सर्वानुभूति भी निरूपित हैं।

२ ग्यारहवी शती ई० की ये मूर्तियां मन्दिर ८ और मन्दिर १२ (पश्चिमी चहारदीवारी) पर है।

३ निर्वाणी देवीं गौरवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां पुस्तकोत्पलयुक्तदक्षिणकरां कमण्डलुकमलयुतवामहस्तां चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१६

४ **त्रि०श०पु०च०** ५.५.३७५-७६; **पद्मानन्दमहाकाव्य:** परिशिष्ट—**शान्तिनाथ** ४६०-६१; **शान्तिनाथमहाकाव्य** १५.१३२

५ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.६१

६ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७

७ सुमहामानसी देवी हेमवर्णा चतुर्भुजा।
फलाहिचक्रहस्तासौ वरदा शिखिवाहना॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.५३

८ चक्रफलेढिरांकितकरां महामानसी सुवर्णाभाम्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१७०
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्**, ७.१६, पृ० ३४५

९ चतुर्भुजा सुवर्णाभा शरः शार्ङ्गंच वज्रकम्।
चक्रं महामानसीस्यात् पक्षिराजोपरिस्थिता॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.३०

१० महामानसी का शाब्दिक अर्थ विद्या या ज्ञान की प्रमुख देवी है। सम्भवतः इसी कारण महामानसी के साथ सरस्वती का मयूर वाहन प्रदर्शित किया गया। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी०सी०, **पू०नि०**, पृ० १३७

महामानसी का नाम १६ वी महाविद्या महामानसी से ग्रहण किया गया, पर देवी की लाक्षणिक विशेषताएं महाविद्या से भिन्न हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में मयूरवाहना महामानसी चतुर्भुजा है और उसकी ऊपरी भुजाओ में वर्छी (डार्ट) एवं चक्र और निचली मे अभय-एवं-कटक मुद्राएं वर्णित है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मकरवाहना यक्षी के करों में खड्ग, खेटक, शक्ति एवं पाश के प्रदर्शन का निर्देश है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप मयूरवाहना यक्षी को फल, खड्ग, चक्र एवं वरदमुद्रा से युक्त निरूपित किया गया है।[1]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली है। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के यक्षी समूहों में उत्कीर्ण है। देवगढ़ मे शान्तिनाथ के साथ 'श्रीयादेवी' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[2] यक्षी का वाहन महिष है और उसके हाथो मे खड्ग, चक्र, खेटक एवं परशु प्रदर्शित है। यक्षी का निरूपण श्वेतांबर परम्परा की छठी महाविद्या नरदत्ता (या पुरुषदत्ता) से प्रभावित है।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे यक्षी द्विभुजा है और ध्यानमुद्रा में पद्म पर विराजमान है। यक्षी के दोनो हाथो में सनाल पद्म प्रदर्शित है। शीर्षभाग में देवी का अभिषेक करती हुई दो गज आकृतियां भी उत्कीर्ण है।[4] यक्षी का निरूपण पूर्णतः अभिषेकलक्ष्मी से प्रभावित है।

शान्तिनाथ की मूर्तियो मे ल० आठवी शती ई० मे यक्षो का अकन प्रारम्भ हुआ। गुजरात एवं राजस्थान के श्वेताबर स्थलों की जिन-संयुक्त मूर्तियों मे यक्षी के रूप मे सर्वदा अम्बिका निरूपित है। पर देवगढ, ग्यारसपुर एवं खजुराहो जैसे दिगबर स्थलो की मूर्तियो (१०वी-१२वी शती ई०) मे स्वतन्त्र लक्षणो वाली यक्षी आमूर्तित है।[5] मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) की मूर्ति (१०वी शती ई०) मे स्वतन्त्र रूपवाली यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करो में अभयाक्ष, पद्म, पद्म एवं मातुलिंग प्रदर्शित है। देवगढ़ की तीन मूर्तियो मे सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी के हाथो मे अभयमुद्रा एवं कलश (या फल) है। देवगढ के मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की दो मूर्तियां (११ वीं शती ई०) में चतुर्भुजा यक्षी के करो मे अभयमुद्रा, पद्म, पुस्तक एवं जलपात्र प्रदर्शित है। खजुराहो के मन्दिर १ की मूर्ति मे चतुर्भुजा यक्षी अभयमुद्रा, चक्राकार सनाल पद्म, पद्म-पुस्तक एवं जलपात्र मे युक्त है। खजुराहो के स्थानीय संग्रहालय की दो मूर्तियो मे सामान्य लक्षणोवाली द्विभुजा यक्षी का दाहिना हाथ अभयमुद्रा मे तथा बाया कार्मुक धारण किये हुए या जानु पर स्थित है।

विश्लेषण

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि शिल्प मे यक्षी का पारम्परिक स्वरूप मे अंकन नही किया गया। स्वतन्त्र लक्षणो वाली यक्षी के निरूपण का प्रयास भी केवल दिगंबर स्थलो की ही कुछ जिन-संयुक्त मूर्तियों मे दृष्टिगत होता है। ऐसी मूर्तियां देवगढ, ग्यारसपुर एवं खजुराहो से मिली है। स्वतन्त्र लक्षणो वाली चतुर्भुजा यक्षी के दो हाथों में दो पद्म, या एक मे पद्म और दूसरे में पुस्तक प्रदर्शित है। दिगंबर स्थलों पर यक्षी के करो मे पद्म एवं पुस्तक का प्रदर्शन श्वेतांबर प्रभाव है।

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०६

२ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०६

३ महाविद्या नरदत्ता का वाहन महिष है और उसके मुख्य आयुध खड्ग एवं खेटक है।

४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२

५ मथुरा एवं इलाहाबाद संग्रहालयो तथा देवगढ (मन्दिर ८) की तीन मूर्तियो मे यक्षी अम्बिका है।

(१७) गन्धर्व यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गन्धर्व जिन कुंथुनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा मे गन्धर्व का वाहन हंस और दिगंबर परम्परा में पक्षी (या शुक) है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में चतुर्भुज गन्धर्व का वाहन हंस है और उसके दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं पाश और बायें में मातुलिंग एवं अंकुश है।[1] अन्य ग्रन्थों में भी इन्ही आयुधों के उल्लेख हैं।[2] **आचारदिनकर** में यक्ष का वाहन सितपत्र है।[3] **देवतामूर्तिप्रकरण** में पाश के स्थान पर नागपाश एवं वाहन के रूप में सिंह (?) का उल्लेख है।[4]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** के अनुसार चतुर्भुज गन्धर्व पक्षियान पर आरूढ है। ग्रन्थ में आयुधों का अनुल्लेख है।[5] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में पक्षियान पर आरूढ़ गन्धर्व के करों मे सर्प, पाश, बाण और धनुष वर्णित हैं।[6] **अपराजितपृच्छा** मे वाहन शुक है और हाथों के आयुध पद्म, अभयमुद्रा, फल एवं वरदमुद्रा है।[7]

जैन गन्धर्व की मूर्तिविज्ञानपरक विशेषताएं जैनों की मौलिक कल्पना है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे मृग पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के दो हाथों में सर्प और शेष मे शर (या शूल) एवं चाप प्रदर्शित है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में रथ पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के करो मे शर, चाप, पाश एवं पाश का वर्णन है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे पक्षियान पर अवस्थित यक्ष के हाथों में शर, चाप, पाश एवं पाश है।[9] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारत के श्वेतांबर परम्परा के विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान हैं।[10]

गन्धर्व यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। कुंथुनाथ की दो मूर्तियों में भी पारम्परिक यक्ष के स्थान पर सर्वानुभूति निरूपित है। ये मूर्तियां क्रमशः राजपूताना संग्रहालय, अजमेर एवं विमलवसही की देवकुलिका ३५ मे हैं।

---

१ गन्धर्वयक्षं श्यामवर्णं हंसवाहनं चतुर्भुजं वरदपाशान्वितदक्षिणभुजं मातुलिंगांकुशाधिष्ठितवामभुजं चेति।
निर्वाणकलिका १८.१७

२ **त्रि०श०पु०च०** ६.१.११६–१७; **पद्मानन्दमहाकाव्यः** परिशिष्ट–**कुन्थुनाथ** १८–१९; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.४१

३ **आचारदिनकर** ३३, पृ० १७५

४ कुन्थनाथस्य गन्ध(र्वोहिस ? र्वः सिह) स्थः श्यामवर्णभाक्।
वरदं नागपाशं चांकुशं वै बीजपूरकम्॥ **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.४८

५ कुंथुनाथ जिनेन्द्रस्य यक्षो गन्धर्व संज्ञकः।
पक्षियान समारूढ़ः श्यामवर्णः चतुर्भुजः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.५४

६ सनागपाशोर्ध्वकरद्वयोयः करद्वयात्तेषुधनुः सुनीलः।
गन्धर्वयक्षः स्तम्भकेतुभक्तः पूजामुपैतुश्रितपक्षियानः॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१४५
ऊर्द्धद्विहस्तोद्धृतनागपाशमधोद्विहस्तस्थितचापबाणम्। **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१७, पृ० ३३६

७ पद्माभयफलवरो गन्धर्वः **स्याच्छुकासनः।** **अपराजितपृच्छा** २२१.५२

८ जैन, शशिकान्त, 'सम कामन एलिमेन्ट्स इन दि जैन ऐण्ड हिन्दू पैन्थिआन्स–I–यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', **जैन एण्टि०**, खं० १८, अं० १, पृ० २१

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०६

१० दक्षिण भारत के ग्रन्थों में सर्प के स्थान पर पाश का उल्लेख है।

(१७) बला (या जया) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

बला (या जया) जिन कुंथुनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा बला[1] मयूरवाहना और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा जया शूकरवाहना है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में मयूरवाहना बला के दाहिने हाथों में बीजपूरक एवं शूल और बायें में मुषुण्ढि (या मुषढी)[2] एवं पद्म का वर्णन है।[3] **आचारदिनकर** एवं **देवतामूर्तिप्रकरण** में शूल के स्थान पर त्रिशूल का उल्लेख है।[4] **आचारदिनकर** में दोनों वाम करों में मुषण्ढि के प्रदर्शन का निर्देश है। **मन्त्राधिराजकल्प** में मुषुण्ढि के स्थान पर दो करों में पद्म का उल्लेख है।[5]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में शूकरवाहना जया के हाथों में शंख, खड्ग, चक्र एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[6] **अपराजितपृच्छा** में जया को षड्भुजा बताया गया है और उसके हाथों में वज्र, चक्र, पाश, अंकुश, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

बला के साथ मयूरवाहन एवं शूल का प्रदर्शन हिन्दू कौमारी या जैन महाविद्या प्रज्ञप्ति का प्रभाव है। जया के निरूपण में शूकरवाहन एवं हाथों में शंख, खड्ग और चक्र का प्रदर्शन हिन्दू वाराही या बौद्ध मारीची से प्रभावित हो सकता है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहना है। यक्षी के दो ऊपरी हाथों में चक्र और शेष में अभयमुद्रा एवं खड्ग का उल्लेख है। आयुधों के सन्दर्भ में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा का प्रभाव दृष्टिगत होता है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्विभुजा यक्षी का वाहन हंस है और उसके हाथों में वरदमुद्रा एवं नीलोत्पल वर्णित है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में कृष्ण शूकर पर आरूढ़ चतुर्भुजा यक्षी के करों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान ही शंख, खड्ग, चक्र एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[9]

---

१ श्वेतांबर परम्परा में यक्षी का अच्युता एवं गांधारिणी नामों से भी उल्लेख हुआ है।

२ मुषुण्ढी स्याद् दारुमयी वृत्ताय- कीलसंचिता-इति हैमकोशे—**निर्वाणकलिका**, पृ० ३५। अर्थात् मुषुण्ढी काष्ठ निर्मित है जिसमें लोहे की कीलें लगी होती हैं।

३ बला देवीं गौरवर्णां मयूरवाहनां चतुर्भुजां बीजपूरकशूलान्वितदक्षिणभुजां मुषुण्ढिपद्मान्वितवामभुजां चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१७, द्रष्टव्य, **त्रि०श०पु०च०** ७.१.११८–१९, **पद्मानन्दमहाकाव्य–परिशिष्ट–कुन्थुनाथ** १९–२०

४ शिखिगा सुचतुर्भुजार्जुतपीता फलपूर दधतीत्रिशूलयुक्तम्।
करयोरपसव्ययोश्च सव्यं करयुग्मे तु भृशुण्ढिभृद्बलाऽव्यात्॥ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७
गौरवर्णा मयूरस्था बीजपूरत्रिशूलिने।
(पद्मभुषंधिका ?) चैव स्याद् बला नाम यक्षिणी॥ **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.४९

५ गान्धारिणी शिखिगतिः कील बीजपूरशूलान्वितोत्पलयुग्-द्विकरेन्दुगौरा। **मन्त्राधिराजकल्प** ३.६१

६ जयदेवी सुवर्णाभा कृष्णशूकरवाहना।
सशंखासिचक्रहस्ताभौ वरदाधर्मवत्सला॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.५५
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१७१, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१७, पृ० ३४५

७ वज्रचक्रे पाशांकुशौ फलं च वरदं जया।
कनकाभा षड्भुजा च कृष्णशूकरसंस्थिता॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.३१

८ भट्टाचार्य, बी०सी०, **पू०नि०**, पृ० १३८

९ रामचन्द्रन, टी०एन०, **पू०नि०**, पृ० २०६

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तिया देवगढ़ (मन्दिर १२,८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों मे उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में कुंथुनाथ के साथ चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[1] यक्षी के तीन करो मे चक्र (छल्ला), पद्म एवं नरमुण्ड प्रदर्शित है और एक कर जानु पर स्थित है। यक्षी का वाहन नर है जो देवी के समीप भूमि पर लेटा है। ज्ञातव्य है कि श्वेतांबर परम्परा की ८वी महाविद्या महाकाली को नरवाहना बताया गया है। पर यक्षी के आयुध महाविद्या महाकाली से पूर्णतः भिन्न हैं। अतः नरवाहन और करो मे नरमुण्ड तथा चक्र के प्रदर्शन के आधार पर हिन्दू महाकाली या चामुण्डा का प्रभाव स्वीकार करना अधिक उपयुक्त होगा।[2] बारभुजी गुफा की मूर्ति में कुंथु की दशभुजा यक्षी महिषवाहना है। यक्षी के दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, दण्ड, अंकुश (?), चक्र एवं अक्षमाला (?) और वाम मे तीन कांटों वाला आयुध (त्रिशूल), चक्र, शंख (?), पद्म एवं कलश प्रदर्शित है।[3] राजपूताना संग्रहालय, अजमेर एवं विमलवसही (देवकुलिका ३५) की कुंथुनाथ की मूर्तियों में यक्षी अम्बिका है।

(१८) यक्षेन्द्र (या खेन्द्र) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

यक्षेन्द्र (या खेन्द्र) जिन अरनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं मे षण्मुख, द्वादशभुज एवं त्रिनेत्र यक्षेन्द्र का वाहन शंख बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे शंख पर आरूढ़ यक्षेन्द्र के दक्षिण करो मे मातुलिंग, बाण, खड्ग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा और वाम मे नकुल, धनुष, खेटक, शूल, अंकुश, अक्षसूत्र का वर्णन है।[4] **पद्मानन्दमहाकाव्य** मे वाम करो मे केवल पाच ही आयुधो के उल्लेख हैं जो चक्र, धनुष, शूल, अंकुश एवं अक्षसूत्र है।[5] **मन्त्राधिराजकल्प** में यक्ष को वृषभारूढ़ कहा गया है और उसके एक दाहिने हाथ मे पाश के स्थान पर शूल का उल्लेख है।[6] **आचारदिनकर** मे खेटक के स्थान पर स्फर मिलता है।[7] **देवतामूर्तिप्रकरण** मे यक्षेन्द्र का वाहन शेष है और उसके एक हाथ मे बाण के स्थान पर कपाल (शिरस्) के प्रदर्शन का निर्देश है।[8]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे शंखवाहन से युक्त खेन्द्र के करों के आयुधो का अनुल्लेख है।[9] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे यक्ष के बायें हाथों में धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश और वरदमुद्रा वर्णित हैं। दाहिने हाथो के केवल तीन ही आयुधो का उल्लेख है जो बाण, पद्म एवं फल है।[10] **प्रतिष्ठातिलकम्** में दक्षिण करो मे बाण, पद्म एवं अरुफल के

१ जि०इ०दे०, पृ० १०३

२ राव, टी०ए० गोपीनाथ, **पू०नि०**, पृ० ३५८,३८६

३ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३२

४ यक्षेन्द्रयक्षं षण्मुखं त्रिनेत्रं श्यामवर्णं शंखवाहनं द्वादशभुजं मातुलिंगबाणखड्गमुद्गरपाशाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलधनुश्चर्मफलकशूलांकुशाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१८; द्रष्टव्य, **त्रि०श०पु०च०** ६.५.९७–९८

५ **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट–अरनाथ १७–१८

६ यक्षोऽसितो वृषगतिः शरमातुलिंग शूलाभयासिकलमुद्गरपाणिषट्कः।शूलांकुशस्त्रगहिवैरिधनूंषि बिभ्रद् वामेषु खेटकयुतानि हितानि दद्यात्। **मन्त्राधिराजकल्प** ३.४२

७ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७५

८ **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.५०–५१

९ अरस्यजिननाथस्य खेन्द्रो यक्षस्त्रिलोचनः।
द्वादशोरुभुजाः श्यामः षण्मुखः शंखवाहनः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.५६

१० आरभ्योपरिमात्करेषु कलयन् वामेषु चापं पविं पाशं मुद्गरमंकुशं च वरदः षष्ठेन युंजन् परैः।
बाणांभोजफलस्त्रगच्छपटलीलीलाविलासास्त्रिदृक् षड्वक्त्रेष्टगरांकभक्तिरसितः खेन्द्रोर्च्यते शंखगः॥
प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४६

साथ ही माला (पुष्पहार), अक्षमाला एवं लीलामुद्रा के प्रदर्शन का उल्लेख है।[1] अपराजितपृच्छा में यक्षेश षड्भुज है और उसका वाहन खर है। यक्ष के करों में वज्र, चक्र (अरि), धनुष, बाण, फल एव वरदमुद्रा का वर्णन है।[2]

यक्ष के निरूपण मे हिन्दू कार्तिकेय एवं इन्द्र के संयुक्त प्रभाव देखे जा सकते हैं। यक्ष का षण्मुख होना कार्तिकेय का और दिगंबर परम्परा में यक्ष की भुजाओं में वज्र एवं अंकुश का प्रदर्शन इन्द्र का प्रभाव दरशाता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में षण्मुख एवं द्वादशभुज खेन्द्र का वाहन मयूर है। ग्रन्थ में केवल छह हाथों के आयुध वर्णित हैं। यक्ष के दो हाथ गोद में है और अन्य चार मे कमान (क्रुक), उरग तथा अभय-और-कटक मुद्राओ का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे द्विभुज यक्ष का नाम जय है और उसके हाथों के आयुध त्रिशूल एवं दण्ड हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में द्वादशभुज यक्ष के करों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान कार्मुक, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश, वरदमुद्रा, शर, पद्म, फल, स्रुक, पुष्पहार एवं अक्षमाला वर्णित है।[3]

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की एक अरनाथ की मूर्ति (जे ८६१, १०वी शती ई०) मे द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है।

(१८) धारणी (या तारावती) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

धारणी (या तारावती) जिन अरनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा धारणी (या काली) का वाहन पद्म है और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा तारावती (या विजया) का वाहन हंस है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे पद्मवाहना धारणी के दाहिने हाथों मे मातुलिंग एवं उत्पल और बायें में पाश एवं अक्षसूत्र का वर्णन है।[4] अन्य सभी ग्रन्थो मे पाश के स्थान पर पद्म का उल्लेख है।[5]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में हंसवाहना तारावती के करो मे सर्प, वज्र, मृग एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[6] अन्य ग्रन्थों मे भी इन्ही लक्षणो के उल्लेख हैं।[7] केवल **अपराजितपृच्छा** में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसके दो हाथो मे मृग एवं वरदमुद्रा के स्थान पर चक्र एवं फल के प्रदर्शन का निर्देश है।[8] तारावती का स्वरूप, नाम एवं सर्प के प्रदर्शन के सन्दर्भ मे, बौद्ध तारा से प्रभावित प्रतीत होता है।[9]

---

१ बाणांबुजोरुफलमाल्यमहाक्षमालालीलायजाम्यरमितं त्रिदशं च खेन्द्रं। **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१८, पृ० ३३६

२ यक्षेट् खरस्थो वज्रारिधनुर्बाणाः फल वरः। **अपराजितपृच्छा** २२१.५३

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०६–२०७

४ धारणी देवी कृष्णवर्णा चतुर्भुजा मातुलिंगोत्पलान्वितदक्षिणभुजां पाशाक्षसूत्रान्वितवामकरां चेति।
निर्वाणकलिका १८.१८

५ **त्रि०श०पु०च०** ६.५.९९–१००; **पद्मानन्दमहाकाव्य** परिशिष्ट—**अरनाथ** १९; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७; **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.५२

६ देवी तारावती नाम्ना हेमवर्णाश्चतुर्भुजा।
सर्पवज्रं मृगं धत्ते वरदा हंसवाहना॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.५७

७ स्वर्णाभां हंसगां सर्पमृगवज्रवरोद्धराम्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१७२; द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१८, पृ० ३४६

८ सिंहासना चतुर्बाहुर्वज्रचक्रफलोरगाः।
तेजोवती स्वर्णवर्णा नाम्ना सा विजयामता॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.३२

९ भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० १३९

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन हंस है और उसकी ऊपरी भुजाओं में सर्प एवं निचली में अभयमुद्रा एवं शक्ति का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में वृषभवाहना यक्षी (विजया) षण्मुखा एवं द्वादशभुजा है जिसके करों में खड्ग, खेटक, शर, चाप, चक्र, अंकुश, दण्ड, अक्षमाला, वरदमुद्रा, नीलोत्पल, अभयमुद्रा और फल का वर्णन है। यक्षी का स्वरूप यक्षेन्द्र (१८वां यक्ष) से प्रभावित है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में हंसवाहना विजया चतुर्भुजा है और उसके हाथों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान सर्प, वज्र, मृग एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[1]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के समूहों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में अरनाथ के साथ 'तारादेवी' नाम की द्विभुजा यक्षी निरूपित है।[2] यक्षी की दाहिनी भुजा जानु पर स्थित है और बायीं में पद्म है। बारभुजी गुफा की मूर्ति में भी यक्षी द्विभुजा है और उसका वाहन सम्भवतः गज है। यक्षी के करों में वरदमुद्रा एवं सनाल पद्म प्रदर्शित हैं।[3] उपर्युक्त दोनों मूर्तियों में यक्षी की एक भुजा में पद्म का प्रदर्शन श्वेतांबर परम्परा से निर्देशित हो सकता है।[4] स्मरणीय है कि दोनों मूर्तियां दिगंबर स्थलों से मिली हैं। राज्य सग्रहालय, लखनऊ की जिन-संयुक्त मूर्ति में द्विभुज यक्षी सामान्य लक्षणों वाली है।

(१९) कुबेर यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

कुबेर (या यक्षेश) जिन मल्लिनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में गजारूढ यक्ष को चतुर्मुख एवं अष्टभुज बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में गरुडवदन[5] कुबेर का वाहन गज है और उसके दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, परशु, शूल एवं अभयमुद्रा तथा बायें में बीजपूरक, शक्ति, मुद्गर एवं अक्षसूत्र का उल्लेख है।[6] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों का वर्णन है।[7] **मन्त्राधिराजकल्प** में कुबेर को चतुर्मुख नहीं कहा गया है। **देवतामूर्तिप्रकरण** में रथारूढ़ कुबेर के केवल छह ही हाथों के आयुधों का उल्लेख है; फलस्वरूप शूल एवं अक्षसूत्र का अनुल्लेख है।[8]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में गजारूढ यक्षेश के आयुधों का अनुल्लेख है।[9] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में कुबेर के हाथों में फलक, धनुष, दण्ड, पद्म, खड्ग, बाण, पाश एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[10] **अपराजितपृच्छा**

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०७ २ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०६

३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२ ४ पद्म का प्रदर्शन बौद्ध तारा का प्रभाव भी हो सकता है।

५ केवल **निर्वाणकलिका** में ही यक्ष को गरुडवदन कहा गया है।

६ कुबेरयक्षं चतुर्मुखमिन्द्रायुधवर्णं गरुडवदनं गजावाहनं अष्टभुजं वरदपरशुशूलाभययुक्तदक्षिणपाणिं बीजपूरकशक्तिमुद्-गराक्षसूत्रयुक्त-वामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१९
(पा०टि० के अनुसार मूल ग्रन्थ में वरद, पाश एवं चाप के उल्लेख हैं।)

७ त्रि०श०पु०च० ६.६.२५१–५२, **पद्मानन्दमहाकाव्य–परिशिष्ट–मल्लिनाथ** ५८–५९; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.४३; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७५, **मल्लिनाथचरित्रम्** (विनयचन्द्रसूरिकृत) ७.११५४–११५६

८ **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.५३

९ मल्लिनाथस्य यक्षेश. कुबेरो हस्तिवाहनः।
सुरेन्द्रचापवर्णोसावष्टहस्तश्चतुर्मुखः ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.५८

१० सफलकधनुर्दण्डपद्म खड्गप्रदरसुपाशवरप्रदाष्टपाणिम्।
गजगमनचतुर्मुखेन्द्र चापद्युतिकलशांकनतं यजेकुबेरम्॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१४७
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.१९, पृ० ३३७

में यक्ष को चतुर्भुज और सिंह पर आरूढ़ बताया गया है और उसके करों मे पाश, अंकुश, फल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[1]

कुबेर के निरूपण में नाम, गजवाहन एवं मुद्‌गर के सन्दर्भ मे हिन्दू कुबेर का प्रभाव देखा जा सकता है।[2] पर जैन कुबेर की मूर्तिविज्ञानपरक दूसरी विशेषताएं स्वतन्त्र एवं मौलिक है।[3]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनों परम्परा के ग्रन्थों मे अष्टभुज कुबेर का वाहन गज है। दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्मुख यक्ष के दक्षिण करों मे खड्‌ग, शूल, कटार और अभयमुद्रा तथा वाम में शर, चाप, बर्छी (या गदा) और कटक-मुद्रा (या कोई अन्य आयुध) के प्रदर्शन का विधान है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ के अनुसार चतुर्मुख कुबेर खड्‌ग, खेटक, बाण, धनुष, मातुलिंग, परशु, वरदमुद्रा और दण्डमुद्रा (?) से युक्त है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में यक्ष के करों में खड्‌ग, खेटक, शर, चाप, पद्म, दण्ड, पाश एव वरदमुद्रा वर्णित है।[4] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्पराएं उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

कुबेर यक्ष की कोई स्वतन्त्र या जिन-संयुक्त मूर्ति नहीं मिली है।

(१९) वैरोट्या (या अपराजिता) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

वैरोट्या (या अपराजिता) जिन मल्लिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा वैरोट्या[5] का वाहन पद्म है और दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुजा अपराजिता का वाहन शरभ (या अष्टापद) है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे पद्मवाहना वैरोट्या के दाहिने हाथो मे वरदमुद्रा एवं अक्षसूत्र और बायें मे मातुलिंग एवं शक्ति का वर्णन है।[6] अन्य ग्रन्थो मे भी इन्हीं आयुधो के उल्लेख हैं।[7]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में अपराजिता का वाहन अष्टापद (शरभ) है और उसके तीन हाथों में फल, खड्‌ग एवं खेटक का उल्लेख है, चौथी भुजा की सामग्री का अनुल्लेख है।[8] अन्य ग्रन्थों मे शरभवाहना यक्षी की चौथी भुजा मे वरदमुद्रा वर्णित है।[9]

---

१ पाशाङ्कुशफलवरा धनेन्द्र सिंहे चतुर्मुखः। **अपराजितपृच्छा** २२१.५३

२ भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० ११३

३ जैन कुबेर के हाथ मे धन के थैले (नकुल के चर्म से निर्मित) का न प्रदर्शित किया जाना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ज्ञातव्य है कि धन के थैले एव अंकुश और पाश से युक्त गजारूढ़ यक्ष का उल्लेख नेमिनाथ के सर्वानुभूति यक्ष के रूप मे किया गया है क्योकि नेमिनाथ की मूर्तियो मे अम्बिका के साथ यही यक्ष निरूपित है।

४ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०७

५ **मन्त्राधिराजकल्प** एव **देवतामूर्तिप्रकरण** मे यक्षी को क्रमशः वनजात देवी और धरणप्रिया नामो से सम्बोधित किया गया है।

६ वैरोट्यां देवी कृष्णवर्णां पद्मासना चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां मातुलिंगशक्तियुक्तवामहस्तां चेति। **निर्वाणकलिका** १८.१९

७ **त्रि०श०पु०च०** ६.६ २५३-५४; **पद्मानन्दमहाकाव्य**: परिशिष्ट—**मल्लिनाथ** ६०-६१; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.६२; **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.५४; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७

८ अष्टापदं समारूढा देवी नाम्नाऽपराजिता।
फलासिखेटहस्तासौ हरिद्वर्णा चतुर्भुजा॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.५९

९ शरभस्थार्च्यते खेटफलासिवरयुक् हरित्॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१७३
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७ १९, पृ० ३४६; **अपराजितपृच्छा** २२१.३३

यक्षी वैरोट्या का नाम निश्चित ही १३वीं महाविद्या वैरोट्या से ग्रहण किया गया है, पर यक्षी की लाक्षणिक विशेषताएं महाविद्या से पूरी तरह भिन्न हैं। जैन परम्परा में महाविद्या वैरोट्या को नागेन्द्र धरण की प्रमुख रानी बताया गया है। **आचारदिनकर** एवं **देवतामूर्तिप्रकरण** में यक्षी वैरोट्या को भी क्रमशः नागाधिप की प्रियतमा और धरणप्रिया कहा गया है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा अपराजिता का वाहन हंस है और उसके ऊपरी हाथों में खड्ग एवं खेटक और निचले मे अभय-एवं-कटक मुद्राए वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ के अनुसार लोमड़ी पर आसीन यक्षी द्विभुजा और वरदमुद्रा एवं सतर (पुष्प) से युक्त है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप शरभवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करो मे फल, खड्ग, फलक एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[१]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली है। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के यक्षी समूहो में उत्कीर्ण हैं। देवगढ मे मल्लिनाथ के साथ 'हीमादेवी' नाम की सामान्य स्वरूप वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[२] यक्षी के दक्षिण हाथ मे कलश है और वाम भुजा जानु पर स्थित है। बारभुजी गुफा की मूर्ति में अष्टभुजा यक्षी का वाहन कोई पशु (सम्भवतः अश्व) है तथा उसके दक्षिण करो मे वरदमुद्रा, शक्ति, बाण, खड्ग और वाम मे शंख (?), धनुष, खेटक, पताका प्रदर्शित है।[३] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नही है।

(२०) वरुण यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

वरुण जिन मुनिसुव्रत का यक्ष है। दोनो परम्पराओ मे वृषभारूढ वरुण को जटामुकुट से युक्त और त्रिनेत्र बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में वरुण यक्ष को चतुर्मुख एवं अष्टभुज कहा गया है तथा वृषभारूढ़ यक्ष के दाहिने हाथो में मातुलिंग, गदा, बाण, शक्ति एवं बायें मे नकुलक, पद्म, धनुष, परशु का उल्लेख है।[४] दो ग्रन्थों मे पद्म के स्थान पर अक्षमाला का उल्लेख है।[५] **मन्त्राधिराजकल्प** मे वरुण को चतुर्मुख नही बताया गया है।[६] **आचारदिनकर** मे यक्ष को द्वादशलोचन कहा गया है।[७] **देवतामूर्तिप्रकरण** में परशु के स्थान पर पाश के प्रदर्शन का निर्देश है।[८]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे वृषभारूढ़ वरुण अष्टानन एवं चतुर्भुज है। ग्रन्थ मे आयुधों का अनुल्लेख है।[९] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में जटाकिरीट से शोभित चतुर्भुज वरुण के करो मे खेटक, खड्ग, फल एवं वरदमुद्रा के

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०७

२ **जि०इ०दे०**, पृ० १०३, १०६

३ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३२

४ वरुणयक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं धवलवर्णं वृषभवाहनं जटामुकुटमण्डितं अष्टभुजं मातुलिंगगदाबाणशक्तियुतदक्षिणपाणि नकुलकपद्मधनुः परशुयुतवामपाणि चेति। **निर्वाणकलिका** १८.२०

५ **त्रि०श०पु०च०** ६.७.१९४–९५; **पद्मानन्दमहाकाव्यः** परिशिष्ट—**मुनिसुव्रत** ४३–४४

६ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.४४

७ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७५

८ **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.५५–५६

९ मुनिसुव्रतनाथस्य यक्षो वरुणसंज्ञकः।
त्रिनेत्रो वृषभारूढः श्वेतवर्णश्चतुर्भुजः॥
अष्टाननो महाकायो जटामुकुटभूषितः। **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.६०–६१

प्रदर्शन का विधान है।[1] **अपराजितपृच्छा** में षड्भुज वरुण के करों मे पाश, अंकुश, कार्मुक, शर, उरग एवं वज्र वर्णित है।[2]

यद्यपि वरुण यक्ष का नाम पश्चिम दिशा के दिक्पाल वरुण से ग्रहण किया गया पर उसकी लाक्षणिक विशेषताएं दिक्पाल से भिन्न है।[3] वरुण यक्ष का त्रिनेत्र होना और उसके साथ वृषभवाहन और जटामुकुट का प्रदर्शन शिव का प्रभाव है। हाथों मे परशु एवं सर्प के प्रदर्शन भी शिव के प्रभाव का ही समर्थन करते है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में सप्तमुख एवं चतुर्भुज यक्ष के वाहन का अनुल्लेख है। यक्ष के दक्षिण करों में पुष्प (पद्म) एवं अभयमुद्रा और वाम में कटकमुद्रा एवं खेटक वर्णित है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे पंचमुख एवं अष्टभुज वरुण का वाहन मकर है तथा यक्ष के करो मे खड्ग, खेटक, शर, चाप, फल, पाश, वरदमुद्रा एवं दण्ड का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज यक्ष वृषभारूढ़ और हाथों में खड्ग, वरदमुद्रा, खेटक एवं फल से युक्त है।[4]

मूर्ति-परम्परा

ओसिया के महावीर मन्दिर (श्वेतांबर) के अर्धमण्डप के पूर्वी छज्जे पर एक द्विभुज देवता की मूर्ति है जिसमे वृषभारूढ देवता के दाहिने हाथ मे खड्ग है और बांया जानु पर स्थित है। वृषभवाहन एवं खड्ग के आधार पर देवता की पहचान वरुण यक्ष से की जा सकती है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ७७६) एवं विमलवसही (देवकुलिका ११ एवं ३१) की मुनिसुव्रत की तीन मूर्तियो में यक्ष सर्वानुभूति है।

(२०) नरदत्ता (या बहुरूपिणी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

नरदत्ता (या बहुरूपिणी) जिन मुनिसुव्रत की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा नरदत्ता[5] भद्रासन पर विराजमान है। दिगंबर परम्परा मे चतुर्भुजा बहुरूपिणी का वाहन काला नाग है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में भद्रासन पर विराजमान यक्षी के दाहिने हाथों मे वरदमुद्रा एवं अक्षसूत्र और बायें मे बीजपूरक एवं कुम्भ वर्णित है।[6] समान लक्षणो का उल्लेख करने वाले अन्य ग्रन्थो मे कुम्भ के स्थान पर शूल

---

१ जटाकिरोटोष्टमुखस्त्रिनेत्रो वामान्यखेटासिफलेष्टदानः।
कूर्माकनम्रो वरुणो वृषस्थः श्वेतो महाकायउर्पतनृसिम्॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१४८
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२०, पृ० ३३७

२ पाशाङ्कुश धनुर्बाण सर्पवज्रा ह्यमांपतिः। **अपराजितपृच्छा** २२१.५४

३ **अपराजितपृच्छा** मे वरुण यक्ष को जल का स्वामी (अपांपति) भी बताया गया है।

४ रामचन्द्रन, टी०एन०, **पू०नि०**, पृ० २०७

५ **निर्वाणकलिका** एव **देवतामूर्तिप्रकरण** मे यक्षी को वरदत्ता, **आचारदिनकर** एव **प्रवचनसारोद्धार** में अच्छुप्ता और **मन्त्राधिराजकल्प** मे सुगन्धि नामो से सम्बोधित किया गया है।

६ वरदत्ता देवी गौरवर्णा भद्रासनारूढा चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुतदक्षिणकरा बीजपूरककुम्भयुतवामहस्ता चेति।
निर्वाणकलिका १८.२०

का निर्देश है।[1] **देवतामूर्तिप्रकरण** में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसके एक हाथ में कुम्भ के स्थान पर त्रिशूल का उल्लेख है।[2]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में काले नाग पर आरूढ़ बहुरूपिणी के तीन करों में खेटक, खड्ग एवं फल हैं; चौथी भुजा के आयुध का अनुल्लेख है।[3] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में चौथे हाथ में वरदमुद्रा का उल्लेख है।[4] **अपराजितपृच्छा** में बहुरूपा द्विभुजा और खड्ग एवं खेटक से युक्त है।[5]

श्वेतांबर परम्परा में नरदत्ता एवं अच्छुप्ता के नाम क्रमशः छठी और १४ वी जैन महाविद्याओं से ग्रहण किये गये। पर उनकी मूर्तिविज्ञानपरक विशेषताएं स्वतन्त्र है। दिगंबर परम्परा में बहुरूपिणी यक्षी के साथ सर्पवाहन एवं खड्ग और खेटक का प्रदर्शन १३ वी जैन महाविद्या वैरोट्या से प्रभावित है।[6]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा बहुरूपिणी का वाहन उरग है और उसके ऊपरी करों में खड्ग, खेटक एवं निचले में अभय-और-कटक मुद्राएं वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मयूरवाहना विद्या द्विभुजा और करों में खड्ग एवं खेटक धारण किये है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में सर्पवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों में खेटक, खड्ग, फल एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[7] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत की दोनों परम्पराओं एवं उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के विवरणों में पर्याप्त समानता है।

मूर्ति-परम्परा

बहुरूपिणी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२,८६२ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ में मुनिसुव्रत के साथ 'सिघइ' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[8] पद्मवाहना यक्षी के तीन हाथों में शृंखला, अभय-पद्म (या पाश) और पद्म[9] प्रदर्शित हैं। चौथी भुजा जानु पर स्थित है। यक्षी के साथ पद्म वाहन एवं करों में शृङ्खला और पद्म का प्रदर्शन जैन महाविद्या वज्रशृङ्खला का प्रभाव है।[10] बारभुजी गुफा की मूर्ति में मुनिसुव्रत की द्विभुजा यक्षी को शय्या पर लेटे हुए प्रदर्शित किया गया है। यक्षी के समीप तीन सेवक और शय्या के नीचे

---

१ समातुलिंगशूलाभ्यां वामदोर्भ्यां च शोभिता। **त्रि०श०पु०च०** ६.७.१९६–९७; द्रष्टव्य, **पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट–मुनिसुव्रत** ४५–४६, **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७; **मंत्राधिराजकल्प** ३.६३

२ वरदत्ता गौरवर्णा सिंहारूढा सुशोभना।
वरदं चाक्षसूत्रं त्रिशूलं च बीजपूरकम् ॥ **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.५७

३ कृष्णनागसमारूढा देवता बहुरूपिणी।
खेटं खड्गं फलं धत्ते हेमवर्णा चतुर्भुजा ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.६१–६२

४ यजे कृष्णाहिगां खेटकफलखड्गवरोत्तराम्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१७४
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२०, पृ० ३४६

५ द्विभुजा स्वर्णवर्णा च खड्गखेटक धारिणी।
सर्पासना च कर्तव्या बहुरूपा सुखावहा ॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.३४

६ श्वेतांबर परम्परा में उरगवाहना महाविद्या वैरोट्या के हाथों में सर्प, खेटक, खड्ग एवं सर्प के प्रदर्शन का निर्देश दिया गया है।

७ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०८

८ जि०इ०दे०, पृ० १०३

९ पद्म त्रिशूल जैसा दीख रहा है।

१० जैन ग्रन्थों में वज्रशृंखला महाविद्या को पद्मवाहना और दो हाथों में शृंखला तथा शेष में वरदमुद्रा एवं पद्म से युक्त बताया गया है।

कलश उत्कीर्ण है।[1] यहां उल्लेखनीय है कि दिगंबर स्थलो[2] की चार अन्य जिन मूर्तियों (९वीं-१२वीं शती ई०) में मूलनायक की आकृति के नीचे एक स्त्री को ठीक इसी प्रकार शय्या पर विश्राम करते हुए आमूर्तित किया गया है।[3] देबला मित्रा ने तीन उदाहरणों में मुनिसुव्रत के साथ निरूपित उपर्युक्त स्त्री आकृति की पहचान मुनिसुव्रत की यक्षी से की है।[4]

राज्य संग्रहालय, लखनऊ एवं विमलवसही की मुनिसुव्रत की तीन मूर्तियों में यक्षी के रूप में अम्बिका निरूपित है।

(२१) भृकुटि यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

भृकुटि जिन नमिनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में वृषभारूढ भृकुटि को चतुर्मुख एवं अष्टभुज कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में त्रिनेत्र और चतुर्मुख भृकुटि का वाहन वृषभ है। भृकुटि के दाहिने हाथों में मातुलिंग, शक्ति, मुद्गर, अभयमुद्रा एवं बायें में नकुल, परशु, वज्र, अक्षसूत्र का उल्लेख है।[5] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के प्रदर्शन का निर्देश है।[6] **आचारदिनकर** में द्वादशाक्ष यक्ष की भुजा में अक्षमाला के स्थान पर मौक्तिकमाला का उल्लेख है।[7] **देवतामूर्तिप्रकरण** में चार करों में मातुलिंग, शक्ति, मुद्गर एवं अभयमुद्रा वर्णित है, शेष करों के आयुधों का अनुल्लेख है।[8]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में चतुर्मुख भृकुटि का वाहन नन्दी है, किन्तु आयुधों का अनुल्लेख है।[9] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में यक्ष के करों में खेटक, खड्ग, धनुष, बाण, अंकुश, पद्म, चक्र एवं वरदमुद्रा वर्णित है।[10] **अपराजितपृच्छा**

---

१ मित्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३२

२ बजरामठ (ग्यारसपुर), वैभार पहाड़ी (राजगिर), आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता, पी०सी० नाहर संग्रह, कलकत्ता। वैभार पहाड़ी एवं आशुतोष संग्रहालय की जिन मूर्तियों में मुनिसुव्रत का कूर्मलांछन भी उत्कीर्ण है। द्रष्टव्य, **जै०क०स्था०**, ख० १, पृ० १७२

३ स्त्री के समीप कोई बालक आकृति नहीं उत्कीर्ण है, अतः इसे जिन की माता का अंकन नहीं माना जा सकता है। फिर माता का जिन मूर्तियों के पादपीठों पर जिनों के चरणों के नीचे अंकन भारतीय परम्परा के विरुद्ध भी है। दूसरे, बारभुजी गुफा में यक्षियों के समूह में मुनिसुव्रत के साथ इस देवी का चित्रण उसके यक्षी होने का सूचक है।

४ मित्रा, देबला, 'आइकानोग्राफिक नोट्स', **ज०ए०सो०बं०**, ख० १, अं० १, पृ० ३७–३९

५ भृकुटियक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं हेमवर्णं वृषभवाहनं अष्टभुजं मातुलिंगशक्तिमुद्गराभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलपरशुवज्राक्षसूत्रवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.२१

६ **त्रि०श०पु०च०** ७.११.९८–९९, **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—नमिनाथ १८–१९, **मन्त्राधिराजकल्प** ३.४५

७ **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७५

८ भृकुटि (नेमि ? नेमि) नाथस्य पीतस्त्र्यक्षश्चतुर्मुखः।
वृषवाहो मातुलिंग शक्तिश्च मुद्गराभयौ॥ **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.५८

९ नमिनाथजिनेन्द्रस्य यक्षो भृकुटिसंज्ञकः।
अष्टबाहुश्चतुर्वक्त्रो रक्ताभो नन्दिवाहनः॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.६३

१० खेटासिकोदण्डशरांकुशाब्जचक्रेष्टदानोल्लसिताष्टहस्तम्।
चतुर्मुखं नन्दिगमुत्पलाकमक्तं जपाभं भृकुटिं यजामि॥
प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४९। द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२१, पृ० ३३७

मे यक्ष के केवल पांच ही करों के आयुध उल्लिखित है, जो शूल, शक्ति, वज्र, खेटक एवं डमरु है।[1] उल्लेखनीय है कि दिगंबर परम्परा में यक्ष को त्रिनेत्र नही बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा में भृकुटि का त्रिनेत्र होना और उसके साथ वृषभवाहन एवं परशु का प्रदर्शन शिव का प्रभाव प्रतीत होता है। दिगंबर परम्परा में भी भृकुटि का वाहन नन्दी ही है। हिन्दू ग्रन्थों में शिव के भृकुटि स्वरूप ग्रहण करने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[2]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में वृषभारूढ़ यक्ष को चतुर्मुख एवं अष्टभुज बताया गया है जिसके दक्षिण करों मे खड्ग, बर्छी (या शंकु), पुष्प, अभयमुद्रा एवं वाम में फलक, कार्मुक, शर, कटकमुद्रा वर्णित हैं। अज्ञात-नाम श्वेतांबर ग्रन्थ में यक्ष चतुर्मुख एवं अष्टभुज है, पर उसका नाम विद्युत्प्रभ बताया गया है। उसका वाहन हंस है और उसके करों में असि, फलक, इषु, चाप, चक्र, अंकुश, वरदमुद्रा एवं पुष्प का उल्लेख है। समान लक्षणों का उल्लेख करने वाले **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में यक्ष का वाहन वृषभ है और एक हाथ में पुष्प के स्थान पर पद्म प्राप्त होता है।[3] दक्षिण भारत के दोनों परम्पराओं के विवरण सामान्यतः उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान है।

भृकुटि की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। लूणवसही की देवकुलिका १९ की नमिनाथ की मूर्ति (१२३३ ई०) मे यक्ष सर्वानुभूति है।

(२१) गान्धारी (या चामुण्डा) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

गान्धारी (या चामुण्डा) जिन नमिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे चतुर्भुजा गान्धारी (या मालिनी) का वाहन हंस और दिगंबर परम्परा में चामुण्डा (या कुसुममालिनी) का वाहन मकर है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में हंसवाहना गान्धारी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, खड्ग एवं बायें मे बीजपूरक, कुम्भ (या कुंत ?) का उल्लेख है।[4] **प्रवचनसारोद्धार, मन्त्राधिराजकल्प** एवं **आचारदिनकर** मे कुम्भ के स्थान पर क्रमशः शूल, फलक एवं शकुन्त के उल्लेख हैं।[5] दो ग्रन्थों मे वाम करो मे फल के प्रदर्शन का निर्देश है।[6] **देवतामूर्ति-प्रकरण** मे हंसवाहना यक्षी अष्टभुजा है और अक्षमाला, वज्र, परशु, नकुल, वरदमुद्रा, खड्ग, खेटक एवं मातुलिंग (लुंग) से युक्त है।[7]

---

१ शूलशक्ति वज्रखेटा ? डमरुर्भृकुटिस्तथा। **अपराजितपृच्छा** २२१.५४

२ रचित भृकुटिबन्धं नन्दिना द्वारि रुद्धे। **हरिविलास**। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० ११५

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०८

४ नमेगान्धारी देवी श्वेता हंसवाहनां चतुर्भुजां वरदखड्गयुक्तदक्षिणभुजद्वयां बीजपूरकुम्भ-(कुन्त ?)-युतवामपाणिद्वयां चेति। **निर्वाणकलिका** १८.२१

५ **प्रवचनसारोद्धार** २१, पृ० ९४; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.६३; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७। शकुन्त पक्षी एवं कुन्त दोनों का सूचक हो सकता है।

६ ····वामाभ्यां बीजपूरिभ्यां बाहुभ्यामुपशोभिता। **त्रि०श०पु०च०** ७.११.१००–१०१; द्रष्टव्य, **पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—नमिनाथ** २०–२१

७ अक्षवज्रपरशुनकुलं मथानस्तु गान्धारी यक्षिणी।
वरखड्गखेट लुंगं हंसारूढास्तिता कायो॥ **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.५९

२८

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारोद्धार** मे मकरवाहना चामुण्डा चतुर्भुजा है और उसके करों में दण्ड (यष्टि), खेटक, अक्षमाला एवं खड्ग के प्रदर्शन का उल्लेख है।[1] **अपराजितपृच्छा** मे चामुण्डा अष्टभुजा और उसका वाहन मर्कट है। उसके हाथों में शूल, खड्ग, मुद्गर, पाश, वज्र, चक्र, डमरू एवं अक्षमाला वर्णित हैं।[2]

नमि की चामुण्डा एवं गान्धारी यक्षियों के निरूपण में वासुपूज्य की गान्धारी एवं चण्डा यक्षियों के वाहन (मकर) एवं आयुध (शूल) का परस्पर आदान-प्रदान हुआ है। वासुपूज्य की गान्धारी एवं नमि की चामुण्डा मकरवाहना है और नमि की गान्धारी एवं वासुपूज्य की चण्डा की एक भुजा में शूल प्रदर्शित है। चामुण्डा का एक नाम कुसुममालिनी भी है, जिसे हिन्दू कुसुममाली या काम से सम्बन्धित किया जा सकता है। ज्ञातव्य है कि कुसुममाली या काम का वाहन मकर है।[3]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी मकरवाहना है और उसके दक्षिण करों में अक्षमाला एवं खड्ग (या अभयमुद्रा) और वाम में दण्ड एवं कटकमुद्रा उल्लिखित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में वरदमुद्रा एवं पद्म धारण करनेवाली यक्षी द्विभुजा और उसका वाहन हंस है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप मकरवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों मे खड्ग, दण्ड, फलक एवं अक्षसूत्र दिये गये हैं।[4]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के समूहों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में नमिनाथ के साथ सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी उत्कीर्ण है। यक्षी के दाहिने हाथ में कलश है और बाया हाथ जानु पर स्थित है।[5] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे नमि की यक्षी त्रिमुखी, चतुर्भुजा एवं हंसवाहना है जिसके करों में वरदमुद्रा, अक्षमाला, त्रिदण्डी एवं कलश प्रदर्शित है। यक्षी का निरूपण हिन्दू ब्रह्माणी से प्रभावित है।[6] लूणवसही की जिन-संयुक्त मूर्ति में यक्षी अम्बिका है।

(२२) गोमेध यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गोमेध जिन नेमिनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओ मे त्रिमुख एवं षड्भुज गोमेध का वाहन नर (या पुष्प) बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में नर पर आरूढ गोमेध के दक्षिण करों मे मातुलिंग, परशु और चक्र तथा वाम में नकुल,[7] शूल और शक्ति का उल्लेख है।[8] अन्य ग्रन्थों में भी यही लक्षण वर्णित हैं।[9] **आचारदिनकर** में गोमेध के समीप ही अम्बिका (अम्बक) के अवस्थित होने का उल्लेख है।

---

१ चामुण्डा यष्टिखेटाक्षसूत्रखड्गोत्कटा हरित्।
मकरस्थार्च्यते पञ्चदशदण्डोन्नतेशभाक्॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१७५; द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२१, पृ० ३४७

२ रक्ताभाष्टभुजा शूलखड्गौ मुद्गरपाशकौ।
वज्रचक्रे डमर्वक्षौ चामुण्डा मर्कटासना॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.३५

३ भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० १४२

४ रामचन्द्रन, टी० एन०, **पू०नि०**, पृ० २०८

५ **जि०इ०दे०**, पृ० १०२, १०६

६ मिश्रा, देबला, **पू०नि०**, पृ० १३२

७ ज्ञातव्य है कि मूर्तियों मे नेमिनाथ के यक्ष की एक भुजा में धन के थैले का नियमित प्रदर्शन हुआ है। धन का थैला नकुल के चर्म से निर्मित है।

८ गोमेधयक्ष त्रिमुख श्यामवर्णं पुरुषवाहनं षट्भुजं मातुलिंगपरशुचक्रान्वितदक्षिणपाणिं नकुलकशूलशक्तियुतवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.२२

९ **त्रि०श०पु०च०** ८.९.३८३–८४; **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—**नेमिनाथ** ५५–५६; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.४६; **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.६०; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७५

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे गोमेध का वाहन पुष्प कहा गया है किन्तु आयुधो का अनुल्लेख है।[१] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे वाहन नर है और हाथों के आयुध मुद्गर (द्रुघण), परशु, दण्ड, फल, वज्र एवं वरदमुद्रा है।[२] **प्रतिष्ठातिलकम्** में द्रुघण के स्थान पर धन के प्रदर्शन का निर्देश है[3] जिसके कारण ही मूर्तियो मे नेमि के यक्ष की एक भुजा मे धन का थैला प्रदर्शित हुआ।

गोमेध के नरवाहन एवं पुष्पयान को हिन्दू कुबेर का प्रभाव माना जा सकता है जिसका वाहन नर है और रथ पुष्प या पुष्पकम है। यही पुष्पक अन्ततः राम ने रावण से प्राप्त किया था।[४] वाहन के अतिरिक्त गोमेध पर हिन्दू कुबेर का अन्य कोई प्रभाव नही है।[५]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे त्रिमुख एवं षड्भुज सर्वाण्ह का वाहन लघु मन्दिर है। यक्ष के दक्षिण करो में शक्ति, पुष्प, अभयमुद्रा एवं वाम मे दण्ड, कुठार, कटकमुद्रा वर्णित है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे त्रिमुख एवं षड्भुज यक्ष का वाहन नर है तथा उसके करो मे कशा, मुद्गर, फल, परशु, वरदमुद्रा एवं दण्ड के प्रदर्शन का निर्देश है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में गोमेध चतुर्भुज है और उसके हाथों मे अभयमुद्रा, अंकुश, पाश एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं। यक्ष का चिह्न पुष्प है और शीर्षभाग में धर्मचक्र का उल्लेख है। वाहन गज है।[६] दक्षिण भारत के प्रथम दो ग्रन्थो के विवरण सामान्यतः उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से मेल खाते हैं, पर **यक्ष-यक्षी-लक्षण** का विवरण स्वतन्त्र है।[७]

मूर्ति-परम्परा

मूर्तियो मे नेमिनाथ के साथ नर पर आरूढ़ त्रिमुख और षड्भुज पारम्परिक यक्ष कभी नही निरूपित हुआ। मूर्तियों में नेमि के साथ सदैव गजारूढ़ सर्वानुभूति (या कुबेर)[८] आमूर्तित है। सर्वानुभूति का श्वेतांबर स्थलों पर चतुर्भुज और दिगंबर स्थलो पर द्विभुज रूपों में निरूपण उपलब्ध होता है। दिगंबर स्थलों (देवगढ़, सहेठमहेठ, खजुराहो) की नेमिनाथ की मूर्तियो में कभी-कभी सर्वानुभूति एवं अम्बिका के स्थान पर सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्णित है। सर्वानुभूति के हाथ में धन के थैले का प्रदर्शन सभी क्षेत्रों मे लोकप्रिय था।[९] पर गजवाहन एवं करों में पाश और अंकुश के प्रदर्शन केवल श्वेतांबर स्थलो पर ही दृष्टिगत होते है। सर्वानुभूति की सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तियां गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर स्थलो से मिली है।

---

१ नेमिनाथजिनेन्द्रस्य यक्षो गोमेधनामभाक्।
श्यामवर्णस्त्रिवक्त्रश्च षट्हस्तः पुष्पवाहनः ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.६५

२ श्यामस्त्रिवक्त्रो द्रुघणं कुठारं दण्डं फलं वज्रवरौ च बिभ्रत्।
गोमेदयक्षः क्षितशाखलक्ष्मापूजां नवाहोऽर्हतु पुष्पयानः ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१५०

३ धनं कुठारं च बिभ्रति दण्डं सव्यैः फलैर्वज्रवरौ च योज्यैः। **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२२, पृ० ३३७

४ बनर्जी, जे० एन०, **पू०नि०**, पृ० ५२८–३९, भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० ११५–१६

५ केवल एक ग्रन्थ मे धन के प्रदर्शन का उल्लेख है। इस विशेषता को भी हिन्दू कुबेर से सम्बन्धित किया जा सकता है।

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०८–०९

७ द्विभुज यक्ष की मूर्ति एलोरा की गुफा ३२ में उत्कीर्ण है। इसमें गजारूढ़ यक्ष के हाथों मे फल एवं धन का थैला प्रदर्शित हैं। यक्ष के मुकुट मे एक छोटी जिन आकृति उत्कीर्ण है।

८ **विविधतीर्थकल्प** (पृ० १९) मे अम्बिका के साथ गोमेध के स्थान पर कुबेर का उल्लेख है और उसका वाहन नर बताया गया है। मूर्तियो मे नेमिनाथ के यक्ष-यक्षी के रूप में सदैव सर्वानुभूति (या कुबेर) एवं अम्बिका ही निरूपित है।

९ धन के थैले का प्रदर्शन ल० छठी शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया। शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० ३१

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र की श्वेतांबर परम्परा की जिन मूर्तियों के साथ (६ठी-१२ वीं शती ई०) तथा मन्दिरों के दहलीजों पर सर्वानुभूति की अनेक मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। आठवीं-नवीं शती ई० में सर्वानुभूति की स्वतन्त्र मूर्तियों का भी उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। अकोटा की नवीं शती ई० की मूर्तियों में द्विभुज यक्ष हाथों में फल एवं धन का थैला लिये है।[१] सातवीं-आठवीं शती ई० में सर्वानुभूति के साथ गजवाहन का चित्रण प्रारम्भ हुआ और दसवीं शती ई० में उसकी चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं।[२] पर अकोटा और वसंतगढ़ की मूर्तियों में ग्यारहवीं शती ई० तक यक्ष का द्विभुज रूप में ही अंकन हुआ है।

ओसिया के महावीर मन्दिर (ल० ९वीं शती ई०) पर सर्वानुभूति की पांच मूर्तियां उत्कीर्ण है।[3] इनमें द्विभुज यक्ष ललितमुद्रा में विराजमान है और उसके बायें हाथ में धन का थैला है। तीन उदाहरणों में यक्ष के दाहिने हाथ में पात्र (या कपाल-पात्र)[४] है और शेष दो उदाहरणों में दाहिना हाथ जानु पर स्थित है। इनमें वाहन नहीं है। बासी (राजस्थान) से प्राप्त और विक्टोरिया हाल संग्रहालय, उदयपुर में सुरक्षित एक द्विभुज मूर्ति (८वीं शती ई०) में गजारूढ़ यक्ष के हाथों में फल एवं धन का थैला हैं।[५] यक्ष के मुकुट में एक छोटी जिन मूर्ति बनी है। घाणेराव के महावीर मन्दिर की मूर्ति (१०वीं शती ई०) में सर्वानुभूति चतुर्भुज है। मूर्ति गूढ़मण्डप के पूर्वी अधिष्ठान पर उत्कीर्ण है। ललितमुद्रा में विराजमान यक्ष के करों में फल, पाश, अंकुश एवं फल है। घाणेराव मन्दिर के गूढ़मण्डप एवं गर्भगृह के दहलीजों पर भी चतुर्भुज सर्वानुभूति की चार मूर्तियां है। सभी उदाहरणों में ललितमुद्रा में विराजमान यक्ष की एक भुजा में धन का थैला प्रदर्शित है। इनमें वाहन नहीं उत्कीर्ण है। गूढ़मण्डप के दाहिने और बायें छोरों की दो मूर्तियों में यक्ष के हाथों में अभयमुद्रा (या फल), परशु (या पद्म), पद्म एवं धन का थैला प्रदर्शित है। गर्भगृह के दाहिने छोर की मूर्ति के दो हाथों में धन का थैला और शेष दो में अभयमुद्रा एवं फल है। बायें छोर की आकृति धन का थैला, गदा, पुस्तक एवं बीजपूरक से युक्त है। सर्वानुभूति के हाथों में गदा एवं पुस्तक का प्रदर्शन कुम्भारिया एवं आबू की मूर्तियों में भी प्राप्त होता है।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ, महावीर एवं नेमिनाथ मन्दिरों (११ वीं-१२ वीं शती ई०) की जिन मूर्तियों में तथा वितानों एवं भित्तियों पर चतुर्भुज सर्वानुभूति की कई मूर्तियां उत्कीर्ण है। अधिकांश उदाहरणों में गजारूढ यक्ष ललितमुद्रा में आसीन है, और उसके हाथों में अभयमुद्रा (या वरद या फल), अंकुश, पाश[६] एवं धन का थैला प्रदर्शित है।[७] कई चतुर्भुज मूर्तियों में दो ऊपरी हाथों में धन का थैला है, तथा निचले हाथ अभय-(या वरद-) मुद्रा और फल (या जलपात्र) से युक्त है।[८] शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका ११ की मूर्ति (१०८१ ई०) में गजारूढ यक्ष द्विभुज है और उसके दोनों हाथों में धन का थैला स्थित है।

ओसिया की देवकुलिकाओं[९] (११ वीं शती ई०) की दहलीजों पर गजारूढ़ सर्वानुभूति की तीन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इनमें चतुर्भुज यक्ष ललितमुद्रा में विराजमान है और उसके करों में धन का थैला, गदा, चक्राकार पद्म और फल

१ आठवीं शती ई० की एक मूर्ति में यक्ष के करों में पद्म और प्याला भी प्रदर्शित है। शाह, यू० पी०, **पू०नि०**, चित्र ३८ ए

२ दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की चतुर्भुज मूर्तियां घाणेराव, ओसिया एवं कुम्भारिया से प्राप्त हुई हैं।

३ ये मूर्तियां अर्धमण्डप के उत्तरी छज्जे, गूढ़मण्डप की दहलीज, भीतरी दीवार एवं पश्चिमी वरण्ड पर उत्कीर्ण है।

४ एक भुजा में कपाल-पात्र का प्रदर्शन दिगंबर स्थलों पर अधिक लोकप्रिय था।

५ अग्रवाल, आर० सी०, 'सम इन्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव यक्षज ऐण्ड कुबेर फ्राम राजस्थान', **इं०हि०क्वा०**, खं० ३३, अं० ३, पृ० २०४-२०५

६ शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका २ की जिन मूर्ति में पाश के स्थान पर पुस्तक प्रदर्शित है।

७ कभी-कभी धन के थैले के स्थान पर फल प्रदर्शित है।

८ इस वर्ग की बहुत थोड़ी मूर्तियां मिली हैं। कुछ मूर्तियां कुम्भारिया (नेमिनाथ मन्दिर) एवं विमलवसही (देवकुलिका ११) से मिली है।

९ देवकुलिका २, ३, ४

प्रदर्शित हैं।[1] तारंगा के अजितनाथ मन्दिर (१२ वी शती ई०) की भित्तियों पर चतुर्भुज सर्वानुभूति की तीन मूर्तियां हैं। गजवाहन से युक्त यक्ष तीनों उदाहरणों में त्रिभंग मे खड़ा है, और वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एव फल से युक्त है। विमलवसही के रंगमण्डप के समीप के वितान पर षड्भुज सर्वानुभूति की एक मूर्ति (१२ वी शती ई०) है। त्रिभंग में खड़े यक्ष का वाहन गज है और उसके दो करों में धन का थैला तथा शेष में वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं फल प्रदर्शित हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र में सर्वानुभूति (या कुबेर) की स्वतन्त्र मूर्तियो का उत्कीर्णन दसवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ जिनमें वाहन का अंकन नही हुआ है। पर सर्वानुभूति के साथ कभी-कभी दो घट उत्कीर्ण हैं जो निधि के सूचक हैं। दसवी शती ई० की एक द्विभुज मूर्ति मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर) से मिली है, जिसमें ललितमुद्रा मे आसीन यक्ष कपाल एवं धन के थैले से युक्त है। चरणों के समीप दो कलश भी उत्कीर्ण हैं।[2] देवगढ़ से यक्ष की दो मूर्तियां (१०वीं-११वी शती ई०) मिली हैं। एक में द्विभुज यक्ष ललितमुद्रा में विराजमान और फल एवं धन के थैले से युक्त है (चित्र ४९)।[3] दूसरी मूर्ति (मन्दिर ८, ११वी शती ई०) में चतुर्भुज यक्ष त्रिभंग में खड़ा और हाथों में वरदमुद्रा, गदा, धन का थैला और जलपात्र धारण किये है। उसके वाम पार्श्व में एक कलश भी उत्कीर्ण है।

खजुराहो मे चार मूर्तियां (१०वी-११वी शती ई०) मिली हैं जिनमे चतुर्भुज यक्ष ललितमुद्रा में विराजमान है।[4] शान्तिनाथ मन्दिर एवं मन्दिर ३२ का दो मूर्तियों में यक्ष के ऊपरी हाथों में पद्म और निचले मे फल और धन का थैला है। शेष दो मूर्तियां शान्तिनाथ मन्दिर के समीप के स्तम्भ पर उत्कीर्ण हैं। एक मूर्ति मे तीन सुरक्षित हाथों में अभयमुद्रा, पद्म एवं धन का थैला है। दूसरी मूर्ति के दो करों में पद्म एवं शेष मे अभयमुद्रा और फल प्रदर्शित है। चरणों के समीप दो घट भी उत्कीर्ण हैं। सभी उदाहरणो में यक्ष हार, उपवीत, धोती, कुण्डल, किरीटमुकुट एवं अन्य सामान्य आभूषणों से सज्जित है। खजुराहो के जैन शिल्प में यक्षो मे सर्वानुभूति सर्वाधिक लोकप्रिय था। पार्श्वनाथ के धरणेन्द्र यक्ष के अतिरिक्त अन्य सभी जिनो के साथ यक्ष के रूप मे या तो सर्वानुभूति आमूर्तित है, या फिर यक्ष के एक हाथ में सर्वानुभूति का विशिष्ट आयुध (धन का थैला) प्रदर्शित है।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—स्वतन्त्र मूर्तियों के साथ ही नेमिनाथ की मूर्तियों (८वी-१२वी शती ई०) में भी सर्वानुभूति निरूपित है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की ५ मूर्तियो में यक्ष-यक्षी निरूपित है। तीन उदाहरणो[5] मे द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है। यक्ष के करो मे अभयमुद्रा (या वरद या फल) एवं धन का थैला हैं। ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति (जे ८५८) मे यक्ष चतुर्भुज है और उसके करो मे अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं कलश हैं।

देवगढ़ की १९ नेमिनाथ की मूर्तियों (१०वीं-१२वी शती ई०) मे द्विभुज सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित है। प्रत्येक उदाहरण मे सर्वानुभूति के बायें हाथ में धन का थैला प्रदर्शित है। पर दाहिने हाथ में फल, दण्ड, कपालपात्र एवं अभयमुद्रा मे से एक प्रदर्शित है। मन्दिर १२ की चहारदीवारी की एक मूर्ति (११वी शती ई०) मे अम्बिका के समान ही सर्वानुभूति की भी एक भुजा में बालक प्रदर्शित है। सात उदाहरणों मे नेमि के साथ सामान्य लक्षणो वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। ऐसे उदाहरणों मे यक्ष के हाथो मे अभयमुद्रा (या वरद या गदा) और फल प्रदर्शित है। चार मूर्तियों (११वी-१२वी शती ई०) में यक्ष-यक्षी चतुर्भुज है[6] और उनके हाथो मे वरद-(या अभय-) मुद्रा, पद्म, पद्म एवं फल

---

१ देवकुलिका ३ की मूर्ति में यक्ष की दक्षिण भुजाएं भग्न है।

२ कृष्ण देव, 'मालादेवी टेम्पल् ऐट ग्यारसपुर', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० २६४

३ जि०इ०दे०, चित्र २३, मूर्ति सं० १३

४ तिवारी, एम० एन० पी०, 'खजुराहो के जैन शिल्प मे कुबेर', जै०सि०भा०, खं० २८, भाग २, दिसम्बर १९७५, पृ० १-४

५ जे ७९२, ७९३, ९३६

६ ये मूर्तियां मन्दिर ११, २० और ३० में हैं।

(या कलश) हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि देवगढ़ में पारम्परिक एवं सामान्य लक्षणों वाले यक्ष का निरूपण साथ-साथ लोकप्रिय था। ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर एवं बजरामठ तथा खजुराहो की नेमिनाथ की मूर्तियों (१०वीं–१२वीं शती ई०) में द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है। यक्ष के बायें हाथ में धन का थैला[1] और दाहिने में अभयमुद्रा (या फल) है।

विश्लेषण

इस सम्पूर्ण अध्ययन से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत में जैन यक्षों में सर्वानुभूति सर्वाधिक लोकप्रिय था। ल० छठी शती ई० में सर्वानुभूति की जिन-संयुक्त और आठवीं-नवीं शती ई० में स्वतन्त्र मूर्तियों का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।[2] सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तियां दसवीं और ग्यारहवीं शती ई० के मध्य उत्कीर्ण हुईं। यक्ष के हाथ में धन के थैले का प्रदर्शन छठी शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया। पर गजवाहन का चित्रण सातवीं-आठवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। स्मरणीय है कि गजवाहन का अंकन केवल श्वेतांबर स्थलों पर ही हुआ है। दिगंबर स्थलों पर गज के स्थान पर निधियों के सूचक घटों के उत्कीर्णन की परम्परा थी। दिगंबर स्थलों पर सर्वानुभूति का कोई एक रूप नियत नहीं हो सका।[3] श्वेतांबर स्थलों पर गजारूढ़ यक्ष के करों में धन के थैले के अतिरिक्त अंकुश, पाश एवं फल (या अभय-या-वरदमुद्रा) का नियमित प्रदर्शन हुआ है। दिगंबर स्थलों पर धन के थैले के अतिरिक्त पद्म, गदा एवं पुस्तक का भी अंकन प्राप्त होता है। घाणेराव एवं कुम्भारिया की कुछ श्वेतांबर मूर्तियों में भी सर्वानुभूति के साथ पद्म, गदा और पुस्तक प्रदर्शित है।

(२२) अम्बिका (या कुष्माण्डी) यक्षी[4]

शास्त्रीय परम्परा

अम्बिका (या कुष्माण्डी) जिन नेमिनाथ की यक्षी है। दोनों परम्पराओं में सिंहवाहना यक्षी के करों में आम्रलुम्बि एवं बालक के प्रदर्शन का निर्देश है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में सिंहवाहना कुष्माण्डी चतुर्भुजा है और उसके दाहिने हाथों में मातुलिंग एवं पाश और बायें में पुत्र एवं अंकुश है।[5] समान लक्षणों का उल्लेख करनेवाले अन्य ग्रन्थों में मातुलिंग के स्थान पर आम्रलुम्बि[6] का उल्लेख है। **मन्त्राधिराजकल्प** में हाथ में बालक के प्रदर्शन का उल्लेख नहीं है। ग्रन्थ के अनुसार अम्बिका

---

१ खजुराहो की एक मूर्ति (मन्दिर १०) में यक्ष की भुजा में धन का थैला नहीं है।

२ श्वेतांबर स्थलों पर दिगंबर स्थलों की तुलना में यक्ष की अधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं।

३ दिगंबर स्थलों पर केवल धन के थैले का प्रदर्शन ही नियमित था।

४ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, शाह यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', **ज०यू०बां०**, खं० ९, भाग २, १९४०–४१, पृ० १४७–६९, तिवारी, एम०एन०पी०, 'उत्तर भारत में जैन यक्षी अम्बिका का प्रतिमा-निरूपण', **संबोधि**, खं० ३, अ० २–३, दिसंबर १९७४, पृ० २७–४८

५ कूष्माण्डी देवी कनकवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां मातुलिंगपाशयुक्तदक्षिणकरां पुत्राकुशान्वितवामकरां चेति ॥ **निर्वाणकलिका** १८.२२, द्रष्टव्य, **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.६१। ज्ञातव्य है कि कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों (**चतुर्विंशतिका**—बप्पभट्टिकृत, श्लोक ८८, ९६) में द्विभुजा अम्बिका का भी ध्यान किया गया है।

६ अम्बादेवी कनककान्तिरुचिः सिंहवाहना चतुर्भुजा आम्रलुम्बिपाशयुक्तदक्षिणकरद्वया पुत्राकुशासक्तवामकरद्वया च। **प्रवचनसारोद्धार** २२, पृ० ९४, द्रष्टव्य, **त्रि०श०पु०च०** ८.९.३८५–८६; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७; **पद्मानन्दमहाकाव्य** : परिशिष्ट—**नेमिनाथ** ५७–४८, **रूपमण्डन** ६ १९—ग्रन्थ में पाश के स्थान पर नागपाश का उल्लेख है।

के दोनों पुत्र (सिद्ध और बुद्ध) उसके कटि के समीप निरूपित होंगे।[१] **अम्बिका-ताटंक** में उल्लेख है कि चतुर्भुजा अम्बिका का एक पुत्र उसकी उंगली पकड़े होगा और दूसरा गोद में स्थित होगा। सिंहवाहना अम्बिका फल, आम्रलुम्बि, अंकुश एवं पाश से युक्त है।[२]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में सिंहवाहना कुष्माण्डिनी (आम्रादेवी) को द्विभुजा और चतुर्भुजा बताया गया है, पर आयुधों का उल्लेख नहीं है।[३] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में द्विभुजा अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि (दक्षिण) एवं पुत्र (प्रियंकर) के प्रदर्शन का निर्देश है। दूसरे पुत्र (शुभंकर) के आम्रवृक्ष की छाया में अवस्थित यक्षी के समीप ही निरूपण का उल्लेख है।[४] **अपराजितपृच्छा** मे द्विभुजा अम्बिका के करों में फल एवं वरदमुद्रा का वर्णन है। देवी के समीप ही उसके दोनों पुत्रों के प्रदर्शन का विधान है, जिनमें से एक गोद में बैठा होगा।[५]

दिगंबर परम्परा के एक तान्त्रिक ग्रन्थ मे सिंहासन पर विराजमान अम्बिका का चतुर्भुज एवं अष्टभुज रूपों में ध्यान किया गया है। चतुर्भुजा अम्बिका के करों मे शंख, चक्र, वरदमुद्रा एवं पाश का[६] तथा अष्टभुजा देवी के करो में शंख, चक्र, धनुष, परशु, तोमर, खड्ग, पाश और कोद्रव का उल्लेख है।[७]

अम्बिका का भयावह स्वरूप—तान्त्रिक ग्रन्थ, **अम्बिका-ताटंक**, में अम्बिका के भयंकर रूप का स्मरण है और उसे शिवा, शंकरा, स्तम्भिनी, मोहिनी, शोषणी, भीमनादा, चण्डिका, चण्डरूपा, अघोरा आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। प्रलयंकारी रूप में उसे सम्पूर्ण सृष्टि की संहार करनेवाली कहा गया है। इस रूप में देवी के करो मे धनुष, बाण, दण्ड, खड्ग, चक्र एवं पद्म आदि के प्रदर्शन का निर्देश है। सिंहवाहिनी देवी के हाथ में आम्र का भी उल्लेख है। यू०पी० शाह ने विमलवसही की देवकुलिका ३५ के वितान की विंशतिभुजा देवी की सम्भावित पहचान अम्बिका के भयावह रूप से की है।[८] ललितमुद्रा मे विराजमान सिंहवाहना अम्बिका की इस मूर्ति मे सुरक्षित दस भुजाओ मे खड्ग, शक्ति, सर्प, गदा, खेटक, परशु, कमण्डलु, पद्म, अभयमुद्रा एवं वरदमुद्रा प्रदर्शित है।

---

१ कुष्माण्डिनी····· ···पाशाम्रलुम्बिसृणिसत्फलमावहन्ती।
पुत्रद्वयं करकटीतटगं च नेमिनाथक्रमाम्बुजयुगं शिवदा नमन्ती ॥ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.६४
द्रष्टव्य, **स्तुति चतुर्विंशतिका** (शोभनसूरिकृत) २२.४, २४.४
सिंहयाना हेमवर्णा सिद्धबुद्धसमन्विता।
कम्राम्रलुम्बिभृत्पाणिरत्राम्बा सङ्घविघ्नहृत् ॥ **विविधतीर्थकल्प**–उज्जयन्त-स्तव।

२ शाह, यू०पी०, **पू०नि०**, पृ० १६०

३ देवी कुष्माण्डिनी यस्य सिंहगा हरितप्रभा।
चतुर्हस्तजिनेन्द्रस्य महाभक्तिविराजित: ॥
द्विभुजा सिंहमारूढा आम्रादेवी हरितप्रभा ॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.६४, ६६

४ सव्येकद्युपगप्रियंकर सुतुकप्रीत्यै करे बिभ्रतीं
दिव्याम्रस्तबकं शुभंकरकाश्लिष्टान्यहस्तांगुलिम्।
सिंहे भर्तृचरे स्थितां हरितमामाभ्रद्रुमच्छायगां
वंदारुं दशकार्मुकोच्छ्रयजिनं देवीमिहाम्रा यजे ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१७६; द्रष्टव्य,**प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२२,पृ० ३४७

५ हरिद्वर्णा सिंहसंस्था द्विभुजा च फलं वरम्।
पुत्रेणोपास्यमाना च सुतोत्संगातथाऽम्बिका ॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.३६

६ शाह, यू० पी०, **पू०नि०**, पृ० १६१·······देवीं चतुर्भुजां शंखचक्रवरदपाशान्यस्वरूपेण सिंहासनस्थिता।

७ **वही**, पृ० १६१–शाह ने अष्टभुजा अम्बिका के एक चित्र का उल्लेख किया है, जिसमें सिंहवाहना अम्बिका कोद्रव, त्रिशूल, चाप, अभयमुद्रा, सृणि, पद्म, शर एवं आम्रलुम्बि से युक्त है।

८ **वही**, पृ० १६१–६२

श्वेतांबर और दिगंबर परम्पराओ मे अम्बिका[1] की उत्पत्ति की विस्तृत कथाएं क्रमशः जिनप्रभसूरिकृत **'अम्बिका-देवी-कल्प'** (१४०० ई०) और **यक्षी कथा (पुण्याश्रवकथा** का अंश) में वर्णित हैं। श्वेतांबर परम्परा में अम्बिका के पुत्रों के नाम सिद्ध और बुद्ध तथा दिगंबर परम्परा में शुभंकर और प्रभंकर है।[2] श्वेतांबर कथा के अनुसार अम्बिका पूर्व-जन्म मे सोम नाम के ब्राह्मण की भार्या थी जो किसी कल्पित अपराध पर सोम द्वारा निष्कासित किये जाने पर अपने दोनों पुत्रों के साथ घर से निकल पड़ी। अम्बिका और उसके दोनो पुत्रों को भूख-प्यास से व्याकुल जान कर मार्ग का एक सूखा आम्रवृक्ष फलों से लद गया और सूखा कुंआ जल से पूर्ण हो गया। अम्बिका ने आम्र फल खाकर जल ग्रहण किया और उसी वृक्ष के नीचे विश्राम किया। कुछ समय पश्चात् सोम अपनी भूल पर पश्चाताप करता हुआ अम्बिका को ढूढने निकला। जब अम्बिका ने सोम को अपनी ओर आते देखा तो अन्यथा समझ कर भयवश दोनो पुत्रो के साथ कुएं में कूद कर आत्म-हत्या कर ली। अगले जन्म में यही अम्बिका नेमिनाथ की शासनदेवी हुई और उसके पूर्वजन्म के दोनों पुत्र इस जन्म में भी पुत्रो के रूप में उससे सम्बद्ध रहे। सोम उसका वाहन (सिंह) हुआ। अम्बिका की भुजा मे आम्रलुम्बि एवं शीर्षभाग के ऊपर आम्रशाखाओं के प्रदर्शन भी पूर्वजन्म की कथा से सम्बद्ध हैं। देवी के हाथ का पाश उस रज्जु का सूचक है जिसकी सहायता से अम्बिका ने कुए से जल निकाला था।[3] इस प्रकार अम्बिका मूर्ति की प्रमुख लाक्षणिक विशेषताओं को उसके पूर्वजन्म की कथा से सम्बद्ध माना गया है।

अम्बिका या कुष्माण्डिनी पर हिन्दू दुर्गा या अम्बा का प्रभाव स्वीकार किया गया है।[4] पर वास्तव में तान्त्रिक ग्रन्थ[5] के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थो में वर्णित अम्बिका के प्रतिमा-लक्षण हिन्दू दुर्गा से अप्रभावित और भिन्न है। हिन्दू प्रभाव केवल जैन यक्षी के नामो एव सिंहवाहन के प्रदर्शन मे ही स्वीकार किया जा सकता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारतीय ग्रन्थो मे सिंहवाहना कुष्माण्डिनी का धर्मदेवी नाम से भी उल्लेख है। दिगंबर ग्रन्थ मे चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथों मे खड्ग एवं चक्र का तथा निचले हाथों से गोद मे बैठे बालकों को सहारा देने का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेताबर ग्रन्थ मे द्विभुजा यक्षी के करो मे फल एवं वरदमुद्रा वर्णित है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे चतुर्भुजा धर्मदेवी की गोद मे उसके दोनों पुत्र अवस्थित हैं तथा देवी दो हाथो से पुत्रों को सहारा दे रही है, तीसरे में आम्रलुम्बि लिये है और उसका चौथा हाथ सिंह की ओर मुड़ा है।[6] स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा मे अम्बिका के साथ आम्रलुम्बि का प्रदर्शन नियमित नहीं था। अम्बिका की गोद मे एक के स्थान पर दोनों पुत्रो के चित्रण की परम्परा लोकप्रिय थी।

मूर्ति-परम्परा

उत्तर भारत मे जैन यक्षियों मे अम्बिका की ही सर्वाधिक स्वतन्त्र और जिन-संयुक्त मूर्तियां मिली है। ल० छठी शती ई० मे अम्बिका को शिल्प मे अभिव्यक्ति मिली।[7] नवी शती ई० तक सभी क्षेत्रों मे अधिकाश जिनों के साथ यक्षी के

---

१ पूर्वजन्म मे अम्बिका के नाम अम्बिणी (श्वेतांबर) और अग्निला (दिगंबर) थे।

२ शाह, यू०पी०, पू०नि, पृ० १४७–४८

३ वही, पृ० १४८। दिगबर परम्परा मे यही कथा कुछ नवीन नामो एवं परिवर्तनों के साथ वर्णित है।

४ बनर्जी, जे०एन०, पू०नि०, पृ० ५६२। हिन्दू दुर्गा को अम्बिका और कुष्माण्डी (या कुष्माण्डा) नामो से भी सम्बोधित किया गया है।

५ तान्त्रिक ग्रन्थ मे जैन अम्बिका का शिवा, शकरा, चण्डिका, अघोरा आदि नामो से सम्बोधन एव करों मे शंख और चक्र के प्रदर्शन का निर्देश हिन्दू अम्बा या दुर्गा के प्रभाव का समर्थन करता है। हिन्दू दुर्गा का वाहन कभी महिष और कभी सिंह बताया गया है और उसके करो मे अभयमुद्रा, चक्र, कटक एवं शंख प्रदर्शित है। द्रष्टव्य, राव, टी०ए० गोपीनाथ, पू०नि०, पृ० ३४१–४२

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०९

७ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० २८–३१

रूप में अम्बिका ही आमूर्तित है। गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर स्थलों पर तो दसवीं शती ई० के बाद भी सभी जिनों के साथ सामान्यतः अम्बिका ही निरूपित है। केवल कुछ ही उदाहरणों मे ऋषभ एवं पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्षी का निरूपण हुआ है। स्वतन्त्र एवं जिन-संयुक्त मूर्तियों में अम्बिका अधिकांशतः द्विभुजा है।[1] सभी क्षेत्रों की मूर्तियों में अम्बिका के साथ सिंहवाहन[2] एवं दो हाथों में आम्रलुम्बि[3] (दक्षिण) और बालक (वाम) का प्रदर्शन लोकप्रिय था।[4] अम्बिका अधिकांशतः ललितमुद्रा में विराजमान है और उसके शीर्षभाग मे लघु जिन आकृति (नेमि) एवं आम्रफल के गुच्छक उत्कीर्ण हैं। अम्बिका के दूसरे पुत्र को भी समीप ही उत्कीर्ण किया गया जिसके एक हाथ मे फल (या आम्रफल) है और दूसरा माता के हाथ की आम्रलुम्बि को लेने के लिए ऊपर उठा होता है।

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र में छठी से दसवीं शती ई० के मध्य की सभी जिन मूर्तियों मे यक्षी के रूप मे अम्बिका ही निरूपित है। अम्बिका की जिन-संयुक्त एवं स्वतन्त्र मूर्तियों के प्रारम्भिकतम (छठी-सातवीं शती ई०) उदाहरण इसी क्षेत्र में अकोटा (गुजरात) से मिले है।[5] अकोटा की एक स्वतन्त्र मूर्ति मे सिंहवाहना अम्बिका द्विभुजा और आम्रलुम्बि एवं फल से युक्त है।[6] एक बालक उसकी बायीं गोद मे बैठा है और दूसरा दक्षिण पार्श्व मे (निर्वस्त्र) खड़ा है। अम्बिका के शीर्षभाग मे नेमिनाथ के स्थान पर पार्श्वनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है। तात्पर्य यह कि छठी-सातवीं शती ई० तक अम्बिका को नेमि से नहीं सम्बद्ध किया गया था।[7] आम्रलुम्बि एवं बालक से युक्त सिंहवाहना अम्बिका की एक द्विभुजा मूर्ति ओसिया के महावीर मन्दिर (ल० ९ वीं शती ई०) के गूढमण्डप के प्रवेश द्वार पर उत्कीर्ण है। इस क्षेत्र मे अम्बिका के साथ सिंहवाहन एवं शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छकों का नियमित चित्रण नवीं शती ई० के बाद प्रारम्भ हुआ। धांक (काठियावाड) की सातवीं-आठवीं शती ई० की द्विभुजा मूर्ति में दोनों विशेषताएं अनुपस्थित है।[8] आठवीं से दसवीं शती ई० के मध्य की छह मूर्तियां अकोटा से मिली है। इनमें सिंहवाहना अम्बिका द्विभुजा और आम्रलुम्बि एवं बालक से युक्त है।[9] दूसरे पुत्र का नियमित चित्रण नवीं शती ई० मे प्रारम्भ हुआ।[10] ज्ञातव्य है कि जिन-संयुक्त मूर्तियों मे दूसरे पुत्र का चित्रण सामान्यतः नहीं हुआ है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के शिखर की एक द्विभुजी मूर्ति मे अम्बिका के दाहिने हाथ मे आम्रलुम्बि के साथ ही खड्ग भी प्रदर्शित है तथा बायां हाथ पुत्र के ऊपर स्थित है।

---

१ खजुराहो, देवगढ़, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, विमलवसही, कुम्भारिया और लूणवसही से अम्बिका की चतुर्भुज मूर्तियां (१०वीं-१३वीं शती ई०) भी मिली है।

२ दिगंबर स्थलो पर सिंहवाहन का चित्रण नियमित नहीं था।

३ विमलवसही, कुम्भारिया (शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों की देवकुलिकाओ) एवं कुछ अन्य स्थलो की मूर्तियो में कभी-कभी आम्रलुम्बि के स्थान पर फल (या अभय-या-वरद-मुद्रा) भी प्रदर्शित है।

४ यू० पी० शाह ने ऐसी दो मूर्तियो का उल्लेख किया है, जिनमें बालक के स्थान पर अम्बिका के हाथ में फल प्रदर्शित है। द्रष्टव्य, शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', **ज०यू०बां०**, खं० ९, १९४०–४१, पृ० १५५, चित्र ९ और १०

५ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, पृ० २८–२९, ३६–३७

६ **वही**, पृ० ३०–३१, फलक १४

७ बप्पभट्टिसूरि की **चतुर्विंशतिका** (७४३–८३८ ई०) में अम्बिका का ध्यान नेमि और महावीर दोनों ही के साथ किया गया है।

८ संकलिया, एच० डी०, 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड', **ज०रा०ए०सो०**, जुलाई १९३८, पृ० ४२७–२८

९ शाह, यू० पी०, **अकोटा ब्रोन्जेज**, चित्र ४८ बी०, ५० सी, ५० ए। समान विवरणों वाली मूर्तियां (९ वीं-१२ वीं शती ई०) कोटा, घाणेराव, नाडलाई, ओसिया, कुम्भारिया एवं आबू (विमलवसही एवं लूणवसही) से मिली है।

१० दिगंबर स्थलों पर दूसरा पुत्र सामान्यतः दाहिने पार्श्व में और श्वेतांबर स्थलो पर वाम पार्श्व मे उत्कीर्ण है। ओसिया की जैन देवकुलिकाओं की दो मूर्तियों मे दूसरा पुत्र नहीं उत्कीर्ण है।

ग्यारहवीं शती ई० में अम्बिका की चतुर्भुज मूर्तियां भी उत्कीर्ण हुई। ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की चतुर्भुज मूर्तियां कुम्भारिया, विमलवसही, जालोर एवं तारंगा से मिली हैं। आयुधों के आधार पर चतुर्भुजा अम्बिका की मूर्तियों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग मे ऐसी मूर्तियां हैं जिनमे देवी के तीन हाथों में आम्रलुम्बि और चौथे में पुत्र हैं (चित्र ५४)। श्वेतांबर ग्रन्थों के निर्देशों के विरुद्ध अम्बिका के तीन हाथों मे आम्रलुम्बि का प्रदर्शन सम्भवतः यक्षी के द्विभुज स्वरूप से प्रभावित है।[1] दूसरे वर्ग की मूर्तियों में अम्बिका आम्रलुम्बि, पाश, चक्र (या वरदमुद्रा) एवं पुत्र से युक्त है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका ११ (१०८१ ई०) एवं १२ की दो जिन मूर्तियों में सिंहवाहना अम्बिका चतुर्भुजा है और उसके तीन करो मे आम्रलुम्बि एवं चौथे मे बालक हैं।[2] कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर (देवकुलिका ५) एवं विमलवसही के गूढमण्डप की रथिकाओं की जिन मूर्तियों (१२ वी शती ई०) में भी समान लक्षणोंवाली चतुर्भुजा अम्बिका निरूपित है। ऐसी ही चतुर्भुजा अम्बिका की एक स्वतन्त्र मूर्ति विमलवसही के रंगमण्डप के दक्षिणी-पश्चिमी वितान पर है जिसमे शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक और पार्श्व मे दूसरा पुत्र भी उत्कीर्ण है (चित्र ५४)।

चतुर्भुजा अम्बिका की दूसरे वर्ग की तीन मूर्तियां (१२ वी शती ई०) क्रमशः तारंगा, जालोर एव विमलवसही से मिली है। तारंगा के अजितनाथ मन्दिर की मूर्ति मूलप्रासाद की उत्तरी भित्ति पर उत्कीर्ण है। त्रिभंग मे खड़ी अम्बिका के वाम पार्श्व मे सिंह तथा करो मे वरदमुद्रा, आम्रलुम्बि, पाश एवं पुत्र प्रदर्शित है। जालोर की मूर्ति महावीर मन्दिर के उत्तरी अधिष्ठान पर है। सिंहवाहना अम्बिका आम्रलुम्बि, चक्र, चक्र एवं पुत्र से युक्त है।[3] विमलवसही के गूढमण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार पर उत्कीर्ण तीसरी मूर्ति में सिंहवाहना अम्बिका के हाथों मे आम्रलुम्बि, पाश, चक्र एवं पुत्र है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र में ल० सातवी-आठवी शती ई० में अम्बिका की जिन-संयुक्त और नवी शती ई० में स्वतन्त्र मूर्तियो का उत्कीर्णन आरम्भ हुआ। सम्पूर्ण मूर्तियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अम्बिका के साथ पुत्र का अंकन सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में प्रारम्भ हुआ। पुत्र का अंकन सातवी-आठवी शती ई० में और आम्रलुम्बि एवं सिंहवाहन का नवी-दसवी शती ई० में प्रारम्भ हुआ (चित्र २६)।

(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—अम्बिका की प्रारम्भिकतम स्वतन्त्र मूर्ति देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) के यक्षी समूह में है। अरिष्टनेमि के साथ 'अम्बायिका' नाम को चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है जो हाथों मे पुष्प (या फल), चामर, पद्म एवं पुत्र लिये है।[4] वाहन अनुपस्थित है। अम्बिका के चतुर्भुजा होने के बाद भी पुत्र के अतिरिक्त इस मूर्ति मे अन्य कोई पारम्परिक विशेषता नहीं प्रदर्शित है। पर देवगढ़ के मन्दिर १२ के गर्भगृह की नवी-दसवी शती ई० की द्विभुज अम्बिका मूर्तियों मे सिंहवाहन एव करो मे आम्रलुम्बि एवं पुत्र प्रदर्शित है (चित्र ५१)।

किसी अज्ञात स्थल से प्राप्त ल० नवी शती ई० की एक द्विभुज मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (डी ७) में सुरक्षित है (चित्र ५०)। इस मूर्ति की दुर्लभ विशेषता, परिकर मे गणेश, कुबेर, बलराम, कृष्ण एवं अष्टमातृकाओ का उत्कीर्णन है। अम्बिका पद्मासन पर ललितमुद्रा मे विराजमान है और उसका सिंहवाहन आसन के नीचे अंकित है। यक्षी के दाहिने हाथ मे अभयमुद्रा और बायें मे पुत्र है। दाहिने पार्श्व में अम्बिका का दूसरा पुत्र भी उपस्थित है। पीठिका पर एक पंक्ति मे आठ स्त्री आकृतियां (अष्ट-मातृकाएं)[5] बनी है। ललितमुद्रा में आसीन इन आकृतियो में से अधिकांश नमस्कार-मुद्रा में हैं

१ श्वेतांबर ग्रन्थो में चतुर्भुजा यक्षी के करों में आम्रलुम्बि, पाश, अंकुश एवं पुत्र के प्रदर्शन का निर्देश है।

२ ज्ञातव्य है कि इस क्षेत्र की जिन-संयुक्त मूर्तियो मे सिंहवाहना अम्बिका सामान्यतः द्विभुजा और आम्रलुम्बि एवं पुत्र से युक्त है।

३ अम्बिका के साथ चक्र का प्रदर्शन तान्त्रिक ग्रन्थ से निर्देशित है। ४ जि०इ०दे०, पृ० १०२

५ जैन ग्रन्थों में अष्ट-मातृकाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं। अष्ट-मातृकाओं की सूची मे ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और त्रिपुरा के नाम हैं। द्रष्टव्य, शाह, यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, खं० २०, अं० ३, पृ० २८६

और कुछ के हाथों में फल एवं अन्य सामग्रियां हैं। अम्बिका के शीर्षभाग की जिन आकृति के पार्श्वों में त्रिभंग में खड़ी बलराम एवं कृष्ण की चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। स्मरणीय है कि बलराम और कृष्ण नेमिनाथ के चचेरे भाई हैं और अम्बिका नेमिनाथ की यक्षी है। यह मूर्ति इस बात का प्रमाण है कि ल० नवीं शती ई० में अम्बिका नेमिनाथ से सम्बद्ध हुई। तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त बलराम के तीन हाथों में पात्र (?), मुसल और हल (पताका सहित) है तथा चौथा हाथ जानु पर स्थित है। कृष्ण के करों में अभयमुद्रा, गदा, चक्र एवं शंख है। भामण्डल से युक्त अम्बिका के शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक एवं उड्डीयमान मालाधर आमूर्तित हैं। देवी के दाहिने पार्श्व मे ललितमुद्रा में विराजमान गजमुख गणेश की द्विभुज मूर्ति उत्कीर्ण है जिसके हाथो मे अभयमुद्रा एवं मोदकपात्र हैं। वाम पार्श्व में ललितमुद्रा में आसीन द्विभुज कुबेर की मूर्ति है जिसके हाथों मे फल एवं धन का थैला है।

दसवीं शती ई० की दो द्विभुज मूर्तिया मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म०प्र०) के उत्तरी और दक्षिणी शिखर पर हैं। शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छको से शोभित सिंहवाहना अम्बिका आम्रलुम्बि एवं पुत्र से युक्त है। खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर (१०वीं शती ई०) के दक्षिणी मण्डोवर पर भी अम्बिका की एक द्विभुजा मूर्ति है। त्रिभंग मे खड़ी अम्बिका आम्रलुम्बि एवं बालक से युक्त है। यहां सिंहवाहन नहीं उत्कीर्ण है। शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छक और दाहिने पार्श्व मे दूसरा पुत्र उत्कीर्ण है। इस मूर्ति के अतिरिक्त खजुराहो की दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की अन्य सभी मूर्तियो में अम्बिका चतुर्भुजा है।[1] उल्लेखनीय है कि खजुराहो में अम्बिका जहां एक ही उदाहरण मे द्विभुजा है, वहीं देवगढ़ की ५० से अधिक मूर्तियो (९वीं-१२वीं शती ई०) में वह द्विभुजा अंकित है। देवगढ़ से चतुर्भुजा अम्बिका की केवल तीन ही मूर्तिया मिली है।[2] तात्पर्य यह कि खजुराहो में अम्बिका का चतुर्भुज और देवगढ़ में द्विभुज रूपों मे निरूपण लोकप्रिय था। स्मरणीय है कि दिगंबर परम्परा मे अम्बिका को द्विभुज बताया गया है।[3]

देवगढ़ से प्राप्त ५० से अधिक स्वतन्त्र मूर्तियां (९वीं-१२वीं शती ई०)[4] में से तीन उदाहरणों के अतिरिक्त अन्य सभी मे अम्बिका द्विभुजा है (चित्र ५१)। अधिकांश उदाहरणो मे देवी स्थानक-मुद्रा मे और कुछ मे ललितमुद्रा मे निरूपित है। शीर्षभाग मे लघु जिन आकृति एवं आम्रवृक्ष उत्कीर्ण है। अम्बिका के करो मे आम्रलुम्बि[5] एवं पुत्र प्रदर्शित है। कुछ उदाहरणो मे पुत्र गोद मे न होकर वाम पार्श्व मे खड़ा है। सिंहवाहन सभी उदाहरणो मे उत्कीर्ण है। दिगंबर परम्परा के अनुरूप दूसरे पुत्र को दाहिने पार्श्व में अंकित किया गया है।[6] परिकर मे उड्डीयमान मालाधरों एवं कभी-कभी चामरधर सेवकों को भी उत्कीर्ण किया गया है। साहू जैन संग्रहालय, देवगढ़ की एक मूर्ति (१२वीं शती ई०) में अम्बिका के वाहन का सिर सिंह का और शरीर मानव का है। इसी संग्रहालय की एक अन्य मूर्ति (११वीं शती ई०) मे यक्षी के वाम स्कन्ध के ऊपर पांच सर्पफणों से मण्डित सुपार्श्व की खड्गासन मूर्ति बनी है। संग्रहालय की एक अन्य मूर्ति में परिकर मे अभयमुद्रा, पद्म, चामर एवं कलश से युक्त दो चतुर्भुज देवियों, पांच जिनों एवं चामरधरो की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। वाम पार्श्व मे दूसरा पुत्र है। मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी की एक मूर्ति (११वीं शती ई०) मे अम्बिका के दाहिने हाथ मे आम्रलुम्बि नहीं है वरन् वह पुत्र के मस्तक पर स्थित है। उपर्युक्त मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि देवगढ़ मे द्विभुजा अम्बिका के निरूपण में दिगंबर परम्परा का पालन किया गया है।

---

१ पार्श्वनाथ मन्दिर के शिखर (दक्षिण) पर भी चतुर्भुजा अम्बिका की एक मूर्ति है।

२ इसमें मन्दिर १२ की चतुर्भुज मूर्ति भी सम्मिलित है।

३ केवल तान्त्रिक ग्रन्थ मे अम्बिका चतुर्भुजा है।

४ सर्वाधिक मूर्तियां ग्यारहवीं शती ई० की है।

५ साहू जैन संग्रहालय, देवगढ़ की एक मूर्ति (११वीं शती ई०) में यक्षी की दाहिनी भुजा में आम्रलुम्बि के स्थान पर छत्र-पद्म प्रदर्शित है। मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी की मूर्ति में भी आम्रलुम्बि नहीं प्रदर्शित है।

६ मानस्तम्भों की कुछ मूर्तियों मे अम्बिका का दूसरा पुत्र नहीं उत्कीर्ण है।

देवगढ़ के मन्दिर ११ के सामने के मानस्तम्भ (१०५९ ई०) पर चतुर्भुजा अम्बिका की एक मूर्ति है। सिंहवाहना अम्बिका के करों मे आम्रलुम्बि, अंकुश, पाश एवं पुत्र है।[1] समान विवरणों वाली दूसरी चतुर्भुज मूर्ति मन्दिर १६ के स्तम्भ (१२वी शती ई०) पर उत्कीर्ण है जिसमे वाहन नहीं है और ऊर्ध्व दक्षिण हाथ का आयुध भी अस्पष्ट है। ज्ञातव्य है कि अम्बिका का चतुर्भुज स्वरूप मे निरूपण दिगंबर परम्परा के विरुद्ध है। उपर्युक्त मूर्तियों मे अम्बिका के करों मे आम्रलुम्बि एवं पुत्र के साथ ही पाश और अंकुश का प्रदर्शन स्पष्टतः श्वेतांबर परम्परा से प्रभावित है। देवगढ़ के अतिरिक्त खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ की दो अन्य दिगंबर परम्परा की चतुर्भुज मूर्तियों (११वी-१२वी शती ई०) में भी यह श्वेतांबर प्रभाव देखा जा सकता है। खजुराहो के मन्दिर २७ की एक स्थानक मूर्ति (११वी शती ई०) में सिंह-वाहना अम्बिका के शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छक एवं जिन आकृति उत्कीर्ण है। अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि, अंकुश, पाश, एवं पुत्र दृष्टिगत होते हैं।[2] चामरधर सेवकों एवं उपासको से वेष्टित अम्बिका के दाहिने पार्श्व में दूसरा पुत्र भी आमूर्तित है। समान विवरणों वाली राज्य संग्रहालय, लखनऊ (६६.२२५) की एक मूर्ति मे सिंहवाहना अम्बिका के एक हाथ मे अंकुश के स्थान पर त्रिशूलयुक्त-घण्टा है। ललितमुद्रा मे विराजमान यक्षी के समीप ही उसका दूसरा पुत्र (निर्वस्त्र) भी खड़ा है। इस मूर्ति मे भयानक दर्शन वाली अम्बिका के नेत्र बाहर की ओर निकले है। भयावह रूप मे यह निरूपण सम्भवतः तान्त्रिक परम्परा से प्रभावित है।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जी ३१२) की ललितमुद्रा मे आसीन एक अन्य चतुर्भुज मूर्ति (११वी शती ई०) में अम्बिका के निचले हाथों में आम्रलुम्बि एवं पुत्र और ऊपरी हाथो मे पद्म-पुस्तक एवं दर्पण है। सिंहवाहना अम्बिका के वाम पार्श्व मे दूसरा पुत्र एवं शीर्षभाग मे जिन आकृति एवं आम्रफल के गुच्छक उत्कीर्ण है। जैन परम्परा के विपरीत अम्बिका के साथ पद्म और दर्पण का चित्रण हिन्दू अम्बिका (पार्वती) का प्रभाव हो सकता है। ज्ञातव्य है कि पद्म का चित्रण खजुराहो की चतुर्भुज अम्बिका की मूर्तियो मे विशेष लोकप्रिय था।

देवगढ़ के समान खजुराहो मे भी जैन यक्षियों मे अम्बिका की ही सर्वाधिक मूर्तिया है। खजुराहो मे दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की अम्बिका की ११ मूर्तियां है।[3] पार्श्वनाथ मन्दिर के एक उदाहरण के अतिरिक्त अन्य सभी में अम्बिका चतुर्भुजा है। ११ स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त ७ उत्तरंगो पर भी चतुर्भुजा अम्बिका की ललितमुद्रा मे आसीन मूर्तियां उत्कीर्ण है। ११ स्वतन्त्र मूर्तियों में से दो पार्श्वनाथ और दो आदिनाथ मन्दिरों पर बनी हैं। अन्य उदाहरण स्थानीय संग्रहालयों एवं मन्दिरो मे सुरक्षित है। सात उदाहरणों मे अम्बिका त्रिभंग मे खड़ी और शेष मे ललित-मुद्रा मे आसीन है। सभी उदाहरणो में शीर्षभाग मे आम्रफल के गुच्छक, लघु जिन मूर्ति एव सिंहवाहन उत्कीर्ण है। अम्बिका के निचले दो हाथो मे आम्रलुम्बि एवं बालक[4] और ऊपरी हाथो मे पद्म (या पद्म में लिपटी पुस्तिका) प्रदर्शित हैं (चित्र ५७)।[5] केवल मन्दिर २७ की एक मूर्ति मे ऊर्ध्व करों मे अंकुश एवं पाश हैं। इस अध्ययन से स्पष्ट है कि मुख्य आयुधो (आम्रलुम्बि एवं पुत्र) के सन्दर्भ मे खजुराहो के कलाकारो ने परम्परा का पालन किया, पर ऊर्ध्व करों में पद्म या पद्म-पुस्तिका का प्रदर्शन खजुराहो की अम्बिका मूर्तियो की स्थानीय विशेषता है। ग्यारहवीं शती ई० की चार

---

१ पुत्र के बायें हाथ मे आम्रफल है।

२ खजुराहो की अन्य चतुर्भुज मूर्तियों मे दो ऊर्ध्व करों मे अंकुश एवं पाश के स्थान पर पद्म (या पद्म में लिपटी पुस्तिका) प्रदर्शित है।

३ उत्तर भारत मे अम्बिका की सर्वाधिक चतुर्भुज मूर्तियां खजुराहो से मिली है।

४ दो उदाहरणो (पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो १६०८ एवं मन्दिर २७) मे पुत्र गोद में बैठा न होकर वाम पार्श्व मे खड़ा है।

५ स्थानीय संग्रहालय (के ४२) की एक मूर्ति मे अम्बिका की एक ऊपरी भुजा में पद्म के स्थान पर आम्रलुम्बि है और जैन धर्मशाला के प्रवेश-द्वार के समीप के दो उत्तरंगों (११वीं शती ई०) की मूर्तियों में पुस्तक प्रदर्शित है।

मूर्तियों में दाहिने पार्श्व में दूसरा पुत्र भी उत्कीर्ण है। स्वतन्त्र मूर्तियां में अम्बिका सामान्यतः दो पार्श्ववर्ती सेविकाओं से सेवित है जिनकी एक भुजा मे चामर या पद्म प्रदर्शित है। साथ ही अभयमुद्रा एवं जलपात्र से युक्त दो पुरुष या स्त्री आकृतियां भी अंकित हैं। परिकर में सामान्यतः उपासकों, गन्धर्वों एवं उड्डीयमान मालाधरो की आकृतियां बनी हैं। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (१६०८) की एक विशिष्ट अम्बिका मूर्ति (११ वीं शती ई०) मे जिन मूर्तियो के समान ही पीठिका छोरों पर द्विभुज यक्ष और यक्षी भी आमूर्तित है। यक्ष अभयमुद्रा एवं धन के थैले और यक्षी अभयमुद्रा एवं जलपात्र से युक्त हैं। शीर्षभाग में पद्म धारण करने वाली कुछ देविया भी बनी है।

द्विभुजा अम्बिका की तीन मूर्तियां (१० वीं-११ वीं शती ई०) राज्य संग्रहालय, लखनऊ मे है।[1] शीर्षभाग में आम्रवृक्ष एवं जिन आकृति से युक्त अम्बिका सभी उदाहरणो मे ललितमुद्रा मे विराजमान है। वाहन केवल दो ही उदाहरणों मे उत्कीर्ण है।[2] इनमें यक्षी के करो मे आम्रलुम्बि एव पुत्र प्रदर्शित है।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—इस क्षेत्र की जिन-संयुक्त मूर्तियो मे अम्बिका सर्वदा द्विभुजा है। दसवीं शती ई० के पूर्व की नेमिनाथ की मूर्तियों मे अम्बिका के साथ आम्रलुम्बि एव सिंहवाहन का प्रदर्शन नही प्राप्त होता है। पर अम्बिका के साथ पुत्र का प्रदर्शन सातवीं-आठवी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया था।[3] दसवीं शती ई० के पूर्व की मूर्तियों में आम्रलुम्बि के स्थान पर पुष्प (या अभयमुद्रा) प्रदर्शित है (चित्र २६)। राज्य संग्रहालय, लखनऊ, ग्यारसपुर, देवगढ़ एवं खजुराहो की दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य की नेमिनाथ की मूर्तियों में द्विभुजी अम्बिका आम्रलुम्बि एवं पुत्र से युक्त है।[4] जिन-संयुक्त मूर्तियों में अम्बिका के साथ सिंहवाहन एवं दूसरा पुत्र सामान्यतः नहीं निरूपित है। शीर्षभाग मे आम्र-फल के गुच्छक भी कभी-कभी ही उत्कीर्ण किये गये हैं।

देवगढ़ के मन्दिर १३ और २४ की दो जिन-संयुक्त मूर्तियो (११ वी शती ई०) म आम्रलुम्बि के स्थान पर अम्बिका के हाथ मे आम्रफल (या फल) प्रदर्शित है। कुछ उदाहरणों (मन्दिर १२, १३) में दूसरा पुत्र भी उत्कीर्ण है। मन्दिर १२ की चहारदीवारी एवं मन्दिर १५ की मूर्तियों में सिंहवाहन भी बना है। तीन उदाहरणो (१० वीं–११ वीं शती ई०) मे नेमि के साथ सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी भी उत्कीर्ण है। यक्षी अभयमुद्रा (या वरदमुद्रा या पुष्प) एवं फल (या कलश) से युक्त है। चार मूर्तियो (११ वीं–१२ वीं शती ई०) मे यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों मे वरद-(या अभय-) मुद्रा, पद्म, पद्म एवं फल (या कलश) प्रदर्शित है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र की स्वतन्त्र मूर्तियो मे अम्बिका सदैव द्विभुजा है और आम्रलुम्बि एवं पुत्र से युक्त है। ल० दसवी शती ई० की एक पालयुगीन मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली (६३.९४०) मे संगृहीत है। द्विभंग में पद्मासन पर खडी अम्बिका का सिंहवाहन आसन के नीचे उत्कीर्ण है। यक्षी के दाहिने हाथ मे आम्रलुम्बि है और बायें से वह समीप ही खडे (निर्वस्त्र) पुत्र की उंगली पकड़े है। पोट्टासिंगीदी (क्योंझर, उड़ीसा) की मूर्ति मे सिंहवाहना अम्बिका ललित-मुद्रा मे विराजमान है और उसकी अवशिष्ट वामभुजा में पुत्र है।[5] अलुआरा से प्राप्त एक मूर्ति पटना संग्रहालय (१०६९४) मे है जिसमे दाहिने पार्श्व मे एक पुत्र खड़ा है।[6] पक्बीरा (मानभूम) की मूर्ति मे अवशिष्ट बायें हाथ में पुत्र है।[7] अम्बिका-नगर (बांकुड़ा) एवं बरकोला से भी सिंहवाहना अम्बिका की दो मूर्तियां मिली है।[8]

---

१ क्रमांक जे ८५३, जे ७९, ८.०.३३४ २ जे ८५३, ८.०.३३४ ३ भारत कला भवन, वाराणसी २१२

४ राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ७९२) एवं देवगढ़ की कुछ नेमिनाथ की मूर्तियों मे अम्बिका के स्थान पर सामान्य लक्षणों वाली यक्षी भी आमूर्तित है।

५ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट ऑन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, खं० १०, अं० ४, पृ० ३१–३२

६ प्रसाद, एच०के०, 'जैन ब्रोन्जेज इन दि पटना म्यूजियम', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० २८९

७ मित्र, कालीपद, 'नोट्स ऑन टू जैन इमेजेज', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २८, भाग २, पृ० २०३

८ मित्रा, देवला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बाकुड़ा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०, खं०२४, अं०२, पृ०१३१-३३

ललितमुद्रा में विराजमान सिंहवाहना अम्बिका की दो मूर्तियां नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओ (११ वीं–१२ वी शती ई०) मे उत्कीर्ण है। नवमुनि गुफा की मूर्ति मे यक्षी के करो में आम्रलुम्बि एवं पुत्र हैं।[1] जटामुकुट एवं आम्रफल के गुच्छकों से शोभित अम्बिका के समीप ही दूसरा पुत्र (निर्वस्त्र) भी आमूर्तित है। बारभुजी गुफा के उदाहरण में यक्षी के दाहिने हाथ मे फल और बायें मे आम्रवृक्ष की टहनी हैं।[2] शीर्षभाग मे आम्रवृक्ष और बायें पार्श्व में पुत्र उत्कीर्ण हैं।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत मे भी अम्बिका का द्विभुज स्वरूप मे निरूपण ही विशेष लोकप्रिय था। मूर्तियों में अम्बिका सामान्यतः पुत्रो एवं सिंहवाहन से युक्त है। दोनों पुत्रो को सामान्यतः वाम पार्श्व में आमूर्तित किया गया है। अम्बिका के हाथ में आम्रलुम्बि का प्रदर्शन नियमित नहीं था। दक्षिण भारत मे शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छकों के स्थान पर आम्रवृक्ष के उत्कीर्णन की परम्परा लोकप्रिय थी। अम्बिका दक्षिण भारत की तीन सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षियों (अम्बिका, पद्मावती, ज्वालामालिनी) मे थी। अम्बिका की प्राचीनतम मूर्ति अयहोल (कर्नाटक) के मेगुटी मन्दिर (६३४–३५ ई०) से मिली है।[3] सामान्य पीठिका पर ललितमुद्रा मे विराजमान द्विभुजा यक्षी के दोनों हाथ खण्डित हैं, पर शीर्षभाग मे आम्रवृक्ष एव पैरो के नीचे सिंहवाहन सुरक्षित है। वाम पार्श्व मे अम्बिका का पुत्र उत्कीर्ण है जिसके एक हाथ मे फल है। अम्बिका के पार्श्वों मे पाच सेविकाएं बनी है। दाहिने पार्श्व की एक सेविका की गोद मे एक बालक (निर्वस्त्र) है जो सम्भवतः अम्बिका का दूसरा पुत्र है।

आनन्दमंगलक गुफा (काची) मे सिंहवाहना अम्बिका की कई स्थानक मूर्तिया हैं। इनमें अम्बिका का बाया हाथ पुत्र के मस्तक पर स्थित है।[4] त्रावनकोर राज्य के किसी स्थल से प्राप्त एक मूर्ति (९ वी–१० वी शती ई०) मे सिंहवाहना अम्बिका का दाहिना हाथ वरदमुद्रा मे है और बाया नीचे लटक रहा है।[5] वाम पार्श्व मे दोनों पुत्र बने है। कलुगुमलाई (तमिलनाडु) की एक मूर्ति (१० वीं–११ वी शती ई०) मे सिंहवाहना अम्बिका का दाहिना हाथ एक बालिका के मस्तक पर है[6] और बाया फल (या आम्रलुम्बि) लिये है। वाम पार्श्व मे दो बालक आकृतियां उत्कीर्ण है।[7] एलोरा की जैन गुफाओ मे अम्बिका की कई मूर्तिया (१० वीं–११ वी शती ई०) है। इनमे आम्रवृक्ष के नीचे विराजमान अम्बिका के करो मे आम्रलुम्बि और पुत्र (गोद मे) प्रदर्शित है। यक्षी का दूसरा पुत्र सामान्यतः सिंहवाहन के समीप आमूर्तित है (चित्र ५२)। अंगदि के जैन बस्ती (कर्नाटक) की मूर्ति मे यक्षी के दाहिने हाथ मे आम्रलुम्बि है और बाया पुत्र के मस्तक पर स्थित है। दक्षिण पार्श्व मे सिंहवाहन और दूसरा पुत्र आमूर्तित है। मुर्तजापुर (अकोला, महाराष्ट्र) की एक द्विभुज मूर्ति नागपुर सग्रहालय मे है। इसमे सिंहवाहना अम्बिका आम्रलुम्बि एवं फल मे युक्त है। प्रत्येक पार्श्व मे उसका एक पुत्र खड़ा है। समान विवरणो वाली एक मूर्ति श्रवणबेलगोला के चामुण्डराय बस्ता से मिली है।[8]

दक्षिण भारत से अम्बिका की कुछ चतुर्भुज मूर्तिया भी मिली है। जिनकाची के भित्ति चित्रो मे अम्बिका चतुर्भुजा है।[9] पद्मासन मे विराजमान यक्षी के ऊपरी हाथो मे अंकुश और पाश तथा शेष मे अभय–और वरदमुद्राएं

---

१ मित्रा, देबला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, पृ० १२९
२ वही, पृ० १३२
३ कजिन्स, एच०, दि चालुक्यन आर्किटेक्चर, आर्किअलाजिकल सर्वे आव इण्डिया, खं० ४२, न्यू इम्पीरियल सिरीज, पृ० ३१, फलक ४
४ देसाई, पी०बी०, 'यक्षी इमेजेज इन साऊथ इण्डियन जैनिजम', डा० मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम, नागपुर, १९६५, पृ० ३४५
५ देसाई, पी०बी०, जैनिजम इन साऊथ इण्डिया ऐण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, शोलापुर, १९६३, पृ० ६९
६ पुत्र के स्थान पर पुत्री का चित्रण अपारम्परिक है।
७ देसाई, पी०बी०, पू०नि०, पृ० ६४
८ शाह, यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', ज०यू०बां०, खं० ९, भाग २, पृ० १५४–५६
९ वही, पृ० १५८

प्रदर्शित हैं। बर्जेस ने कन्नड़ परम्परा पर आधारित चतुर्भुजा कुष्माण्डिनी का एक चित्र भी प्रकाशित किया है जिसमें सिंह-वाहना यक्षी के दोनों पुत्र गोद में स्थित हैं और उसके दो ऊपरी हाथों में खड्ग और चक्र प्रदर्शित हैं।[1]

विश्लेषण

अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे दक्षिण भारत की अपेक्षा अम्बिका की अधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। जैन देवकुल की प्राचीनतम यक्षी होने के कारण ही शिल्प में सबसे पहले अम्बिका को मूर्त अभिव्यक्ति मिली। ल० छठी-सातवीं शती ई० में अम्बिका की स्वतन्त्र एवं जिन-संयुक्त मूर्तियों का निरूपण प्रारम्भ हुआ।[2] सभी क्षेत्रों में अम्बिका का द्विभुज रूप ही विशेष लोकप्रिय था। जिन-संयुक्त मूर्तियो में तो अम्बिका सदैव द्विभुजा ही है।[3] उसके साथ सिंहवाहन एवं आम्रलुम्बि और पुत्र का चित्रण सभी क्षेत्रो मे लोकप्रिय था। शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक और पार्श्व में दूसरे पुत्र का अंकन भी नियमित था। श्वेतांबर स्थलों पर उपर्युक्त लक्षणों का प्रदर्शन दिगंबर स्थलो की अपेक्षा कुछ पहले ही प्रारम्भ हो गया था। श्वेतांबर स्थलों (अकोटा) पर इन विशेषताओ का प्रदर्शन छठी-सातवी शती ई० मे और दिगंबर स्थलो[4] पर नवीं-दसवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। दिगंबर स्थलो की जिन-संयुक्त मूर्तियों में सिंहवाहन एवं दूसरे पुत्र का प्रदर्शन दुर्लभ है। यह भी ज्ञातव्य है कि श्वेतांबर स्थलों पर नेमि के साथ सर्दव अम्बिका ही निरूपित है, पर दिगंबर स्थलों पर कभी-कभी सामान्य लक्षणों वाली अपारम्परिक यक्षी भी आमूर्तित है।

उल्लेखनीय है कि दिगंबर ग्रन्थों मे द्विभुजा अम्बिका का ध्यान किया गया है।[5] पर दिगंबर स्थलो पर अम्बिका की द्विभुज और चतुर्भुज दोनों ही मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। दिगंबर परम्परा की सर्वाधिक चतुर्भुजी मूर्तियां खजुराहो से मिली है। दूसरी ओर श्वेतांबर परम्परा मे अम्बिका का चतुर्भुज रूप मे ध्यान किया गया है, पर श्वेतांबर स्थलो पर उसकी द्विभुज मूर्तियां ही अधिक संख्या मे उत्कीर्ण हुई। केवल कुम्भारिया, विमलवसही, जालोर एवं तारंगा से ही कुछ चतुर्भुजी मूर्तियां मिली हैं। श्वेतांबर स्थलो पर परम्परा के अनुरूप चतुर्भुजा अम्बिका के ऊपरी हाथो में पाश एवं अंकुश नही मिलते है।[6] पर दिगंबर स्थलों[7] की मूर्तियो में ऊपरी हाथों में पाश एवं अंकुश (या त्रिशूलयुक्त घंटा) प्रदर्शित हुए है। श्वेतांबर स्थलों पर अम्बिका की स्थानक मूर्तियां दुर्लभ हैं[8], पर दिगंबर स्थलो से आसीन और स्थानक दोनों ही मूर्तियां मिली है।

श्वेतांबर स्थलों पर जहां अम्बिका के निरूपण मे एकरूपता प्राप्त होती है[9], वही दिगंबर स्थलो पर विविधता देखी जा सकती है। दिगंबर स्थलों पर चतुर्भुजा अम्बिका के दो हाथों में आम्रलुम्बि एवं पुत्र और शेष दो हाथो में पद्म, पद्म-पुस्तक, पुस्तक, अंकुश, पाश, दर्पण एवं त्रिशूल-घण्टा में से कोई दो आयुध प्रदर्शित है। खजुराहो की एक अम्बिका मूर्ति (पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो, १६०८) में देवी के साथ यक्ष-यक्षी युगल का उत्कीर्णन अम्बिका-मूर्ति के विकास की पराकाष्ठा का सूचक है।

---

१ बर्जेस, जे०, 'दिगंबर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि०एण्टि०, खं० ३२, पृ० ४६३, फलक ४, चित्र २२

२ प्रारम्भिकतम मूर्तियां अकोटा (गुजरात) से मिली है।

३ कुंभारिया एवं विमलवसही की कुछ नेमिनाथ मूर्तियों में अम्बिका चतुर्भुजा भी है।

४ देवगढ़, खजुराहो, ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर) एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ

५ केवल दिगंबर परम्परा के तांत्रिक ग्रन्थ मे ही चतुर्भुजा एवं अष्टभुजा अम्बिका का ध्यान किया गया है।

६ विमलवसही एवं तारंगा की दो मूर्तियो में चतुर्भुजा अम्बिका के साथ पाश प्रदर्शित है।

७ खजुराहो, देवगढ़ एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ

८ एक स्थानक मूर्ति तारंगा के अजितनाथ मन्दिर पर है।

९ तारंगा, जालोर एवं विमलवसही की तीन चतुर्भुज मूर्तियो में अम्बिका के निरूपण में रूपगत भिन्नता प्राप्त होती है। अन्य उदाहरणों में अम्बिका के तीन हाथों में आम्रलुम्बि और चौथे में पुत्र हैं।

(२३) पार्श्व (या धरण) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

पार्श्व (या धरण) जिन पार्श्वनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा मे यक्ष को पार्श्व[1] और दिगंबर परम्परा में धरण कहा गया है। दोनों परम्पराओं मे सर्पफणों के छत्र से युक्त चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म है। श्वेतांबर परम्परा में पार्श्व को गजमुख बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** म गजमुख पार्श्व यक्ष का वाहन कूर्म है। सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्व के दक्षिण करो मे मातुलिंग एवं उरग और वाम म नकुल एव उरग वर्णित हैं।[2] अन्य ग्रन्थों मे भी सामान्यतः इन्ही लक्षणों के उल्लेख है।[3] केवल दो ग्रन्थो मे दाहिने हाथ में उरग के स्थान पर गदा के प्रदर्शन का निर्देश है।[4]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह**मे कूर्म पर आरूढ धरण के आयुधों का अनुल्लेख है।[5] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे सर्पफणों से शोभित धरण के दो ऊपरी हाथों मे सर्प और निचले हाथों मे नागपाश एवं वरदमुद्रा उल्लिखित है।[6] **अपराजितपृच्छा** मे सर्परूप पार्श्व यक्ष को षड्भुज बताया गया है और उसके करों मे धनुष, बाण, भृण्डि, मुद्गर, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

यक्ष का नाम (धरणेन्द्र या धरणीधर) सम्भवतः शेषनाग (नागराज) से प्रभावित है। शीर्षभाग मे सर्पछत्र एवं हाथ म सर्प का प्रदर्शन भी यही सम्भावना व्यक्त करता है। यक्ष के हाथ मे वासुकि के प्रदर्शन का निर्देश है जो हिन्दू परम्परा के अनुसार सर्पराज और काश्यप का पुत्र है। यक्ष के साथ कूर्मवाहन का प्रदर्शन सम्भवतः कमठ (कूर्म) पर उसके प्रभुत्व का सूचक है, जो उसके स्वामी (पार्श्वनाथ) का शत्रु था।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे पांच सर्पफणों से आच्छादित चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म कहा गया है। यक्ष के ऊपरी हाथो मे सर्प और निचले मे अभय एव कटक मुद्राओं का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ मे

---

१ **प्रवचनसारोद्धार** मे वामन नाम से उल्लेख है।

२ पार्श्वयक्षं गजमुखमुरगफणामण्डितशिरसं श्यामवर्णं कूर्मवाहनं चतुर्भुजं बीजपूरकोरगयुतदक्षिणपाणिं नकुलकाहियुतवामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.२३

३ **त्रि०श०पु०च०** ९.३.३६२–६३, **मन्त्राधिराजकल्प** ३.४७, **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.६२; **पार्श्वनाथचरित्र** (भावदेवसूरिप्रणीत) ७.८२७–२८; **रूपमण्डन** ६.२०

४ मातुलिंगगदायुक्तौ बिभ्राणो दक्षिणौ करौ।
वामौ नकुलसर्पाङ्को कूर्माङ्कः कुन्जराननः ॥
मूर्ध्नि फणिफणच्छत्रो यक्षः पार्श्वोऽसितद्युतिः। **पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट–पार्श्वनाथ** ९२–९३
द्रष्टव्य, **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७५

५ पार्श्वस्य धरणो यक्षः श्यामागः कूर्मवाहनः। **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.६७

६ ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाधः सव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणंता।
श्रीनागराजककुदं धरणोऽभ्रनीलः कूर्माश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम् ॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१५१
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२३, पृ० ३३८

७ पार्श्वो धनुर्बाणं भृण्डि मुद्गरश्च फलं वरः।
सर्परूपः श्यामवर्णः कर्तव्यः शान्तिमिच्छता ॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.५५

८ भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० ११८

कूर्म पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के करों में कलश, पाश, अंकुश एवं मातुलिंग वर्णित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण मे कलश के स्थान पर पद्म (? उत्फुल्लधर) एवं शीर्षभाग में एक सर्पफण के छत्र के प्रदर्शन का उल्लेख है।[1]

मूर्ति-परम्परा

पार्श्व या धरण यक्ष के निरूपण में केवल सर्पफणो[2] एवं कभी-कभी हाथ में सर्प के प्रदर्शन में ही ग्रन्थों के निर्देशों का पालन हुआ है। ल० नवीं शती ई० में यक्ष की मूर्तियो का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।

(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—पार्श्व यक्ष की स्वतन्त्र मूर्तियां (९ वीं–१३ वीं शती ई०) केवल ओसिया (महावीर मन्दिर), ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर) एवं लूणवसही से मिली है। लूणवसही की मूर्ति मे यक्ष चतुर्भुज है और अन्य उदाहरणों में द्विभुज है। ओसिया के महावीर मन्दिर (श्वेतांबर, ल० ९ वीं शती ई०) से पार्श्व की दो मूर्तियां मिली हैं। एक मूर्ति गूढमण्डप की पूर्वी भित्ति पर है जिसमे सात सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्ष स्थानक-मुद्रा मे है और उसके सुरक्षित बायें हाथ में पुष्प है। दूसरी मूर्ति अर्धमण्डप के स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। इसमे त्रिसर्पफणो से शोभित एवं ललित-मुद्रा में आसीन यक्ष के दाहिने हाथ का आयुध अस्पष्ट है, पर बायें में सम्भवतः सर्प है। ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर (दिगंबर, १० वीं शती ई०) की मूर्ति[3] में पांच सर्पफणो के छत्र से युक्त धरण पद्मासन पर त्रिभंग में खड़ा है। उसका दाहिना हाथ अभयमुद्रा मे है और बायें मे कमण्डलु है। लूणवसही (श्वेतांबर, १३ वीं शती ई० का पूर्वार्ध) की मूर्ति गूढमण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार पर है जिसमें तीन अवशिष्ट करो मे वरदाक्ष, सर्प एवं सर्प प्रदर्शित है।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—पार्श्वनाथ की मूर्तियां मे यक्ष-यक्षी का अंकन ल० दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। ज्ञातव्य है कि दिगबर स्थलो पर पार्श्वनाथ की मूर्तियां मे सिंहासन या पीठिका के छोरो पर यक्ष-यक्षी का चित्रण नियमित नही था।[4] गुजरात और राजस्थान की सातवीं से बारहवीं शती ई० की श्वेतांबर परम्परा की पार्श्वनाथ की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। अकोटा, ओसिया (१०१९ ई०) एव कुम्भारिया (पार्श्वनाथ मन्दिर, १२ वीं शती ई०) की कुछ पार्श्वनाथ की मूर्तियों मे सर्वानुभूति एवं अम्बिका के सिरो पर सर्पफणों के छत्र भी प्रदर्शित है जो पार्श्वनाथ का प्रभाव है। विमलवसही की देवकुलिका ४ (११८८ ई०) की अकेली मूर्ति मे पार्श्वनाथ के साथ पारम्परिक यक्ष निरूपित है। कूर्म पर आरूढ़ एवं तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त चतुर्भुज पार्श्व गजमुख है और करों में मोदक-पात्र, सर्प, सर्प एव धन का थैला[5] लिये है। एक हाथ मे मोदकपात्र का प्रदर्शन और यक्ष का गजमुख होना गणेश का प्रभाव है।

उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों की पार्श्वनाथ की मूर्तियों में भी यक्ष-यक्षी अंकित है। देवगढ़ की तीस मूर्तियों में से केवल सात ही में (१० वीं-११ वीं शती ई०) यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।[6] छह उदाहरणो मे द्विभुज यक्ष-यक्षी

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २१०

२ शीर्षभाग के सर्पफणों की संख्या (१, ३, ५, ७) कभी स्थिर नहीं हो सकी।

३ यह मूर्ति मण्डप के उत्तरी जंघा पर है।

४ दिगंबर स्थलो की अधिकांश मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी के स्थान पर मूलनायक के पार्श्वों मे सर्पफणो के छत्रो से युक्त दो स्त्री-पुरुष आकृतियां उत्कीर्ण है, जो धरण और पद्मावती है। यह उस समय का अंकन है जब कमठ के उपसर्ग से पार्श्वनाथ की रक्षा के लिए धरणेन्द्र पद्मावती के साथ देवलोक से पार्श्वनाथ के निकट आया था। ऐसी मूर्तियो मे धरण सामान्यतः चामर (या घट) और पद्म (या फल) से युक्त है तथा पद्मावती के दोनों हाथों मे एक लम्बा छत्र प्रदर्शित है जिसका ऊपरी भाग पार्श्व के मस्तक के ऊपर है। यह चित्रण परम्परासम्मत है। कुछ मूर्तियां (विशेषतः देवगढ़) में इन आकृतियों के साथ ही सिंहासन छोरों पर यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं।

५ यह नकुल भी हो सकता है।

६ अन्य उदाहरणों में सामान्यतः चामरधारी धरणेन्द्र एवं छत्र या चामरधारिणी पद्मावती आमूर्तित हैं।

सामान्य लक्षणों वाले हैं ।[1] मन्दिर ९ की दसवी शती ई० की एक मूर्ति में यक्ष-यक्षी तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं। मन्दिर १२ के समीप की एक अरक्षित मूर्ति (११ वी शती ई०) में एक सर्पफण के छत्र से युक्त यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं। यक्ष के हाथो में अभयमुद्रा, सर्प, पाश एवं कलश हैं। इस मूर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी उदाहरण में देवगढ़ में पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी नही निरूपित हुए।

खजुराहो की केवल चार मूर्तियो (११ वी-१२ वी शती ई०) में यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं ।[2] स्थानीय संग्रहालय (के १००) की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) में पाच सर्पफणों से शोभित द्विभुज यक्ष फल (?) एवं फल से युक्त है। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो की एक मूर्ति (१६१८, १२ वी शती ई०) मे सर्पफणो की छत्रावली से युक्त यक्ष नमस्कार-मुद्रा में निरूपित है। स्थानीय संग्रहालय (के ५) की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) मे चतुर्भुज यक्ष के दो अवशिष्ट करों मे पद्म एव फल है। स्थानीय संग्रहालय (के ६८) की एक अन्य मूर्ति मे पांच सर्पफणों के छत्र वाले चतुर्भुज यक्ष के करो मे अभयमुद्रा, शक्ति (?), सर्प एवं कलश प्रदर्शित हैं। खजुराहो मे यद्यपि धरण का कोई निश्चित स्वरूप नही नियत हुआ, पर शीर्षभाग में सर्पफणों के छत्र का चित्रण अन्य क्षेत्रो की अपेक्षा नियमित था। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की पार्श्वनाथ की केवल चार ही मूर्तियो में यक्ष-यक्षी उत्कीर्णित है। नवी-दसवी शती ई० की तीन मूर्तियों में द्विभुज यक्ष की दाहिनी भुजा में फल और बायी में धन का थैला है ।[3] ग्यारहवी शती ई० की चौथी मूर्ति (जे ७९४) मे पांच सर्पफणों वाले चतुर्भुज यक्ष के सुरक्षित दाहिने हाथों मे फल एवं पद्म प्रदर्शित है।

दक्षिण भारत—उत्तर भारत के दिगंबर स्थलो के समान ही दक्षिण भारत मे भी पार्श्वनाथ के सिंहासन के छोरो पर यक्ष-यक्षी का निरूपण लोकप्रिय नही था ।[4] दक्षिण कन्नड़ क्षेत्र की एक पार्श्वनाथ मूर्ति (१० वी-११ वीं शती ई०) मे एक सर्पफण के छत्र से युक्त यक्ष चतुर्भुज है। यक्ष के तीन सुरक्षित करो मे गदा, कलश और अभयमुद्रा है ।[5] कन्नड़ शोध संस्थान संग्रहालय (एस० सी० ५३) की मूर्ति में चतुर्भुज यक्ष के हाथों में पद्म (?), पाश, परशु एवं फल है ।[6] प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम, बम्बई मे दो स्वतन्त्र चतुर्भुज मूर्तियां हैं ।[7] एक उदाहरण में तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त यक्ष कूर्म पर आरूढ़ है और उसके करो मे वरदमुद्रा, सर्प, सर्प एवं नागपाश प्रदर्शित है। तीन सर्पफणो के छत्र से युक्त दूसरी मूर्ति (१२ वी शती ई०) मे यक्ष के हाथो मे सनाल पद्म, गदा, पाश (नाग ?) एवं वरदमुद्रा है ।[8] यक्ष ललितमुद्रा मे है।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे जैन परम्परा के विपरीत यक्ष का द्विभुज स्वरूप में निरूपण ही विशेष लोकप्रिय था। केवल कुछ ही उदाहरणो मे यक्ष चतुर्भुज है ।[9] यक्ष की स्वतन्त्र मूर्तियो का उत्कीर्णन नवी शती ई०

१ इनके करो मे अभयमुद्रा (या गदा) एवं कलश (या फल या धन का थैला) प्रदर्शित हे।

२ अन्य उदाहरणो मे धरण एवं पद्मावती की क्रमशः चामर एवं छत्र (या चामर) से युक्त आकृतिया उत्कीर्ण है।

३ जी ३१०, जे ८८२, ४०.१२१

४ बादामी एवं अयहोल की मूर्तियो मे दोनो पार्श्वों में धरणेन्द्र और पद्मावती को क्रमशः नमस्कार-मुद्रा मे (या अभय-मुद्रा व्यक्त करते हुए) और छत्र धारण किये हुए दिखाया गया है। धरणेन्द्र सर्पफण के छत्र से रहित और पद्मावती उससे युक्त है।

५ हाडवे, डब्ल्यू० एम०, 'नोट्स आन टू जैन मेटल इमेजेज', **रूपम**, अं० १७, पृ० ४८-४९

६ अन्निगेरी, ए० एम०, **ए गाइड टू दि कन्नड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूजियम**, धारवाड़, १९५८, पृ० १९

७ संकलिया, एच० डी०, 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', **बु०ड०का०रि०इं०**, खं० १, अं० २-४, पृ० १५७-५८; **जै०क०स्था०**, खं० ३, पृ० ५८३-८४

८ यह पाताल यक्ष की भी मूर्ति हो सकती है।

९ चतुर्भुज मूर्तियां देवगढ़, खजुराहो, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, विमलवसही एव लूणवसही से मिली हैं। दिगंबर स्थलों पर चतुर्भुज यक्ष की अपेक्षाकृत अधिक मूर्तियां हैं।

में प्रारम्भ हुआ। यक्ष की प्रारम्भिक मूर्तियां ओसिया के महावीर मन्दिर से मिली है। पार्श्वनाथ की मूर्तियों में पारम्परिक यक्ष का चित्रण दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ।[1] यक्ष के साथ कूर्मवाहन केवल एक ही मूर्ति (विमलवसही की देवकुलिका ४) में उत्कीर्ण है। जिन-संयुक्त एवं स्वतन्त्र मूर्तियों में यक्ष के साथ केवल सर्पफणों के छत्र और हाथ में सर्प के प्रदर्शन में ही परम्परा का निर्वाह किया गया है। पुरातात्विक स्थलों पर मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से यक्ष का कोई स्वतन्त्र रूप भी नहीं निश्चित हुआ। केवल विमलवसही की देवकुलिका ४ की मूर्ति मे ही यक्ष के निरूपण में पारम्परिक विशेषताएं प्रदर्शित है।[2] एक उदाहरण के अतिरिक्त[3] श्वेतांबर स्थलो की अन्य सभी जिन-संयुक्त मूर्तियों मे यक्ष सर्वानुभूति है। पर दिगंबर स्थलों पर सामान्य लक्षणों वाले यक्ष के साथ ही कभी-कभी स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष भी निरूपित हैं। कई उदाहरणों में सर्पफणों के छत्र वाले यक्ष के हाथ मे सर्प भी प्रदर्शित है।

(२३) पद्मावती यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

पद्मावती जिन पार्श्वनाथ की यक्षी है। दोनो परम्पराओं मे पद्मावती का वाहन कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट) है[4] तथा देवी के मुख्य आयुध पद्म, पाश एवं अंकुश है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका मे चतुर्भुजा पद्मावती का वाहन कुर्कुट है और उसके दक्षिण करो मे पद्म, और पाश तथा वाम मे फल और अंकुश वर्णित है।[5] समान लक्षणो का उल्लेख करने वाले अन्य सभी ग्रन्थों मे कुर्कुट के स्थान पर वाहन के रूप मे कुर्कुट-सर्प का उल्लेख है।[6] **मन्त्राधिराजकल्प** मे पद्मावती के मस्तक पर तीन सर्पफणों के छत्र के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह मे पद्मवाहना पद्मावती का चतुर्भुज, षड्भुज एव चतुर्विंशतिभुज रूपो मे ध्यान किया गया है।[8] चतुर्भुजा पद्मावती के तीन हाथो मे अंकुश, अक्षसूत्र एवं पद्म; तथा षड्भुजा यक्षी के करो में पाश,

१ देवगढ़, खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ

२ मोदकपात्र के अतिरिक्त। ३ विमलवसही की देवकुलिका ४ की मूर्ति

४ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** मे वाहन पद्म है।

५ पद्मावती देवी कनकवर्णा कुर्कुटवाहनां चतुर्भुजां पद्मपाशान्वितदक्षिणकरां फलांकुशाधिष्ठित वामकरा चेति॥ **निर्वाणकलिका** १८.२३

६ **त्रि०श०पु०च०** ९.३.३६४–६५; **पद्मानन्दमहाकाव्य**. परिशिष्ट—**पार्श्वनाथ** ९३–९४; **पार्श्वनाथचरित्र** ७.८२९–३०; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७७; **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.६३; **रूपमण्डन** ६.२१

७ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.६५

८ देवी पद्मावती नाम्ना रक्तवर्णा चतुर्भुजा।
पद्मासनांकुशं धत्ते अक्षसूत्रं च पंकजं।
अथवा षड्भुजा देवी चतुर्विंशति सद्भुजा॥
पाशासिकुन्तबालेन्दुगदामुशलसयुतं।
भुजाष्टकं समाख्यातं चतुर्विंशतिरुच्यते॥
शंखासिचक्रबालेन्दु पद्मोत्पलशरासनं।
पाशांकुशं घंट (वाय) बाणं मुशलखेटकं।
त्रिशूलंपरशुं कुन्तं भिण्डमालं फलं गदा।
पत्रंचपल्लवं धत्ते वरदा धर्मवत्सला॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.६७–७१

खड्ग, शूल, अर्धचन्द्र (बालेन्दु), गदा एवं मुसल वर्णित हैं। चतुर्विंशतिभुज यक्षी के करों में शंख, खड्ग, चक्र, अर्धचन्द्र (बालेन्दु), पद्म, उत्पल, धनुष (शरासन), शक्ति, पाश, अंकुश, घण्टा, बाण, मुसल, खेटक, त्रिशूल, परशु, कुंत, भिण्ड, माला, फल, गदा, पत्र, पल्लव एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में भी कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ एवं तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी का सम्भवतः चतुर्विंशतिभुज रूप मे ही ध्यान है। पद्म पर आसीन यक्षी के करों में अंकुश, पाश, शंख, पद्म एवं अक्षमाला आदि प्रदर्शित है।[2] **प्रतिष्ठातिलकम्**[3] मे भी सम्भवतः चतुर्विंशतिभुज पद्मावती का ही ध्यान किया गया है। पद्मस्थ यक्षी के छह हाथों में पाश आदि और शेष में शंख, खड्ग, अंकुश, पद्म, अक्षमाला एवं वरदमुद्रा आदि के प्रदर्शन का निर्देश है। ग्रन्थ में वाहन का अनुल्लेख है। **अपराजितपृच्छा** में चतुर्भुजा पद्मावती का वाहन कुक्कुट और करों के आयुध पाश, अंकुश, पद्म एवं वरदमुद्रा है।[4]

धरणेन्द्र (पाताल देव) की भार्या होने के कारण ही पद्मावती के साथ सर्प (कुक्कुट-सर्प एवं सर्पफण का छत्र) को सम्बद्ध किया गया। जैन परम्परा में उल्लेख है कि पार्श्वनाथ का जन्म-जन्मान्तर का शत्रु कमठ दूसरे भव में कुक्कुट-सर्प के रूप में उत्पन्न हुआ था। पद्मावती के वाहन के रूप में कुक्कुट-सर्प का उल्लेख सम्भवतः उसी कथा से प्रभावित और पार्श्वनाथ के शत्रु पर उसकी यक्षी (पद्मावती) के नियन्त्रण का सूचक है। यक्षी के नाम, पद्मा या पद्मावती को यक्षी की भुजा में पद्म के प्रदर्शन से सम्बन्धित किया जा सकता है। पद्मावती को हिन्दू देवकुल की सर्प से सम्बद्ध लोक-देवी मनसा से भी सम्बद्ध किया जाता है। मनसा को पद्मा या पद्मावती नामों से भी सम्बोधित किया गया है।[5] पर जैन यक्षी की लाक्षणिक विशेषताएं मनसा से पूर्णतः भिन्न है। हिन्दू परम्परा में शिव की शक्ति के रूप में भी पद्मावती (या पद्मा) का उल्लेख है। ऐसे स्वरूप में नाग पर आरूढ़ एवं नाग की माला से शोभित चतुर्भुजा पद्मावती त्रिनेत्र, अर्धचन्द्र से सुशोभित तथा करों मे माला, कुम्भ, कपाल एवं नीरज से युक्त है।[6] ज्ञातव्य है कि नाग से सम्बद्ध जैन पद्मावती को दिगंबर परम्परा में पद्म, माला एवं अर्धचन्द्र से युक्त बताया गया है। **भैरव-पद्मावती कल्प** मे यक्षी को त्रिनेत्र भी कहा गया है।

---

१ बी० सी० भट्टाचार्य ने **प्रतिष्ठासारसंग्रह** की आरा की पाण्डुलिपि के आधार पर वज्र एवं शक्ति का उल्लेख किया है। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० १४४

२ येष्टुं कुर्कटसर्पगात्रिफणकोत्तंसाद्विषोयात षट्
पाशादिः सदसत्कृते च धृतशंखास्पादिदो अष्टका।
तां शान्तामरुणां स्फुरच्छृणिसरोजन्माक्षव्यालाम्बरां
पद्मस्थां नवहस्तकप्रभुनतां यायज्मि पद्मावतीम्॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१७४

३ पाशाद्यन्वितषड्भुजारिजयदा ध्याता चतुर्विंशति।
शंखास्यादियुतान्करांस्तु दधती या क्रूरशान्त्यर्थदा॥
शान्त्यै सांकुशवारिजाक्षमणिसद्दानैश्चतुर्भिः करैर्युक्ता।
ता प्रयजामि पार्श्वविनता पद्मस्थपद्मावतीम्॥ **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२३, पृ० ३४७-४८

४ पाशाङ्कुशौ पद्मवरे रक्तवर्णा चतुर्भुजा।
पद्मासना कुक्कुटस्था ख्याता पद्मावतीतिच॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.३७

५ बनर्जी, जे० एन०, **पू०नि०**, पृ० ५६३

६ ऊं नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्त सोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम्।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वर भैरवाङ्कनिलयां पद्मावती चिन्तये॥ **मारकण्डेयपुराण** : अध्याय ८६ ध्यानम्

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ मे पांच सर्पफणों के छत्र से शोभित चतुर्भुजा पद्मावती का वाहन हंस है। यक्षी के ऊपरी हाथों मे कुठार एवं कुलिश और निचले में अभय एवं कटक मुद्राएं वर्णित हैं।[१] **भैरव-पद्मावती कल्प** मे पद्म पर अवस्थित चतुर्भुजा पद्मा को त्रिनेत्र और हाथों मे पाश, फल, वरदमुद्रा एवं शृणि से युक्त कहा गया है। पद्मावती को त्रिपुरा एवं त्रिपुरभैरवी जैसे नामो से भी सम्बोधित किया गया है।[२] अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ चतुर्भुजा यक्षी को त्रिलोचना बताया गया है और उसके हाथो में शृणि, पाश, वरदमुद्रा एवं पद्म का उल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे सर्पफण से आच्छादित चतुर्भुजा एवं त्रिलोचना यक्षी का वाहन सर्प तथा करो के आयुध पाश, अकुश, फल एवं वरदमुद्रा हैं।[३] श्वेतांबर ग्रन्थों के विवरण सामान्यतः उत्तर भारतीय श्वेतांबर परम्परा के विवरण से मेल खाते हैं।

मूर्ति-परम्परा

पद्मावती की प्राचीनतम मूर्तियां नवी-दसवी शती ई० की हैं। ये मूर्तियां ओसिया के महावीर एवं ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिरो से मिली है। इनमें पद्मावती द्विभुजा है।[४] सभी क्षेत्रों की मूर्तियों में सर्पफणों के छत्र से युक्त पद्मावती का वाहन सामान्यतः कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट)[५] है और उसके करों में सर्प, पाश, अंकुश एवं पद्म प्रदर्शित हैं।

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र मे ल० नवी शती ई० में पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियों का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।[६] इस क्षेत्र की स्वतन्त्र मूर्तियां (९वी-१३वी शती ई०) ओसिया (महावीर मन्दिर), झालावाड़ (झालरापाटन), कुम्भारिया (नेमिनाथ मन्दिर), और आबू (विमलवसही एवं लूणवसही) से मिली हैं। ओसिया के महावीर मन्दिर की मूर्ति उत्तर भारत में पद्मावती की प्राचीनतम मूर्ति है जो मन्दिर के मुखमण्डप के उत्तरी छज्जे पर उत्कीर्ण है। कुक्कुटसर्प पर विराजमान द्विभुजा पद्मावती के दाहिने हाथ मे सर्प और बायें मे फल है। अष्टभुजा पद्मावती की एक मूर्ति झालरापाटन (झालावाड़, राजस्थान) के जैन मन्दिर (१०४३ ई०) के दक्षिणी अधिष्ठान पर है। ललितमुद्रा में विराजमान यक्षी के मस्तक पर सात सर्पफणों का छत्र और करो मे वरदमुद्रा, वज्र, पद्मकलिका, कृपाण, खेटक, पद्म-कलिका, घण्टा एवं फल प्रदर्शित हैं।

बारहवी शती ई० की दो चतुर्भुज मूर्तिया कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर की पश्चिमी देवकुलिका की बाह्य भित्ति पर है (चित्र ५६)। दोनों उदाहरणो मे पद्मावती ललितमुद्रा मे भद्रासन पर विराजमान है और उसके आसन के समक्ष कुक्कुट-सर्प उत्कीर्ण है। एक मूर्ति मे यक्षी के मस्तक पर पांच सर्पफणों का छत्र भी प्रदर्शित है। हाथों मे वरदाक्ष, अंकुश, पाश एवं फल हैं। सर्पफण से रहित दूसरी मूर्ति मे यक्षी के करों में पद्मकलिका, पाश, अंकुश एवं फल है। विमलवसही के गूढ़मण्डप के दक्षिणी द्वार पर भी चतुर्भुजा पद्मावती की एक मूर्ति (१२ वीं शती ई०) उत्कीर्ण है जिसमें कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ पद्मावती सनालपद्म, पाश, अंकुश (?) एवं फल से युक्त है। उपर्युक्त तीनों ही मूर्तियों के निरूपण में

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २१०

२ पाशफलवरदगजवशकरणकरा पद्मविष्टरा पद्मा।
सा मां रक्षतु देवी त्रिलोचना रक्तपुष्पाभा॥
तोतला त्वरिता नित्या त्रिपुरा कामसाधिनी।
दिव्या नामानि पद्मायास्तथा त्रिपुरभैरवी॥ **भैरवपद्मावतीकल्प (दीपार्णव** से उद्धृत, पृ० ४३९)

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २१०

४ पद्मावती की बहुभुजी मूर्तिया देवगढ़, शहडोल, बारभुजी गुफा एवं झालरापाटन से मिली हैं।

५ कभी-कभी यक्षी को सर्प, पद्म और मकर पर भी आरूढ़ दिखाया गया है।

६ इस क्षेत्र में पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियां केवल श्वेतांबर स्थलों से मिली हैं।

श्वेतांबर परम्परा का निर्वाह किया गया है। लूणवसही के गूढ़मण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार के दहलीज पर चतुर्भुजा पद्मावती की एक छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। यक्षी का वाहन मकर है और उसके हाथों में वरदाक्ष, सर्प, पाश एवं फल प्रदर्शित हैं। मकर वाहन का प्रदर्शन परम्परासम्मत नहीं है, पर हाथों में सर्प एवं पाश के प्रदर्शन के आधार पर देवी की पद्मावती से पहचान की जा सकती है। फिर दहलीज के दूसरे छोर पर पार्श्व यक्ष की मूर्ति भी उत्कीर्ण है। मकर वाहन का प्रदर्शन सम्भवतः पार्श्व यक्ष के कूर्म वाहन से प्रभावित है।

विमलवसही की देवकुलिका ४१ के मण्डप के वितान पर षोडशभुजा पद्मावती की एक मूर्ति है।[1] सप्तसर्पफणों के छत्र से युक्त एवं ललितमुद्रा में विराजमान देवी के आसन के समक्ष नाग (वाहन) उत्कीर्ण है। देवी के पार्श्वों में नागी की दो आकृतियां अंकित है। देवी के दो ऊपरी हाथों में सर्प है, दो हाथ पार्श्व की नागी मूर्तियों के मस्तक पर हैं तथा शेष में वरदमुद्रा, त्रिशूल-घण्टा, खड्ग, पाश, त्रिशूल, चक्र (छल्ला), खेटक, दण्ड, पद्मकलिका, वज्र, सर्प एवं जलपात्र प्रदर्शित हैं।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—इस क्षेत्र की पार्श्वनाथ की मूर्तियों मे यक्षी के रूप मे अम्बिका निरूपित है। केवल विमलवसही (देवकुलिका ४) एवं ओसिया (बलानक) की पार्श्वनाथ की दो मूर्तियां (११ वीं-१२ वीं शती ई०) मे ही पारम्परिक यक्षी आमूर्तित है। विमलवसही की मूर्ति मे तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त चतुर्भुजा यक्षी कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ है और हाथों मे पद्म, पाश, अंकुश एवं फल धारण किये है। ओसिया की मूर्ति मे सात सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी का वाहन सर्प है। द्विभुजा यक्षी की अवशिष्ट एक भुजा मे खड्ग है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र की प्राचीनतम मूर्ति देवगढ़ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) पर है। पार्श्वनाथ के साथ 'पद्मावती' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है जिसके हाथों मे वरदमुद्रा, चक्राकार सनालपद्म, लेखनी पट्ट (या फलक) एवं कलश प्रदर्शित हैं।[2] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नहीं है। दसवीं शती ई० की चार द्विभुजी मूर्तियां ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर से मिली हैं।[3] तीन मूर्तियां मण्डप के जंघा पर उत्कीर्ण है। इनमें त्रिभंग में खड़ी यक्षी के मस्तक पर सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित है। उत्तरी और दक्षिणी जघा की दो मूर्तियों मे यक्षी के करों मे व्याख्यान-मुद्रा-अक्षमाला एवं जलपात्र हैं। पश्चिमी जघा की मूर्ति मे दाहिने हाथ मे पद्म है और बायां एक गदा पर स्थित है।[4] ज्ञातव्य है कि देवगढ़ एव खजुराहो की ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की मूर्तियों मे भी पद्मावती के साथ पद्म एवं गदा प्रदर्शित है। मालादेवी मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति की मूर्ति में तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी के अवशिष्ट दाहिने हाथ मे पद्म है। ल० दसवीं शती ई० की एक चतुर्भुज मूर्ति त्रिपुरी के बालसागर सरोवर के मन्दिर मे सुरक्षित है।[5] सात सर्पफणों के छत्र से युक्त पद्मवाहना पद्मावती के करों मे अभयमुद्रा, सनालपद्म, सनालपद्म एवं कलश है। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दिगंबर स्थलों पर दसवीं शती ई० तक पद्मावती के साथ केवल सर्पफणों के छत्र (३, ५ या ७) एवं हाथ मे पद्म का प्रदर्शन ही नियमित हो सका था। यक्षी के साथ कुक्कुट-सर्प (वाहन) एवं पाश और अंकुश का प्रदर्शन ग्यारहवीं शती ई० मे प्रारम्भ हुआ।

ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की दिगंबर परम्परा की कई मूर्तियां देवगढ़, खजुराहो, राज्य संग्रहालय, लखनऊ एवं शहडोल से ज्ञात हैं। इन स्थलों की मूर्तियों मे पद्मावती के मस्तक पर सर्पफणों के छत्र और करों मे पद्म, कलश, अंकुश,

---

१ देवी महाविद्या वैरोट्या भी हो सकती है। पद्मावती से पहचान के मुख्य आधार करों के आयुध एवं शीर्षभाग में सर्पफणों के छत्र के चित्रण है।

२ जि०इ०दे०, पृ० १०२, १०५, १०६

३ दिगंबर ग्रन्थों मे द्विभुजा पद्मावती का अनुल्लेख है। पर दिगंबर स्थलों पर द्विभुजा पद्मावती का निरूपण लोकप्रिय था।

४ गदा का निचला भाग अंकुश की तरह निर्मित है।

५ शास्त्री, अजयमित्र, 'त्रिपुरी का जैन पुरातत्व', **जैन मिलन**, वर्ष १२, अं० २, पृ० ७१

पाश एवं पुस्तक का प्रदर्शन लोकप्रिय था। वाहन का चित्रण केवल खजुराहो और देवगढ में ही हुआ है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ में पद्मावती की दो मूर्तियां हैं। इनमें पद्मावती चतुर्भुजा और ललितमुद्रा में विराजमान है। एक मूर्ति (जी ३१६, ११ वीं शती ई०) में सात सर्पफणों के छत्र से युक्त पद्मावती पद्म पर आसीन है और उसके तीन सुरक्षित हाथों में पद्म, पद्मकलिका एवं कलश हैं। उपासकों, मालाधरों एवं चामरधारिणी सेविकाओं से वेष्टित पद्मावती के शीर्षभाग में तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्वनाथ की छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। वाराणसी से मिली दूसरी मूर्ति (जी ७३) में पद्मावती पांच सर्पफणों के छत्र एवं हाथों में अभयमुद्रा, पद्मकलिका, पुस्तिका एवं कलश से युक्त है।

खजुराहो में चतुर्भुजा पद्मावती की तीन मूर्तियां (११ वी शती ई०) हैं। ये सभी मूर्तियां उत्तरंगों पर उत्कीर्ण हैं। आदिनाथ मन्दिर एवं मन्दिर २२ की दो मूर्तियों में पद्मावती के मस्तक पर पांच सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं। दोनों उदाहरणों में वाहन सम्भवतः कुक्कुट है। आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति में ललितमुद्रा में विराजमान पद्मावती के करों में अभयमुद्रा, पाश, पद्मकलिका एवं जलपात्र है। मन्दिर २२ की स्थानक मूर्ति मे यक्षी के दो सुरक्षित हाथो में वरदमुद्रा एवं पद्म हैं। जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो (१४६७) की तीसरी मूर्ति में ललितमुद्रा में विराजमान पद्मावती सात सर्पफणों के छत्र से युक्त है और उसका वाहन कुक्कुट है (चित्र ५७)। यक्षी के तीन अवशिष्ट करों में वरदमुद्रा, पाश एवं अंकुश प्रदर्शित हैं। अन्तिम मूर्ति के निरूपण मे **अपराजितपृच्छा** की परम्परा का निर्वाह किया गया है।

देवगढ़ मे पद्मावती की द्विभुजी, चतुर्भुजी एवं द्वादशभुजी मूर्तियां मिली हैं।[1] उल्लेखनीय है कि पद्मावती के निरूपण मे सर्वाधिक स्वरूपगत वैविध्य देवगढ़ की मूर्तियो में ही प्राप्त होता है। चतुर्भुजी एवं द्वादशभुजी मूर्तियां ग्यारहवी-बारहवी शती ई० की और द्विभुजी मूर्तियां बारहवी शती ई० की है। द्विभुजा पद्मावती की दो मूर्तियां है, जो क्रमशः मन्दिर १२ (दक्षिणी भाग) एवं १६ के मानस्तम्भो पर उत्कीर्ण है। दोनो उदाहरणों मे यक्षी के मस्तक पर तीन सर्पफणों के छत्र है। एक मूर्ति मे पद्मावती वरदमुद्रा एवं सनालपद्म और दूसरी में पुष्प एवं फल से युक्त है। पद्मावती की चतुर्भुजी मूर्तिया तीन है। इनमे ललितमुद्रा म विराजमान पद्मावती पांच सर्पफणो के छत्र से युक्त है। मन्दिर १ के मानस्तम्भ (११ वी शती ई०) की मूर्ति मे कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ यक्षी के तीन अवशिष्ट करो मे धनुष, गदा एवं पाश प्रदर्शित है। मन्दिर के समीप के दो अन्य मानस्तम्भों (१२ वी शती ई०) की मूर्तियो मे पद्मावती पद्मासन पर आसीन है और उसके हाथों मे वरदमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र है। एक उदाहरण मे यक्षी के मस्तक के ऊपर पाच सर्पफणों के छत्र वाली जिन मूर्ति भी उत्कीर्ण है। द्वादशभुजा पद्मावती की मूर्ति मन्दिर ११ के समक्ष के मानस्तम्भ (१०५९ ई०) पर बनी है। ललितमुद्रा मे आसीन पद्मावती का वाहन कुक्कुट-सर्प है। पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी के करो में वरदमुद्रा, बाण, अंकुश, सनालपद्म, शृंखला, दण्ड, छत्र, वज्र, सर्प, पाश, धनुष एव मातुलिंग प्रदर्शित है। देवगढ की मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि वहां दिगंबर परम्परा के अनुरूप ही पद्मावती के साथ पद्म और कुक्कुट-सर्प दोनो को यक्षी के वाहन के रूप में प्रदर्शित किया गया है। पद्मावती के शीर्षभाग में सर्पफणों के छत्र (३ या ५) एवं करो में पद्म, गदा, पाश एवं अंकुश का प्रदर्शन भी लोकप्रिय था। यक्षी के आयुध सामान्यतः परम्परासम्मत है।

द्वादशभुजा पद्मावती की एक मूर्ति (११ वी शती ई०) शहडोल (म० प्र०) से भी मिली है। यह मूर्ति सम्प्रति ठाकुर साहब संग्रह, शहडोल में है (चित्र ५५)।[2] पद्मावती के शीर्षभाग मे सात सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्वनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है। किरीटमुकुट एवं पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी पद्म पर ध्यानमुद्रा मे विराजमान है। आसन के नीचे कूर्मवाहन अंकित है।[3] देवी के करो मे वरदमुद्रा, खड्ग, परशु, बाण, वज्र, चक्र (छल्ला), फलक, गदा, अंकुश, धनुष, सर्प एवं पद्म प्रदर्शित है। पार्श्वों में दो नाग-नागी आकृतियां बनी है। मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र से मिली ल० दसवीं-

---

१ द्विभुज एवं द्वादशभुज स्वरूपों में पद्मावती का अंकन परम्परासम्मत नही है।

२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ए ७.५३

३ कूर्मवाहन का प्रदर्शन परम्परा विरुद्ध और सम्भवतः धरण यक्ष के कूर्मवाहन से प्रभावित है।

ग्यारहवीं शती ई० की एक चतुर्भुज पद्मावती मूर्ति (?) ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन में है।[1] तीन सर्पफणों के छत्र वाली पद्मावती के हाथों में खड्ग, सर्प, खेटक और पद्म हैं। शीर्षभाग में छोटी जिन मूर्ति और चरणों के समीप सर्पवाहन तथा दो सेविकाएं प्रदर्शित हैं।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—पार्श्व (या धरण) यक्ष की मूर्तियो के अध्ययन के सन्दर्भ में हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि पार्श्वनाथ की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का अंकन नियमित नहीं था। अधिकांश उदाहरणों में यक्षी के स्थान पर पार्श्वनाथ के समीप सर्पफणों के छत्र से युक्त एक स्त्री आकृति (पद्मावती) उत्कीर्ण है जिसके हाथ में लम्बा छत्र है। पार्श्वनाथ की मूर्तियो में यक्षी सामान्यतः द्विभुजा और सामान्य लक्षणों वाली है। ग्यारहवी-बारहवीं शती ई० की कुछ मूर्तियो में चतुर्भुजा यक्षी भी निरूपित है। जिन-संयुक्त मूर्तियों में पद्मावती के साथ वाहन नही उत्कीर्ण है। चतुर्भुज मूर्तियों में शीर्षभाग मे सर्पफणों के छत्र और हाथ में पद्म प्रदर्शित हैं। यक्षी के साथ अन्य पारम्परिक आयुध (पाश एवं अंकुश) नही प्रदर्शित हैं।

जिन-संयुक्त मूर्तियों मे सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी के करों में अभयमुद्रा (या वरदमुद्रा या पद्म) एवं फल (या कलश) प्रदर्शित है। खजुराहो एवं देवगढ़ की कुछ मूर्तियों मे सामान्य लक्षणों वाली यक्षी के मस्तक पर सर्पफणों के छत्र भी देखे जा सकते हैं। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की पार्श्वनाथ की एक मूर्ति (जे ७९४, ११ वी शती ई०) मे पीठिका के मध्य मे पांच सर्पफणो के छत्र वाली चतुर्भुजा पद्मावती निरूपित है। यक्षी के हाथो मे अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं कलश हैं। देवगढ़ के मन्दिर १२ के समीप की एक अरक्षित मूर्ति (११ वी शती ई०) में तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त चतुर्भुजा यक्षी के दो ही हाथों के आयुध-अभयमुद्रा एवं कलश-स्पष्ट है। खजुराहो के स्थानीय संग्रहालय की दो मूर्तियो (११ वी शती ई०) में यक्षी चतुर्भुजा है। एक उदाहरण (के १००) में सर्पफणों से युक्त यक्षी के दो अवशिष्ट हाथों में अभयमुद्रा और पद्म है। दूसरी मूर्ति (के ६८) मे पाच सर्पफणो के छत्रवाली यक्षी ध्यानमुद्रा मे विराजमान है और उसके तीन सुरक्षित हाथो मे अभयमुद्रा, सर्प एवं जलपात्र प्रदर्शित है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—ल० नवी-दसवी शती ई० की एक पद्मावती मूर्ति (?) नालन्दा (मठ संख्या ९) से मिली है और सम्प्रति नालन्दा सग्रहालय मे सुरक्षित है।[2] ललितमुद्रा मे पद्म पर विराजमान चतुर्भुजा देवी के मस्तक पर पांच सर्पफणो का छत्र और करो में फल, खड्ग, परशु एवं चिनमुद्रा-पद्म प्रदर्शित हैं। उड़ीसा के नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओ (११वी-१२वी शती ई०) मे पद्मावती की दो मूर्तिया है। नवमुनि गुफा की मूर्ति मे द्विभुजा यक्षी ललितमुद्रा मे पद्म पर विराजमान है। जटामुकुट से शोभित यक्षी त्रिनेत्र है और उसके हाथो मे अभयमुद्रा एवं पद्म प्रदर्शित है। यक्षी का निरूपण अपारम्परिक है। आसन के नीचे सम्भवतः कुक्कुट-सर्प उत्कीर्ण है।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति मे पांच सर्पफणो के छत्र से युक्त पद्मावती अष्टभुजा है। पद्म पर विराजमान यक्षी के दक्षिण करों मे वरदमुद्रा, बाण, खड्ग, चक्र (?) एवं वाम में धनुष, खेटक, सनालपद्म, सनालपद्म प्रदर्शित हैं।[4] यक्षी की मुख्य विशेषताएं (पद्मवाहन, सर्पफणों का छत्र एवं हाथ में पद्म) परम्परासम्मत है।

दक्षिण भारत—पद्मावती दक्षिण भारत की तीन सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षियों (अम्बिका, पद्मावती एवं ज्वाला-मालिनी) मे एक है। कर्नाटक मे पद्मावती सर्वाधिक लोकप्रिय थी।[5] कन्नड़ शोध संस्थान संग्रहालय की पार्श्वनाथ की मूर्ति मे चतुर्भुजा पद्मावती पद्म, पाश, गदा (या अंकुश) एवं फल से युक्त है। संग्रहालय मे चतुर्भुजा पद्मावती की ललितमुद्रा में आसीन दो स्वतन्त्र मूर्तियां भी सुरक्षित हैं। एक मे (एम ८४) सर्पफण से मण्डित यक्षी का वाहन कुक्कुट-सर्प है। यक्षी के दो अवशिष्ट हाथों में पाश एव फल है। दूसरी मूर्ति मे पद्मावती पांच सर्पफणों के छत्र से शोभित है और उसके हाथों में

---

१ जे०ए०स्या, खं० ३, पृ० ५५३
२ स्ट०जै०आ०, पृ० १७
३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२९
४ वही, पृ० १३३
५ देसाई, पी० बी०, पू०नि०, पृ० १०, १६३

फल, अंकुश, पाश एवं पद्म प्रदर्शित है। यक्षी का वाहन हंस है।[१] बादामी की गुफा ५ की दीवार की मूर्ति मे चतुर्भुजा पद्मावती (?) का वाहन सम्भवतः हंस (या क्रौंच) है। यक्षी के करों में अभयमुद्रा, अंकुश, पाश एवं फल है।[२] कलुगुमलाई (तमिलनाडु) से भी चतुर्भुजा पद्मावती की एक मूर्ति (१०वीं-११वीं शती ई०) मिली है। इसमे सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी के करो मे फल, सर्प, अंकुश एवं पाश प्रदर्शित है।[३] कर्नाटक से मिली पद्मावती की तीन चतुर्भुजी मूर्तियां प्रिंस ऑव वेल्स संग्रहालय, बम्बई में सुरक्षित हैं।[४] तीनों ही उदाहरणों में एक सर्पफण से शोभित पद्मावती ललितमुद्रा में विराजमान है। पहली मूर्ति में यक्षी की तीन अवशिष्ट भुजाओ मे पद्म, पाश एवं अंकुश हैं। दूसरी मूर्ति की एक अवशिष्ट भुजा मे अंकुश है। तीसरी मूर्ति में आसन के नीचे सम्भवतः कुक्कुट (या शुक) उत्कीर्ण है। यक्षी वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं सर्प से युक्त है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत में पद्मावती के साथ पाश, अंकुश एवं पद्म का प्रदर्शन लोकप्रिय था। शीर्षभाग मे सर्पफणो के छत्र एवं वाहन के रूप मे कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट) का अंकन विशेष लोकप्रिय नही था। कुछ में हंसवाहन भी उत्कीर्ण है।

विश्लेषण

विभिन्न क्षेत्रों की मूर्तियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अम्बिका एवं चक्रेश्वरी के बाद उत्तर भारत में पद्मावती की ही सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियों का निरूपण ल० नवी शती ई० मे और जिन-संयुक्त मूर्तियो का चित्रण ल० दसवी शती ई० मे आरम्भ हुआ। पद्मावती के साथ वाहन (कुक्कुट-सर्प) और हाथ मे सर्प का प्रदर्शन ल० नवीं शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया।[५] दसवी शती ई० तक यक्षी का द्विभुज रूप मे निरूपण ही लोकप्रिय था।[६] ग्यारहवी शती ई० मे यक्षी के चतुर्भुज रूप का निरूपण भी प्रारम्भ हुआ। जिन-संयुक्त मूर्तियों में पद्मावती केवल द्विभुजा और चतुर्भुजा है, पर स्वतन्त्र मूर्तियो में द्विभुज और चतुर्भुज के साथ-साथ पद्मावती का द्वादशभुज रूप भी मिलता है। जिन-संयुक्त मूर्तियो में पद्मावती के साथ वाहन एवं विशिष्ट आयुध (पद्म, सर्प,[७] पाश, अंकुश) केवल कुछ ही उदाहरणो में प्रदर्शित है। दिगंबर स्थलों पर पार्श्वनाथ के साथ या तो पद्मावती[८] या फिर सामान्य लक्षणो वाली यक्षी निरूपित है। पर श्वेतांबर स्थलो पर दो उदाहरणों के अतिरिक्त अन्य सभी में यक्षी के रूप मे अम्बिका आमूर्तित है। विमलवसही (देवकुलिका ४) एवं ओसिया (महावीर मन्दिर का बलानक) की दो श्वेतांबर मूर्तियों में सर्पफणों के छत्रों वाली पारम्परिक यक्षी निरूपित है।

श्वेतांबर स्थलो पर पद्मावती की केवल द्विभुजी एवं चतुर्भुजी मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं पर दिगंबर स्थलो पर द्विभुजी एवं चतुर्भुजी के साथ ही द्वादशभुजी मूर्तियां भी बनी। श्वेतांबर स्थलों पर दिगंबर स्थलों की अपेक्षा वाहन एवं मुख्य आयुधो (पद्म, पाश, अंकुश) के सन्दर्भ मे परम्परा का अधिक पालन किया गया है। तीन, पाच या सात सर्पफणो से शोभित यक्षी के साथ वाहन सामान्यतः कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट) है।[९] दिगंबर स्थलों पर परम्परा के अनुरूप यक्षी के दो हाथों में पद्म का प्रदर्शन विशेष लोकप्रिय था।

---

१ अन्निगेरी, ए० एम०, पूर्वो०नि०, पृ० १९, २९
२ संकलिया, एच० डी०, पू०नि०, पृ० १६१
३ देसाई, पी० बी०, पू०नि०, पृ० ६५ ४ संकलिया, एच० डी०, पू०नि०, पृ० १५८–५९
५ ओसिया के महावीर मन्दिर की मूर्ति मे ये विशेषताएं प्रदर्शित है।
६ केवल देवगढ़ (मन्दिर १२) की ही मूर्ति मे पद्मावती चतुर्भुजा है।
७ ग्रन्थ में पद्मावती की भुजा मे सर्प के प्रदर्शन के अनुल्लेख के बाद भी मूर्तियो में सर्प का चित्रण लोकप्रिय था।
८ पद्मावती के साथ वाहन एवं अन्य पारम्परिक विशेषताएं सामान्यतः नही प्रदर्शित हैं।
९ खजुराहो

कुछ स्थलों की मूर्तियों में पद्म, नाग, कूर्म और मकर को भी पद्मावती के वाहन के रूप में दरशाया गया है।[१] परम्परा के अनुरूप यक्षी के करों में पाश एवं अंकुश का प्रदर्शन मुख्यतः देवगढ़, खजुराहो, विमलवसही, कुम्भारिया एवं कुछ अन्य स्थलों की ही मूर्तियों में प्राप्त होता है। नागराज धरण से सम्बन्धित होने के कारण ही देवगढ़, खजुराहो, शहडोल, ओसिया, विमलवसही एवं लूणवसही की मूर्तियों में पद्मावती के हाथ में सर्प प्रदर्शित किया गया।[२]

(२४) मातंग यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

मातंग जिन महावीर का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में मातंग को द्विभुज और गजारूढ़ बताया गया है। दिगंबर परम्परा में मातंग के मस्तक पर धर्मचक्र के प्रदर्शन का भी निर्देश है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में गजारूढ मातंग के हाथों में नकुल एवं बीजपूरक वर्णित हैं।[३] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख है।[४]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में द्विभुज मातंग के मस्तक पर धर्मचक्र के चित्रण का निर्देश है और उसका वाहन मुद्ग[५] बताया गया है।[६] यक्ष के करों में वरदमुद्रा एवं मातुलिंग वर्णित है।[७] समान आयुधों का उल्लेख करने वाले अन्य सभी ग्रन्थों में मातंग का वाहन गज है।[८]

यक्ष का गजवाहन उसके मातंग (गज) नाम से प्रभावित हो सकता है। मस्तक पर धर्मचक्र का प्रदर्शन यक्ष के महावीर द्वारा पुनः स्थापित एवं व्यवस्थित जैन धर्म एवं संघ के रक्षक होने का सूचक हो सकता है।[९] गजवाहन एवं हाथ में नकुल का प्रदर्शन हिन्दू कुबेर का भी प्रभाव हो सकता है। एक ग्रन्थ में मातंग को यक्षराज भी कहा गया है, जो कुबेर का ही दूसरा नाम है।[१०]

---

१ विमलवसही, राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जी ३१६), लूणवसही, त्रिपुरी, देवगढ़, शहडोल एवं बारभुजी गुफा

२ झालरापाटन एवं बारभुजी गुफा की मूर्तियों में भुजा में सर्प नहीं प्रदर्शित है।

३ मातंगयक्षं श्यामवर्णं गजवाहनं द्विभुजं दक्षिणे नकुलं वामे बीजपूरकमिति। **निर्वाणकलिका** १८.२४

४ त्रि०श०पु०च० १०.५.११; **पद्मानन्दमहाकाव्यः** परिशिष्ट—**महावीर** २४७, **मन्त्राधिराजकल्प** ३.४८; **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७५; **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.६४; **रूपमण्डन** ६.२२

५ एक प्रकार का समुद्री पक्षी या मूंगा।

६ बी० सी० भट्टाचार्य ने **प्रतिष्ठासारसंग्रह** की आरा की पाण्डुलिपि के आधार पर गजवाहन का उल्लेख किया है। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी० सी०, **जै०इ०**, पृ० ११८

७ वर्धमान जिनेन्द्रस्य यक्षो मातंगसंज्ञकः।
द्विभुजो मुद्गवर्णोसौ वरदो मुद्गवाहनः॥
मातुलिंगं करे धत्ते धर्मचक्रं च मस्तके। **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.७२–७३

८ मुद्गप्रभो मूर्धनि धर्मचक्रं बिभ्रत्फलं वामकरेथयच्छन्।
वरं करिस्थो हरिकेतुभक्तो मातंग यक्षोंगतु तुष्टिमिष्टया॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१५२
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२४, पृ० ३३८, **अपराजितपृच्छा** २२१.५६

९ भट्टाचार्य, बी० सी०, **जै०इ०**, पृ० ११९

१० मातंगो यक्षराट् च द्विरदकृतगतिः श्यामरुग् रातु सौख्यम्॥
वर्द्धमानषट्त्रिंशिका (चतुरविजयमुनि प्रणीत)।
(**जैन स्तोत्र सन्दोह**, सं० अमरविजय मुनि, खं० १, अहमदाबाद, १९३२, पृ० ६६ से उद्धृत)।

दक्षिण भारतीय परम्परा—उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के विपरीत दक्षिण भारतीय दिगंबर ग्रन्थ में यक्ष को चतुर्भुज बताया गया है। गजारूढ़ यक्ष के ऊपरी हाथ आराधना की मुद्रा में मुकुट के समीप और नीचे के हाथ अभय एवं एक अन्य मुद्रा मे वर्णित है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मातंग को षड्भुज और धर्मचक्र, कशा, पाश, वज्र, दण्ड एवं वरदमुद्रा से युक्त कहा गया है; वाहन का अनुल्लेख है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप गजारूढ़ मातंग द्विभुज है। शीर्षभाग में धर्मचक्र से युक्त यक्ष के हाथों मे वरदमुद्रा एवं मातुलिंग का उल्लेख है।[1]

मूर्ति-परम्परा

मातंग की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नही मिली है। जिन-संयुक्त मूर्तियों में भी यक्ष के साथ पारम्परिक विशेषताएं नही प्रदर्शित है। महावीर की मूर्तियो मे द्विभुज यक्ष अधिकांशतः सामान्य लक्षणो वाला है। केवल खजुराहो एवं देवगढ़ की कुछ दिगंबर मूर्तियों मे ही चतुर्भुज एवं स्वतन्त्र लक्षणो वाला यक्ष निरूपित है। महावीर की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का निरूपण दसवी शती ई० मे प्रारम्भ हुआ। राज्य संग्रहालय, लखनऊ, ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर), खजुराहो, देवगढ़ एवं अन्य स्थलों की मूर्तियो में सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष के करों मे अभयमुद्रा (या गदा) एवं धन का थैला (या फल या कलश) प्रदर्शित है।[2] गुजरात और राजस्थान की श्वेतांबर मूर्तियों मे सर्वानुभूति यक्ष निरूपित है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर (११ वी शती ई०) की भ्रमिका के वितान पर महावीर के जीवनदृश्यों मे उनका यक्ष-यक्षी युगल भी आमूर्तित है। चतुर्भुज यक्ष का वाहन गज है और उसके करों मे वरदमुद्रा, पुस्तक, छत्रपद्म एवं जलपात्र प्रदर्शित है। यह ब्रह्मशान्ति यक्ष की मूर्ति है जिसे महावीर के यक्ष के रूप मे निरूपित किया गया है।

दिगंबर स्थलों की कुछ मूर्तियों मे महावीर के साथ स्वतन्त्र लक्षणो वाला यक्ष भी आमूर्तित है। देवगढ़ के मन्दिर ११ की एक मूर्ति (१०४८ ई०) मे चतुर्भुज यक्ष के तीन अवशिष्ट करों में अभयमुद्रा, पद्म एवं फल हैं। खजुराहो के मन्दिर २ की मूर्ति (१०९२ ई०) मे चतुर्भुज यक्ष का वाहन सम्भवतः सिंह है और उसके हाथों में धन का थैला, शूल, पद्म (?) एवं दण्ड है। खजुराहो के मन्दिर २१ की दीवार की मूर्ति (के २८/१, ११वी शती ई०) मे द्विभुज यक्ष का वाहन अज है। यक्ष के दक्षिण कर मे शक्ति है और बाया हाथ अज के श्रृंग पर स्थित है। खजुराहो के स्थानीय संग्रहालय (के १७, ११वी शती ई०) की एक मूर्ति में चतुर्भुज यक्ष का वाहन सम्भवतः सिंह है और उसके तीन सुरक्षित हाथो में गदा, पद्म एवं धन का थैला है। भरतपुर (राजस्थान) से मिली और सम्प्रति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९) में सुरक्षित मूर्ति (१००४ ई०) में द्विभुज यक्ष का वाहन गज और एक अवशिष्ट भुजा में धन का थैला है। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दिगंबर स्थलो पर यक्ष का कोई स्वतन्त्र रूप नियत नही हो सका था।

दक्षिण भारत—बादामी (कर्नाटक) की गुफा ४ की ल० सातवी शती ई० की दो महावीर मूर्तियो मे गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसके करो में अभयमुद्रा, गदा, पाश एवं खड्ग प्रदर्शित हैं।[3] एलोरा, अकोला एवं हरीदास स्वाली संग्रह की महावीर मूर्तियों में सर्वानुभूति यक्ष निरूपित है।[4]

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पूर्वोनि, पृ० २११

२ खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की भित्ति की मूर्ति में यक्ष के दोनो हाथों में फल है।

३ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ए २१–६०, ए २१–६१

४ शाह, यू० पी०, 'जैन ब्रोन्जेज इन हरीदास स्वालीज कलेक्शन', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ९, १९६४–६६, पृ० ४७–४९; डगलस, बी०, 'ए जैन ब्रोन्ज फ्राम दि डॅकन,' ओ० आर्ट, खं० ५, अं० १, पृ० १६२–६५

(२४) सिद्धायिका (या सिद्धायिनी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

सिद्धायिका (या सिद्धायिनी) जिन महावीर की यक्षी है। सिद्धायिका जैन देवकुल की चार प्रमुख यक्षियों (चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, सिद्धायिका) में एक है।[१] श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह (या गज) और दिगंबर परम्परा में द्विभुजा यक्षी का वाहन सिंह (या भद्रासन) बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** मे सिंहवाहना सिद्धायिका के दक्षिण करों मे पुस्तक एवं अभयमुद्रा और वाम मे मातुलिंग एवं बाण उल्लिखित है।[२] कुछ ग्रन्थो मे बाण के स्थान पर वीणा का उल्लेख है।[३] **पद्मानन्दमहाकाव्य** में यक्षी को गजवाहना बताया गया है।[४] **आचारदिनकर** मे बायें हाथों मे मातुलिंग एवं वीणा (या बाण) के स्थान पर पाश एव पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।[५] **मन्त्राधिराजकल्प** मे सिद्धायिका के षड्भुज रूप का ध्यान किया गया है। ग्रन्थ के अनुसार यक्षी करो में पुस्तक, अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, खरायुध, वीणा एवं फल धारण किये है।[६]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में भद्रासन पर विराजमान द्विभुजा सिद्धायिनी के करों मे वरदमुद्रा और पुस्तक का वर्णन है।[७] **प्रतिष्ठासारोद्धार** मे भद्रासन पर विराजमान यक्षी का वाहन सिंह बताया गया है।[८] **अपराजितपृच्छा** में वरदमुद्रा के स्थान पर अभयमुद्रा का उल्लेख है।[९] दिगंबर परम्परा के एक तान्त्रिक ग्रन्थ **विद्यानुशासन** मे उल्लेख है

१ **रूपमण्डन** ६.२५–२६

२ सिद्धायिकां हरितवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां पुस्तकाभययुक्तदक्षिणकरां मातुलिंगबाणान्वितवामहस्तां चेति।
निर्वाणकलिका १८.२४; द्रष्टव्य, **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.६५; **रूपमण्डन** ६.२३

३ समातुलिंगवल्लक्यौ वामबाहू च बिभ्रती।
पुस्तकाभयदौ चोभौ दधाना दक्षिणौभुजौ॥ **त्रि०श०पु०च०** १०.५.१२–१३
द्रष्टव्य, **प्रवचनसारोद्धार** २४, पृ० ९४; **पद्मानन्दमहाकाव्यः** परिशिष्ट–**महावीर** २४८–४९। **देवतामूर्तिप्रकरण में** बाण का ही उल्लेख **है**।

४ **पद्मानन्दमहाकाव्यः** परिशिष्ट–महावीर २४८–४९

५ ''' पाशाम्भोरुहराजिवामकरभाग सिद्धायिका'''' । **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७८

६ सिद्धायिका नवतमालदलालिनीलरुक्—
पुस्तिकाभयकरा (द्रा) नखरायुधांका।
वीणाफलाङ्कितभुजद्वितया हि
भव्यानव्याज्जिनेन्द्रपदपङ्कजबद्धभक्तिः॥ **मन्त्राधिराजकल्प** ३.६६

७ सिद्धायिनी तथा देवी द्विभुजा कनकप्रभा।
वरदा पुस्तक धत्ते सुभद्रासनमाश्रिता॥ **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.७३–७४

८ सिद्धायिकां सप्तकरोछ्रितांगजिनाश्रयांपुस्तकदानहस्ताम्।
श्रितां सुभद्रासनमत्र यज्ञे हेमद्युतिं सिंहगतिं यजेहम्। **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१७८
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२४, पृ० ३४८

९ द्विभुजा कनकाभा च पुस्तकं चाभयं तथा।
सिद्धायिका तु कर्तव्या भद्रासनसमन्विता॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.३८

कि वर्धमान की यक्षी का नाम कामचण्डालिनी भी है[1] जो निर्वस्त्र और चतुर्भुजा है। विभिन्न आभूषणों से सज्जित देवी के केश मुक्त हैं और उसके हाथों में फल, कलश, दण्ड एवं डमरु दृष्टिगत होते हैं।

सिद्धायिका के निरूपण में पुस्तक एवं वीणा (श्वेतांबर) का प्रदर्शन सरस्वती (वाग्देवी) का प्रभाव प्रतीत होता है। यक्षी का सिंहवाहन सम्भवतः महावीर के सिंह लांछन से ग्रहण किया गया है।[2]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में द्विभुजा यक्षी का वाहन हंस है और उसके हाथों में अभयमुद्रा एवं मुद्रा (वरद ?) है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में यक्षी द्वादशभुजा है और उसका वाहन गरुड है। उसके करों में असि, फलक, पुष्प, शर, चाप, पाश, चक्र, दण्ड, अक्षसूत्र, वरदमुद्रा, नीलोत्पल एवं अभयमुद्रा वर्णित है। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में यक्षी को द्विभुजा बताया गया है, पर आयुधों का अनुल्लेख है।[3]

मूर्ति-परम्परा

अम्बिका, चक्रेश्वरी एवं पद्मावती की तुलना में सिद्धायिका की स्वतन्त्र मूर्तियों की संख्या नगण्य है। मूर्त अंकनों में यक्षी का पारम्परिक और स्वतन्त्र स्वरूप दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० में अभिव्यक्त हुआ। जिन-संयुक्त मूर्तियों में यक्षी अधिकांशतः सामान्य लक्षणों वाली है। राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९), कुम्भारिया (शान्तिनाथ मन्दिर), ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर), खजुराहो एवं देवगढ़ की कुछ महावीर मूर्तियों में स्वतन्त्र लक्षणों वाली यक्षी आमूर्तित है।

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—यू० पी० शाह ने श्वेतांबर स्थलों से प्राप्त चतुर्भुजा सिद्धायिका की तीन स्वतन्त्र मूर्तियों (१२ वीं शती ई०) का उल्लेख किया है।[4] सभी उदाहरणों में श्वेतांबर परम्परा के अनुरूप सिंह-वाहना सिद्धायिका पुस्तक एवं वीणा से युक्त है। विमलवसही के रंगमण्डप के स्तम्भ की मूर्ति में सिंहवाहना यक्षी त्रिभंग में खड़ी है। यक्षी के तीन अवशिष्ट करों में वरदमुद्रा, पुस्तक एवं वीणा है। दूसरी मूर्ति कैम्बे के मन्दिर से मिली है। ललितमुद्रा में विराजमान सिंहवाहना यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा, पुस्तक, वीणा एवं फल प्रदर्शित हैं। समान विवरणों वाली तीसरी मूर्ति प्रभासपाटण से प्राप्त हुई है।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—इस क्षेत्र की दो महावीर मूर्तियों के अतिरिक्त अन्य सभी में यक्षी के रूप में अम्बिका निरूपित है। राजपूताना संग्रहालय, अजमेर की मूर्ति (२७९) में द्विभुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसकी एक सुरक्षित भुजा में खड्ग प्रदर्शित है। यहां उल्लेखनीय है कि दिगंबर परम्परा के विपरीत सिंहवाहना सिद्धायिका के हाथ में खड्ग का प्रदर्शन खजुराहो एवं देवगढ़ की दिगंबर मूर्तियों में भी प्राप्त होता है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के वितान की मूर्ति में पक्षीवाहन वाली यक्षी चतुर्भुजा है और उसके हाथों में वरदमुद्रा, सनालपद्म, सनालपद्म एवं फल प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण निर्वाणी यक्षी या शान्तिदेवी से प्रभावित है।

---

१ वर्द्धमान जिनेन्द्रस्य यक्षी सिद्धायिका मता।
तद्देव्यपरनाम्ना च कामचण्डालिसंज्ञका॥
भूषिताभरणैः सर्वैर्मुक्तकेशा दिगंबरी।
पातु मां कामचण्डाली कृष्णवर्णा चतुर्भुजा॥
फलकांचनकलशकरा शाल्मलिदण्डोच्चडमरुयुग्मोपेता।
जपत (?) स्त्रिभुवनवंद्या वश्या जगति श्रीकामचण्डाली॥ **विद्यानुशासन**। शाह, यू० पी०, 'यक्षिणी ऑव दि ट्वेन्टी-फोर्थ जिन महावीर', ज०ओ०इं०, खं० २२, अं० १–२, पृ० ७७

२ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १४६–४७; विस्तार के लिए द्रष्टव्य, तिवारी, एम० एन० पी०, 'दि आइकानोग्राफी ऑव यक्षी सिद्धायिका', ज०ए०सो०, खं० १५, अं० १–४, पृ० ९७–१०३

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २११–१२

४ शाह, यू० पी, पू०नि०, पृ० ७१

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र से यक्षी की तीन मूर्तियां मिली हैं।[1] देवगढ़ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) के सामूहिक चित्रण में वर्धमान के साथ 'अपराजिता' नाम की सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है। यक्षी का दाहिना हाथ जानु पर है और बायें में चामर या पद्म है।[2] खजुराहो के मन्दिर २४ के उत्तरंग (११ वीं शती ई०) पर चतुर्भुजा यक्षी ललितमुद्रा में आसीन है। सिंहवाहना यक्षी के करों में वरदमुद्रा, खड्ग, खेटक एवं जलपात्र हैं। बिल्कुल समान लक्षणों वाली दूसरी मूर्ति देवगढ़ के मन्दिर ५ के उत्तरंग (११ वी शती ई०) पर उत्कीर्ण है। उपर्युक्त दोनो मूर्तियों में यक्षी का चतुर्भुज होना और उसके करों में खड्ग एवं खेटक का प्रदर्शन दिगंबर परम्परा के विरुद्ध है। सिंहवाहना यक्षी के साथ खड्ग एवं खेटक का प्रदर्शन १६ वी जैन महाविद्या महामानसी का भी प्रभाव हो सकता है।[3]

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—इस क्षेत्र में महावीर की मूर्तियों मे ल० दसवी शती ई० मे यक्ष-यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ। अधिकांश उदाहरणों मे सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा (या पुष्प) एवं फल (या कलश) से युक्त है। मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) की महावीर मूर्ति (१० वी शती ई०) मे द्विभुजा यक्षी के दोनो हाथों मे वीणा है।[4] देवगढ़ की छह महावीर मूर्तियां मे सामान्य लक्षणो वाली द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा (पुष्प) एवं कलश (या फल) से युक्त है। साहू जैन संग्रहालय, देवगढ के चौबीसी जिन पट्ट (१२ वी शती ई०) की महावीर मूर्ति में द्विभुजा यक्षी अभय-मुद्रा एवं पुस्तक से युक्त है। पुस्तक का प्रदर्शन दिगंबर परम्परा का पालन है। देवगढ़ के मन्दिर १ की मूर्ति (१० वी शती ई०) में चतुर्भुजा यक्षी के करो मे अभयमुद्रा, पद्मकलिका, पद्मकलिका एवं फल प्रदर्शित हैं। देवगढ़ के मन्दिर ११ की मूर्ति (१०४८ ई०) मे द्विभुजा यक्षी पद्मावती एवं अम्बिका की विशेषताओ से युक्त है। तीन सर्पफणो के छत्र वाली यक्षी के हाथों में फल एवं बालक हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि देवगढ़ में सिद्धायिका का कोई स्वतन्त्र स्वरूप नियत नही हुआ।

खजुराहो की तीन महावीर मूर्तियों मे द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा एवं फल (या पद्म) से युक्त है। खजुराहो के मन्दिर २ की मूर्ति मे सिंहवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों मे फल, चक्र, पद्म एवं शंख स्थित है। मन्दिर २१ की दीवार की मूर्ति में भी सिंहवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके हाथो मे वरदमुद्रा, खड्ग, चक्र एवं फल हैं। खजुराहो के स्थानीय संग्रहालय की तीसरी मूर्ति (के १७) मे भी चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसके तीन सुरक्षित हाथों में चक्र (छल्ला), पद्म एवं शंख प्रदर्शित है। ग्यारहवी शती ई० की उपर्युक्त तीनो ही मूर्तियों मे यक्षी के निरूपण की एकरूपता से ऐसा आभास होता है कि खजुराहो मे चतुर्भुजा सिद्धायिका के एक स्वतन्त्र स्वरूप की कल्पना की गई। यक्षी के साथ वाहन (सिंह) तो पारम्परिक है, पर हाथो मे चक्र एवं शंख का प्रदर्शन हिन्दू वैष्णवी से प्रभावित प्रतीत होता है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र मे केवल बारभुजी गुफा (उड़ीसा) से ही यक्षी की एक मूर्ति मिली है (चित्र ५९)। महावीर के साथ विंशतिभुजा यक्षी निरूपित है। गजवाहना यक्षी के दाहिने हाथों मे वरदमुद्रा, शूल, अक्षमाला, बाण, दण्ड (?), मुद्गर, हल, वज्र, चक्र एवं खड्ग और बायें मे कलश, पुस्तक, फल (?), पद्म, घण्टा (?), धनुष, नागपाश एवं खेटक स्पष्ट हैं।[5] पुस्तक एव गजवाहन[6] का प्रदर्शन पारम्परिक है।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत में यक्षी का न तो पारम्परिक स्वरूप मे अंकन हुआ और न ही उसका कोई स्वतन्त्र स्वरूप निर्धारित हुआ। महावीर की मूर्तियो मे यक्ष-यक्षी का निरूपण ल० सातवी शती ई० मे ही प्रारम्भ हो गया। बादामी

---

१ ये मूर्तियां खजुराहो एवं देवगढ़ से मिली है। २ जि०इ०दे०, पृ० १०२, १०५

३ महाविद्या महामानसी का वाहन सिंह है और उसके करों मे वरद-(या अभय-) मुद्रा, खड्ग, कुण्डिका एवं खेटक प्रदर्शित है।

४ स्मरणीय है कि सिद्धायिका की भुजा मे वीणा का उल्लेख श्वेतांबर परम्परा में प्राप्त होता है।

५ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३३ : दो वाम करों के आयुध स्पष्ट नही है।

६ गजवाहन का उल्लेख केवल श्वेतांबर परम्परा मे प्राप्त होता है।

गुफा की महावीर मूर्तियों में चतुर्भुजा यक्षी के करों में अभयमुद्रा, अंकुश, पाश एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित है। वाहन की पहचान सम्भव नहीं है। करंजा (अकोला, महाराष्ट्र) की एक महावीर मूर्ति (ल० ९वी शती ई०) में चतुर्भुजा यक्षी पुष्प (?), पद्म, परशु एवं फल से युक्त है। सेट्टिपोडव (मदुराई) की एक चतुर्भुजो मूर्ति में केवल दो हाथों के ही आयुध स्पष्ट हैं, जो धनुष और बाण हैं। अन्य उदाहरणों में यक्षी द्विभुजा है। द्विभुजा यक्षी के साथ कभी-कभी सिंहवाहन उत्कीर्ण है। हाथों में पद्म एवं फल (या पुस्तक) प्रदर्शित है।[1]

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत मे पारम्परिक एव स्वतन्त्र लक्षणोंवाली सिद्धायिका की मूर्तियां दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य उत्कीर्ण हुई। उत्तर भारत मे सिद्धायिका का पूरी तरह पारम्परिक स्वरूप मे अंकन केवल श्वेतांबर स्थलो की तीन मूर्तियों मे ही दृष्टिगत होता है।[2] इनमे सिंहवाहना यक्षी के हाथो मे अभय-(या वरद-) मुद्रा, पुस्तक, वीणा एवं फल प्रदर्शित है। दिगंबर स्थलो पर केवल सिंहवाहन के प्रदर्शन मे ही परम्परा का पालन किया गया है।[3] देवगढ एवं बारभुजी गुफा की दो मूर्तियो मे दिगबर परम्परा के अनुरूप पुस्तक भी प्रदर्शित है। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति मे यक्षी के साथ वीणा का प्रदर्शन श्वेतांबर परम्परा का पालन है। अन्य आयुधो की दृष्टि से दिगंबर स्थलो की सिद्धायिका की मूर्तियां परम्परासम्मत नहीं है। दिगंबर स्थलो[4] पर यक्षी का चतुर्भुज स्वरूप मे निरूपण और उसके करो मे परम्परा से भिन्न आयुधों (खड्ग, खेटक, पद्म, चक्र, शंख) का प्रदर्शन इस बात का संकेत देते है कि उन स्थलों पर चतुर्भुजा सिद्धायिका के निरूपण से सम्बन्धित ऐसी परम्परा प्रचलित थी, जो सम्प्रति हमें उपलब्ध नही है। सभी क्षेत्रो मे यक्षी का द्विभुज और चतुर्भुज रूपो में निरूपण ही लोकप्रिय था।[5]

•

---

१ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ७४, ७५; देसाई, पी० बी०, पू०नि०, पृ० ३८, ५६, ५७; संकलिया, एच० डी०, पू०नि०, पृ० १६१

२ ये मूर्तियां विमलवसही, कैम्बे एवं प्रभासपाटण से मिली है।

३ केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में वाहन गज है।

४ खजुराहो एवं देवगढ़

५ केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में ही यक्षी विंशतिभुज है।

सप्तम अध्याय

निष्कर्ष

जैन परम्परा में उत्तर भारत के केवल कुछ ही शासकों के जैन धर्म स्वीकार करने के उल्लेख हैं, जिनमें खारवेल, नागभट द्वितीय और कुमारपाल प्रमुख हैं। तथापि बारहवीं शती ई० तक के अधिकांश राजवंशों (पालों के अतिरिक्त) के शासकों का जैन धर्म के प्रति दृष्टिकोण उदार था, जिसके दो मुख्य कारण थे; प्रथम, भारतीय शासकों की धर्मसहिष्णु नीति और दूसरा, जैन धर्म की व्यापारियों, व्यवसायियों एवं सामान्य जनों के मध्य विशेष लोकप्रियता। इसी सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जैन धर्म और कला को शासकों से अधिक व्यापारियों, व्यवसायियों एवं सामान्य जनों का समर्थन और सहयोग मिला। मथुरा के कुषाणकालीन मूर्तिलेखों तथा ओसिया, खजुराहो, जालोर एवं अन्य अनेक स्थलों के लेखों से इसकी पुष्टि होती है।

जैन कला, स्थापत्य एवं प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से प्रतिहार, चन्देल और चौलुक्य राजवंशों का शासन काल (८ वीं-१२ वीं शती ई०) विशेष महत्वपूर्ण है। इन राजवंशों के समय में गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र में अनेक जैन मन्दिर बने और प्रचुर संख्या में मूर्तियों का निर्माण हुआ। इसी समय देवगढ़, खजुराहो, ओसिया, ग्यारसपुर, कुम्भारिया, आबू, जालोर, तारंगा एवं अन्य अनेक महत्वपूर्ण जैन कलाकेन्द्र पल्लवित और पुष्पित हुए। ल० आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य जैन कला के प्रभूत विकास में उपर्युक्त क्षेत्रों की सुदृढ आर्थिक पृष्ठभूमि का भी महत्व था। गुजरात के भड़ौच, कैम्बे और सोमनाथ जैसे व्यापारिक महत्व के बन्दरगाहों, राजस्थान के पोरवाड़, श्रीमाल, ओसवाल, मोढेरक जैसी व्यापारिक जैन जातियों एवं मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में विदिशा, उज्जैन, मथुरा, कौशाम्बी, वाराणसी जैसे महत्वपूर्ण व्यापारिक स्थलों के कारण ही इन क्षेत्रों में अनेक जैन मन्दिर एवं विपुल संख्या में मूर्तियां बनीं।

पटना के समीप लोहानीपुर से मिली मौर्ययुगीन मूर्ति प्राचीनतम जिन मूर्ति है (चित्र २)। चौसा और मथुरा से शुंग-कुषाण काल की जैन मूर्तियां मिली हैं। मथुरा से ल० १५० ई० पू० से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य की प्रभूत जैन मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां आरम्भ से मध्ययुग तक के प्रतिमाविज्ञान की विकास-शृंखला को प्रदर्शित करती हैं। शुंग-कुषाण काल में मथुरा में सर्वप्रथम जिनों के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न का उत्कीर्णन और जिनों का ध्यानमुद्रा में निरूपण प्रारम्भ हुआ। तीसरी से पहली शती ई० पू० की अन्य जिन मूर्तियां कायोत्सर्ग-मुद्रा में निरूपित हैं। ज्ञातव्य है कि जिनों के निरूपण में सर्वदा यही दो मुद्राएं प्रयुक्त हुई हैं। मथुरा में कुषाणकाल में ऋषभ, सम्भव, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियां, ऋषभ एवं महावीर के जीवनदृश्य, आयागपट, जिन-चौमुखी तथा सरस्वती एवं नैगमेषी की मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं (चित्र १२, १६, ३०, ३४, ३९, ६६)।

गुप्तकाल में मथुरा एवं चौसा के अतिरिक्त राजगिर, विदिशा, वाराणसी एवं अकोटा से भी जैन मूर्तियां मिली हैं (चित्र ३५)। इस काल में केवल जिनों की स्वतन्त्र एवं जिन चौमुखी मूर्तियां ही उत्कीर्ण हुईं। इनमें ऋषभ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, नेमि, पार्श्व एवं महावीर का निरूपण है। श्वेतांबर जिन मूर्तियां (अकोटा, गुजरात) भी सर्वप्रथम इसी काल में बनीं (चित्र ३६)।

ल० दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की जैन प्रतिमाविज्ञान की प्रभूत ग्रन्थ एवं शिल्प सामग्री प्राप्त होती है। सर्वाधिक जैन मन्दिर और फलतः मूर्तियां भी दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य बनें। गुजरात और राजस्थान में श्वेतांबर एवं अन्य क्षेत्रों में दिगंबर सम्प्रदाय की मूर्तियों की प्रधानता है। गुजरात और राजस्थान के श्वेतांबर जैन

मन्दिरों में २४ देवकुलिकाओं को संयुक्त कर उनमें २४ जिनों की मूर्तियां स्थापित करने की परम्परा लोकप्रिय हुई। श्वेतांबर स्थलों की तुलना मे दिगंबर स्थलों पर जिनों की अधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुई जिनमें स्वतन्त्र तथा द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एवं चौमुखी मूर्तियां हैं। तुलनात्मक दृष्टि से जिनों के निरूपण में श्वेतांबर स्थलों पर एकरसता और दिगंबर स्थलों पर विविधता दृष्टिगत होती है। श्वेतांबर स्थलों पर जिन मूर्तियों के पीठिका-लेखों में जिनों के नामोल्लेख तथा दिगंबर स्थलों पर उनके लांछनों के अंकन की परम्परा दृष्टिगत होती है। जिनों के जीवन-दृश्यों एवं समवसरणों के अंकन के उदाहरण केवल श्वेतांबर स्थलों पर ही सुलभ हैं। ये उदाहरण (११ वीं-१३ वीं शती ई०) ओसिया, कुम्भारिया, आबू (विमलवसही, लूणवसही) एवं जालोर से मिले है (चित्र १३, १४, २२, २९, ४०, ४१)।

श्वेतांबर स्थलो पर जिनो के बाद १६ महाविद्याओं और दिगंबर स्थलों पर यक्ष-यक्षियों के चित्रण सर्वाधिक लोकप्रिय थे। १६ महाविद्याओं में रोहिणी, वज्रांकुशी, वज्रशृंखला, अप्रतिचक्रा, अच्छुप्ता एवं वैरोट्या की ही सर्वाधिक मूर्तियां मिली हैं। शान्तिदेवी, ब्रह्मशान्ति यक्ष, जीवन्तस्वामी महावीर, गणेश एवं २४ जिनों के माता-पिता के सामूहिक अंकन (१० वीं-१२ वीं शती ई०) भी श्वेतांबर स्थलों पर ही लोकप्रिय थे। सरस्वती, बलराम, कृष्ण, अष्टदिक्पाल, नवग्रह एवं क्षेत्रपाल आदि की मूर्तियां श्वेतांबर और दिगंबर दोनों ही स्थलों पर उत्कीर्ण हुई। श्वेतांबर स्थलों पर अनेक ऐसी देवियों की भी मूर्तियां दृष्टिगत होती हैं, जिनका जैन परम्परा मे अनुल्लेख है। इनमें हिन्दू शिवा और कौमारी तथा जैन सर्वानुभूति के लक्षणों के प्रभाववाली देवियों की मूर्तियां सबसे अधिक हैं।

जैन युगलों और राम-सीता तथा रोहिणी, मनोवेगा, गौरी, गान्धारी यक्षियों और गरुड यक्ष की मूर्तियां केवल दिगंबर स्थलो से ही मिली है। दिगंबर स्थलों से परम्परा विरुद्ध और परम्परा मे अवर्णित दोनों प्रकार की कुछ मूर्तियां मिली है। द्वितीर्थी, त्रितीर्थी जिन मूर्तियों का अंकन और दो उदाहरणों में त्रितीर्थी मूर्तियो में सरस्वती और बाहुबली का अंकन, बाहुबली एवं अम्बिका की दो मूर्तियों (देवगढ एवं खजुराहो) में यक्ष-यक्षी का अंकन तथा ऋषभ की कुछ मूर्तियों में पारम्परिक यक्ष-यक्षी के साथ ही अम्बिका, लक्ष्मी एवं सरस्वती आदि का अंकन इस कोटि के कुछ प्रमुख उदाहरण है (चित्र ६०–६५, ७५)। श्वेतांबर और दिगंबर स्थलों की शिल्प-सामग्री के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पुरुष देवताओं की मूर्तियां देवियो की तुलना में नगण्य है। जैन कला में देवियो की विशेष लोकप्रियता तान्त्रिक प्रभाव का परिणाम हो सकती है।

पांचवी शती ई० के अन्त तक जैन देवकुल का मूलस्वरूप निर्धारित हो गया था, जिसमे २४ जिन, यक्ष और यक्षियां, विद्याएं, सरस्वती, लक्ष्मी, कृष्ण, बलराम, राम, नैगमेषी एवं अन्य शलाकापुरुष तथा कुछ और देवता सम्मिलित थे। इस काल तक जैन-देवकुल के सदस्यों के केवल नाम और कुछ सामान्य विशेषताएं ही निर्धारित हुई। उनकी लाक्षणिक विशेषताओ के विस्तृत उल्लेख आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य के जैन ग्रन्थों मे ही मिलते हैं। पूर्ण विकसित जैन देवकुल में २४ जिनों एवं अन्य शलाकापुरुषों सहित २४ यक्ष-यक्षी युगल, १६ विद्याएं, दिक्पाल, नवग्रह, क्षेत्रपाल, गणेश, ब्रह्मशान्ति यक्ष, कपर्दि यक्ष, बाहुबली, ६४-योगिनी, शान्तिदेवी, जिनों के माता-पिता एवं पंचपरमेष्ठि आदि सम्मिलित हैं। श्वेतांबर और दिगंबर सम्प्रदायों के ग्रन्थों में जैन देवकुल का विकास बाह्य दृष्टि से समरूप है। केवल विभिन्न देवताओं के नामों एवं लाक्षणिक विशेषताओं के सन्दर्भ में ही दोनों परम्पराओं मे भिन्नता दृष्टिगत होती है। महावीर के गर्भापहरण, जीवन्तस्वामी महावीर की मूर्ति एवं मल्लिनाथ के नारी तीर्थंकर होने के उल्लेख केवल श्वेतांबर ग्रन्थो में ही प्राप्त होते हैं।

२४ जिनों की कल्पना जैन धर्म की धुरी है। ई० सन् के प्रारम्भ के पूर्व ही २४ जिनों की सूची निर्धारित हो गई थी। २४ जिनों की प्रारम्भिक सूचिया समवायांगसूत्र, भगवतीसूत्र, कल्पसूत्र एवं पउमचरिय मे मिलती हैं। शिल्प में जिन मूर्ति का उत्कीर्णन ल० तीसरी शती ई० पू० में प्रारम्भ हुआ। कल्पसूत्र में ऋषभ, नेमि, पार्श्व और महावीर के जीवन-वृत्तों के विस्तार से उल्लेख हैं। परवर्ती ग्रन्थों में भी इन्हीं चार जिनों की सर्वाधिक विस्तार से चर्चा है। शिल्प में भी इन्हीं जिनों का अंकन सबसे पहले (कुषाणकाल में) प्रारम्भ हुआ और विभिन्न स्थलों पर आगे भी इन्हीं की

सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुई । मूर्तियों के आधार पर लोकप्रियता के क्रम में ये जिन ऋषभ, पार्श्व, महावीर और नेमि हैं। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इन जिनों की लोकप्रियता के कारण ही उनके यक्ष-यक्षी युगलों को भी जैन परम्परा और शिल्प में सर्वाधिक लोकप्रियता मिली । उपर्युक्त जिनों के बाद अजित, सम्भव, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, शान्ति एवं मुनिसुव्रत की सर्वाधिक मूर्तियां बनी । अन्य जिनों की मूर्तियां संख्या की दृष्टि से नगण्य हैं। तात्पर्य यह कि उत्तर भारत में २४ मे से केवल १० ही जिनों का अंकन लोकप्रिय था । दक्षिण भारत में पार्श्व और महावीर की सर्वाधिक मूर्तियां मिलती हैं।

जिन मूर्तियों मे सर्वप्रथम पार्श्व का लक्षण स्पष्ट हुआ । ल० दूसरी-पहली शती ई० पू० मे पार्श्व के साथ शीर्षभाग मे सात सर्पफणो के छत्र का प्रदर्शन किया गया । पार्श्व के बाद मथुरा एवं चौसा की पहली शती ई० की मूर्तियों मे ऋषभ के साथ जटाओ का प्रदर्शन हुआ । कुषाण काल मे ही मथुरा में नेमि के साथ बलराम और कृष्ण का अंकन हुआ । इस प्रकार कुषाण काल तक ऋषभ, नेमि और पार्श्व के लक्षण निश्चित हुए । मथुरा मे कुषाण काल मे सम्भव, मुनिसुव्रत एवं महावीर की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हुई, जिनकी पहचान पीठिका-लेखों में उत्कीर्ण नामों के आधार पर की गई है। मथुरा में ही कुषाण काल मे सर्वप्रथम जिन मूर्तियों में सात प्रातिहार्यों, धर्मचक्र, मांगलिक चिह्नों एवं उपासकों आदि का अंकन हुआ ।

गुप्तकाल मे जिनों के साथ सर्वप्रथम लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों एवं अष्ट-प्रातिहार्यों का अंकन प्रारम्भ हुआ । राजगिर एवं भारत कला भवन, वाराणसी की नेमि और महावीर की दो मूर्तियों में पहली बार लांछन का, और अकोटा की ऋषभ की मूर्ति में यक्ष-यक्षी (सर्वानुभूति एव अम्बिका) का चित्रण हुआ । गुप्त काल में सिंहासन के छोरों एवं परिकर में छोटी जिन मूर्तियों का भी अंकन प्रारम्भ हुआ । अकोटा की श्वेताम्बर जिन मूर्तियों मे पहली बार पीठिका के मध्य मे धर्मचक्र के दोनो ओर दो मृगो का अंकन किया गया जो सम्भवतः बौद्ध कला का प्रभाव है ।

ल० आठवी-नवी शती ई० मे २४ जिनों के स्वतन्त्र लांछनों की सूची बनी, जो कहावली, प्रवचनसारोद्धार एवं तिलोयपण्णत्ति में सुरक्षित है । श्वेतांबर और दिगंबर परम्पराओं मे सुपार्श्व, शीतल, अनन्त एवं अरनाथ के अतिरिक्त अन्य जिनों के लाछनो में कोई भिन्नता नही है । मूर्तियों में सुपार्श्व तथा पार्श्व के साथ क्रमशः स्वस्तिक और सर्प लांछनों का अंकन दुर्लभ है क्योकि पांच और सात सर्पफणों के छत्रों के प्रदर्शन के बाद जिनो की पहचान के लिए लांछनों का प्रदर्शन आवश्यक नही समझा गया । पर जटाओ से शोभित ऋषभ के साथ वृषभ लाछन का चित्रण नियमित था क्योंकि आठवी शती ई० के बाद के दिगंबर स्थलों पर ऋषभ के साथ-साथ अन्य जिनों के साथ भी जटाएं प्रदर्शित की गयी है ।

ल० नवी-दसवी शती ई० तक मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से जिन मूर्तियां पूर्णतः विकसित हो गई । पूर्णविकसित जिन मूर्तियों मे लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों एवं अष्ट-प्रातिहार्यों के साथ ही परिकर में छोटी जिन मूर्तियों, नवग्रहों, गजाकृतियों, धर्मचक्र, विद्याओ एवं अन्य आकृतियों का अंकन हुआ (चित्र ७)। सिंहासन के मध्य मे पद्म से युक्त शान्तिदेवी तथा गजो एवं मृगों का निरूपण केवल श्वेताबर स्थलों पर लोकप्रिय था (चित्र २०, २१) । ग्यारहवी से तेरहवी शती ई० के मध्य श्वेतांबर स्थलों पर ऋषभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के जीवनदृश्यों का विशद अंकन भी हुआ, जिसके उदाहरण ओसिया की देवकुलिकाओं, कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों, जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर और आबू के विमलवसही और लूणवसही से मिले हैं । इनमे जिनों के पंचकल्याणकों (च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य, निर्वाण) एवं कुछ अन्य महत्वपूर्ण घटनाओ को दरशाया गया है, जिनमें भरत और बाहुबली के युद्ध, शान्ति के पूर्वजन्म में कपोत की प्राणरक्षा की कथा, नेमि के विवाह, मुनिसुव्रत के जीवन की अश्वावबोध और शकुनिका-विहार की कथाएं तथा पार्श्व एवं महावीर के उपसर्ग प्रमुख हैं ।

उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश के दिगंबर स्थलों पर मध्ययुग मे नेमि के साथ बलराम और कृष्ण, पार्श्व के साथ सर्पफणों के छत्र वाले चामरधारी धरण एवं छत्रधारिणी पद्मावती तथा जिन मूर्तियों के परिकर में बाहुबली, जीवन्तस्वामी,

क्षेत्रपाल, सरस्वती, लक्ष्मी आदि के अंकन विशेष लोकप्रिय थे (चित्र २७, २८)। बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल की जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी युगलो, सिंहासन, धर्मचक्र, गजों, दुन्दुभिवादकों आदि का अंकन लोकप्रिय नहीं था। ल० दसवीं शती ई० में जिन मूर्तियों के परिकर मे २३ या २४ छोटी जिन मूर्तियो का अंकन प्रारम्भ हुआ। बंगाल की छोटी जिन मूर्तियां अधिकांशतः लाछनों से युक्त हैं (चित्र ९)। जैन ग्रन्थों में द्वितीर्थी एवं त्रितीर्थी जिन मूर्तियों के उल्लेख नही मिलते। पर दिगंबर स्थलों पर, मुख्यतः देवगढ़ एवं खजुराहो में, नवी से बारहवी शती ई० के मध्य इनका उत्कीर्णन हुआ। इन मूर्तियों में दो या तीन भिन्न जिनों को एक साथ निरूपित किया गया है।

जिन चौमुखी मूर्तियां का उत्कीर्णन पहली शती ई० मे मथुरा मे प्रारम्भ हुआ और आगे की शताब्दियों में भी लोकप्रिय रहा (चित्र ६६–६९)। चौमुखी मूर्तियों मे चार दिशाओ मे चार ध्यानस्थ या कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां उत्कीर्ण होती हैं। इन मूर्तियों को दो मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग मे वे मूर्तियां हैं जिनमें चारों ओर एक ही जिन की चार मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इस वर्ग की मूर्तियां समवसरण की धारणा से प्रभावित हैं और ल० सातवी-आठवी शती ई० में इनका निर्माण हुआ। दूसरे वर्ग की मूर्तियो मे चारो ओर चार अलग-अलग जिनो की चार मूर्तियां हैं। मथुरा की कुषाण कालीन चौमुखी मूर्तियां इसी वर्ग की है। मथुरा की कुषाण कालीन चौमुखी मूर्तियों के समान ही इस वर्ग की अधिकांश मूर्तियो मे केवल ऋषभ और पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। कुछ मूर्तियों में अजित, सम्भव, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, नेमि, शान्ति एवं महावीर भी निरूपित हैं। बंगाल मे चारो जिनो के साथ लांछनो और देवगढ़ एवं विमलवसही मे यक्ष-यक्षी युगलो का चित्रण प्राप्त होता है। ल० दसवीं शती ई० में चतुर्विंशति-जिन-पट्टों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। ग्यारहवीं शती ई० का एक विशिष्ट पट्ट देवगढ मे है।

भगवतीसूत्र, तत्त्वार्थसूत्र, अन्तगड्दसाओ एवं **पउमचरिय** जैसे प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों मे यक्षों के प्रचुर उल्लेख हैं। इनमे माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षों और बहुपुत्रिका यक्षी की सर्वाधिक चर्चा है। जिनों से संश्लिष्ट प्राचीनतम यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है, जिनकी कल्पना प्राचीन परम्परा के माणिभद्र-पूर्णभद्र यक्षों और बहुपुत्रिका यक्षी से प्रभावित है।[1] ल० छठी शती ई० मे शिल्प में जिनों के शासन और उपासक देवो के रूप मे यक्ष और यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हुआ। यक्ष एवं यक्षी को जिन मूर्तियो के सिंहासन या पीठिका के क्रमशः दायें और बायें छोरो पर अंकित किया गया।

ल० छठी से नवी शती ई० तक के ग्रन्थों मे केवल यक्षराज (सर्वानुभूति), धरणेन्द्र, चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती की ही कुछ लाक्षणिक विशेषताओ के उल्लेख हैं। २४ जिनों के स्वतन्त्र यक्षी-यक्षी युगलो की सूची ल० आठवी-नवी शती ई० मे निर्धारित हुई। सबसे प्रारम्भ की सूचियां **कहावली, तिलोयपण्णत्ति** और **प्रवचनसारोद्धार** में है। २४ यक्ष-यक्षी युगलों की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं ग्यारहवी-बारहवी शती ई० में नियत हुई जिनके उल्लेख **निर्वाणकलिका, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** एवं **प्रतिष्ठासारसंग्रह** तथा अन्य कई ग्रन्थों मे हैं। श्वेतांबर ग्रन्थो मे दिगंबर परम्परा के कुछ पूर्व ही यक्ष और यक्षियो की लाक्षणिक विशेषताएं निश्चित हो गयी थी। दोनो परम्पराओं मे यक्ष एवं यक्षियों के नामो और उनकी लाक्षणिक विशेषताओ की दृष्टि से पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगत होती है। दिगबर ग्रन्थो मे यक्ष और यक्षियो के नाम और उनकी लाक्षणिक विशेषताएं श्वेतांबर ग्रन्थो की अपेक्षा स्थिर और एकरूप हैं।

दोनों परम्पराओं की सूचियों में मातंग, यक्षेश्वर एवं ईश्वर यक्षों तथा नरदत्ता, मानवी, अच्युता एवं कुछ अन्य यक्षियो के नामोल्लेख एक से अधिक जिनों के साथ किये गये है। भृकुटि का यक्ष और यक्षी दोनों के रूप मे उल्लेख है। २४ यक्ष और यक्षियों की सूची में से अधिकांश के नाम एव उनकी लाक्षणिक विशेषताएं हिन्दू और कुछ उदाहरणो में बौद्ध देवकुल से प्रभावित हैं। हिन्दू देवकुल से प्रभावित यक्ष-यक्षी युगल तीन भागो मे विभाज्य हैं। पहली कोटि में ऐसे यक्ष-यक्षी युगल है जिनके मूल देवता आपस मे किसी प्रकार सम्बन्धित नही हैं। अधिकांश यक्ष-यक्षी युगल इसी वर्ग के हैं।

---

१ शाह, यू०पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इ०, खं० ३, अं० १, पृ० ६१–६२। सर्वानुभूति को मातंग, गोमेध या कुबेर भी कहा गया है।

दूसरी कोटि में ऐसे यक्ष-यक्षी युगल हैं जो मूलरूप में हिन्दू देवकुल में भी आपस मे सम्बन्धित हैं, जैसे श्रेयांशनाथ के ईश्वर एवं गौरी यक्ष-यक्षी युगल। तीसरी कोटि में ऐसे यक्ष-यक्षी युगल हैं जिनमें यक्ष एक और यक्षी दूसरे स्वतन्त्र सम्प्रदाय के देवता से प्रभावित हैं। ऋषमनाथ के गोमुख यक्ष एवं चक्रेश्वरी यक्षी इसी कोटि के हैं, जो शिव और वैष्णवी से प्रभावित हैं; शिव और वैष्णवी क्रमशः शैव एवं वैष्णव धर्म के प्रतिनिधि देव है।

ल० छठी शती ई० में सर्वप्रथम सर्वानुभूति एवं अम्बिका को अकोटा में मूर्त अभिव्यक्ति मिली। इसके बाद धरणेन्द्र और पद्मावती की मूर्तियां बनी और ल० दसवी शती ई० से अन्य यक्ष-यक्षियों की भी मूर्तियां बनने लगीं। ल० छठी शती ई० मे जिन मूर्तियों मे और ल० नवी शती ई० में स्वतन्त्र मूर्तियों के रूप में यक्ष-यक्षियो का निरूपण प्रारम्भ हुआ।[1] ल० छठी से नवी शती ई० के मध्य की ऋषम, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं कुछ अन्य जिनों की मूर्तियो मे सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही आमूर्तित है। ल० दसवी शती ई० से ऋषम, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका के स्थान पर पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी युगलों का निरूपण प्रारम्भ हुआ, जिसके मुख्य उदाहरण देवगढ़, ग्यारसपुर, खजुराहो एव राज्य संग्रहालय, लखनऊ में है। इन स्थलो की दसवीं शती ई० की मूर्तियों में ऋषम और नेमि के साथ क्रमशः गोमुख-चक्रेश्वरी और सर्वानुभूति-अम्बिका तथा शान्ति, पार्श्व एवं महावीर के साथ स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण है।

नवीं शती ई० के बाद बिहार, उड़ीसा और बंगाल के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों की जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी युगलों का नियमित अंकन हुआ है। स्वतन्त्र अंकनो मे यक्ष की तुलना मे यक्षियो के चित्रण अधिक लोकप्रिय थे। २४ यक्षियों के सामूहिक अंकन के हमें तीन उदाहरण मिले है, पर २४ यक्षों के सामूहिक चित्रण का सम्भवतः कोई प्रयास ही नही किया गया। यक्षों की केवल द्विभुजी और चतुर्भुजी मूर्तिया बनी, पर यक्षियों की दो से बीस भुजाओं तक की मूर्तियां मिली है।

यक्ष और यक्षियो की सर्वाधिक जिन-संयुक्त और स्वतन्त्र मूर्तिया उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश के दिगंबर स्थलों पर उत्कीर्ण हुईं। अतः यक्ष एवं यक्षियो के मूर्तिविज्ञानपरक विकास के अध्ययन की दृष्टि से इस क्षेत्र का विशेष महत्व है। इस क्षेत्र मे दसवी से बारहवी शती ई० के मध्य ऋषम, नेमि एवं पार्श्व के साथ पारम्परिक, और सुपार्श्व, चन्द्रप्रम, शान्ति एवं महावीर के साथ स्वतन्त्र लक्षणो वाले यक्ष-यक्षी युगल निरूपित हुए। अन्य जिनों के यक्ष-यक्षी द्विभुज और सामान्य लक्षणो वाले है। इस क्षेत्र में चक्रेश्वरी एवं अम्बिका की सर्वाधिक मूर्तियां बनीं (चित्र ४४–४६, ५०, ५१)। साथ ही रोहिणी, मनोवेगा, गौरी, गान्धारी, पद्मावती एवं सिद्धायिका की भी कुछ मूर्तियां मिली है (चित्र ४७, ५५)। चक्रेश्वरी एवं पद्मावती की मूर्तियों मे सर्वाधिक विकास दृष्टिगत होता है। यक्षों मे केवल सर्वानुभूति, गरुड (?) एवं धरणेन्द्र की ही कुछ स्वतन्त्र मूर्तियां मिली है (चित्र ४९)। इस क्षेत्र में २४ यक्षियो के सामूहिक अंकन के भी दो उदाहरण हैं जो देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति, ११वीं शती ई०) से मिले हैं (चित्र ५३)। देवगढ़ के उदाहरण मे अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताएं नही प्रदर्शित है। देवगढ़ समूह की अधिकांश यक्षियां सामान्य लक्षणों वाली और समरूप, तथा कुछ अन्य जैन महाविद्याओं एवं सरस्वती आदि के स्वरूपो से प्रभावित हैं।

गुजरात और राजस्थान में अम्बिका की सर्वाधिक मूर्तियां बनी (चित्र ५४)। चक्रेश्वरी, पद्मावती एवं सिद्धायिका की भी कुछ मूर्तियां मिली हैं (चित्र ५६)। यक्षों में केवल गोमुख, वरुण (?), सर्वानुभूति एवं पार्श्व की ही स्वतन्त्र मूर्तियां हैं (चित्र ४३)। सर्वानुभूति की मूर्तियां सर्वाधिक हैं। इस क्षेत्र मे छठी से बारहवीं शती ई० तक सभी जिनों के साथ एक ही यक्ष-यक्षी युगल, सर्वानुभूति एवं अम्बिका, निरूपित हैं। केवल कुछ उदाहरणों में ऋषम, पार्श्व एवं महावीर के साथ पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं।

---

१ केवल अकोटा से छठी शती ई० के अन्त की एक स्वतन्त्र अम्बिका मूर्ति मिली है।

बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल में यक्ष-यक्षियों की मूर्तियां नगण्य है। केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती (?) की कुछ स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। उड़ीसा की नवमुनि एवं बारभुजो गुफाओं (११ वीं-१२ वीं शती ई०) में क्रमशः सात और चौबीस यक्षियों की मूर्तियां उत्कीर्ण है (चित्र ५९)। दक्षिण भारत में गोमुख, कुबेर, धरणेन्द्र एवं मातंग यक्षों तथा चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, अम्बिका, पद्मावती एवं सिद्धायिका यक्षियों की मूर्तियां बनीं। यक्षियों में ज्वालामालिनी, अम्बिका एवं पद्मावती सर्वाधिक लोकप्रिय थी।

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों मे २४ जिनों सहित जिन ६३ शलाकापुरुषों के उल्लेख हैं, उनकी सूची सदैव स्थिर रही है। इस सूची में २४ जिनो के अतिरिक्त १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव सम्मिलित है। जैन शिल्प में २४ जिनों के अतिरिक्त अन्य शलाकापुरुषों में से केवल बलराम, कृष्ण, राम और भरत की ही मूर्तियां मिलती हैं। बलराम और कृष्ण के अंकन कुषाण युग में तथा राम और भरत के अंकन दसवीं-बारहवीं शती ई० में हुए। श्रीलक्ष्मी और सरस्वती के उल्लेख प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में है। सरस्वती का अंकन कुषाण युग में और श्री लक्ष्मी का अंकन दसवीं शती ई० में हुआ। जैन परम्परा मे इन्द्र का जिनों के प्रधान सेवक के रूप में उल्लेख है और उसकी मूर्तियां ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में बनीं। प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में उल्लिखित नैगमेषी को कुषाण काल मे ही मूर्त अभिव्यक्ति मिली। शान्तिदेवी, गणेश, ब्रह्मशान्ति एवं कपर्दि यक्षों के उल्लेख और उनकी मूर्तियां दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की हैं (चित्र ७७)।

जैन देवकुल मे जिनों एवं यक्ष-यक्षियों के बाद सर्वाधिक प्रतिष्ठा विद्याओं को मिली। **स्थानांगसूत्र, सूत्रकृतांग, नायाधम्मकहाओ** और **पउमचरिय** जैसे प्रारम्भिक एवं **हरिवंशपुराण, वसुदेवहिण्डी** और **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** जैसे परवर्ती (छठी-१२ वीं शती ई०) ग्रन्थों में विद्याओं के अनेक उल्लेख है। जैन ग्रन्थों मे वर्णित अनेक विद्याओं में से १६ विद्याओं को लेकर ल० नवीं शती ई० मे १६ विद्याओं की एक सूची निर्धारित हुई। ल० नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य इन्हीं १६ विद्याओं के ग्रन्थों मे प्रतिमालक्षण निर्धारित हुए और शिल्प में मूर्तियां बनीं। १६ विद्याओं की प्रारम्भिकतम सूचियां **तिजयपहुत्त** (९ वीं शती ई०), **संहितासार** (९३९ ई०) एवं **स्तुति चतुर्विंशतिका** (ल० ९७३ ई०) में हैं। बप्पभट्टिसूरि की **चतुर्विंशतिका** (७४३–८३८ ई०) में सर्वप्रथम १६ में से १५ विद्याओं की लाक्षणिक विशेषताएं निरूपित हुईं। सभी १६ विद्याओं की लाक्षणिक विशेषताओं का निर्धारण सर्वप्रथम शोभनमुनि की **स्तुति चतुर्विंशतिका** मे हुआ। विद्याओं की प्राचीनतम मूर्तियां ओसिया के महावीर मन्दिर (ल० ८ वीं-९ वीं शती ई०) से मिली है। नवीं से तेरहवीं शती ई० के मध्य गुजरात और राजस्थान के श्वेतांबर जैन मन्दिरों में विद्याओं की अनेक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। १६ विद्याओं के सामूहिक चित्रण के भी प्रयास किये गये जिसके चार उदाहरण क्रमशः कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर (११ वीं शती ई०) और आबू के विमलवसही (दो उदाहरण : रंगमण्डप और देवकुलिका ४१, १२ वीं शती ई०) एवं लूणवसही (रंगमण्डप, १२३० ई०) से मिले है (चित्र ७८)। दिगंबर स्थलों पर विद्याओं के चित्रण का एकमात्र सम्भावित उदाहरण खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर की भित्ति पर है।

•

परिशिष्ट

परिशिष्ट–१

जिन-मूर्तिविज्ञान-तालिका

सं०	जिन	लांछन	यक्ष	यक्षी
१	ऋषभनाथ (या आदिनाथ)	वृषभ	गोमुख	चक्रेश्वरी (श्वे०, दि०)[1], अप्रतिचक्रा (श्वे०)
२	अजितनाथ	गज	महायक्ष	अजिता (श्वे०), रोहिणी (दि०)
३	सम्भवनाथ	अश्व	त्रिमुख	दुरितारी (श्वे०), प्रज्ञप्ति (दि०)
४	अभिनन्दन	कपि	यक्षेश्वर (श्वे०, दि०), ईश्वर (श्वे०)	कालिका (श्वे०), वज्रशृंखला (दि०)
५	सुमतिनाथ	क्रौंच	तुम्बरु (श्वे०, दि०), तुम्बर (दि०)	महाकाली (श्वे०), पुरुषदत्ता, नरदत्ता (दि०), सम्मोहिनी (श्वे०)
६	पद्मप्रभ	पद्म	कुसुम (श्वे०), पुष्प (दि०)	अच्युता, मानसी (श्वे०), मनोवेगा (दि०)
७	सुपार्श्वनाथ	स्वस्तिक (श्वे०, दि०), नंद्यावर्त (दि०)	मातंग	शान्ता (श्वे०), काली (दि०)
८	चन्द्रप्रभ	शशि	विजय (श्वे०), श्याम (दि०)	भृकुटि, ज्वाला (श्वे०), ज्वालामालिनी, ज्वालिनी (दि०)
९	सुविधिनाथ (श्वे०), पुष्पदंत (श्वे०, दि०)	मकर	अजित (श्वे०, दि०), जय	सुतारा (श्वे०), महाकाली (दि०)
१०	शीतलनाथ	श्रीवत्स (श्वे०, दि०) स्वस्तिक (दि०)	ब्रह्म	अशोका (श्वे०), मानवी (दि०)
११	श्रेयांशनाथ	खड्गी (गेंडा)	ईश्वर (श्वे०, दि०), यक्षराज, मनुज (श्वे०)	मानवी, श्रीवत्सा (श्वे०), गौरी (दि०)
१२	वासुपूज्य	महिष	कुमार	चण्डा, प्रचण्डा, अजिता, चन्द्रा (श्वे०), गान्धारी (दि०)
१३	विमलनाथ	वराह	षण्मुख (श्वे०, दि०), चतुर्मुख (दि०)	विदिता (श्वे०), वैरोटी (दि०)
१४	अनन्तनाथ	श्येनपक्षी (श्वे०), रीछ (दि०)	पाताल	अंकुशा (श्वे०), अनन्तमती (दि०)
१५	धर्मनाथ	वज्र	किन्नर	कन्दर्पा, पन्नगा (श्वे०), मानसी (दि०)
१६	शान्तिनाथ	मृग	गरुड	निर्वाणी (श्वे०), महामानसी (दि०)
१७	कुंथुनाथ	छाग	गन्धर्व	बला, अच्युता, गान्धारिणी (श्वे०), जया (दि०)

१ श्वे० = श्वेतांबर, दि० = दिगंबर

सं०	जिन	लांछन	यक्ष	यक्षी
१८	अरनाथ	नन्द्यावर्त (श्वे०), मत्स्य (दि०)	यक्षेन्द्र, यक्षेश्वर (श्वे०), खेन्द्र (दि०)	धारणी, धारिणी (श्वे०), तारावती (दि०)
१९	मल्लिनाथ	कलश	कुबेर	वैरोट्या, धरणप्रिया (श्वे०), अपराजिता (दि०)
२०	मुनिमुव्रत	कूर्म	वरुण	नरदत्ता, वरदत्ता (श्वे०), बहुरूपिणी (दि०)
२१	नमिनाथ	नीलोत्पल	भृकुटि	गांधारी (श्वे०), चामुण्डा (दि०)
२२	नेमिनाथ (या अरिष्टनेमि)	शंख	गोमेध	अम्बिका (श्वे०, दि०), कुष्माण्डी (श्वे०), कुष्माण्डिनी (दि०)
२३	पार्श्वनाथ	सर्प	पार्श्व, वामन (श्वे०), धरण (दि०)	पद्मावती
२४	महावीर (या वर्धमान)	सिंह	मातंग	सिद्धायिका (श्वे०, दि०), सिद्धायिनी (दि०)

●

परिशिष्ट–२

यक्ष-यक्षी-मूर्तिविज्ञान-तालिका

(क) २४–यक्ष

सं० यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
१ गोमुख–(क) श्वे०	गज (या वृषभ)	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, मातुलिंग, पाश	गोमुख, पार्श्वों में गज एवं वृषभ का अंकन
(ख) दि०	वृषभ	चार	परशु, फल, अक्षमाला, वरदमुद्रा	शीर्षभाग में धर्मचक्र
२ महायक्ष–(क) श्वे०	गज	आठ	वरदमुद्रा, मुद्गर, अक्षमाला, पाश (दक्षिण); मातुलिंग, अभयमुद्रा, अंकुश, शक्ति (वाम)	चतुर्मुख
(ख) दि०	गज	आठ	खड्ग (निस्त्रिंश), दण्ड, परशु, वरदमुद्रा (दक्षिण); चक्र, त्रिशूल, पद्म, अंकुश (वाम)	चतुर्मुख
३ त्रिमुख–(क) श्वे०	मयूर (या सर्प)	छह	नकुल, गदा, अभयमुद्रा (दक्षिण); फल, सर्प, अक्षमाला (वाम)	त्रिमुख, त्रिनेत्र (या नवाक्ष)
(ख) दि०	मयूर	छह	दण्ड, त्रिशूल, कटार (दक्षिण); चक्र, खड्ग, अंकुश (वाम)	त्रिमुख, त्रिनेत्र
४ (i) ईश्वर–श्वे०	गज	चार	फल, अक्षमाला, नकुल, अंकुश	
(ii) यक्षेश्वर–दि०	गज (या हंस)	चार	संकपत्र (या बाण), खड्ग, कार्मुक, खेटक। सर्प, पाश, वज्र, अंकुश (अपराजितपृच्छा)	चतुरानन
५ तुम्बरु–(क) श्वे०	गरुड	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, नाग (या गदा), पाश	
(ख) दि०	गरुड	चार	सर्प, सर्प, वरदमुद्रा, फल	नागयज्ञोपवीत
६ कुसुम (या पुष्प)– (क) श्वे०	मृग (या मयूर या अश्व)	चार	फल, अभयमुद्रा, नकुल, अक्षमाला	
(ख) दि०	मृग	दो या चार	(i) गदा, अक्षमाला (ii) शूल, मुद्रा, खेटक, अभयमुद्रा (या खेटक)	
७ मातंग–(क) श्वे०	गज	चार	बिल्वफल, पाश (या नागपाश), नकुल (या वज्र), अंकुश	
(ख) दि०	सिंह (या मेष)	दो	वज्र (या शूल), दण्ड। गदा, पाश (अपराजितपृच्छा)	
८ (i) विजय–श्वे०	हंस	दो	चक्र (या खड्ग), मुद्गर	त्रिनेत्र
(ii) श्याम–दि०	कपोत	चार	फल, अक्षमाला, परशु, वरदमुद्रा	त्रिनेत्र

सं० यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
९ अजित–(क) श्वे०	कूर्म	चार	मातुलिंग, अक्षसूत्र (या अभयमुद्रा), नकुल, शूल (या अतुल रत्नराशि)	
(ख) दि०	कूर्म	चार	फल, अक्षसूत्र, शक्ति, वरदमुद्रा	
१० ब्रह्मा–(क) श्वे०	पद्म	आठ या दस	मातुलिंग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा या वरदमुद्रा (दक्षिण); नकुल, गदा, अंकुश, अक्षसूत्र (वाम); मातुलिंग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा, नकुल, गदा, अंकुश, अक्षसूत्र, पाश, पद्म **(आचारदिनकर)**	त्रिनेत्र, चतुर्मुख
(ख) दि०	सरोज	आठ	बाण, खड्ग, वरदमुद्रा, धनुष, दण्ड, खेटक, परशु, वज्र	चतुर्मुख
११ ईश्वर–(क) श्वे०	वृषभ	चार	मातुलिंग, गदा, नकुल, अक्षसूत्र	त्रिनेत्र
(ख) दि०	वृषभ	चार	फल, अक्षसूत्र, त्रिशूल, दण्ड (या वरदमुद्रा)	त्रिनेत्र
१२ कुमार–(क) श्वे०	हंस	चार	बीजपूरक, बाण (या वीणा), नकुल, धनुष	
(ख) दि०	हंस (या मयूर)	चार या छह	वरदमुद्रा, गदा, धनुष, फल **(प्रतिष्ठासारोद्धार)**; बाण, गदा, वरदमुद्रा, धनुष, नकुल, मातुलिंग **(प्रतिष्ठातिलकम्)**	त्रिमुख या षण्मुख
१३ (i) षण्मुख–श्वे०	मयूर	बारह	फल, चक्र, बाण (या शक्ति), खड्ग, पाश, अक्षमाला, नकुल, चक्र, धनुष, फलक, अंकुश, अभयमुद्रा	
(ii) चतुर्मुख–दि०	मयूर	बारह	ऊपर के आठ हाथों में परशु और शेष चार में खड्ग, अक्षसूत्र, खेटक, दण्डमुद्रा	
१४ पाताल–(क) श्वे०	मकर	छह	पद्म, खड्ग, पाश, नकुल, फलक, अक्षसूत्र	त्रिमुख, त्रिनेत्र
(ख) दि०	मकर	छह	अंकुश, शूल, पद्म, कषा, हल, फल। वज्र, अंकुश, धनुष, बाण, फल, वरदमुद्रा **(अपराजितपृच्छा)**	त्रिमुख, शीर्षभाग में त्रिसर्पफण
१५ किन्नर–(क) श्वे०	कूर्म	छह	बीजपूरक, गदा, अभयमुद्रा, नकुल, पद्म, अक्षमाला	त्रिमुख
(ख) दि०	मीन	छह	मुद्गर, अक्षमाला, वरदमुद्रा, चक्र, वज्र, अंकुश; पाश, अंकुश, धनुष,बाण, फल, वरदमुद्रा **(अपराजितपृच्छा)**	त्रिमुख

सं०	यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
१६	गरुड–(क) श्वे०	वराह (या गज)	चार	बीजपूरक, पद्म, नकुल (या पाश), अक्षसूत्र	वराहमुख
	(ख) दि०	वराह (या शुक)	चार	वज्र, चक्र, पद्म, फल। पाश, अंकुश, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	
१७	गन्धर्व–(क) श्वे०	हस (या सिंह ?)	चार	वरदमुद्रा, पाश, मातुलिंग, अंकुश	
	(ख) दि०	पक्षी (या शुक)	चार	सर्प, पाश, बाण, धनुष; पद्म, अभयमुद्रा, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	
१८	(i) यक्षेन्द्र–श्वे०	शख (या वृषभ या शेष)	बारह	मातुलिंग, बाण (या कपाल), खड्ग, मुद्गर, पाश (या शूल), अभयमुद्रा, नकुल, धनुष, खेटक, शूल, अंकुश, अक्षसूत्र	षणमुख, त्रिनेत्र
	(ii) खेन्द्र या यक्षेश–दि०	शंख (या खर)	बारह या छह	बाण, पद्म, फल, माला, अक्षमाला, लीलामुद्रा, धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश, वरदमुद्रा। वज्र, चक्र, धनुष, बाण, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	षणमुख, त्रिनेत्र
१९	कुबेर या यक्षेश–				
	(क) श्वे०	गज	आठ	वरदमुद्रा, परशु, शूल, अभयमुद्रा, बीजपूरक, शक्ति, मुद्गर, अक्षसूत्र	चतुर्मुख, गरुडवदन (निर्वाणकलिका)
	(ख) दि०	गज (या सिंह)	आठ या चार	फलक, धनुष, दण्ड, पद्म, खड्ग, बाण, पाश, वरदमुद्रा। पाश, अंकुश, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	चतुर्मुख
२०	वरुण–(क) श्वे०	वृषभ	आठ	मातुलिंग, गदा, बाण, शक्ति, नकुलक, पद्म (या अक्षमाला), धनुष, परशु	जटामुकुट, त्रिनेत्र, चतुर्मुख, द्वादशाक्ष (आचारदिनकर)
	(ख) दि०	वृषभ	चार या छह	खेटक, खड्ग, फल, वरदमुद्रा। पाश, अंकुश, कार्मुक, शर, उरग, वज्र (अपराजितपृच्छा)	जटामुकुट, त्रिनेत्र, अष्टानन
२१	भृकुटि–(क) श्वे०	वृषभ	आठ	मातुलिंग, शक्ति, मुद्गर, अभयमुद्रा, नकुल, परशु, वज्र, अक्षसूत्र	चतुर्मुख, त्रिनेत्र (द्वादशाक्ष-आचारदिनकर)
	(ख) दि०	वृषभ	आठ	खेटक, खड्ग, धनुष, बाण, अंकुश, पद्म, चक्र, वरदमुद्रा	चतुर्मुख
२२	गोमेध–(क) श्वे०	नर	छह	मातुलिंग, परशु, चक्र, नकुल, शूल, शक्ति	त्रिमुख, समीप ही अम्बिका के निरूपण का निर्देश (आचारदिनकर)

सं०	यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
	(ख) दि०	पुष्प (या नर)	छह	मुद्गर (या द्रुघण), परशु, दण्ड, फल, वज्र, वरदमुद्रा। प्रतिष्ठातिलकम् में द्रुघण के स्थान पर धन के प्रदर्शन का निर्देश है।	त्रिमुख
२३	( ) पार्श्व–श्वे०	कूर्म	चार	मातुलिंग, उरग (या गदा), नकुल, उरग	गजमुख, सर्पफणों के छत्र से युक्त
	(ii) धरण–दि०	कूर्म	चार या छह	नागपाश, सर्प, सर्प, वरदमुद्रा। धनुष, बाण, भृण्डि, मुद्गर, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	सर्पफणों के छत्र से युक्त
२४	मातंग–(क) श्वे०	गज	दो	नकुल, बीजपूरक	
	(ख) दि०	गज	दो	वरदमुद्रा, मातुलिंग	मस्तक पर धर्मचक्र

c

परिशिष्ट–२

यक्ष-यक्षी-मूर्तिविज्ञान-तालिका

(ख) २४–यक्षी

सं०	यक्षी	वाहन	भुजासं०	आयुध
१	चक्रेश्वरी (या अप्रति-चक्रा)–(क) श्वे०	गरुड	आठ या बारह	(i) वरदमुद्रा, वाण, चक्र, पाश (दक्षिण); धनुष, वज्र, चक्र, अंकुश (वाम) (ii) आठ हाथों मे चक्र, शेष चार में से दो में वज्र और दो मे मातुलिंग, अभयमुद्रा
	(ख) दि०	गरुड	चार या बारह	(i) दो मे चक्र और अन्य दो में मातुलिंग, वरदमुद्रा (ii) आठ हाथों में चक्र और शेष चार में से दो मे वज्र और दो में मातुलिंग और वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा)
२	(i) अजिता या अजित-बला–श्वे०	लोहासन (या गाय)	चार	वरदमुद्रा, पाश, अंकुश, फल
	(ii) रोहिणी–दि०	लोहासन	चार	वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शंख, चक्र
३	(i) दुरितारी–श्वे०	मेष (या मयूर या महिष)	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, फल (या सर्प), अभयमुद्रा
	(ii) प्रज्ञप्ति–दि०	पक्षी	छह	अर्द्धेन्दु, परशु, फल, वरदमुद्रा, खड्ग, इढ़ी (या पिंढी)
४	(i) कालिका (या काली)–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश, सर्प, अंकुश
	(ii) वज्रशृंखला–दि०	हंस	चार	वरदमुद्रा, नागपाश, अक्षमाला, फल
५	(i) महाकाली–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश (या नागपाश), मातुलिंग, अंकुश
	(ii) पुरुषदत्ता (या नर-दत्ता)–दि०	गज	चार	वरदमुद्रा, चक्र, वज्र, फल
६	(i) अच्युता (या श्यामा या मानसी)–श्वे०	नर	चार	वरदमुद्रा, वीणा (या पाश या बाण), धनुष (या मातुलिंग), अभयमुद्रा (या अंकुश)
	(ii) मनोवेगा–दि०	अश्व	चार	वरदमुद्रा, खेटक, खड्ग, मातुलिंग
७	(i) शान्ता–श्वे०	गज	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला (मुक्तामाला), शूल (या त्रिशूल), अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, अक्षमाला, पाश, अंकुश **(मन्त्राधिराजकल्प)**
	(ii) काली–दि०	वृषभ	चार	घण्टा, त्रिशूल (या शूल), फल, वरदमुद्रा

सं०	यक्षी	वाहन	भुजा सं०	आयुध
८	(i) भृकुटि (या ज्वाला)–श्वे०	वराह (या वराल या मराल या हंस)	चार	खड्ग, मुद्गर, फलक (या मातुलिंग), परशु
	(ii) ज्वालामालिनी-दि०	महिष	आठ	चक्र, धनुष, पाश (या नागपाश), चर्म (या फलक), त्रिशूल (या शूल), बाण, मत्स्य, खड्ग
९	(i) सुतारा (या चाण्डालिका)–श्वे०	वृषभ	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, कलश, अंकुश
	(ii) महाकाली–दि०	कूर्म	चार	वज्र, मुद्गर (या गदा), फल (या अभयमुद्रा), वरदमुद्रा
१०	(i) अशोका (या गोमेधिका)–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश (या नागपाश), फल, अंकुश
	(ii) मानवी–दि०	शूकर (नाग)	चार	फल, वरदमुद्रा, झष, पाश
११	(i) मानवी (या श्रीवत्सा)–श्वे०	सिंह	चार	वरदमुद्रा, मुद्गर (या पाश), कलश (या वज्र या नकुल), अंकुश (या अक्षसूत्र)
	(ii) गौरी–दि०	मृग	चार	मुद्गर (या पाश), अब्ज, कलश (या अंकुश), वरदमुद्रा
१२	(i) चण्डा (या प्रचण्डा या अजिता)–श्वे०	अश्व	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, पुष्प (या पाश), गदा
	(ii) गान्धारी–दि०	पद्म (या मकर)	चार या दो	मुसल, पद्म, वरदमुद्रा, पद्म। पद्म, फल **(अपराजितपृच्छा)**
१३	(i) विदिता–श्वे०	पद्म	चार	बाण, पाश, धनुष, सर्प
	(ii) वैरोट्या (या वैरोटी)–दि०	सर्प (या व्योमयान)	चार या छह	सर्प, सर्प, धनुष, बाण। दो में वरदमुद्रा, शेष में खड्ग, खेटक, कार्मुक, शर (अपराजितपृच्छा)
१४	(i) अंकुशा–श्वे०	पद्म	चार या दो	खड्ग, पाश, खेटक, अंकुश। फलक, अंकुश **(पद्मानन्दमहाकाव्य)**
	(ii) अनन्तमती–दि०	हंस	चार	धनुष, बाण, फल, वरदमुद्रा
१५	(i) कन्दर्पा (या पन्नगा)–श्वे०	मत्स्य	चार	उत्पल, अंकुश, पद्म, अभयमुद्रा
	(ii) मानसी–दि०	व्याघ्र	छह	दो में पद्म और शेष में धनुष, वरदमुद्रा, अंकुश, बाण। त्रिशूल, पाश, चक्र, डमरु, फल, वरदमुद्रा **(अपराजितपृच्छा)**

सं०	यक्षी	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
१६	(i) निर्वाणी–श्वे०	पद्म	चार	पुस्तक, उत्पल, कमण्डलु, पद्म (या वरदमुद्रा)	
	(ii) महामानसी–दि०	मयूर (या गरुड)	चार	फल, सर्प (या इढि या खड्ग ?), चक्र, वरदमुद्रा बाण, धनुष, वज्र, चक्र (अपराजितपृच्छा)	
१७	(i) बला–श्वे०	मयूर	चार	बीजपूरक, शूल (या त्रिशूल), मुषुण्ढि (या पद्म), पद्म	
	(ii) जया–दि०	शूकर	चार या छह	शंख, खड्ग, चक्र, वरदमुद्रा वज्र, चक्र, पाश, अकुश, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	
१८	(i) धारणी (या काली)–श्वे०	पद्म	चार	मातुलिंग, उत्पल, पाश (या पद्म), अक्षसूत्र	
	(ii) तारावती (या विजया)–दि०	हंस (या सिंह)	चार	सर्प, वज्र, मृग (या चक्र), वरदमुद्रा (या फल)	
१९	(i) वैरोट्या–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, अक्षसूत्र, मातुलिंग, शक्ति	
	(ii) अपराजिता–दि०	शरभ	चार	फल, खड्ग, खेटक, वरदमुद्रा	
२०	(i) नरदत्ता–श्वे०	भद्रासन (या सिंह)	चार	वरदमुद्रा, अक्षसूत्र, बीजपूरक, कुम्भ (या शूल या त्रिशूल)	
	(ii) बहुरूपिणी–दि०	कालानाग	चार या दो	खेटक, खड्ग, फल, वरदमुद्रा खड्ग, खेटक (अपराजितपृच्छा)	
२१	(i) गान्धारी (या मालिनी)–श्वे०	हंस	चार या आठ	वरदमुद्रा, खड्ग, बीजपूरक, कुम्भ (या शूल या फलक) अक्षमाला, वज्र, परशु, नकुल, वरदमुद्रा, खड्ग, खेटक, मातुलिंग (देवतामूर्तिप्रकरण)	
	(ii) चामुण्डा (या कुसुममालिनी)–दि०	मकर (या मर्कट)	चार या आठ	दण्ड, खेटक, अक्षमाला, खड्ग शूल, खड्ग, मुद्गर, पाश, वज्र, चक्र, डमरु, अक्षमाला (अपराजितपृच्छा)	
२२	अम्बिका (या कुष्माण्डी या आम्रादेवी)–(क) श्वे०	सिंह	चार	मातुलिंग (या आम्रलुम्बि), पाश, पुत्र, अंकुश	एक पुत्र समीप ही निरूपित होगा

सं०	यक्षी	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
	(ख) दि०	सिंह	दो	आम्रलुम्बि, पुत्र। फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	दूसरा पुत्र आम्र-वृक्ष की छाया में अवस्थित यक्षी के समीप होगा
२३	पद्मावती-(क) श्वे०	कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट)	चार	पद्म, पाश, फल, अंकुश	शीर्षभाग में त्रिसर्पफणछत्र
	(ख) दि०	पद्म (या कुक्कुट-सर्प या कुक्कुट)	चार, छह, चौबीस	(i) अंकुश, अक्षसूत्र (या पाश), पद्म, वरदमुद्रा (ii) पाश, खड्ग, शूल, अर्धचन्द्र, गदा, मुसल (iii) शंख, खड्ग, चक्र, अर्धचन्द्र, पद्म, उत्पल, धनुष, शक्ति, पाश, अंकुश, घण्टा, बाण, मुसल, खेटक, त्रिशूल, परशु, कुन्त, भिण्ड, माला, फल, गदा, पत्र, पल्लव, वरदमुद्रा	शीर्षभाग में तीन सर्पफणो का छत्र
२४	(i) सिद्धायिका–श्वे०	सिंह (या गज)	चार या छह	पुस्तक, अभयमुद्रा, मातुलिंग (या पाश), बाण (या वीणा या पद्म)। पुस्तक, अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, खगायुध, वीणा, फल (मन्त्राधिराजकल्प)	
	(ii) सिद्धायिनी–दि०	भद्रासन (या सिंह)	दो	वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा), पुस्तक	

परिशिष्ट–३

महाविद्या-मूर्तिविज्ञान-तालिका

सं०	महाविद्या	वाहन	भुजा-सं०	आयुध
१	रोहिणी–(क) श्वे०	गाय	चार	शर, चाप, शंख, अक्षमाला
	(ख) दि०	पद्म	चार	शंख (या शूल), पद्म, फल, कलश (या वरदमुद्रा)
२	प्रज्ञप्ति–(क) श्वे०	मयूर	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, मातुलिंग, शक्ति (**निर्वाणकलिका**); त्रिशूल, दण्ड, अभयमुद्रा, फल (**मन्त्राधिराजकल्प**)
	(ख) दि०	अश्व	चार	चक्र, खड्ग, शंख, वरदमुद्रा
३	वज्रशृंखला–(क) श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, दो हाथो मे शृंखला, पद्म (या गदा)
	(ख) दि०	पद्म (या गज)	चार	शृंखला, शंख, पद्म, फल
४	वज्रांकुशा–(क) श्वे०	गज	चार	वरदमुद्रा, वज्र, फल, अंकुश (**निर्वाणकलिका**); खड्ग, वज्र, खेटक, शूल (**आचारदिनकर**); फल, अक्षमाला, अंकुश, त्रिशूल (**मन्त्राधिराजकल्प**)
	(ख) दि०	पुष्पयान (या गज)	चार	अंकुश, पद्म, फल, वज्र
५	अप्रतिचक्रा या			
	चक्रेश्वरी–श्वे०	गरुड	चार	चारो हाथों मे चक्र प्रदर्शित होगा
	जांबूनदा–दि०	मयूर	चार	खड्ग, शूल, पद्म, फल
६	नरदत्ता (या पुरुषदत्ता)–			
	(क) श्वे०	महिष (या पद्म)	चार	वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा), खड्ग, खेटक, फल
	(ख) दि०	चक्रवाक (कलहस)	चार	वज्र, पद्म, शंख, फल
७	काली या कालिका–			
	(क) श्वे०	पद्म	चार	अक्षमाला, गदा, वज्र, अभयमुद्रा (**निर्वाणकलिका**); त्रिशूल, अक्षमाला, वरदमुद्रा, गदा (**मन्त्राधिराजकल्प**)
	(ख) दि०	मृग	चार	मुसल, खड्ग, पद्म, फल
८	महाकाली–(क) श्वे०	मानव	चार	वज्र (या पद्म), फल (या अभयमुद्रा), घण्टा, अक्षमाला
	(ख) दि०	शरभ (अष्टापदपशु)	चार	शर, कार्मुक, असि, फल
९	गौरी–(क) श्वे०	गोधा (या वृषभ)	चार	वरदमुद्रा, मुसल (या दण्ड), अक्षमाला, पद्म
	(ख) दि०	गोधा	हाथो की सं० का अनुल्लेख	भुजाओ मे केवल पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।
१०	गान्धारी–(क) श्वे०	पद्म	चार	वज्र (या त्रिशूल), मुसल (या दण्ड), अभयमुद्रा, वरदमुद्रा
	(ख) दि०	कूर्म	चार	हाथो मे केवल चक्र और खड्ग का उल्लेख है।

सं०	महाविद्या	वाहन	भुजा-सं०	आयुध
११	(i) सर्वास्त्रमहाज्वाला या ज्वाला-श्वे०	शूकर (या कलहंस या बिल्ली)	चार	दो हाथों में ज्वाला; या चारों हाथों मे सर्प
	(ii) ज्वालामालिनी-दि०	महिष	आठ	धनुष, खड्ग, बाण (या चक्र), फलक आदि। देवी ज्वाला से युक्त है।
१२	मानवी-(क) श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश, अक्षमाला, वृक्ष (विटप)
	(ख) दि०	शूकर	चार	मत्स्य, त्रिशूल, खड्ग, एक भुजा की सामग्री का अनुल्लेख है
१३	(i) वैरोट्या-श्वे०	सर्प (या गरुड या सिंह)	चार	सर्प, खड्ग, खेटक, सर्प (या वरदमुद्रा)
	(ii) वैरोटी-दि०	सिंह	चार	करो मे केवल सर्प के प्रदर्शन का उल्लेख है
१४	(i) अच्छुप्ता-श्वे०	अश्व	चार	शर, चाप, खड्ग, खेटक
	(ii) अच्युता-दि०	अश्व	चार	ग्रन्थों मे केवल खड्ग और वज्र धारण करने के उल्लेख है।
१५	मानसी-(क) श्वे०	हंस (या सिंह)	चार	वरदमुद्रा, वज्र, अक्षमाला, वज्र (या त्रिशूल)
	(ख) दि०	सर्प	हाथों की संख्या का अनुल्लेख है	दो हाथो के नमस्कार-मुद्रा मे होने का उल्लेख है।
१६	महामानसी-(क) श्वे०	सिंह (या मकर)	चार	खड्ग, खेटक, जलपात्र, रत्न (या वरद-या-अभय-मुद्रा)
	(ख) दि०	हंस	चार	देवी के हाथ प्रणाम-मुद्रा मे होगे (प्रतिष्ठासारसंग्रह); वरदमुद्रा, अक्षमाला, अंकुश, पुष्प हार (प्रतिष्ठासारोद्धार एव प्रतिष्ठातिलकम्)

●

परिशिष्ट–४

पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या

अभयमुद्रा : संरक्षण या अभयदान की सूचक एक हस्तमुद्रा जिसमे दाहिने हाथ की खुली हथेली दर्शक की ओर प्रदर्शित होती है ।

अष्ट-महाप्रातिहार्य : अशोक वृक्ष, दिव्य-ध्वनि, सुरपुष्पवृष्टि, त्रिछत्र, सिंहासन, चामरधर, प्रभामण्डल एवं देव-दुन्दुभि ।

अष्टमांगलिक चिह्न : स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, दर्पण एवं मत्स्य (या मत्स्य-युग्म) । श्वेतांबर और दिगंबर परम्परा की सूचियों में कुछ भिन्नता दृष्टिगत होती है ।

आयागपट : जिनो (अर्हतो) के पूजन के निमित्त स्थापित वर्गाकार प्रस्तर पट्ट जिसे लेखों में आयागपट या पूजाशिला पट कहा गया है । इन पर जिनो की मानव मूर्तियों और प्रतीको का साथ-साथ अंकन हुआ है ।

उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी : जैन कालचक्र का विभाजन । प्रत्येक युग में २४ जिनों की कल्पना की गई है । उत्सर्पिणी धर्म एवं संस्कृति के विकास का और अवसर्पिणी अवसान या ह्रास का युग है । वर्तमान युग अवसर्पिणी युग है ।

उपसर्ग : पूर्व जन्मो की वैरी एवं दुष्ट आत्माओं तथा देवताओं द्वारा जिनों की तपस्या मे उपस्थित विघ्न ।

कायोत्सर्ग-मुद्रा या खड्गासन : जिनो के निरूपण से सम्बन्धित मुद्रा जिसमे समभग में खड़े जिन की दोनों भुजाएं लंबवत् घुटनो तक प्रसारित होती है । दोनो चरण एक दूसरे से और हाथ शरीर से सटे होने के स्थान पर थोड़ा अलग होते हैं ।

जिन : शाब्दिक अर्थ विजेता, अर्थात् जिसने कर्म और वासना पर विजय प्राप्त कर लिया हो । जिन को ही तीर्थंकर भी कहा गया । जैन देवकुल के प्रमुख आराध्य देव ।

जिन-चौमुखी या प्रतिमा-सर्वतोभद्रिका : वह प्रतिमा जो सभी ओर से शुभ या मंगलकारी है । इसमें एक ही शिलाखण्ड मे चारो ओर चार जिन प्रतिमाएं ध्यानमुद्रा या कायोत्सर्ग मे निरूपित होती है ।

जिन-चौवीसी या चतुर्विशति-जिन-पट्ट : २४ जिनो की मूर्तियो से युक्त पट्ट, या मूलनायक के परिकर मे लांछन-युक्त या लांछन-विहीन अन्य २३ जिनो की लघु मूर्तियों से युक्त जिन-चौवीसी ।

जीवन्तस्वामी महावीर : वस्त्राभूषणों से सज्जित महावीर की तपस्यारत कायोत्सर्ग मूर्ति । महावीर के जीवन-काल में निर्मित होने के कारण जीवन्तस्वामी या जीवितस्वामी संज्ञा । दिगबर परम्परा में इसका अनुल्लेख है । अन्य जिनो के जीवन्तस्वामी स्वरूप की भी कल्पना की गई ।

तीर्थंकर : कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् साधु-साध्वियो एवं श्रावक-श्राविकाओ के सम्मिलित चतुर्विध तीर्थ की स्थापना के कारण जिनों को तीर्थंकर कहा गया ।

त्रितीर्थी-जिन-मूर्ति : इन मूर्तियो मे तीन जिनों को साथ-साथ निरूपित किया गया । प्रत्येक जिन अष्ट-प्रातिहार्यों, यक्ष-यक्षी युगल एवं अन्य सामान्य विशेषताओं से युक्त हैं । कुछ में बाहुबली और सरस्वती भी आमूर्तित हैं । जैन परम्परा में इन मूर्तियों का अनुल्लेख है ।

देवताओं के चतुर्वर्ग : भवनवासी (एक स्थल पर निवास करने वाले), व्यंतर या वाणमन्तर (भ्रमणशील), ज्योतिष्क (आकाशीय-नक्षत्र से सम्बन्धित) एवं वैमानिक या विमानवासी (स्वर्ग के देवता) ।

द्वितीर्थी-जिन-मूर्ति : इन मूर्तियो मे दो जिनों को साथ-साथ निरूपित किया गया। प्रत्येक जिन अष्ट-प्रातिहार्यों, यक्ष-यक्षी युगल और अन्य सामान्य विशेषताओं से युक्त हैं। जैन परम्परा में इन मूर्तियों का अनुल्लेख है।

ध्यानमुद्रा या पर्यंकासन या पद्मासन या सिद्धासन : जिनों के दोनों पैर मोड़कर (पद्मासन) बैठने की मुद्रा जिसमे खुली हुई हथेलियां गोद मे (बायी के ऊपर दाहिनी) रखी होती हैं।

नंदीश्वर द्वीप : जैन लोकविद्या का आठवां और अन्तिम महाद्वीप, जो देवताओं का आनन्द स्थल है। यहां ५२ शाश्वत् जिनालय हैं।

पंचकल्याणक : प्रत्येक जिन के जीवन की पांच प्रमुख घटनाएं-च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य (ज्ञान) और निर्वाण (मोक्ष)।

पंचपरमेष्ठि : अर्हत् (या जिन), सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। प्रथम दो मुक्त आत्माएं है। अर्हत् शरीरधारी है। पर सिद्ध निराकार हैं।

परिकर : जिन-मूर्ति के साथ की अन्य पार्श्ववर्ती या सहायक आकृतियां।

बिंब : प्रतिमा या मूर्ति।

मांगलिक स्वप्न : संख्या १४ या १६। श्वेतांबर सूची-गज, वृषभ, सिंह, श्रीदेवी (या महालक्ष्मी या पद्मा), पुष्पहार, चद्रमा, सूर्य, सिंहध्वज-दण्ड, पूर्णकुम्भ, पद्म सरोवर, क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि और निर्धूम अग्नि। दिगंबर सूची मे सिंहध्वज-दण्ड के स्थान पर नागेन्द्रभवन का उल्लेख है तथा मत्स्य-युगल और सिंहासन को सम्मिलित कर शुभ स्वप्नो की संख्या १६ बताई गई है।

मूलनायक : मुख्य स्थान पर स्थापित प्रधान जिन-मूर्ति।

ललितमुद्रा या ललितासन या अर्धपर्यंकासन : जैन मूर्तियों मे सर्वाधिक प्रयुक्त विश्राम का एक आसन जिसमें एक पैर मोड़कर पीठिका पर रखा होता है और दूसरा पीठिका से नीचे लटकता है।

लांछन : जिनों से सम्बन्धित विशिष्ट लक्षण जिनके आधार पर जिनों की पहचान सम्भव होती है।

वरदमुद्रा : वर प्रदान करने का सूचक हस्त-मुद्रा जिसमें दाहिने हाथ की खुला हथेली बाहर की ओर प्रदर्शित होती है और उंगलियां नीचे की ओर झुकी होती है।

शलाकापुरुष : ऐसी महान आत्माएं जिनका मोक्ष प्राप्त करना निश्चित है। जैन परम्परा में इनकी संख्या ६३ है। २४ जिनों के अतिरिक्त इसमे १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव सम्मिलित हैं।

शासनदेवता या यक्ष-यक्षी : जिन प्रतिमाओं के साथ संयुक्त रूप से अंकित देवो मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण। जैन परम्परा में प्रत्येक जिन के साथ एक यक्ष-यक्षी युगल की कल्पना की गई जो सम्बन्धित जिन के चतुर्विध संघ के शासक एवं रक्षक देव है।

समवसरण : देवनिर्मित सभा जहां केवल-ज्ञान के पश्चात् प्रत्येक जिन अपना प्रथम उपदेश देते है और देवता, मनुष्य एवं पशु जगत के सदस्य आपसी कटुता भूलकर उसका श्रवण करते है। तीन प्राचीरों तथा प्रत्येक प्राचीर में चार प्रवेश-द्वारों वाले इस भवन मे सबसे ऊपर पूर्वाभिमुख जिन की ध्यानस्थ मूर्ति बनी होती है।

सहस्त्रकूट जिनालय : पिरामिड के आकार की एक मन्दिर अनुकृति जिस पर एक सहस्त्र या अनेक लघु जिन आकृतियां बनी होती हैं।

●

सन्दर्भ-सूची

(क) मूल ग्रंथ-सूची

अंगविज्जा, सं० मुनिपुण्यविजय, प्राकृत ग्रन्थ परिषद् १, बनारस, १९५७

अंतगडदसाओ, सं० पी० एल० वैद्य, पूना, १९३२; अनु० एल० डी० बर्नेट, वाराणसी, १९७३ (पु० मु०)

अपराजितपृच्छा (भुवनदेव कृत), सं० पोपटभाई अंबाशंकर मांकड, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, खण्ड ११५, बडोदा, १९५०

अभिधान-चिन्तामणि (हेमचंद्रकृत), सं० हरगोविन्द दास बेचरदास तथा मुनि जिनविजय, भावनगर, भाग १, १९१४; भाग २, १९१९

आचारदिनकर (वर्धमानसूरिकृत), बंबई, भाग २, १९२३

आचारांगसूत्र, अनु० एच० जैकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, खण्ड २२, भाग १, (आक्सफोर्ड, १८८४), दिल्ली, १९७३ (पु० मु०)

आदिपुराण (जिनसेनकृत), सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्ति देवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रन्थ संख्या ८, वाराणसी, १९६३

आवश्यकचूर्णि (जिनदासगणि महत्तर कृत), रतलाम, खण्ड १, १९२८; खण्ड २, १९२९

आवश्यकसूत्र (भद्रबाहुकृत), मलयगिरि सूरि की टीका सहित, भाग १, आगमोदय समिति ग्रन्थ ५६, बंबई, १९२८; भाग २, आगमोदय समिति ग्रन्थ ६०, सूरत, १९३२, भाग ३, देवचंदलाल भाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थ ८५, सूरत, १९३६

उत्तराध्ययनसूत्र, अनु० एच जैकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, खण्ड ४५, भाग २, (आक्सफोर्ड, १८९५), दिल्ली, १९७३ (पु० मु०), सं० रतनलाल दोशी, सैलन (म० प्र०)

उवासगदसाओ, सं० पी० एल० वैद्य, पूना, १९३०

कल्पसूत्र (भद्रबाहुकृत), अनु० एच० जैकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, खण्ड २२, भाग १ (आक्सफोर्ड, १८८४), दिल्ली, १९७३ (पु० मु०); सं० देवेन्द्र मुनि शास्त्री, शिवान, १९६८

कुमारपालचरित (जयसिंहसूरि कृत), निर्णय सागर प्रेस, बंबई, १९२६

चतुर्विंशतिका (बप्पभट्टिसूरि कृत), अनु० एच० आर० कापडिया, बंबई, १९२६

चन्द्रप्रभचरित्र (वीरनन्दि कृत), सं० अमृतलाल शास्त्री, शोलापुर, १९७१

जैन स्तोत्र सन्दोह, सं० अमरविजय मुनि, खण्ड १, अहमदाबाद, १९३२

तत्त्वार्थसूत्र (उमास्वाति कृत), सं० सुखलाल संघवी, बनारस, १९५२

तिलकमंजरी-कथा (धनपाल कृत), सं० भवदत्त शास्त्री तथा काशीनाथ पाण्डुरंग परब, काव्यमाला ८५, बंबई, १९०३

तिलोयपण्णत्ति (यतिवृषभ कृत), सं० आदिनाथ उपाध्ये तथा हीरालाल जैन, जीवराज जैन ग्रन्थमाला १, शोलापुर, १९४३

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्रकृत), अनु० हेलेन एम० जानसन, गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, खण्ड १ (१९३१), खण्ड २ (१९३७), खण्ड ३ (१९४९), खण्ड ४ (१९५४), खण्ड ५ (१९६२), खण्ड ६ (१९६२)

दसवेयालिय सुत्त, सं० इ० ल्यूमन, अहमदाबाद, १९३२

देवतामूर्तिप्रकरण, सं० उपेन्द्र मोहन सांख्यतीर्थ, संस्कृत सिरीज १२, कलकत्ता, १९३६

नायाधम्मकहाओ, सं० एन० वी० वैद्य, पूना, १९४०

निर्वाणकलिका (पादलिप्तसूरि कृत), सं० मोहनलाल भगवानदास, मुनि श्रीमोहनलालजी जैन ग्रन्थमाला ५, बंबई, १९२६

नेमिनाथ चरित (गुणविजयसूरि कृत), निर्णयसागर प्रेस, बंबई

पउमचरियम (विमलसूरि कृत), भाग १, सं० एच० जैकोबी, अनु० शांतिलाल एम० वोरा, प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी सिरीज ६, वाराणसी, १९६२

पद्मपुराण (रविषेण कृत), भाग १, सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रथांक २०, वाराणसी, १९५८

पद्मानन्दमहाकाव्य या चतुर्विंशति जिन चरित्र (अमरचन्द्रसूरि कृत), पाण्डुलिपि, लाल भाई दलपत भाई भारतीय संस्कृत विद्या मंदिर, अहमदाबाद

पार्श्वनाथ चरित्र (भवदेवसूरि कृत), सं० हरगोविन्द दास तथा बेचर दास, वाराणसी, १९११

पासनाह चरिउ (पद्मकीर्ति कृत), सं० प्रफुल्लकुमार मोदी, प्राकृत ग्रन्थ सोसाइटी, संख्या ८, वाराणसी, १९६५

प्रतिष्ठातिलकम् (नेमिचंद्र कृत), शोलापुर

प्रतिष्ठापर्वन, अनु० जे० हार्टेल, लीपिज, १९०८

प्रतिष्ठापाठ सटीक (जयसेन कृत), अनु० हीराचन्द नेमिचन्द दोशी, शोलापुर, १९२५

प्रतिष्ठासारसंग्रह (वसुनन्दि कृत), पाण्डुलिपि, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृत विद्या मन्दिर, अहमदाबाद

प्रतिष्ठासारोद्धार (आशाधर कृत), सं० मनोहरलाल शास्त्री, बंबई, १९१७ (वि० सं० १९७४)

प्रबन्धचिन्तामणि (मेरुतुंग कृत), भाग १, सं० जिनविजय मुनि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला १, शान्तिनिकेतन (बंगाल), १९३३

प्रभावक चरित (प्रभाचंद्र कृत), सं० जिनविजय मुनि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला १३, कलकत्ता, १९४०

प्रवचनसारोद्धार (नेमिचंद्रसूरि कृत), सिद्धसेनसूरि की टीका सहित, अनु० हीरालाल हंसराज, देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संख्या ५८, बंबई, १९२८

बृहत्संहिता (वराहमिहिर कृत), सं० ए० झा, वाराणसी, १९५९

भगवतीसूत्र (गणधर सुधर्मस्वामी कृत), सं० घेवरचंद भाटिया, शैलान, १९६६

मंत्राधिराजकल्प (सागरचन्दसूरि कृत), पाण्डुलिपि, लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृत विद्या मन्दिर, अहमदाबाद

मल्लिनाथ चरित्र (विनयचंद्रसूरि कृत), सं० हरगोविन्ददास तथा बेचरदास, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला २९, वाराणसी

महापुराण (पुष्पदंत कृत), सं० पी० एल० वैद्य, मानिकचंद दिगंबर जैन ग्रन्थमाला ४२, [illegible]ई, १९४१

महावीर चरितम (गुणचंद्रसूरि कृत), देवचद लालभाई जैन सिरीज ७५, बंबई, १९२९

मानसार, खं० ३, अनु० प्रसन्न कुमार आचार्य, इलाहाबाद

रूपमण्डन (सूत्रधार मण्डन कृत), सं० बलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, वि० सं० २०२१

वसुदेवहिण्डी (संघदास कृत), खण्ड १, सं० मुनि श्रीपुण्यविजय, आत्मानन्द जैन ग्रंथमाला ८०, भावनगर, १९३०

वास्तुविद्या (विश्वकर्मा कृत), **दीपार्णव** (सं० प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा, पालिताणा, १९६०) का २२ वां अध्याय

वास्तुसार प्रकरण (ठक्कुर फेरू कृत), अनु० भगवानदास जैन, जैन विविध ग्रन्थमाला, जयपुर, १९३६

विविधतीर्थकल्प (जिनप्रभसूरि कृत), सं० मुनि श्री जिनविजय, सिंघी जैन ग्रंथमाला १०, कलकत्ता-बंबई, १९३४

शान्तिनाथ महाकाव्य (मुनिभद्रसूरि कृत), सं० हरगोविन्ददास तथा बेचरदास, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला २०, बनारस, १९४६

समराइच्चकहा (हरिभद्रसूरि कृत), सं० एच० जैकोबी, कलकत्ता, १९२६

समवायांगसूत्र, अनु० घासीलाल जी, राजकोट, १९६२; सं० कन्हैयालाल, दिल्ली, १९६६

स्तुति चतुर्विंशतिका या शोभन स्तुति (शोभनसूरि कृत), सं० एच० आर० कापडिया, बंबई, १९२७

स्थानांगसूत्र, सं० घासीलाल जी, राजकोट, १९६४

हरिवंशपुराण (जिनसेन कृत), सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रंथांक २७, वाराणसी, १९६२

(ख) आधुनिक ग्रंथ-एवं-लेख-सूची

अग्रवाल, आर० सी०,

(१) 'जोधपुर संग्रहालय की कुछ अज्ञात जैन धातु मूर्तियां', **जैन एण्टि०**, ख० २२, अं० १, जून १९५५, पृ० ८–१०

(२) 'सम इन्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका फ्राम मारवाड़', **इं०हि०क्वा०**, खं० ३२, अं० ४, दिसंबर १९५६, पृ० ४३४–३८

(३) 'सम इन्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव यक्षज एण्ड कुबेर फ्राम राजस्थान', इं०हि०**क्वा०**, ख० ३३, अं० ३, सितंबर १९५७, पृ० २००–०७

(४) 'एन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी फ्राम राजस्थान', अ०ला०बु०, ख० २२, भाग १–२, मई १९५८, पृ० ३२–३४

(५) 'गाडेस अम्बिका इन दि स्कल्पचर्स ऑव राजस्थान', **क्वा०ज०मि०सो०**, ख ४९, अं० २, जुलाई १९५८, पृ० ८७–९१

(६) 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', **ज०ओ०इं०**, ख० १८, अं० ३, मार्च १९६९, पृ० २५२-५३

अग्रवाल, पी० के०,

'दि ट्रिपल यक्ष स्टैचू फ्राम राजघाट', **छवि**, वाराणसी, १९७१, पृ० ३४०–४२

अग्रवाल, वी० एस०,

(१) 'दि प्रेसाइडिंग डीटी ऑव चाइल्ड बर्थ अमंग्स्ट दि एन्शण्ट जैनज', **जैन एण्टि०**, खं० २, अं० ४, मार्च १९३७, पृ० ७५–७९

(२) 'सम ब्राह्मीनिकल डीटीज इन जैन रेलिजस आर्ट', **जैन एण्टि०**, खं० ३, अं० ४, मार्च १९३८, पृ०८३-९२

(३) 'सम आइकानोग्राफिक टर्म्स फ्राम जैन इन्स्क्रिप्शन्स', **जैन एण्टि**, खं० ५, १९३९–४०, पृ० ४३–४७

(४) 'ए फ्रैग्मेण्टरी स्कल्पचर ऑव नेमिनाथ इन दि लखनऊ म्यूजियम', **जैन एण्टि०**, खं० ८, अं० २, दिसंबर १९४२, पृ० ४५-४९

(५) 'मथुरा आयागपट्टज', **ज०यू०पी०हि०सो०**, खं० १६, भाग १, १९४३, पृ० ५८–६१
(६) 'दि नेटिविटी सीन आन ए जैन रिलीफ फ्राम मथुरा', **जैन एण्टि०**, खं० १०, १९४४–४५, पृ० १–४
(७) 'ए नोट आन दि गाड नैगमेष', **ज०यू०पी०हि०सो०**, खं० २०, भाग १–२, १९४७, पृ० ६८–७३
(८) 'केटलाग ऑव दि मथुरा म्यूजियम', **ज०यू०पी०हि०सो०**, खं० २३, भाग १-२, १९५०, पृ० ३५-१४७
(९) **इण्डियन आर्ट**, भाग १, वाराणसी, १९६५

अन्निगेरी, ए० एम०,

ए गाइड टू दि कन्नड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूजियम, धारवाड़, १९५८

अमर, गोपीलाल,

'पतियानदाइ का गुप्तकालीन जैन मन्दिर', **अनेकान्त**, खं० १९, अं० ६, फरवरी १९६७, पृ० ३४०–४६

अय्यंगर, कृष्णस्वामी,

'दि बप्पभट्टिचरित ऐण्ड दि अर्ली हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर एम्पायर', **ज०बां०ब्रां०रा०ए०सो०**, न्यू सिरीज, खं० ३, अं० १–२, १९२७, पृ० १०१–३३

आळ्या, जी० एल०,

अर्ली इण्डियन ईकनॉमिक्स (सरका २०० बी० सी०–३०० ए० डी०), बंबई, १९६६

आल्तेकर, ए० एस०,

'ईकनॉमिक कण्डीशन', **दि वाकाटक गुप्त एज** (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० एस० आल्तेकर), दिल्ली, १९६७, पृ० ३५५–६२

उन्नियन, एन० जी०,

'रेलिक्स ऑव जैनिजम–आलतूर', **ज०इं०हि०**, खं० ४४, भाग १, खं० १३०, अप्रैल १९६६, पृ० ५३७-४३

उपाध्याय, एस० सी०,

'ए नोट आन सम मेडिवल इन्स्क्राइब्ड जैन मेटल इमेजेज इन दि आर्किअलाजिकल सेक्सन, प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम, बाम्बे', **ज०गु०रि०सो०**, खं० १, अं० ४, पृ० १५८–६१

उपाध्याय, वासुदेव,

(१) **दि सोशियो-रेलिजस कण्डीशन ऑव नार्थ इण्डिया** (७००–१२०० ए० डी०), वाराणसी, १९६४
(२) 'मिश्रित जैन प्रतिमाएं', **जैन एण्टि०**, खं० २५, अं० १, जुलाई १९६७, पृ० ४०–४६

एण्डरसन, जे०,

केटलाग ऐण्ड हैण्डबुक टू दि आर्किअलाजिकल कलेक्शन इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, भाग १, कलकत्ता, १८८३

कनिंघम, ए०,

आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया रिपोर्ट, वर्ष १८६२–६५, खं० १–२, वाराणसी, १९७२ (पु० मु०); वर्ष १८७१–७२, खं० ३, वाराणसी, १९६६ (पु० मु०)

कापडिया, एच० आर०,

हिस्ट्री ऑव दि केनानिकल लिट्रेचर ऑव दि जैनज, बंबई, १९४१

कीलहार्न, एफ०,

'आन ए जैन स्टैचू इन दि हार्निमन म्यूजियम', **ज०रा०ए०सो०**, १८९८, पृ० १०१–०२

कुमारस्वामी, ए० के०,

(१) 'नोट्स आन जैन आर्ट', **जर्नल इण्डियन आर्ट ऐण्ड इण्डस्ट्री**, खं० १६, अं० १२०, लन्दन, १९१४, पृ० ८१–९७

(२) **केटलाग ऑव दि इण्डियन कलेक्शन्स इन दि म्यूजियम ऑव फाइन आर्टस, बोस्टन-जैन पेंटिंग**, भाग ४, बोस्टन, १९२४

(३) **यक्षज**, (वाशिंगटन, १९२८), दिल्ली, १९७१ (पु० मु०)

(४) **इण्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट**, दिल्ली, १९६९ (पु० मु०)

कुरेशी, मुहम्मद हमीद,

(१) **लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा**, आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, न्यू इम्पिरियल सिरीज, खं० ५१, कलकत्ता, १९३१

(२) **राजगिर**, भारतीय पुरातत्व विभाग, दिल्ली, १९६०

कृष्ण देव,

(१) 'दि टेम्पल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया', **एंशि०इ०**, अं० १५, १९५९, पृ० ४३–६५

(२) 'मालादेवी टेम्पल् एट ग्यारसपुर', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बम्बई, १९६८, पृ० २६०–६९

(३) **टेम्पल्स आव नार्थ इण्डिया**, नई दिल्ली, १९६९

क्लाट, जोहान्स,

'नोट्स आन ऐन इन्स्क्राइब्ड स्टैचू ऑव पार्श्वनाथ', **इण्डि० एण्टि०**, ख० २३, जुलाई १८९४, पृ० १८३

गर्ग, आर० एस०,

'मालवा के जैन प्राच्यावशेष', **जै०सि०भा०**, ख० २४, अं० १, दिसम्बर १९६४, पृ० ५३–६३

गांगुली, एम०,

हैण्डबुक टू दि स्कल्पचर्स इन दि म्यूजियम ऑव दि बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता, १९२२

गांगुली, कल्याण कुमार,

(१) 'जैन इमेजेज इन बंगाल', **इण्डि० क०**, ख० ६, जुलाई १९३९-अप्रैल १९४०, पृ० १३७–४०

(२) 'सम सिम्बालिक रिप्रेजेन्टशन्स इन अर्ली जैन आर्ट', **जैन जर्नल**, खं० १, अं० १, जुलाई १९६६, पृ० ३१–३६

गाड़े, ए० एस०,

'सेवेन ब्रोन्जेज इन दि बड़ोदा स्टेट म्यूजियम', **बु०ब०म्यू०**, खं० १, भाग २, १९४४, पृ० ४७–५२

गुप्त, एस० पी० तथा शर्मा, बी० एन०,

'गंधावल और जैन मूर्तियां', **अनेकान्त**, खं० १९, अं० १–२, अप्रैल-जून १९६६, पृ० १२९–३०

गुप्त, पी० एल०,

दि पटना म्यूजियम केटलाग ऑव दि एन्टिक्विटीज, पटना, १९६५

गुप्ते, आर० एस० तथा महाजन, बी० डी०,

अजन्ता, एलोरा ऐण्ड औरंगाबाद केव्स, बंबई, १९६२

गोपाल, एल०,

दि ईकनॉमिक लाईफ ऑव नार्दर्न इण्डिया (सरका ए० डी० ७००–१२००), वाराणसी, १९६५,

घटगे, ए० एम०,

(१) 'पार्श्वंज हिस्टारिसिटी रीकन्सिडर्ड', **प्रो०ट्रां०ओ०कां०,** १३ वां अधिवेशन, नागपुर यूनिवर्सिटी, अक्तूबर १९४६, नागपुर, १९५१, पृ० ३२५–२७

(२) 'जैनिजम', **दि एज ऑव इम्पिरियल यूनिटी** (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९६० (पु० मु०), पृ० ४११–२५

(३) 'जैनिजम', **दि क्लासिकल एज** (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९६२ (पु० मु०), पृ० ४०८–१८

घोष, अमलानंद (संपादक),

जैन कला एवं स्थापत्य (३ खण्ड), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, १९७५

घोषाल, यू० एन०,

(१) 'ईकनॉमिक लाईफ', **दि एज ऑव इम्पिरियल कन्नौज** (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९५५, पृ० ३९९–४०८

(२) 'ईकनॉमिक लाईफ', **दि स्ट्रगल फार एम्पायर** (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९५७, पृ० ५१७–२१

चक्रवर्ती, एम० एन,

'नाट आन ऐन इन्स्क्राइब्ड ब्रोन्ज जैन इमेज इन दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम', **बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०,** अं० ३, १९५२–५३ (१९५४), पृ० ४०–४२

चंदा, आर० पी०,

(१) 'इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता', **आ०स०इं०ऐ०रि०,** १९२५–२६, पृ० १५१–५४

(२) 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', **आ०स०इं०ऐ०रि०,** १९२५–२६, पृ० १२१–२७

(३) 'दि श्वेतांबर ऐण्ड दिगंबर इमेजेज ऑव दि जैनज', **आ०स०इं०ऐ०रि०,** १९२५–२६, पृ० १७६–८२

(४) 'सिन्ध फाइव थाऊजण्ड इयर्स एगो', **माडर्न रिव्यू,** खं० ५२, अं० २, अगस्त १९३२, पृ० १५१–६०

(५) **मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम,** लन्दन, १९३६

चंद्र, जगदीश,

'जैन आगम साहित्य में यक्ष', **जैन एण्टि०,** खं० ७, अं० २, दिसम्बर १९४१, पृ० ९७–१०४

चंद्र, प्रमोद,

स्टोन स्कल्पचर इन दि एलाहाबाद म्यूजियम, बंबई, १९७०

चंद्र, मोती,

सार्थवाह, पटना, १९५३

चौधरी, रबीन्द्रनाथ,

(१) 'आर्किअलाजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑव बांकुड़ा डिस्ट्रिक्ट', **माडर्न रिव्यू**, खं० ८६, अं० १, जुलाई १९४९, पृ० २११–१२

(२) 'धरपत टेम्पल्', **माडर्न रिव्यू**, खं० ८८, अं० ४, अक्तूबर १९५०, पृ० २९६–९८

चौधरी, गुलाबचंद्र,

पालिटिकल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज (मरका ६५० ए० डी० टू १३०० ए० डी०), अमृतसर, १९६३

जयन्तविजय, मुनिश्री,

होली आबू (अनु० यू० पी० शाह), भावनगर, १९५४

जानसन, एच० एम०,

'श्वेतांबर जैन आइकानोग्राफी', **इण्डि०एण्टि**, खं० ५६, १९२७, पृ० २३–२६

जायसवाल, के० पी०,

(१) 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', **ज०बि०उ०रि०सो०**, खं० २३, भाग १, १९३७, पृ० १३०–३२

(२) 'ओल्डेस्ट जैन इमेजेज डिस्कवर्ड', **जैन एण्टि०**, खं० ३, अं० १, जून १९३७, पृ० १७–१८

जैनास, ई० तथा ऑबोयर, जे०,

खजुराहो, हेग, १९६०

जैन, कामताप्रसाद,

(१) 'जैन मूर्तिया', **जैन एण्टि०**, खं० २, अं० १, १९३५, पृ० ६–१७

(२) 'दि एण्टिक्विटी ऑव जैनिजम इन साऊथ इण्डिया', **इण्डि०क०**, खं० ४, अप्रैल १९३८, पृ० ५१२-१६

(३) 'मोहनजोदड़ो एन्टिक्विटीज एण्ड जैनिजम', **जैन एण्टि०**, खं० १४, अं० १, जुलाई १९४८, पृ० १-७

(४) 'शासनदेवी अम्बिका और उनकी मान्यता का रहस्य', **जैन एण्टि**, खं० २०, अं० १, जून १९५४, पृ० २८–४१

(५) 'दि स्टैचू ऑव पद्मप्रभ एट ऊर्दमऊ', **वा०ऑहि०**, खं० १३, अं० ९, सितम्बर १९६३, पृ० १९१–९२

जैन, के० सी०,

जैनिजम इन राजस्थान, शोलापुर, १९६३

जैन, छोटेलाल,

जैन बिबलिआग्रफी, कलकत्ता, १९४५

जैन, जे० सी०,

लाईफ इन ऐन्शण्ट इण्डिया : ऐज डेपिक्टेड इन दि जैन केनन्स, बम्बई, १९४७

जैन, ज्योतिप्रसाद,

(१) 'जैन एन्टिक्विटीज इन दि हैदराबाद स्टेट', **जैन एण्टि०**, खं० १९, अं० २, दिसम्बर १९५३, पृ० १२-१७

(२) 'देवगढ़ और उसका कला वैभव', **जैन एण्टि**, खं० २१, अं० १, जून १९५५, पृ० ११–२२

(३) 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्स्टीन्थ तीर्थंकर', **बा०ऑहि०**, खं०९, अं०९, सितम्बर १९५९, पृ०२७८-७९
(४) **दि जैन सोर्सेज ऑव दि हिस्ट्री ऑव ऐन्शण्ट इण्डिया** (१०० बी० सी०-ए० डी० ९००), दिल्ली, १९६४
(५) 'जेनिसिस ऑव जैन लिट्रेचर ऐण्ड दि सरस्वती मूवमेण्ट', **सं०पु०प०**, अं० ९, जून १९७२, पृ० ३०-३३

जैन, नीरज,

(१) 'नवागढ़ : एक महत्वपूर्ण मध्ययुगीन जैन तीर्थ', **अनेकान्त**, वर्ष १५, अं० ६, फरवरी १९६३, पृ० २७७–७८
(२) 'पतियानदाई मन्दिर की मूर्ति और चौबीस जिन शासनदेवियां', **अनेकान्त**, वर्ष १६, अं० ३, अगस्त १९६३, पृ० ९९–१०३
(३) 'ग्वालियर के पुरातत्व संग्रहालय की जैन मूर्तिया', **अनेकान्त**, वर्ष १५, अं० ५, दिसम्बर १९६३, पृ० २१४–१६
(४) 'तुलसी सग्रहालय, रामवन का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त**, वर्ष १६, अं० ६, फरवरी १९६४, पृ० २७९–८०
(५) 'बजरंगगढ़ का विशद जिनालय', **अनेकान्त**, वर्ष १८, अं० २, जून १९६५, पृ० ६५–६६
(६) 'अतिशय क्षेत्र अहार', **अनेकान्त**, वर्ष १८, अं० ४, अक्तूबर १९६५, पृ० १७७–७९
(७) 'अहार का शान्तिनाथ संग्रहालय', **अनेकान्त**, वर्ष १८, अं० ५, दिसम्बर १९६५, पृ० २२१–२२

जैन, बनारसीदास,

'जैनिजम इन दि पंजाब', **सरूप भारती : डॉ० लक्ष्मण सरूप स्मृति अंक** (सं जगन्नाथ अग्रवाल तथा भीमदेव शास्त्री), विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल सिरीज ६, होशियारपुर, १९५४, पृ० २३८–४७

जैन, बालचंद्र,

(१) 'महाकौशल का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त**, वर्ष १७, अं० ३, अगस्त १९६४, पृ० १३१–३३
(२) 'जैन प्रतिमालक्षण', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० ३, अगस्त १९६६, पृ० २०४–१३
(३) 'धुबेला संग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० ४, अक्तूबर १९६६, पृ० २४४–४५
(४) 'जैन ब्रोन्जेज फ्राम राजनपुर खिनखिनी', **ज०इं०म्यू०**, खं० ११, १९५५, पृ० १५–२०
(५) **जैन प्रतिमाविज्ञान**, जबलपुर, १९७४

जैन, भागचन्द्र,

देवगढ़ की जैन कला, नयी दिल्ली, १९७४

जैन, शशिकान्त,

'सम कामन एलिमेण्ट्स इन दि जैन ऐण्ड हिन्दू पैन्थिआन्स-I-यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', **जैन एण्टि०**, खं० १८, अं० २, दिसम्बर १९५२, पृ० ३२–३५; खं० १९, अं० १, जून १९५३, पृ० २१–२३

जैन, हीरालाल,

(१) **जै०शि०सं०** (सं०), भाग १, माणिकचन्द्र दिगंबर जैन ग्रन्थमाला २८, बम्बई, १९२८
(२) 'जैनिजम', **दि स्ट्रगल फार एम्पायर** (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बम्बई, १९६० (पु० मु०), पृ० ४२७–३५
(३) **भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान**, भोपाल, १९६२

जैनी, जे० एल०,

'सम नोट्स ऑन दि दिगंबर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि०एण्टि०, खं०३२, दिसम्बर १९०४, पृ० ३३०-३२

जोशी, अर्जुन,

(१) 'ए यूनीक इमेज ऑव ऋषभ फ्राम पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, खं०१०, अं०३, १९६१, पृ०७४-७६

(२) 'फर्दर लाइट ऑन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, खं०१०, अं०४, १९६२, पृ०३०-३२

जोशी, एन० पी०,

(१) 'यूस ऑव आस्पिशस सिम्बल्स इन दि कुषाण आर्ट ऐट मथुरा', डॉ० मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम (सं० जी० टी० देशपाण्डे आदि), नागपुर, १९६५, पृ० ३११-१७

(२) मथुरा स्कल्पचर्स, मथुरा, १९६६

जोहरापुरकर, विद्याधर (स०),

जै०शि०सं०, माणिकचंद्र दिगंबर जैन ग्रन्थमाला, भाग ४, वाराणसी, १९६४, भाग ५, दिल्ली, १९७१

झा, शक्तिधर,

'हिन्दू डीटीज इन दि जैन पुराणज', डा० सातकारी मुकर्जी फेलिसिटेशन वाल्यूम (सं० बी० पी० सिन्हा आदि) चौखम्बा संस्कृत स्टडीज खण्ड ६९, वाराणसी, १९६९, पृ० ४५८-६५

टाड, जेम्स,

एनाल्स ऐण्ड एन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान, खं० २, लन्दन, १९५७

ठाकुर, उपेन्द्र,

'ए हिस्टारिकल सर्वे ऑव जैनिजम इन नार्थ बिहार', ज०बि०रि०सो०, खं० ४५, भाग १-४, जनवरी-दिसम्बर १९५९, पृ० १८८-२०३

ठाकुर, एस० आर०,

केटलाग ऑव स्कल्पचर्स इन दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम, ग्वालियर, लश्कर

डगलस, वी०,

'ए जैन ब्रोन्ज फ्राम दि डंकन', ओ०आर्ट, ख० ५, अं० १ (न्यू सिरीज), १९५९, पृ० १६२-६५

डे, सुधीन,

(१) 'टु यूनीक इन्स्क्राइब्ड जैन स्कल्पचर्स', जैन जर्नल, खं० ५, अ० १, जुलाई १९७०, पृ० २४-२६

(२) 'चौमुख—ए सिम्बालिक जैन आर्ट', जैन जर्नल, ख० ६, अं० १, जुलाई १९७१, पृ० २७-३०

ढाकी, एम० ए०,

(१) 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० २९०-३४७

(२) 'विमलवसही की डेट की समस्या' (गुजराती), स्वाध्याय, खं० ९, अं० ३, पृ० ३४९-६४

तिवारी, एम० एन० पी०,

(१) 'भारत कला भवन का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष २४, अं० २, जून १९७१, पृ० ५१-५२, ५८

(२) 'ए नोट आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ए तीर्थंकर इमेज ऐट भारत कला भवन, वाराणसी', जैन जर्नल, खं० ६, अं० १, जुलाई १९७१, पृ० ४१-४३

(३) 'खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर की रथिकाओं में जैन देवियां', **अनेकान्त,** वर्ष २४, अं० ४, अक्तूबर १९७१, पृ० १८३–८४
(४) 'खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर के प्रवेश-द्वार की मूर्तियां', **अनेकान्त,** वर्ष २४, अं० ५, दिसंबर १९७१, पृ० २१८–२१
(५) 'खजुराहो के जैन मन्दिरों के डोर-लिंटल्स पर उत्कीर्ण जैन देवियां', **अनेकान्त,** वर्ष २४, अ० ६, फरवरी १९७२, पृ० २५१–५४
(६) 'उत्तर भारत में जैन यक्षी चक्रेश्वरी की मूर्तिगत अवतारणा', **अनेकान्त,** वर्ष २५, अं० १, मार्च-अप्रैल १९७२, पृ० ३५–४०
(७) 'कुम्भारिया के सम्भवनाथ मन्दिर की जैन देवियां', **अनेकान्त,** वर्ष २५, अं० ३, जुलाई-अगस्त १९७२, पृ० १०१–०३
(८) 'चन्द्रावती का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त,** वर्ष २५, अं० ४, सितंबर-अक्तूबर १९७२, पृ० १४५–४७
(९) 'रिप्रेजेन्टेशन ऑव सरस्वती इन जैन स्कल्पचर्स ऑव खजुराहो', **ज०गु०रि०सो०,** खं० ३४, अं० ४, अक्तूबर १९७२, पृ० ३०७–१२
(१०) 'ए ब्रीफ सर्वे ऑव दि आइकानोग्राफिक डेटा ऐट कुम्भारिया, नार्थ गुजरात', **संबोधि,** खं० २, अं० १, अप्रैल १९७३, पृ० ७–१४
(११) 'ए नोट आन ऐन इमेज ऑव राम ऐण्ड सीता आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल, खजुराहो, **जैन जर्नल,** खं० ८, अं० १, जुलाई १९७३, पृ० ३०–३२
(१२) 'ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज़ फ्राम नार्थ इण्डिया,' **ईस्ट वे०,** खं० २३, अ० ३–४, सितम्बर-दिसम्बर १९७३, पृ० ३४७–५३
(१३) 'ऐन अन्पब्लिश्ड इमेज ऑव नेमिनाथ फ्राम देवगढ़', **जैन जर्नल,** खं० ८, अं० २, अक्तूबर १९७३, पृ० ८४–८५
(१४) 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि इमेजेज़ ऑव सम्भवनाथ ऐट खजुराहो', **ज०गु०रि०सो०,** खं० ३५, अं० ४, अक्तूबर १९७३, पृ० ३–९
(१५) 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज ऐज रिप्रेजेण्टेड इन दि सीलिंग ऑव दि शान्तिनाथ टेम्पल, कुम्भारिया', **संबोधि,** खं० २, अं० ३, अक्तूबर १९७३, पृ० १५–२२
(१६) 'ओसिया से प्राप्त जीवन्तस्वामी की अप्रकाशित मूर्तियां', **विश्वभारती,** खं० १४, अं० ३, अक्तूबर-दिसम्बर १९७३, पृ० २१५–१८
(१७) 'उत्तर भारत में जैन यक्षी पद्मावती का प्रतिमानिरूपण', **अनेकान्त,** वर्ष २७, अंक २, अगस्त १९७४, पृ० ३४–४१
(१८) 'ए यूनीक इमेज ऑव ऋषभनाथ ऐट आर्किअलाजिकल म्यूज़ियम, खजुराहो', **ज०ओ०इं०,** खं० २४, अं० १–२, सितम्बर-दिसम्बर १९७४, पृ० २४७–४९
(१९) 'इमेजेज़ ऑव अम्बिका आन दि जैन टेम्पल्स ऐट खजुराहो', **ज०ओ०इं०,** खं० २४, अं० १–२, सितम्बर-दिसम्बर १९७४, पृ० २४३–४६
(२०) 'ए नोट आन ऐन इमेज ऑव ऋषभनाथ इन दि स्टेट म्यूज़ियम, लखनऊ', **ज०गु०रि०सो०,** खं० ३६, अं० ४, अक्तूबर १९७४, पृ० १७–२०
(२१) 'उत्तर भारत में जैन यक्षी अम्बिका का प्रतिमानिरूपण', **संबोधि,** खं० ३, अ० २–३, दिसम्बर १९७४, पृ० २७–४४

(२२) 'ए यूनीक त्रि-तीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ', **ललित कला,** अं० १७, १९७४, पृ० ४१–४२

(२३) 'सम अन्पब्लिश्ड जैन स्कल्पचर्स ऑव गणेश फ्राम वेस्टर्न इण्डिया', **जैन जर्नल,** खं० ९, अं० ३, जनवरी १९७५, पृ० ९०–९२

(२४) 'ऐन अन्पब्लिश्ड जिन इमेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', **वि०इं०ज०,** खं० १३, अं० १–२, मार्च-सितम्बर १९७५, पृ० ३७३–७५

(२५) 'दि जिन इमेजेज़ ऑव खजुराहो विद् स्पेशल रेफरेन्स टू अजितनाथ', **जैन जर्नल,** खं० १०, अं० १, जुलाई १९७५, पृ० २२–२५

(२६) 'जैन यक्ष गोमुख का प्रतिमानिरूपण', **श्रमण,** वर्ष २७, अं० ९, जुलाई १९७६, पृ० २९–३६

(२७) 'दि आइकानोग्राफी ऑव यक्षी सिद्धायिका', **ज०ए०सो०,** खं० १५, अं० १–४, १९७३ (मई १९७७), पृ० ९७–१०३

(२८) 'जिन इमेजेज इन दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम, खजुराहो', **महावीर ऐण्ड हिज टीचिंग्स,** (सं० ए०एन० उपाध्ये आदि), भगवान् महावीर २५०० वा निर्वाण महोत्सव समिति, बंबई, १९७७, पृ० ४०९–२८

त्रिपाठी, एल० के०,

(१) **एवोल्यूशन ऑव टेम्पल् आर्किटेक्चर इन नार्दर्न इण्डिया,** पी–एच्० डी० की अप्रकाशित थीसिस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६८

(२) 'दि एराटिक स्कल्पचर्स ऑव खजुराहो ऐण्ड देयर प्राबेबल एक्सप्लानेशन', **भारती,** अं० ३, १९५९–६०, पृ० ८२–१०४

दत्त, कालीदास,

(१) 'दि एन्टिक्विटीज ऑव खारी', **ऐनुअल रिपोर्ट, वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी,** १९२८–२९, पृ० १–११

(२) 'सम अर्ली आर्किअलाजिकल फाइन्ड्स ऑव दि सुन्दरवन', **माडर्न रिव्यू,** ख० ११४, अं० १, जुलाई १९६३, पृ० ३९–४४

दत्त, जी० एस०,

'दि आर्ट ऑव बंगाल', **माडर्न रिव्यू,** ख० ५१, अं० ५, पृ० ५१९–२९

दयाल, आर०पी०,

'इम्पार्टेण्ट स्कल्पचर्स ऐडेड टू दि प्राविन्शियल म्यूजियम लखनऊ', **ज०यू०पी०हि०सो०**, खं० ७, भाग २, नवम्बर १९३४, पृ० ७०–७४

दश, एम० पी०,

'जेन एन्टिक्विटीज फ्राम चर्पा', **उ०हि०रि०ज०,** खं० ११, अं० १, १९६२, पृ० ५०–५३

दि वे ऑव बुद्ध पब्लिकेशन डिविजन, गवर्नमेण्ट ऑव इण्डिया, दिल्ली

दीक्षित, एस० के०,

ए गाइड टू दि स्टेट म्यूजियम धुबेला (नवगांव), विन्ध्यप्रदेश, नवगांव, १९५६

दीक्षित, के० एन०,

'सिक्स स्कल्पचर्स फ्राम महोबा', **मे०आ०स०इं०,** अं० ८, कलकत्ता, १९२१, पृ० १–४

देवकर, बी० एल०,

(१) 'द्रू रीसेन्टली एक्वायर्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि बड़ौदा म्यूजियम', **बु०म्यू०पि०गै०**, खं० १४, १९६२, पृ० ३७–३८

(२) 'ए जैन तीर्थंकर इमेज रीसेन्टली एक्वायर्ड बाइ दि बड़ौदा म्यूजियम', **बु०म्यू०पि०गै०**, खं० १९, १९६५–६६, पृ० ३५–३६

देशपाण्डे, एम० एन०,

'कृष्ण लिजेण्ड इन दि जैन कैनानिकल लिट्रेचर', **जैन एण्टि०**, खं० १०, अं० १, जून १९४४, पृ० २५–३१

देसाई, पी० बी०,

(१) **जैनिजम इन साऊथ इण्डिया ऐण्ड सम जैन एपिग्राफ्स**, जीवराज जैन ग्रन्थमाला ६, शोलापुर, १९६३

(२) 'यक्षी इमेजेज इन साऊथ इण्डियन जैनिजम', **डॉ० मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम**, (सं० जी०टी० देशपाण्डे आदि), नागपुर, १९६५, पृ० ३४४–४८

दोशी, बेचरदास,

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, वाराणसी, १९६६

नाहटा, अगरचन्द,

(१) 'तालघर में प्राप्त १६० जिन प्रतिमाएं', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० १–२, १९६६, (अप्रैल-जून), पृ० ८१–८३

(२) 'भारतीय वास्तुशास्त्र मे जैन प्रतिमा सम्बन्धी ज्ञातव्य', **अनेकान्त**, वर्ष २०, अं० ५, दिसम्बर १९६७, पृ० २०७–१५

नाहटा, भंवरलाल,

'तालागुडी की जैन प्रतिमा', **जैन जगत**, वर्ष १३, अं०९–११, दिसम्बर १९५९-फरवरी १९६०, पृ०६०-६१

नाहर, पी०सी०,

(१) **जैन इन्स्क्रिप्शन्स**, भाग १, जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला ८, कलकत्ता, १९१८

(२) 'नोट्स आन द्रू जैन इमेजेज फ्राम साऊथ इण्डिया', **इण्डि०क०**, खं० १, अं० १–४, जुलाई १९३४-अप्रैल १९३५, पृ० १२७–२८

निगम, एम० एल०,

(१) 'इम्पैक्ट ऑव जैनिजम ऑन मथुरा आर्ट', **ज०यू०पी०हि०सो०** (न्यू सिरीज), खं० १०, भाग १, १९६१, पृ० ७–१२

(२) 'ग्लिम्पसेस ऑव जैनिजम थ्रू आर्किअलाजी इन उत्तर प्रदेश', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बंबई, १९६८, पृ० २१३–२०

पाटिल, डी० आर०,

दि एन्टिक्वेरियन रिमेन्स इन बिहार, हिस्टारिकल रिसर्च सिरीज ४, पटना, १९६३

पुरी, बी० एन०,

(१) **दि हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर-प्रतिहारज**, बंबई, १९५७

(२) 'जैनिजम इन मथुरा इन दि अर्ली सेन्चुरीज ऑव दि क्रिश्चियन एरा', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बंबई, १९६८, पृ० १५६–६१

पुसाल्कर, ए० डी०,

'जैनिजम', **दि एज ऑव इम्पिरियल कन्नौज** (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९६४, पृ० २८८–९६

प्रसाद, एच० के०,

'जैन ब्रोन्जेज इन दि पटना म्यूजियम', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बंबई, १९६८, पृ० २७५–८९

प्रसाद, त्रिवेणी,

'जैन प्रतिमाविधान', **जैन एण्टि०**, खं० ४, अं० १, जून १९३७, पृ० १६–२३

प्रेमी, नाथूराम,

जैन साहित्य और इतिहास, बंबई, १९५६

फ्लीट, जे० एफ०,

कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, खं० ३, वाराणसी, १९६३ (पु०मु०)

बनर्जी, आर० डी०,

ईस्टर्न इण्डियन स्कूल ऑव मेडिवल स्कल्पचर, दिल्ली, १९३३

बनर्जी, ए०,

(१) 'टू जैन इमेजेज', **ज०बि०उ०रि०सो०**, खं० २८, भाग १, १९४२, पृ० ४४

(२) 'जैन एन्टिक्विटीज इन राजगिर', **इं०हि०क्वा०**, खं० २५, अं० ३, सितम्बर १९४९, पृ० २०५–१०

(३) 'ट्रेसेज ऑव जैनिजम इन बंगाल', **ज०यू०पी०हि०सो०**, ख० २३, भाग १–२, १९५०, पृ० १६४–६८

(४) 'जैन आर्ट थ्रू दि एजेज', **आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ** (स० सतकारि मुखर्जी आदि), कलकत्ता, १९६१, पृ० १६७–९०

बनर्जी, जे० एन०,

(१) 'जैन इमेजेज', **दि हिस्ट्री ऑव बंगाल** (सं० आर० सी० मजूमदार), ख० १, ढाका, १९४३, पृ० ४६४–६५

(२) **दि डीवेलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, कलकत्ता, १९५६

(३) 'जैन आइकन्स', **दि एज ऑव इम्पिरियल यूनिटी** (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९६०, पृ० ४२५–३१

(४) 'आइकानोग्राफी', **दि क्लासिकल एज** (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९६२, पृ० ४१८–१९

(५) 'आइकानोग्राफी', **दि एज ऑव इम्पिरियल कन्नौज** (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९६४, पृ० २९६–३००

बनर्जी, प्रियतोष,

'ए नोट ऑन दि वर्शिप ऑव इमेजेज इन जैनिजम (सरका २०० बी० सी०–२०० ए० डी०), **ज०बि०रि०सो०**, खं० ३६, भाग १–२, १९५०, पृ० ५७–६५

बनर्जी-शास्त्री, ए०,

'मौर्यन स्कल्पचर्स फ्राम लोहानीपुर, पटना', **ज०बि०उ०रि०सो०**, खं० २६, भाग २, जून १९४०, पृ० १२०–२४

बर्जेस, जे०,

'दिगंबर जैन आइकानोग्राफी', **इण्डि०एण्टि०**, खं० ३२, १९०३, पृ० ४५९–६४

बाजपेयी, के० डी०,

(१) 'जैन इमेज ऑव सरस्वती इन दि लखनऊ म्यूजियम', **जैन एण्टि**, खं० ११, अं० २, जनवरी १९४६, पृ० १–४

(२) 'न्यू जैन इमेजेज इन दि मथुरा म्यूजियम', **जैन एण्टि**, खं० १३, अं० २, जनवरी १९४८, पृ० १०-११

(३) 'सम न्यू मथुरा फाइन्ड्स', **ज०यू०पी०हि०सो०**, खं० २१, भाग १–२, १९४८, पृ० ११७–३०

(४) 'पार्श्वनाथ किले के जैन अवशेष', **चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ** (सं० श्रीमती सुशीला सुल्तान सिंह जैन आदि), आरा, १९५४, पृ० ३८८–८९

(५) 'मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला', **अनेकान्त**, वर्ष १७, अ० ३, अगस्त १९६४, पृ० ९८–९९; वर्ष २८, १९७५, पृ० ११५–१६

बाल सुब्रह्मण्यम, एस० आर० तथा राजू०, वी० वी०,

'जैन वेस्टिजेज इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', **क्वा०ज०मै०स्टे०**, खं० २४, अं० ३, जनवरी १९३४, पृ० २११–१५

बैरेट, डगलस,

(१) 'ए ग्रुप ऑव ब्रोन्जेज़ फ्राम दि डॅकन', **ललित कला**, अं० ३–४, १९५६–५७, पृ० ३९–४५

(२) 'ए जैन ब्रोन्ज फ्राम दि डॅकन', **ओ०आर्ट**, खं० ५, अं० १ (न्यू सिरीज), १९५९, पृ० १६२–६५

ब्राउन, डब्ल्यू० एन०,

ए डेस्क्रिप्टिव ऐण्ड इलस्ट्रेटेड केटलाग ऑव मिनियेचर पेण्टिग्स ऑव दि जैन कल्पसूत्र, वाशिंगटन, १९३४

ब्राउन, पर्सी,

इण्डियन आर्किटेक्चर (बुद्धिस्ट ऐण्ड हिन्दू पिरियड्स), बंबई, १९७१ (पु० मु०)

ब्रून, क्लाज,

(१) 'दि फिगर ऑव दि टू लोअर रिलिफ्स आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल् ऐट खजुराहो', **आचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ** (सं० मोतीचन्द्र आदि), बंबई, १९५६, पृ० ७–३५

(२) 'आइकानोग्राफी ऑव दि लास्ट तीर्थंकर महावीर', **जैनयुग**, वर्ष १, अप्रैल १९५८, पृ० ३६–३७

(३) 'जैन तीर्थज इन मध्य देश : दुदही', **जैनयुग**, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९–३३

(४) 'जैन तीर्थज इन मध्य देश : चांदपुर', **जैनयुग**, वर्ष २, अप्रैल १९५९, पृ० ६७–७०

(५) **दि जिन इमेजेज ऑव देवगढ़**, लिडेन, १९६९

ब्यूह्लर, जी०,

(१) 'दि दिगंबर जैनज', **इण्डि०एण्टि०**, खं० ७, १८७८, पृ० २८–२९

(२) 'न्यू जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', **एपि०इण्डि०**, खं० १, कलकत्ता, १८९२, पृ० ३७१–९३

(३) 'फर्दर जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', **एपि०इण्डि०**, खं० १, कलकत्ता, १८९२, पृ० ३९३–९७

(४) 'फर्दर जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', **एपि०इण्डि०**, खं० २ (कलकत्ता, १८९४), दिल्ली, १९७० (पु० मु०), पृ० १९५–२१२
(५) 'स्पेसिमेन्स ऑव जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा', **एपि०इण्डि०**, खं० २ (कलकत्ता, १८९४), दिल्ली, १९७० (पु० मु०), पृ० ३११–२३
(६) **आन दि इण्डियन सेक्ट ऑव दि जैनज**, लन्दन, १९०३

ब्लाक, टी०,

सप्लेमेण्ट्री केटलाग ऑव दि आर्किअलाजिकल सेक्शन ऑव दि इण्डियन म्यूज़ियम, कलकत्ता, १९११

भट्टाचार्य, ए० के०,

(१) 'सिम्बालिजम ऐण्ड इमेज वर्शिप इन जैनिजम', **जैन एण्टि०**, ख० १५, अं० १, जून १९४९, पृ०१-६
(२) 'आइकानोग्राफी ऑव सम माइनर डीटीज इन जैनिजम', **इं०हि०क्वा०**, खं० २९, अं० ४, दिसम्बर १९५३, पृ० ३३२–३९
(३) 'जैन आइकानोग्राफी', **आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रंथ** (सं० सतकारि मुखर्जी आदि), कलकत्ता, १९६१, पृ० १९१–२००

भट्टाचार्य, बी०,

'जैन आइकानोग्राफी', **जैनाचार्य श्री आत्मानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रंथ** (सं० मोहनलाल दलीचन्द देसाई), बंबई, १९३६, पृ० ११४–२१

भट्टाचार्य, बी० सी०,

दि जैन आइकानोग्राफी, लाहौर, १९३९

भट्टाचार्य, बेनायतोश,

दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९६८

भट्टाचार्य, यू० सी०,

'गोमुख यक्ष', **ज०यू०पी०हि०सो**, ख० ५, भाग २ (न्यू सिरीज), १९५७, पृ०८–९

भण्डारकर, डी० आर०,

(१) 'जैन आइकानोग्राफी', **आ०स०इं०ऐ०रि**, १९०५–०६, कलकत्ता, १९०८, पृ० १४१–४९
(२) 'जैन आइकानोग्राफी-समवसरण', **इण्डि०एण्टि०**, खं० ४०, मई १९११, पृ० १२५–३०
(३) 'दि टेम्पल्स ऑव ओसिया', **आ०स०इं०ऐ०रि०**, १९०८–०९, कलकत्ता, १९१२, पृ० १००–१५

मजमूदार, एम० आर०,

(१) **कल्चरल हिस्ट्री ऑव गुजरात**, बंबई, १९६५
(२) 'ट्रीटमेण्ट ऑव गाडेस इन जैन ऐण्ड ब्राह्मनिकल पिक्टोरियल आर्ट', **जैनयुग**, दिसंबर १९५८, पृ० २२–२९
(३) **क्रोनोलाजी ऑव गुजरात : हिस्टारिकल ऐण्ड कल्चरल**, भाग १, बड़ौदा, १९६०

मजूमदार, आर० सी०,

'जैनिजम इन ऐन्शण्ट बंगाल', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बंबई, १९६८, पृ० १३०–३८

मजूमदार, ए० के०,

चौलुक्याज ऑव गुजरात, बंबई, १९५६

मार्शल, जॉन,

मोहनजोदड़ो ऐण्ड दि इण्डस सिविलिजेशन, खंड १, लन्दन, १९३१

मित्र, कालीपद,

(१) 'नोट्स ऑन टू जैन इमेमेज', **ज०बि०उ०रि०सो०**, खं० २८, भाग २, १९४२, पृ० १९८–२०७

(२) 'आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ऐन इमेज', **इं०हि०क्वा०**, खं० १८, अं० ३, सितंबर १९४२, पृ० २६१–६६

मित्रा, देबला,

(१) 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बांकुड़ा, वेस्ट बंगाल', **ज०ए०सो०बं०**, खं० २४, अं० २, १९५८ (१९६०), पृ० १३१–३४

(२) 'आइकानोग्राफिक नोट्स', **ज०ए०सो०**, खं० १, अं० १, १९५९, पृ० ३७–३९

(३) 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', **ज०ए०सो०**, खं० १, अं० २, १९५९, पृ० १२७–३३

मिराशी, वी० वी०,

कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, खं० ४, भाग १, ऊटकमण्ड, १९५५

मेहता, एन० सी,

'ए मेडिवल जैन इमेज ऑव अजितनाथ—१०५३ ए० डी०', **इण्डि०एण्टि०**, खं० ५६, १९२७, पृ० ७२-७४

मैती, एस० के०,

ईकनॉमिक लाईफ ऑव नार्दर्न इण्डिया इन दि गुप्त पिरियड (सरका ए० डी० ३००–५५०), कलकत्ता, १९५७

यादव, झिनकू,

समराइच्चकहा : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी, १९७७

रमन, के० वी०,

'जैन वेस्टिजेज अराऊण्ड मद्रास', **क्वा०ज०मि०सो**, खं० ४९, अ० २, जुलाई १९५८, पृ० १०४–०७

रामचन्द्रन, टी० एन०,

(१) **तिरूपरुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स**, बु०म०ग०म्यू०न्यू०सि०, खं० १, भाग ३, मद्रास, १९३४

(२) **जैन मान्युमेण्ट्स ऐण्ड प्लेसेज ऑव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स**, कलकत्ता, १९४४

(३) 'हरप्पा ऐण्ड जैनिजम' (अनु० जयभगवान), **अनेकान्त**, वर्ष १४, जनवरी १९५७, पृ० १५७–६१

रायचौधरी, पी० सी०,

जैनिजम इन बिहार, पटना, १९५६

राव, एस० आर०,

'जैन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वादेव', **ज०इं०म्यू०**, खं० ११, १९५५, पृ० ३०–३३

राव, एस० एच०,

'जैनिजम इन दि डॅकन', **ज०इं०हि०**, खं० २६, भाग १–३, १९४८, पृ० ४५–४९

राव, टी० ए० गोपीनाथ,

एलिमेण्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, खं० १, भाग २, दिल्ली, १९७१ (पु०मु०)

राव, बी० वी० कृष्ण,

'जैनिजम इन आन्ध्रदेश', **ज०आं०हि०रि०सो०**, खं० १२, पृ० १८५–९६

राव, वाई० वी०,

'जैन स्टैचूज इन आन्ध्र', ज०आं०हि०रि०सो०, खं० २९, भाग ३–४, जनवरी-जुलाई १९६४, पृ० १९

रे, निहाररंजन,

मौर्य ऐण्ड शुंग आर्ट, कलकत्ता, १९६५

रोलैण्ड, बेन्जामिन,

दि आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑव इण्डिया : बुद्धिस्ट-हिन्दू-जैन, लन्दन, १९५३

लालवानी, गणेश (सं०),

जैन जर्नल (महावीर जयंती स्पेशल नंबर), खं० ३, अं० ४, अप्रैल १९६९

ल्यूजे-डे-ल्यू, जे० ई० वान,

दि सीथियन पिरियड, लिडेन, १९४९

वत्स, एम० एस०,

'ए नोट ऑन टू इमेजेज फ्राम बनीपार महाराज ऐण्ड बैजनाथ', **आ०स०इं०ऐ०रि०**, १९२९-३० पृ०२२७-२८

विजयमूर्ति (स०),

जै०शि०सं०, माणिकचंद्र दिगंबर जैन ग्रंथमाला, भाग २, बंबई, १९५२; भाग ३, बंबई, १९५७

विण्टरनित्ज, एम०,

ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर, खं० २ (बुद्धिस्ट ऐण्ड जैन लिट्रेचर), कलकत्ता, १९३३

विरजी, कृष्णकुमारी जे०,

ऐन्शण्ट हिस्ट्री ऑव सौराष्ट्र, बंबई, १९५२

वेंकटरमन, के० आर०,

'दि जैनज इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', **जैन एण्टि०**, खं० ३, अ० ४, मार्च १९३८, पृ० १०३–०६

वैशाखीय, महेन्द्रकुमार,

'कृष्ण इन दि जैन केनन्', **भारतीय विद्या**, खं० ८ (न्यू सिरीज), अं० ९–१०, सितंबर-अक्टूबर १९४६, पृ० १२३-३१

वोगेल, जे० पीएच्०,

केटलाग ऑव दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम ऐट मथुरा, इलाहाबाद, १९१०

शर्मा, आर० सी०,

(१) 'दि अर्ली फेज ऑव जैन आइकानोग्राफी', **जैन एण्टि०**, खं० २३, अं० २, जुलाई १९६५, पृ० ३२-३८

(२) 'जैन स्कल्पचर्स ऑव दि गुप्त एज इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', **म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई**, १९६८, पृ० १४३–५५

(३) 'आर्ट डेटा इन रायपसेणिय', **सं०पु०प०**, अं० ९, जून १९७२, पृ० ३८-४४

शर्मा, दशरथ,

(१) **अर्ली चौहान डाइनेस्टिज**, दिल्ली, १९५९

(२) **राजस्थान थ्रू दि एजेज**, खं० १, बीकानेर, १९६६

शर्मा, बृजनारायण,

सोशल लाईफ इन नार्दर्न इण्डिया, दिल्ली, १९६६

शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ,

(१) 'तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की प्रस्तर प्रतिमा', **अनेकान्त**, वर्ष १८, अं० ४, अक्तूबर १९६५, पृ० १५७

(२) 'अन्पब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि नेशनल म्यूजियम', **ज०ओ०इं०**, खं० १९, अं० ३, मार्च १९७०, पृ० २७५–७८

(३) **सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री आव नार्दर्न इण्डिया**, दिल्ली १९७२

(४) **जैन प्रतिमाएं**, दिल्ली, १९७९

शास्त्री, अजय मित्र,

(१) **इण्डिया ऐज सीन इन दि बृहत्संहिता ऑव वराहमिहिर**, दिल्ली, १९६९

(२) 'त्रिपुरी का जैन पुरातत्व', **जैन मिलन**, वर्ष १२, अं० २, दिसंबर १९७०, पृ० ६९–७२

(३) **त्रिपुरी**, भोपाल, १९७१

शास्त्री, परमानन्द जैन,

'मध्यभारत का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० १–२, अप्रैल–जून १९६६, पृ० ५४–६९

शास्त्री, हीरानन्द,

'सम रिसेन्टलि ऐडेड स्कल्पचर्स इन दि प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ', **मे०आ०स०इं०**, अं०११, **कलकत्ता**, १९२२, पृ० १–१५

शाह, सी० जे०,

जैनिजम इन नार्थ इण्डिया : ८०० बी० सी०–ए० डी० ५२६, लन्दन, १९३२

शाह, यू० पी०,

(१) 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', **ज०यू०बां०**, खं० ९, १९४०–४१, पृ० १४७–६९

(२) 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस सरस्वती', **ज०यू०बां०**, खं० १० (न्यू सिरीज), सितम्बर १९४१, पृ० १९५–२१८

(३) 'जैन स्कल्पचर्स इन दि बड़ौदा म्यूजियम', **बु०ब०म्यू०**, खं० १, भाग २, फरवरी–जुलाई १९४४, पृ० २७–३०

(४) 'सुपरनेचुरल बीइंग्स इन दि जैन तन्त्रज', **आचार्य ध्रुव स्मारक ग्रन्थ** (सं० आर० सी० पारिख आदि), भाग ३, अहमदाबाद, १९४६, पृ० ६७–६८

(५) 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', **ज०इं०सो०ओ०आ०**, खं० १५, १९४७, पृ० ११४–७७

(६) 'एज ऑव डिफरेन्शियेशन ऑव दिगंबर ऐण्ड श्वेतांबर इमेजेज ऐण्ड दि अलिएस्ट नोन श्वेतांबर ब्रोन्जेज', **बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०**, अं० १, १९५०–५१ (१९५२), पृ० ३०–४०

(७) 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी', **ज०ओ०इं०**, खं० १ अं० १, सितम्बर १९५१ (१९५२), पृ० ७२–७९

(८) 'साइड्लाइट्स आन दि लाईफ-टाइम सेण्डलवुड इमेज ऑव महावीर', **ज०ओ०इं०**, खं० १, अं० ४, जून १९५२, पृ० ३५८–६८

(९) 'ऐन्शियन्ट स्कल्पचर्स फ्राम गुजरात ऐण्ड सौराष्ट्र', **ज०इं०म्यू०**, खं० ८, १९५२, पृ० ४९–५७

(१०) 'श्रीजीवन्तस्वामी' (गुजराती), **जै०स०प्र०**, वर्ष १७, अं० ५–६, १९५२, पृ० ९८–१०९

(११) 'हरिनैगमेषिन्', **ज०इं०सो०ओ०आ०**, खं० १९, १९५२–५३, पृ० १९–४१

(१२) 'ऐन अर्ली ब्रोन्ज इमेज ऑव पार्श्वनाथ इन दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम, बंबई', **बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०**, अं० ३, १९५२–५३ (१९५४), पृ० ६३–६५

(१३) 'जैन स्कल्पचर्स फ्राम लाडोल', **बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०**, अं० ३, १९५२–५३ (१९५४), पृ० ६६–७३

(१४) 'सेवेन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वा-देवा', **बु०ब०म्यू०**, खं०९, भाग १-२, अप्रैल १९५२-मार्च १९५३ (१९५५), पृ० ४३–५१

(१५) 'फारेन एलिमेण्ट्स इन जैन लिट्रेचर', **इं०हि०क्वा०**, खं० २९, अं०३, सितम्बर १९५३, पृ०२६०-६५

(१६) 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', **ज०ओ०इं०**, खं० ३, अं० १, सितम्बर १९५३, पृ० ५४–७१

(१७) 'बाहुबली : ए यूनीक ब्रोन्ज इन दि म्यूजियम', **बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०**, अं०४, १९५३–५४, पृ०३२-३९

(१८) 'मोर इमेजेज ऑव जीवन्तस्वामी', **ज०इं०म्यू०**, खं० ११, १९५५, पृ० ४९–५०

(१९) **स्टडीज इन जैन आर्ट**, बनारस, १९५५

(२०) 'ब्रोन्ज होर्ड फ्राम वसन्तगढ़', **ललितकला**, अं० १–२, अप्रैल १९५५-मार्च १९५६, पृ० ५५–६५

(२१) 'पेरेण्ट्स ऑव दि तीर्थंकरज', **बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०**, अं० ५, १९५५–५७, पृ० २४–३२

(२२) 'ए रेयर स्कल्पचर ऑव मल्लिनाथ', **आचार्य विजयवल्लभ सूरि स्मृति ग्रन्थ** (सं०मोतीचन्द्र आदि), बंबई, १९५६, पृ० १२८

(२३) 'ब्रह्मशांति ऐण्ड कपर्दि यक्षज', **ज०एम०एस०यू०ब०**, खं० ७, अं० १, मार्च १९५८, पृ० ५९–७२

(२४) **अकोटा ब्रोन्जेज**, बबई, १९५९

(२५) 'जैन स्टोरीज इन स्टोन इन दि दिलवाड़ा टेम्पल, माउण्ट आबू', **जैन युग**, सितम्बर १९५९, पृ० ३८–४०

(२६) 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', **प्रो०ट्रां०ओ०कां०**, २० वां अधिवेशन, भुवनेश्वर, अक्तूबर १९५९, पूना, १९६१, पृ० १४१–५२

(२७) 'जैन ब्रोन्जेज फ्राम कैम्बे', **ललित कला**, अं० १३, पृ० ३१–३४

(२८) 'ऐन ओल्ड जैन इमेज फ्राम खेड्ब्रह्मा (नार्थ गुजरात)', **ज०ओ०इं०**, खं० १०, अं० १, सितम्बर १९६०, पृ० ६१–६३

(२९) 'जैन ब्रोन्जेज इन हरीदास स्वालीज कलेक्शन', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ९, १९६४-६६, पृ० ४७-४९
(३०) 'ए जैन ब्रोन्ज फाम जेसलमेर, राजस्थान', ज०इं०सो०ओ०आ० (स्पेशल नंबर), १९६५-६६, मार्च १९६६, पृ० २५-२६
(३१) 'ए जैन मेटल इमेज फाम सूरत', ज०इं०सो०ओ०आ० (स्पेशल नंबर), १९६५-६६, मार्च १९६६, पृ० ३
(३२) 'टू जैन ब्रोन्जेज फाम अहमदाबाद', ज०ओ०इं०, खं० १५, अं० ३-४, मार्च-जून १९६६, पृ० ४६३-६४
(३३) 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, खं० २०, अं० ३, मार्च १९७१, पृ० २८०-३११
(३४) 'ए फ्यू जैन इमेजेज इन दि भारत कलाभवन, वाराणसी', छवि, वाराणसी, १९७१, पृ० २३३-३४
(३५) 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, जून १९७२, पृ० १-१४
(३६) 'यक्षिणी ऑव दि ट्वेन्टी-फोर्थ जिन महावीर', ज०ओ०इं०, खं० २२, अं० १-२, सितम्बर-दिसम्बर १९७२, पृ० ७०-७८

शाह, यू० पी० तथा मेहता, आर० एन,
'ए फ्यू अर्ली स्कल्पचर्स फ्राम गुजरात', ज०ओ०इं०, खं० १, १९५१-५२, पृ० १६०-६४

श्रीवास्तव, वी० एन०,
'सम इन्टरेस्टिंग जैन स्कल्पचर्स इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', सं०पु०प०, अं० ९, जून १९७२, पृ० ४५-५२

श्रीवास्तव, वी० एस०,
केटलाग ऐण्ड गाईड टू गंगा गोल्डेन जुबिली म्यूजियम, बीकानेर, बंबई, १९६१

संकलिया, एच० डी०,
(१) 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८, पृ० ४२६-३०
(२) 'एन अनयुजुअल फार्म ऑव ए जैन गाडेस', जैन एण्टि०, खं० ४, अं० ३, दिसम्बर १९३८, पृ० ८५-८८
(३) 'जैन आइकानोग्राफी', न्यू इण्डियन एण्टिक्वेरी, खं० २, १९३९-४०, पृ० ४९७-५२०
(४) 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', बु०ड०का०रि०इं०, खं० १, अं० २-४, १९४०, पृ० १५७-६८
(५) 'दि सो-काल्ड बुद्धिस्ट इमेजेज फ्राम दि बड़ौदा स्टेट', बु०ड०का०रि०इं०, खं० १, अं० २-४, १९४०, पृ० १८५-८८
(६) 'दि स्टोरी इन स्टोन ऑव दि ग्रेट रिनन्शियेशन ऑव नेमिनाथ', इं०हि०क्वा०, खं० १६, १९४०-४१, पृ० ३१४-१७
(७) 'जैन मान्युमेण्ट्स फ्राम देवगढ़', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० ९, १९४१, पृ० ९७-१०४
(८) दि आर्कियलाजी ऑव गुजरात, बंबई, १९४१
(९) 'दिगंबर जैन तीर्थंकर फ्राम माहेश्वर ऐण्ड नेवासा', आचार्य विजयवल्लभ सूरि स्मारक ग्रंथ (सं० मोतीचंद्र आदि), बंबई, १९५६, पृ० ११९-२०

सरकार, डी० सी०,
सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, खं० १, कलकत्ता, १९६५

सरकार, शिवशंकर,

'आन सम जैन इमेजेज फ्राम बंगाल', **माडर्न रिव्यू**, खं० १०६, अं० २, अगस्त १९५९, पृ० १३०–३१

सहानी, रायबहादुर दयाराम,

(१) **केटलाग ऑव दि म्यूजियम ऑव आर्किअलाजी ऐट सारनाथ**, कलकत्ता, १९१४

(२) 'ए नोट आन टू ब्रास इमेजेज', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २, भाग २, मई १९२१, पृ० ६८-७१

सिंह, जे० पी०,

आस्पेक्ट्स ऑव अर्ली जैनिजम, वाराणसी, १९७२

सिक्दार, जे० सी०,

स्टडीज इन दि भगवतीसूत्र, मुजफ्फरपुर, १९६४

सुन्दरम, टी० एस०,

'जैन ब्रोन्जेज फ्राम पुडुकोट्टई', **ललित कला**, अं० १–२, १९५५–५६, पृ० ७९

सोमपुरा, कांतिलाल फूलचंद,

(१) **दि स्ट्रक्चरल टेम्पल्स ऑव गुजरात**, अहमदाबाद, १९६८

(२) 'दि आर्किटेक्चरल ट्रीटमेण्ट ऑव दि अजितनाथ टेम्पल् ऐट तारंगा', **विद्या**, खं० १४, अं० २, अगस्त १९७१, पृ० ५०–७७

स्टिवेन्सन, एस०,

दि हार्ट ऑव जैनिजम, आक्सफोर्ड, १९१५

स्मिथ, वी० ए०,

दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एन्टिक्विटीज ऑव मथुरा, वाराणसी, १९६९ (पु० मु०)

स्मिथ, वी० ए० तथा ब्लैक, एफ० सी०,

'आब्जरवेशन आन सम चन्देल एन्टिक्विटीज', ज०ए०सो०बं०, खं० ५८, अं० ४, १८७९, पृ० २८५–९६

हस्तीमल,

जैन धर्म का मौलिक इतिहास, खं० १, इतिहास समिति प्रकाशन ३, जयपुर, १९७१

●

चित्र-सूची

चित्र-संख्या

२९ : नेमिनाथ के जीवनदृश्य, शांतिनाथ मन्दिर, कुंभारिया (बनासकांठा, गुजरात), ११वीं शती, पृ० १२१–२२
३० : पार्श्वनाथ, कंकालीटीला (मथुरा, उ० प्र०), ल० पहली-दूसरी शती ई०, राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ३९)
३१ : पार्श्वनाथ, मन्दिर १२ (चहारदीवारी), देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), ११वीं शती, पृ० १२९
३२ : पार्श्वनाथ, मन्दिर ६, देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), १०वीं शती, पृ० १२९
३३ : पार्श्वनाथ, राजस्थान, ११वीं-१२वीं शती, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली (३९.२०२), पृ० १२८
३४ : महावीर, कंकालीटीला, (मथुरा, उ० प्र०), कुषाण काल, राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ५३), पृ० १३६
३५ : महावीर, वाराणसी (उ० प्र०), ल० छठी शती, भारत कला भवन, वाराणसी (१६१), पृ० १३७
३६ : जीवन्तस्वामी महावीर, अकोटा (बड़ौदा, गुजरात), ल० छठी शती, बड़ौदा संग्रहालय, पृ० १३७
३७ : जीवन्तस्वामी महावीर, ओसिया (जोधपुर, राजस्थान), तोरण, ११वीं शती
३८ : महावीर, मन्दिर १२ के समीप, देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), ल० ११वीं शती, पृ० १३८
३९ : महावीर के जीवनदृश्य (गर्भापहरण), कंकालीटीला, (मथुरा, उ० प्र०), पहली शती, राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे० ६२६), पृ० १३९
४० : महावीर के जीवनदृश्य, महावीर मन्दिर, कुंभारिया (बनासकांठा, गुजरात), ११वीं शती, पृ० १३९–४२
४१ : महावीर के जीवनदृश्य, शांतिनाथ मन्दिर, कुंभारिया (बनासकांठा, गुजरात), ११वीं शती, पृ० १४२–४३
४२ : जिन मूर्तियां, खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०), ल० १०वीं-११वीं शती, शांतिनाथ संग्रहालय, खजुराहो (के ४–७)
४३ : गोमुख, हथमा (राजस्थान), ल० १०वीं शती, राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७०), पृ० १६३
४४ : चक्रेश्वरी, मथुरा (उ० प्र०), १०वीं शती, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (डी ६), पृ० १६८
४५ : चक्रेश्वरी, मन्दिर ११ के समीप का स्तंभ, देवगढ (ललितपुर, उ०प्र०), ११वीं शती, पृ० १७०
४६ : चक्रेश्वरी, देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), ११वीं शती, साहू जैन संग्रहालय, देवगढ, पृ० १७०
४७ : रोहिणी, मन्दिर ११ के समीप का स्तंभ, देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), ११वीं शती, पृ० १७५
४८ : सुमालिनी यक्षी (चंद्रप्रभ), मन्दिर १२, देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), ८६२ ई०, पृ० १८८–८९
४९ : सर्वानुभूति (कुबेर), देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), १०वीं शती, पृ० २२१
५० : अम्बिका, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (डी ७), नवीं शती, पृ० २२६–२७
५१ : अम्बिका, मन्दिर १२, देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), १०वीं शती, पृ० २२६
५२ : अम्बिका, एलोरा (औरंगाबाद, महाराष्ट्र), ल० १०वीं शती, पृ० २३०
५३ : अम्बिका, पतियानदाई मन्दिर (सतना, म० प्र०) ११वीं शती, इलाहाबाद संग्रहालय (२९३), पृ० १६१
५४ : अम्बिका, विमलवसही, आबू (सिरोही, राजस्थान), १२वीं शती, पृ० २२६
५५ : पद्मावती, शहडोल (म० प्र०), ११वीं शती, ठाकुर साहब संग्रह, शहडोल, पृ० २३९
५६ : पद्मावती, नेमिनाथ मन्दिर (पश्चिमी देवकुलिका), कुंभारिया (बनासकांठा, गुजरात), १२वीं शती, पृ० २३७
५७ : उत्तरंग, यक्षियां (अम्बिका, चक्रेश्वरी, पद्मावती) तथा नवग्रह, खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०), ११वीं शती, जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो (१४६७), पृ० १६९,२३९
५८ : ऋषभनाथ एवं अम्बिका, खण्डगिरि (पुरी, उड़ीसा), ल० १०वीं-११वीं शती
५९ : पार्श्वनाथ एवं महावीर और शासनदेवियां, बारभुजी गुफा, खण्डगिरि, (पुरी, उड़ीसा), ल० ११वीं-१२वीं शती,
६० : ऋषभनाथ और महावीर, द्वितीर्थी-मूर्ति, खण्डगिरि (पुरी, उड़ीसा), ल० १०वीं-११वीं शती, ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन (९९), पृ० १४५
६१ : द्वितीर्थी-जिन-मूर्तियां, खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०), ल० ११वीं शती, शांतिनाथ संग्रहालय, खजुराहो, पृ० १४५
६२ : विमलनाथ एवं कुंथुनाथ, द्वितीर्थी-मूर्ति, मन्दिर १, देवगढ (ललितपुर, उ० प्र०), ११वीं शती, पृ० १४५–४६
६३ : द्वितीर्थी-जिन-मूर्ति, मन्दिर ३, खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०), ल०११ वीं शती, पृ० १४५

आभार-प्रदर्शन

(चित्र संख्या १३, १७–२०, २२, २४–२६, २९, ३३, ४३, ४४, ५०, ५३–५५, ५७, ६७, ६९, ७१, ७२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, रामनगर, वाराणसी, चित्र संख्या १–३, ५, ६, ९–१२, २३, ३०, ३८, ३९, ५२, ५८–६०, ६८, ७३ जैन जर्नल, कलकत्ता; चित्र संख्या २१, ३५ भारत कला भवन, वाराणसी एवं चित्र संख्या ७९ एल० डी० इन्स्टिट्यूट, अहमदाबाद के सौजन्य से साभार ।)

●

LIST OF ILLUSTRATIONS

11. Jina Ṛṣabhanātha (Ist), sky-clad and standing in *kāyotsarga-mudrā* with *prātihāryas*, bull cognizance and tiny Jina figures, Saṅka (Purulia, Bengal), *ca.* 10th-11th century A. D.

12. Narrative Panel, from the life of Jina Ṛṣabhanātha (Ist) : Dance of Nīlāñjanā (the divine dancer), the cause of the renunciation of Ṛṣabhanātha, Kaṅkālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), *ca.* first century A. D., State Museum, Lucknow (J 354).

13. Narratives, from the life of Jina Ṛṣabhanātha (Ist), showing *pañcakalyāṇakas* (*cyavana*-coming on earth, *janma*—birth, *dīkṣā*—renunciation, *jñāna*-omniscience and *nirvāṇa*-emancipation) and some other important events; and also the figures of *yakṣa-yakṣī* pair, ceiling of Mahāvīra Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

14. Narratives, from the life of Jina Ṛṣabhanātha (Ist), exhibiting *pañcakalyāṇakas*, scene of fight between Bharata and Bāhubalī, and Gomukha *yakṣa* and Cakreśvarī *yakṣī*, ceiling of Śāntinātha Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

15. Jina Ajitanātha (2nd), seated in *dhyāna-mudrā* with elephant cognizance, *yakṣa-yakṣī* pair *aṣṭa-mahāprātihāryas*, Temple No 12 (enclosure wall), Deogarh (Lalitpur, U. P.), *ca.* 10th-11th century A. D.

16. Sambhavanātha (3rd), seated in *dhyāna-mudrā* on a *siṁhāsana* (lion-throne), Kankālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), Kuṣāṇa Period—126 A. D., State Museum, Lucknow (J 19). The name of the Jina is inscribed in the pedestal inscription.

17. Jina Candraprabha (8th), seated in *dhyāna-mudrā* with crescent cognizance, *yakṣa-yakṣī* pair and *aṣṭa-mahāprātihāryas*, Kauśāmbī (Allahabad, U. P.), ninth century A D., Allahabad Museum (295).

18. Jina Vimalanātha (13th) sky-clad and standing in *kāyotsarga-mudrā* with boar as cognizance and flywhisk bearers as attendants, Varanasi (U. P.), *ca.* ninth century A. D., Sarnath Museum, Varanasi (236).

19. Jina Śāntinātha (16th), seated in *dhyāna-mudrā* and joined by two sky-clad Jinas standing in *kāyotsarga-mudrā*, Pabhosā (Allahabad, U. P.), 11th century A. D., Allahabad Museum (533). The *mūlanāyaka* is shown with deer *lāñchana*, *yakṣa-yakṣī* pair, *aṣṭa-mahāprātihāryas* and small Jina figures.

20. Jina Śāntinātha (16th), standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara) and accompanied by cortege of *aṣṭa-mahāprātihāryas*, Śāntidevī, Mahāvidyās, *yakṣa-yakṣī* pair and *dharmacakra* (flanked by two deers), Pārśvanātha Temple (*Gūḍhamaṇḍapa*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 1119-20 A. D.

21. Cauvīsī of Jina Śāntinātha (16th), seated in *dhyāna-mudrā* with tiny figures of 23 Jinas and *yakṣa-yakṣī* pair, Western India, 1510 A. D., Bharat Kala Bhavan, Varanasi (21733). The name of the Jina is inscribed in the inscription.

22. Narratives, from the lives of Śāntinātha (16th-right half) and Neminātha (22nd-left half) Jinas, showing the usual *pañcakalyāṇakas*, the scenes of trial of strength between Kṛṣṇa and Neminātha (in which Nemi emerged victor), and the marriage and consequent renunciation of Neminātha, ceiling of Mahāvīra Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

23. Jina Mallinātha (19th), seated in meditation, Unnao (U. P.), 11th century A. D., State Museum, Lucknow (J 885). The figure is the product of the Śvetāmbara sect in asmuch as the Jina here is rendered as female which is in conformity with the Śvetāmbara tradition.

24. Jina Munisuvrata (20th), standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara), tortoise emblem on pedestal, Western India, 11th century A. D, Government Central Museum, Jaipur.

25. Jina Neminātha (22nd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* on a *siṁhāsana* with the figures of Balarāma and Kṛṣṇa Vāsudeva (the cousin brothers of Neminātha) and Jinas (3), Mathura (U. P.), *ca.* fourth century A. D., State Museum, Lucknow (J 121).

26. Jina Neminātha (22nd), seated in meditation on a *siṁhāsana* with *aṣṭa-mahāprātihāryas* and *yakṣa-yakṣī* pair (*yakṣī* being Ambikā, traditionally associated with Neminātha), the latter being carved below the *siṁhāsana*, *Rājghāṭ* (Varanasi, U. P.), *ca.* seventh century A. D., Bharat Kala Bhavan, Varanasi (212).

27. Jina Neminātha (22nd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with *aṣṭa-mahāprātihāryas* and *yakṣa-yakṣī* pair and also accompanied by two-armed Balarāma and four-armed Kṛṣṇa Vāsudeva on two flanks, Temple No.2, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 10th century A.D.

28. Jina Neminātha (22nd), standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara) with *prātihāryas*, tiny Jina figures and four-armed Balarāma and Kṛṣṇa Vāsudeva, Mathura (? U. P). 11th century A. D., State Museum, Lucknow (66.53). The lower portion of the image is, however, damaged.

29. Narratives, from the life of Jina Neminātha (22nd), portraying usual *pañcakalyāṇakas* along with scenes from his marriage and also showing the temple of his *yakṣī* Ambikā, ceiling of Śāntinātha Temple, Kumbhāria (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

30. Jina Pārśvanātha (23rd), seated in meditation with sevenheaded snake canopy overhead, Kaṅkālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), *ca* 1st-2nd century A. D., State Museum, Lucknow (J39).

31. Jina Pārśvanātha (23rd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with sevenheaded snake canopy overhead and *kukkuṭa-sarpa* (cognizance) on the pedestal, Temple No. 12 (enclosure wall), Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

32. Jina Pārśvanātha (23rd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with two snakes flanking the Jina, Temple No. 6, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 10th century A. D.

33. Jina Pārśvanātha (23rd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with sevenheaded snake canopy overhead and its coils being extended down to the feet of the Jina; hovering *mālādharas* and flanking attendants, Rajasthan, 11th-12th century A.D., National Museum, New Delhi (39.202).

34. Jina Mahāvīra (24th), seated in meditation on a *siṁhāsana* with his name 'Vardhamāna' being carved in the pedestal inscription, Kaṅkālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), Kuṣāṇa Period, State Museum, Lucknow (J53).

35. Jina Mahāvīra (24th), seated in meditation on lotus seat *(viśva-padma)* with *prātihāryas*, small Jina figures and lion cognizance (carved on two sides of the *dharmacakra)*, Varanasi (U. P.), *ca.* sixth century A. D., Bharat Kala Bhavan, Varanasi (161).

36. Jīvantasvāmī Mahāvīra (prior to renunciation and performing *tapas* in the palace), standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara) and usual royal ornaments, Akoṭā (Baroda, Gujarat), *ca.* sixth century A. D , Baroda Museum.

37. Jīvantasvāmī Mahāvīra, standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara) and usual royal ornaments, Osia (Jodhpur, Rajasthan),*Toraṇa*, 11th century A. D.

38. Jina Mahāvīra (24th), seated in *dhyāna-mudrā* with usual *aṣṭa-mahāprātihāryas*, *yakṣa-yakṣī* pair and lion cognizance, Temple No. 12, Deogarh (Lalitpur, U. P.), *ca.* 11th century A. D.

39. Narrative Panel, from the life of Jina Mahāvīra (24th) : Transfer of embryo *(garbhāpa-haraṇa)* by god Naigameṣī (goat-faced), Kaṅkālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), first century A. D., State Museum, Lucknow (J 626).

40. Narratives, from the life of Jina Mahavīra (24th), showing usual *pañcakalyāṇakas* and also the *upasargas* (hindrances) created by demons and *yakṣas* at the time of Mahāvīra's *tapas*, and the story of Candanabālā and scenes from previous births, ceiling of Mahāvīra Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

41. Narratives, from the life of Jina Mahāvīra (24th), showing usual *pañcakalyāṇakas* and also the *upasargas*, story of Candanabālā and scenes from previous births, ceiling of Śīntinātha Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

42. Jina Images, exhibiting Mahāvīra (24th) and Ṛṣabhanātha (Ist), Khajurāho (Chatarpur, M. P.), *ca.* 10th-11th century A. D., Śāntinātha Museum, Khajurāho (K 4-7).

43. Gomukha, *yakṣa* of Ṛṣabhanātha (Ist), seated in *lalitāsana*, 4-armed, showing *abhaya-mudrā*, *paraśu*, *sarpa* and *mātuliṅga* (fruit), Hathmā (Rajasthan), *ca.* 10th century A. D., Rajputana Museum, Ajmer (270).

44. Cakreśvarī, *yakṣī* of Ṛṣabhanātha (Ist), standing in *samabhaṅga*, *garuḍa vāhana*, 10-armed, discs in nine surviving hands, Mathura (U. P.), 10th century A. D., Archaeological Museum, Mathura (D6).

45. Cakreśvarī, *yakṣī* of Ṛṣabhanātha (Ist), seated in *lalitāsana, garuḍa vāhana* (human), 10-armed, showing *varada-mudrā*, arrow, mace, sword, disc, disc, shield, thunderbolt, bow and conch, Temple No. 11 *(Mānastambha)*, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

46. Cakreśvarī, *yakṣī* of Ṛṣabhanātha (Ist), seated in *lalita*-pose, *garuḍa* mount (human), 20-armed, showing discs in two upper hands, disc, sword, quiver (?), *mudgara*, disc, mace, rosary, axe, thunderbolt, bell, shield, staff with flag, conch, bow, disc, snake, spear and disc, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D., Sāhū Jaina Museum, Deogarh.

47. Rohiṇī, *yakṣī* of Ajitanātha (2nd), seated in *lalita*-pose, cow as conveyance, 8-armed, bears *varada-mudrā*, goad, arrow, disc, noose, bow, spear and fruit, Temple No. 11 (*Mānastambha*), Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

48. Sumālinī, *yakṣī* of Candraprabha (8th), standing, lion vehicle, 4-armed, carries sword, *abhaya-mudrā*, shield and thigh-posture, Temple No. 12, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 862 A. D.

49. Sarvānubhūti (or Kubera), *yakṣa* of Neminātha (22nd), seated in *lalitāsana*, 2-armed, holds fruit and purse (made of mongoose-skin), Deogarh (Lalitpur, U. P.), 10th century A. D.

50. Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), seated in *lalita*-pose, lion *vāhana*, 2-armed, bears *abhaya-mudrā* and a child, Provenance not known, ninth century A. D., Archaeological Museum, Mathura (D7). The figures of Jina, Gaṇeśa, Kubera, Balarāma, Kṛṣṇa Vāsudeva, *aṣṭa-mātṛkās* and second son are also rendered.

51. Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), standing, lion as conveyance, 2-armed, holds a bunch of mangoes and a child (clasping in the lap), nearby second son, Temple No. 12, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 10th century A. D.

52. Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), seated in *lalita-mudrā*, lion vehicle, 2-armed, one surviving hand supports a child seated in lap, Ellora (Aurangabad, Maharashtra), *ca* 10th century A. D.

53. Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), standing, lion vehicle, 4-armed, all the hands being damaged, two sons on two sides, tiny figures of Jinas (nude) and 23 *yakṣīs* in *parikara*, Patiāndaī Temple, Satna (M. P.), 11th century A. D., Allahabad Museum (293). The 23 *yakṣī* figures of the *parikara* are 4-armed and their respective names are inscribed under their figures. However, the names of the *yakṣīs* in some cases are not in conformity with the lists available in Digambara texts, The image is unique in the sense that all the 24 *yakṣīs* of Jaina pantheon have been carved at one place,

54. Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), seated in *lalitāsana*, lion mount, 4-armed, holds bunches of mangoes in three hands while with one she supports a child (clasped in the lap), second son standing nearby and branch of mango tree overhead, Vimala Vasahī, Ābū (Sirohi, Rajasthan), 12th century A. D.

55. Padmāvatī, *yakṣī* of Pārśvanātha (23rd), seated cross-legged, *kūrma vāhana*, fiveheaded cobra overhead, 12-armed, bears *varada-mudrā*, sword, axe, arrow, thunderbolt, disc (ring), shield, mace, goad, bow, snake and lotus; *nāga-nāgī* figures on two flanks and the figure of Pārśvanātha with sevenheaded snake canopy over the head of Padmāvatī, Shahdol (M. P.), 11th century A. D., Thakur Sahib Collection, Shahdol.

56. Padmāvatī, *yakṣī* of Pārśvanātha (23rd), seated in *lalitāsana*, *kukkuṭa-sarpa* as *vāhana*, fiveheaded snake canopy overhead, 4-armed, holds *varadākṣa*, goad, noose and fruit, Neminātha Temple (western *Devakulikā*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 12th century A. D.

57. Door-lintel, showing the figures of 4-armed (from left) Ambikā, Cakreśvarī and Padmāvatī *yakṣīs*, all seated in *lalitāsana*, and 2-armed Navagrahas, Khajurāho (Chatarpur, M. P.), 11th century A. D., Jardin Museum, Khajurāho (1467). Ambikā with lion vehicle shows rolled lotuses in upper hands, while in two lower hands, she carries a bunch of mangoes and a child. Cakreśvarī rides a *garuḍa* (human) and holds *varada-mudrā*, mace, disc and conch (mutilated). Padmāvatī, shaded by sevenheaded snake canopy, rides a *kukkuṭa* and bears in three surviving hands *varada-mudrā*, noose and goad.

58. Jina Ṛṣabhanātha (Ist), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with tall *jaṭā-mukuṭa*, bull cognizance and usual *prātihāryas* and 2-armed Ambikā standing at right extremity, Khaṇḍagiri (Puri, Orissa), *ca.* 10th-11th century A. D.

59. Jina Pārśvanātha (23rd-with sevenheaded cobra overhead) and Mahāvīra (24th-with lion cognizance), both seated in *dhyāna-mudrā* with their respective *yakṣīs* (Padmāvatī and Siddhāyikā), Bārabhujī Gumphā, Khṇḍagiri (Puri, Orissa), *ca.* 11th-12th century A. D.

60. *Dvitīrthī* Jina Image, showing Ṛṣabhanātha (Ist) and Mahāvīra (24th) with bull and lion cognizances and standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with usual *prātihāryas*, Khaṇḍagiri (Puri, Orissa), *ca.* 10th-11th century A. D., British Museum, London (99).

61. *Dvitīrthī* Jina Images, without emblems but with usual *aṣṭa-mahāprātihāryas*, tiny Jina figures and *yakṣa-yakṣī* pairs, Jinas standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā*, Khajurāho (Chatarpur, M. P.), *ca.* 11th century A. D., Śāntinātha Museum, Khajurāho.

62. *Dvitīrthī* Jina Image, exhibiting Vimalanātha (13th) and Kunthunātha (17th) with their respective cognizances, boar and goat, and *prātihāryas*, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā*, Temple No. 1, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

63. *Dvitīrthī* Jina Image, portraying Jinas as standing sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* without cognizances but with usual *aṣṭa-mahāprātihāryas* and diminutive Jina figures, Temple No. 3, Khajurāho (Chatarpur, M. P.) *ca.* 11th century A. D.

64. *Tritīrthī* Jina Image, exhibiting Neminātha (22nd), seated in meditation in the centre, with Sarvānubhūti *yakṣa* and Ambikā *yakṣī* at throne and Pārśvanātha (23rd-with sevenheaded snake canopy) and Supārśvanātha (7th-with fiveheaded cobra hoods overhead) on right and left flanks, Temple No. 29 (*śikhara*), Deogarh (Lalitpur, U. P.), *ca.* 10th century A. D. The flanking Jinas are, however, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā*. All the Jinas are provided with usual *aṣṭa-prātihāryas*.

65. *Tritīrthī* Image, portraying two Jinas (Ajitanātha-2nd and Sambhavanātha-3rd) and Sarasvatī (the goddess of learning and music), Temple No. 1, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D The Jinas are standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with usual *aṣṭa-prātihāryas* and cognizances (elephant and horse). Sarasvatī (4-armed) stands in *tribhanga* with peacock *vāhana* and carries *varada-mudrā*, rosary, lotus and manuscript.

66. Jina-*Caumukhī (Pratimā-Sarvatobhadrikā)*, an image auspicious from all sides, portraying four Jinas standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* on four sides, Kankālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), Kuṣāṇa Period, State Museum, Lucknow. Of the four, only two Jinas are identifiable on the strength of identifying marks; they are Ṛṣabhanātha (1st—with hanging hair-locks) and Pārśvanātha (23rd—with sevenheaded snake canopy).

67. Jina-*Caumukhī*, exhibiting four Jinas seated in meditation on four sides with usual *aṣṭa-prātihāryas* and *yakṣa-yakṣī* pairs and its top being modelled after the *śikhara* of a North Indian Temple (*Devakulikā*), Ahar (Tikamgarh, M. P.), *ca.* 11th century A. D , Dhubela Museum (32).

68. Jina-*Caumukhī*, in the form of *Devakulikā* (small shrine) and portraying four Jinas standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* and identifiable with Ṛṣabhanātha (1st), Śāntinātha (16th), Kunthunātha (17th) and Mahāvīra (24th) on account of bull, deer, goat and lion emblems, Pakbirā (Purulia, Bengal), *ca.* 11th century A. D.

69. *Caumukhī*, Jinālaya (*Sarvatobhadrikā* Shrine), showing four principal Jinas seated in *dhyāna-mudrā* with usual *aṣṭa-prātihāryas* and *yakṣa-yakṣī* pairs, Indor (Guna, M. P.), 11th century A D. A number of small Jinas, Ācāryas and tutelary couples (with child in lap) are also depicted all around.

70. Bharata Cakravartin, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with some of the *prātihāryas* (triple parasol, drum-beater, hovering *mālādharas*) and conventional nine treasures (*navanidhis*-in the form of nine vases topped by the figure of Kubera) and fourteen jewels (*ratnas-cakra, chatra*, thunderbolt, sword, elephant, horse etc.), Temple No.2, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

71. Bāhubalī (or Gommaṭeśvara), the second son of first Jina Ṛṣabhanātha, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with the rising creepers entwining round legs and hands, Śrvaṇabeḷgolā (Hassan, Karnataka), *ca* ninth century A. D., Prince of Wales Museum, Bombay (105). According to Jaina Works, Bāhubalī obtained *kevala-jñāna* (omniscience) through rigorous austerities and stood in *kāyotsarga-mudrā* for one whole year and during

the course of his *tapas* snakes, lizards and scorpions crept on his body and meandering vines entwined round his hands and legs, which all suggest the deep meditation of Bāhubalī and also that he remained immune to his surroundings.

72. Bāhubalī, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with *mādhavī* creepers and also the figures of deer, snakes, mice, scorpions and a dog carved nearby, Cave 32 (Indra Sabhā), Ellora (Aurangabad, Maharashtra), *ca.* ninth century A. D. Bāhubalī is flanked by the figures of two *Vidyādharīs,* who according to Digambara Purāṇas removed the entwining creepers from the body of Bāhubalī. Besides, the figure of a devotee (probably his elder brother Bharata Cakravartin), the *chatra,* hovering *mālādharas* and a drum-beater are also carved.

73. Bāhubalī Gommaṭeśvara (57 ft.), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with climbing plant fastened round his thighs and hands, and ant-hills, carved nearby, with snakes issuing out of them, Śravaṇabeḷgolā (Hassan, Karnataka), *ca.* 983 A. D. The half-shut eyes of Bāhubalī suggest deep meditation and inward look. The nudity of the figure indicates the absolute renunciation of a *kevalin,* and the stiff erectness of posture firm determination and self-control. The face has a benign smile, serenity and contemplative gaze. James Fergusson observes : "Nothing grander or more imposing exists anywhere out of Egypt, and, even there, no known statue surpasses it in height"—(*History of Indian and Eastern Architecture,* London, 1910, p. 72). The image was got prepared by Cāmuṇḍarāya, the minister of the Ganga King Rācamalla IV (974-984 A. D.).

74. Bāhubalī, standing as nude in *kāyotsarga-mudrā* with *aṣṭa-prātihāryas,* devotees, climbing plant (entwining legs and hands), lizards, snakes, scorpions (creeping on leg) and a royal figure (probably Bharata Cakravartin), sitting on left, Temple No. 2, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

75. *Tritīrthī* Image, showing Bāhubalī with two Jinas, namely, Śītalanātha (10th) and Abhinandana (4th), all standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* and accompanied by usual cortège of *aṣṭa-prātihāryas,* adorers, and meandering vines entwining round the hands and legs of Bāhubalī, Temple No. 2, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th Century A. D.

76. Sarasvatī, seated in *lalita*-pose, peacock *vāhana,* 4-armed, holds *varada-mudrā,* lotus, *vīṇā* and manuscript, Neminātha Temple (Western *Devakulikā*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 12th century A. D.

77. Gaṇeśa, elephant-headed, pot-bellied, seated in *lalitāsana, mūṣaka vāhana,* 4-armed, bears tusk, axe, long-stalked lotus and pot filled with sweetballs (*modaka-pātra*), Neminātha Temple (*adhiṣṭhāna*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 12th century A. D.

78. Sixteen Jaina Mahāvidyās (only 12 are seen in the figure), all possessing four hands and seated in *lalitāsana* with distinguishing attributes, *Bhramikā* ceiling of Śāntinātha Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D-

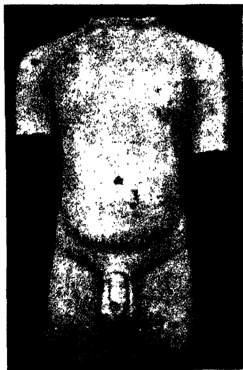
79. Exterior wall, showing figures of Mahāvidyās, *yakṣas* and *yakṣīs,* Ajitanātha Temple, Tāraṅga (Mehasana, Gujarat), 12th century A. D.

शब्दानुक्रमणिका[1]

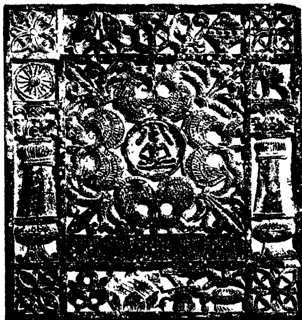
[1] शब्दानुक्रमणिका में केवल मूलपाठ के ही सन्दर्भों को सम्मिलित किया गया है।



चित्र १ हड़प्पा से प्राप्त मूर्ति



चित्र २ जिन, लोहानीपुर (बिहार), ल० तीसरी शती ई० पू०



चित्र ३ आयागपट, मथुरा (उ० प्र०), ल० पहली शती



चित्र ४ ऋषभनाथ, मथुरा (उ०प्र०), ल० पाचवी शती



चित्र ५ ऋषभनाथ, अकोटा (गुजरात) ल० पाचवी शती



चित्र ६ ऋषभनाथ, कोसम (उ० प्र०) ल० नवी-दसवी शती



चित्र ९



चित्र ७



चित्र ८

७ ऋषभनाथ, उरई (उ० प्र०). ल० १०वीं-११वों शती

८ ऋषभनाथ, मंदिर १, देवगढ़ (उ० प्र०), ल० ११वीं शती

९ ऋषभनाथ चौबीसी, सुरोहर (बांगलादेश), ल० १०वी शती



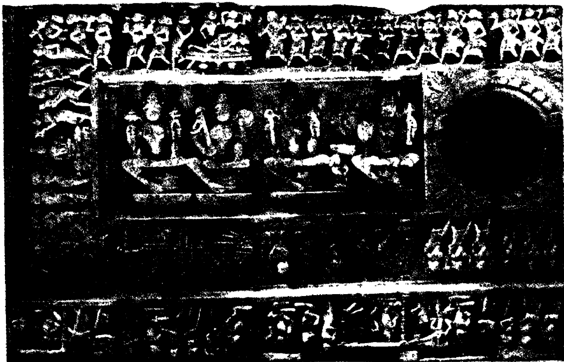
चित्र १० ऋषभनाथ, भेलोवा (बांग्लादेश)
ल० ११वीं शती



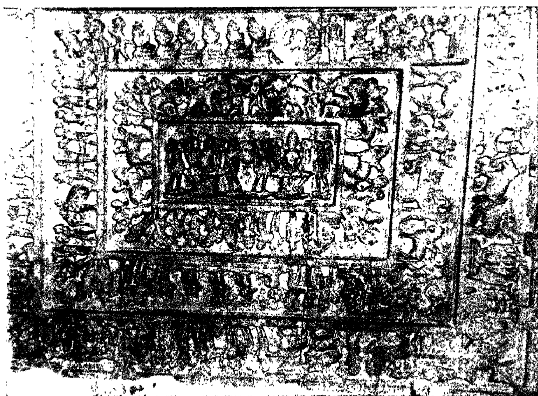
चित्र ११ ऋषभनाथ, सक (बंगाल)
ल० १०वीं-११वीं शती



चित्र १२ ऋषभनाथ-जीवनदृश्य (नीलांजना का नृत्य), मथुरा (उ० प्र०), ल० पहली शती



चित्र १३ ऋषभनाथ-जीवनदृश्य, महावीर मंदिर, कुभारिया (गुजरात), ११वीं शती



चित्र १४ ऋषभनाथ-जीवनदृश्य, शांतिनाथ मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती



चित्र १५ अजितनाथ, मंदिर १२ (चहारदीवारी). देवगढ (उ० प्र०), ल० १०वीं-११वीं शती



चित्र १७ चन्द्रप्रभ कौशाम्बी (उ० प्र०), नवीं शती



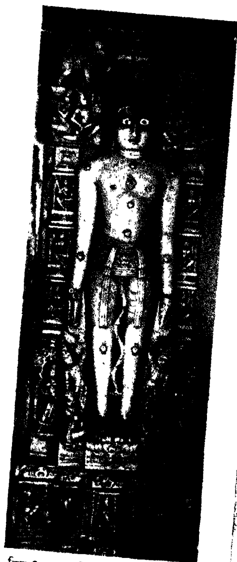
चित्र १६ सम्भवनाथ, मथुरा (उ० प्र०), १२६ ई०



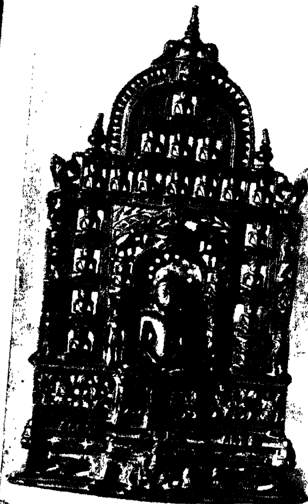
चित्र १८ विमलनाथ, वाराणसी (उ० प्र०),
ल० नवी शती



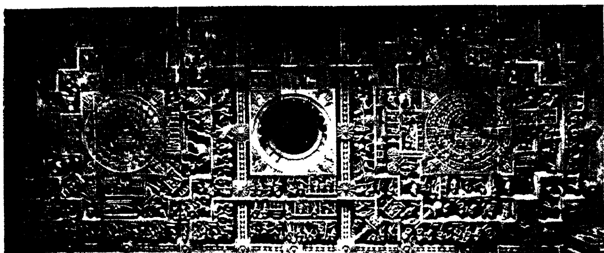
चित्र १९ शांतिनाथ, पभोसा (उ० प्र०), ११वी शती



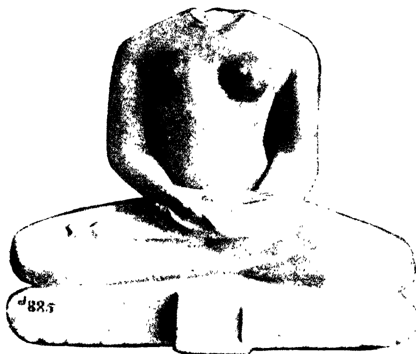
चित्र २० शांतिनाथ, पार्श्वनाथ मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), १११९-२० ई०



चित्र २१ शांतिनाथ चौबीसी, पश्चिमी भारत, १५१० ई०



चित्र २२ शान्तिनाथ और नेमिनाथ के जीवनदृश्य, महावीर मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती



चित्र २३ मल्लिनाथ, उन्नाव (उ० प्र०), ११वीं शती



चित्र २४ मुनिसुव्रत, पश्चिमी भारत, ११वी शती



चित्र २५ नेमिनाथ मथुरा (उ०प्र०), ल० चौथी शती



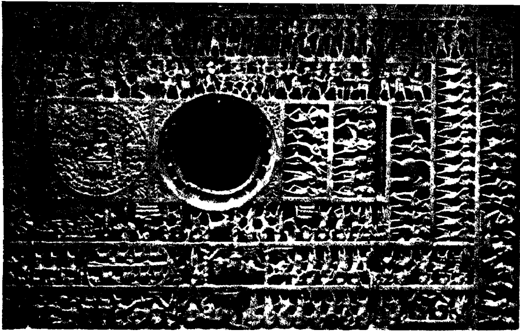
चित्र २६ नेमिनाथ, राजघाट (उ० प्र०), ल० सातवी शती



चित्र २७ नेमिनाथ, मंदिर २, देवगढ (उ० प्र०), १०वीं शती



चित्र २८ नेमिनाथ, मथुरा (?उ० प्र०), ११वीं शती



चित्र २९ नेमिनाथ-जीवनदृश्य, शांतिनाथ मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती



चित्र ३० पार्श्वनाथ, मथुरा (उ० प्र०), कुषाण काल



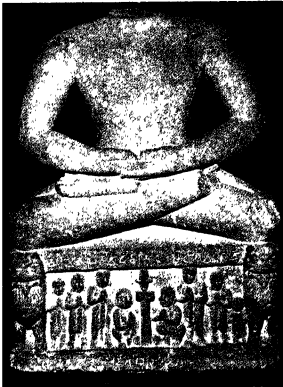
चित्र ३१ पार्श्वनाथ, मंदिर १२ (चहारदीवारी), देवगढ़ (उ० प्र०), ११वीं शती



चित्र ३२



चित्र ३३



चित्र ३४

३२ पार्श्वनाथ, मंदिर ६, देवगढ (उ०प्र०), १०वीं शती

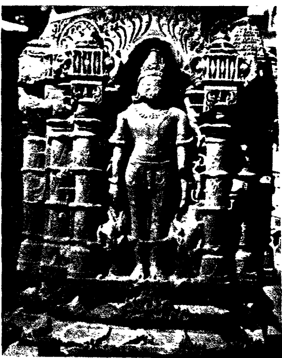
३३ पार्श्वनाथ, राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, ११वीं-१२वीं शती

३४ महावीर मथुरा (उ० प्र०), कुषाणकाल

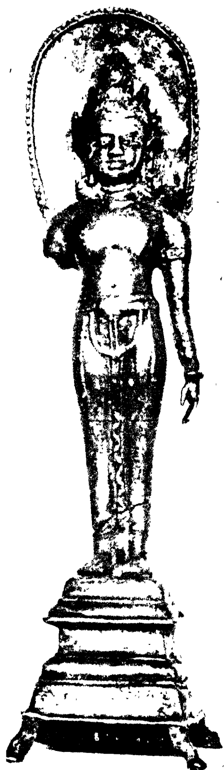


चित्र ३५

३५ महावीर, वाराणसी (उ० प्र०), ल० छठी शती



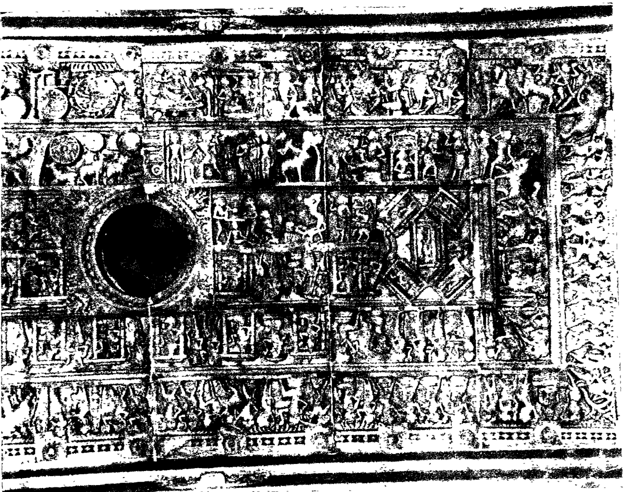
चित्र ३७ जीवन्तस्वामी महावीर ओसिया (राजस्थान), ११वीं शती



चित्र ३६ जीवन्त स्वामी महावीर, अकोटा (गुजरात), ल० छठी शती



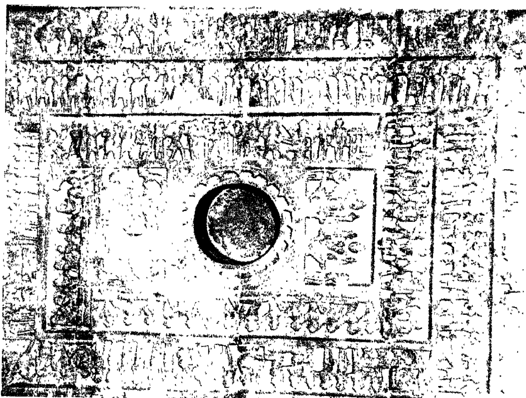
चित्र ३८ महावीर, मन्दिर १२, देवगढ़ (उ० प्र०), ल० ११वीं शती



चित्र ४० महावीर-जीवनदृश्य महावीर मंदिर कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती



चित्र ४० महावीर-जीवनदृश्य, (गर्भापहरण), मथुरा (उ० प्र०), पहली शती



चित्र ४१ महावीर-जीवनदृश्य, शान्तिनाथ मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती



चित्र ४२ जिन-मूर्तियां, खजुराहो (म० प्र०), ल० १०वीं-११वीं शती



चित्र ४३ गोमुख, हथमा (राजस्थान), ल० १०वीं शती



चित्र ४४ चक्रेश्वरी, मथुरा (उ० प्र०)
१०वीं शती



चित्र ४६



चित्र ४५

४५ चक्रेश्वरी, मंदिर ११ देवगढ़ (उ० प्र०) ११वीं शती

४६ चक्रेश्वरी, देवगढ़ (उ० प्र०), ११वीं शती

४७ रोहिणी, मंदिर ११, देवगढ़ (उ० प्र०) ११वीं शती



चित्र ४७



चित्र ४८



चित्र ४९



चित्र ५०

४८ सुमालिनी यक्षी (चन्द्रप्रभ), मंदिर १२, देवगढ़ (उ० प्र०), ८६२ ई०

४९ सर्वानुभूति, देवगढ़ (उ० प्र०), १०वीं शती

५० अंबिका, पुरातत्व संग्रहालय मथुरा नवीं शती



चित्र ५१ अंबिका, मंदिर १२, देवगढ (उ०प्र०) १०वीं शती



चित्र ५२ अंबिका, एलोरा (महाराष्ट्र), ल० १०वीं शती



चित्र ५.३ अंबिका, सतना (म० प्र०), ११वीं शती



चित्र ५.८ अंबिका विमलवसही आबू (राजस्थान) १२वीं शती



चित्र ५५ पद्मावती, शहडोल (म० प्र०), ११वी शती



चित्र ५६ पद्मावती, नेमिनाथ मंदिर (देवकुलिका), कुंभारिया (गुजरात), १२वीं शती



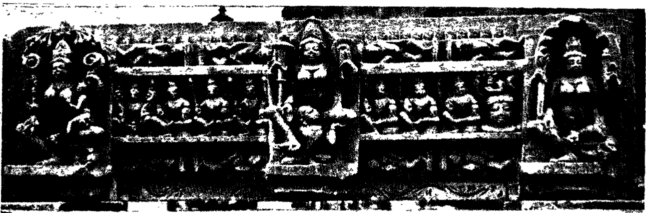
चित्र ५८ ऋषभनाथ एवं अंबिका, खण्डगिरि (उड़ीसा), ल० १०वी-११वी शती



चित्र ५९ पार्श्वनाथ एवं महावीर और शासनदेवियां, खण्डगिरि (उड़ीसा) ल० ११वीं-१२वीं शती



चित्र ६० द्वितीर्थी मूर्ति-विमलनाथ एवं कुंथुनाथ, मंदिर १, देवगढ़ (उ० प्र०), ११वीं शती



चित्र ५७   यक्षिया एवं नवग्रह, उत्तरग, खजुराहो (म० प्र०), ११वीं शती



चित्र ६१   त्रितीर्थी जिन मूर्तिया, खजुराहो (म० प्र०) ल० ११वीं शती



चित्र ६० द्वितीर्थी मूर्ति-ऋषभनाथ और महावीर, खण्डगिरि (उड़ीसा)
ल० १०वीं-११वीं शती



चित्र ६३ द्वितीर्थी जिन मूर्ति, मंदिर ३, खजुराहो (म० प्र०), ल० ११वीं शती



चित्र ६४ त्रितीर्थी जिन मूर्ति, मंदिर २९, देवगढ़ (उ०प्र०)
ल० १०वीं शती



चित्र ६५ त्रितीर्थी मूर्ति-सरस्वती एवं जिन, मन्दिर १, देवगढ़ (उ० प्र०), ११वीं शती



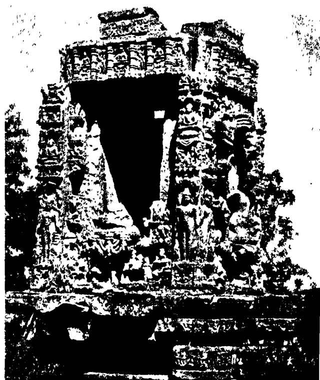
चित्र ६६ जिन चौमुखी, मथुरा (उ० प्र०) कुषाणकाल



चित्र ६७ जिन चौमुखी, अहाड़ (म० प्र०) ल० ११वीं शती



चित्र ६८ जिन चौमुखी, पक्बीरा (बंगाल)
ल० ११वीं शती



चित्र ६९ चौमुखी जिनालय, इन्दौर (म० प्र०), ११वीं शती



चित्र ७० भरत चक्रवर्ती, मंदिर २, देवगढ़ (उ० प्र०), ११वीं शती



चित्र ७१ बाहुबली, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक), ल० नवीं शती



चित्र ७२ बाहुबली, गुफा ३२, एलोरा (महाराष्ट्र), ल० नवीं शती



चित्र ७३ बाहुबली गोम्मटेश्वर, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक)
ल० ९८३ ई०



चित्र ७४ बाहुबली, मंदिर २, देवगढ (उ०प्र०), ११वीं शती



चित्र ७५ त्रितीर्थी मूर्ति-बाहुबली एव जिन मदिर २,
देवगढ (उ० प्र०), ११वी शती



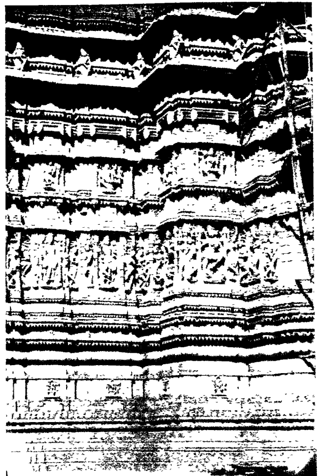
चित्र ७६ सरस्वती, नेमिनाथ मदिर
(देवकुलिका), कुभारिया (गुजरात)
१२वी शती



चित्र ७७ गणेश, नेमिनाथ मदिर, कुभारिया
(गुजरात), १२वी शती



चित्र ७८ सोलह महाविद्याएं, शान्तिनाथ मंदिर, कुंभारिया (गुजरात) ११वीं शती



चित्र ७९ बाह्यभित्ति, अजितनाथ मंदिर, तारंगा (गुजरात) १२वीं शती